8-11
(संयुक्त अंक)

ISSN: 2582-6530
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका

अरुणाचल प्रदेश पर केंद्रित विशेष अंक

कंचनजंघा

भाषा, साहित्य एवं संस्कृति का साझा उपक्रम



अतिथि संपादक: राजीव रंजन प्रसाद

कंचनजंघा : विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका ISSN: 2582-6530

कंचनजंघा

भाषा, साहित्य एवं संस्कृति का साझा उपक्रम

वर्ष: 04-06, अंक: 08-11, जुलाई-2023 से जून-2025 (संयुक्त अंक)

संपादक

प्रदीप त्रिपाठी

अतिथि संपादक

(अरुणाचल प्रदेश पर केंद्रित विशेष अंक)

राजीव रंजन प्रसाद

पत्राचार का पता

दुर्गा मंदिर रोड

न्यू गर्ल्स हॉस्टल बिल्डिंग, 06 माइल, गंगटोक

सिक्किम, पिन कोड : 737102

संपर्क : +91 - 6294913900 ईमेल : kanchanjanghapatrika@gmail.com

www.kanchanjangha.in

 ISSN: 2582-6530

संपादन समिति

संपादक

प्रदीप त्रिपाठी

परामर्श मंडल

सुवास दीपक
देवराज
येसे दरजे थोंगछी
सी. कामलोवा
राजेश जोशी
प्रदीप के शर्मा
भीम ठटाल

समीक्षा समिति

अजेय झा
भरत प्रसाद
संजय कुमार
जय कौशल
जेनी मलसोमदोङकिमी
गोरखनाथ तिवारी
अनुशब्द
चुकी भूटिया
अनुज कुमार
रूपेश कुमार सिंह

अतिथि संपादक (अरुणाचल प्रदेश पर केंद्रित अंक)

राजीव रंजन प्रसाद

संपादक मण्डल

मिलनरानी जमातिया
जोराम यालाम नाबाम
देवचंद्र सुब्बा
फिल्मेका मारबानियांग
शोभा लिम्बू

प्रबंधन एवं कला संपादन

कुँवर रवींद्र
पंकज कुमार सिंह

कवर पृष्ठ संयोजन

अमजद हुसैन

संपादन सहयोग

जमुना बीनी
प्रीति सिंह
राहुल निशांत
दीपक कुमार
अरविंद कुमार यादव
तुलसी छेत्री

ISSN: 2582-6530

कंचनजंघा

वर्ष: 05, अंक: 08-11, जुलाई-2023 से जून-2025 (संयुक्त अंक)

अरुणाचल प्रदेश पर केंद्रित विशेष अंक

इस अंक में...

संपादकीय

पहाड़ों की चुप्पी में शब्दों की गूँज... — प्रदीप त्रिपाठी

अतिथि संपादकीय

अरुणाचल प्रदेश अंक: सुखे-दु:खे समे कृत्वा — राजीव रंजन प्रसाद

अंत:करण का आयतन

हिंदी के अनुष्ठान में अर्घ्य बनी एक पत्रिका : अरुण नागरी — देवराज

अरुणाचल प्रदेश में हिंदी के अभिभावक अध्यापक रमण शाण्डिल्य — राजीव रंजन प्रसाद

लेख

न्यीशी लोककथाओं का विभिन्न दृष्टियों से अध्ययन — जोराम आनिया

गालो लोककथाओं में उदात्त, मजबूत और यथार्थ-स्त्री छवि — तुम्बम रीबा

अरुणाचल-केंद्रित लेखन और नंद किशोर पाण्डेय — हरीश कुमार शर्मा

तांगाम जनजाति का मौखिक साहित्य : वर्तमान परिप्रेक्ष्य — तुनुङ ताबीङ

गालो समाज में बच्चों के जन्म संबंधी मान्यताएँ — दोगे ङमदिर

सच्ची कविता ही अच्छी कविता होती है — अभिषेक कुमार यादव

आदी समाज में 'नबीङ' की भूमिका — ईङ परमे

मिश्मी लोकगीतों में अभिव्यक्त श्रम-सौंदर्य — मो. जोहरुल इस्लाम

अरुणाचली लोकवृत्त की 'तानी कथाएँ' — विक्रम कुमार

गालो और हिंदी लोक-सुभाषितों में नीतिपरक विचार और उपदेशात्मक चेतना — रबोम बेलो

तांग्सा जनजाति के मुहावरों में प्रयुक्त गालियों का विश्लेषणात्मक अध्ययन — रेमोन लोंग्कु

तानी समुदाय की कृषि संबंधी लोककथाओं में अभिव्यक्त आदिवासी जीवन-दर्शन — यागे काबाक

ईदु मिश्मी लोक साहित्य में जीवन-मूल्य — रीना कुमारी राय एवं आशा मिमी

बार्दो लोक-नाटक में दार्शनिकता के अभिव्यंजक तत्त्व — मिसुङ मदो

तागिन लोकगीत : ञ्मअ कबनम — चाचू दाई

ऊन्यिङ आरान : दक्षता एवं कौशल प्रदर्शन का आदी पर्व — नानू ताली

तवाङ : मनोरमता और लोकजीविता की पावन भूमि — लाम छोटन

पहाड़ी कोठार से

आबोतानी, मअजी यापम और किसिङ तामिङ की कहानी — तारो सिन्दिक
(तागिन लोक-कथाएँ : चयन- यापी बायोर)

जाईबोने (गालो लोक-कथा) — गुमजुम लोई

रिजुम हाअ्-रिमा हाअ् (तांग्सा लोक-कथा) — रेमोन लोंग्कु

घाटियों का स्वर

डेने सिटम डोनुना; पिलू जार्जु करिया लाये- कारिया लायी;
आङा यी ई मादु नअ सी ई (तागिन लोकगीत : चयन- यापी बायोर) — तारो सिन्दिक
इजी पेने पेबरे (न्यीशी लोकगीत) — यातो मूरी

भीतरी पाट से

न्यीशी लोकगाथा : संवेदना एवं स्वरूप — डूरी शांति

गालो लोक-कथाओं की प्रासंगिकता — गोरिक अतअ

भाषा-चेतना

मोनपा भाषा का हिंदी भाषा के संदर्भ में अध्ययन सोनाम वाङमू
गालो जनजाति की भाषा और लिपि व्यवस्था मोर्जुम लोयी

भाषा-शिक्षण

उत्तर-पूर्वी राज्यों में हिंदी भाषा-शिक्षण : समस्याएँ एवं समाधान (संदर्भ: अरुणाचल प्रदेश विशेष) अवधेश नारायण मिश्र एवं मीना कुमारी
बहुभाषाई एवं बहुसांस्कृतिक अरुणाचल प्रदेश में अनुवाद अध्ययन की आवश्यकता ज्योतिष पायेङ

कहानी

पुण्य ध्वजा येसे दोरजी थोंग्छी
अम्मा जोराम यालाम
ऑफिसर पत्नी तारो सिन्दिक

अनूदित कहानी

दोन्यी-पोलो अजन्ता
(अंग्रेजी से हिंदी) (अनुवादक: माधुर्ज्य कमल हाजरिका)

कविताएं

जमुना बीनी की पाँच कविताएँ
दोगे ङमदिर की दो कविताएँ
आईनाम इरिंग की तीन कविताएँ
गुम्पी डूसो लोम्बि की दो कविताएँ
दोरजी लोम्पु की तीन कविताएँ
सोनी रूमछु की चार कविताएँ
जोमयीर जीनी की दो कविताएँ
वांगो सोसिया की दो कविताएँ

अनूदित कविताएँ (अंग्रेजी से हिंदी)

गोकेन गेई की तीन कविताएँ

मियाज़ी हज़ाम की तीन कविताएँ

दोयिर एते की तीन कविताएँ

गंखु सुम्न्यां की दो कविताएँ

सुबी ताबा की दो कविताएँ

स्त्री-बोध

नेयाङः आन्ने और आदी स्त्री — पूर्णिमा ओसुनाम तायेङ

आदिवासी दर्पण

अनुष्ठानप्रिय मुकलोम जनजाति — चावाङ ताङहा

यात्रा-वृत्तांत

स्वर्ण पगोडा की भूमि-नामसाई — दयाराम वर्मा

गाँव-ज्ञान

'देसाली' गाँव का लोक-जीवन और लोक-रंग — रेनू मिसो

'दामिन' बस्ती और जैव-विविधता का लोक-पक्ष — तार्बा यादम

कृति-संधान

तानी दर्शन की विश्व दृष्टि : जिमी-जमा की आँखें सब देख रही हैं — देवराज

शोध-वातायन

अरुणाचल प्रदेश: लोक-साहित्य और हिंदी अनुसंधान — संतिमो निमासो

संस्मरण

अरुणाचल प्रवास के मेरे अविस्मरणीय दिन नंद किशोर पाण्डेय

लोकश्रुति नाट्य

हारमती निर्वासन मुनीन्द्र मिश्र

सिने-साक्षात्कार

परदे की खिड़की और दरवाजे खोले जाने का सही समय यही है
(फ़िल्मकार एवं लेखक ताई तुगुङ से याई न्योकिर की बातचीत)

पुस्तक समीक्षा

अनकही दास्तान: मामांग दाई की कृति 'काली पहाड़ी' नानाङ यीराङ

अरुणाचली स्त्री के श्रम, संघर्ष और साहस का जीवंत दस्तावेज 'मेरी आवाज़ सुनो' राजीव रंजन प्रसाद

संपादकीय

पहाड़ों की चुप्पी में शब्दों की गूँज...

कंचनजंघा पत्रिका का यह अंक पूर्वोत्तर भारत के आठ राज्यों पर केंद्रित एक महत्त्वाकांक्षी और बहुप्रतीक्षित सांस्कृतिक परियोजना का प्रस्थान बिंदु है, जिसकी शुरुआत हम अरुणाचल प्रदेश से कर रहे हैं। इस यात्रा का उद्देश्य पूर्वोत्तर भारत की बहुभाषिक, बहुसांस्कृतिक और बहुआयामी साहित्यिक परंपराओं से संवाद स्थापित करते हुए इसे संरक्षित करना है। इस अर्थ में, कंचनजंघा का यह अंक न केवल अरुणाचल प्रदेश के साहित्यिक और सांस्कृतिक वैभव का दस्तावेज़ है, बल्कि यह हिंदी साहित्य की विस्तारशीलता और आत्मीयता का भी प्रमाण है।

कंचनजंघा के इस अंक के माध्यम से हम एक बड़े संकल्प की ओर आगे बढ़ रहे हैं। यह अंक एक दीर्घकालिक साहित्यिक परियोजना का पहला पड़ाव है, जिसका उद्देश्य पूर्वोत्तर भारत के आठों राज्यों के सामाजिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक परिदृश्य को स्वतंत्र रूप से विशेषांक के रूप में प्रकाशित करना है। अरुणाचल प्रदेश अंक इसका प्रथम सोपान है।

अरुणाचल प्रदेश पर केंद्रित यह अंक उन सभी रचनाकारों, शोधकर्ताओं, अनुवादकों और स्थानीय लेखकों की साझी मेहनत और संवेदना का परिणाम है, जिन्होंने इस परियोजना को केवल एक अकादमिक दस्तावेज़ नहीं, बल्कि एक आत्मीय एवं परस्पर संवाद में बदल दिया है। कंचनजंघा पत्रिका का यह विशेषांक अरुणाचल प्रदेश की लोक संस्कृति, भाषिक विविधता, साहित्यिक परंपरा, स्त्री-बोध एवं आदिवासी जीवन-दर्शन को समग्रता में समेटने का एक विनम्र प्रयास है। निश्चित रूप से आदिवासी लोकगीतों, कथाओं और कहावतों के माध्यम से अरुणाचल प्रदेश की साहित्यिक एवं सांस्कृतिक जमीन को समझने की एक सतत जिज्ञासा इसमें परिलक्षित होती है।

यह अंक ऐसे अनुभवों की सह-यात्रा है, जिसमें अरुणाचल की घाटियों, उत्सवों, भाषाओं और लोक विश्वासों से संवाद स्थापित करने का प्रयास किया गया है। स्थानीय लेखकों की सहभागिता इस विशेषांक की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। अरुणाचल प्रदेश के स्थानीय लेखकों और युवा रचनाकारों की सशक्त उपस्थिति ने इस अंक को और अधिक प्रामाणिक बना दिया है। निश्चित रूप से इस भागीदारी ने अंक में शामिल विषयवस्तु को विश्वसनीयता प्रदान की है। अंक में शामिल स्थानीय भाषाओं से हिंदी में अनूदित रचनाएं न केवल भाषायी सेतु का निर्माण करती हैं, बल्कि पाठक को भाषाओं के भीतर की अनुभूतियों से भी जोड़ती हैं। यह अंक पूर्वोत्तर भारत के साथ शेष भारत का समन्वय और स्थायी संवाद

की नींव स्थापित करने की एक कोशिश है। हमें उम्मीद है कि निकट भविष्य में यह संवाद महज रचनात्मक न होकर सामाजिक और सांस्कृतिक स्तर पर भी सार्थक सिद्ध होगा।

मैं कंचनजंघा पत्रिका के इस विशेषांक के अतिथि संपादक डॉ. राजीव रंजन प्रसाद की प्रतिबद्धता और उनकी संवेदनशील दृष्टि की सराहना करता हूँ, जिन्होंने इस अंक के माध्यम से अरुणाचल प्रदेश के उन अनछुए पहलुओं से हमें परिचित कराया है, जिनसे अधिकांश पाठक समूह अनभिज्ञ है। हमें विश्वास है कि यह अंक न केवल अरुणाचल को समझने में सहायक होगा, बल्कि हिंदी पाठक को अपनी भाषा में एक नए भूगोल और संस्कृति से जोड़ने का सशक्त माध्यम भी बनेगा।

अतिथि संपादक के रूप में डॉ. राजीव रंजन की भूमिका केवल संपादकीय जिम्मेदारी तक सीमित नहीं रही, बल्कि उन्होंने इस अंक को एक जीवंत सांस्कृतिक परियोजना के रूप में जिया। उनका संपादन किसी औपचारिक प्रक्रिया का निर्वहन नहीं, बल्कि एक सघन रचनात्मक और मानवीय प्रक्रिया का विस्तार रहा, जिसमें वे स्वयं एक माध्यम बनकर अरुणाचल की विविध भाषाओं, लोकधाराओं और साहित्यिक स्वरूपों को हिंदी जगत से जोड़ने के लिए सतत प्रतिबद्ध रहे। उनकी प्रतिबद्धता का प्रमाण इस अंक की विषयवस्तु की गहराई और विविधता में स्पष्ट परिलक्षित होता है। निश्चित रूप से राजीव रंजन ने संपादन के स्तर पर इस अंक को यथासंभव सहज और प्रमाणिक स्वरूप देने का प्रयास किया है। कंचनजंघा पत्रिका समूह की ओर से डॉ. राजीव रंजन प्रसाद के इस समर्पण और गहरे संपादकीय विवेक के साथ अंक के संपादन हेतु हार्दिक बधाई और साधुवाद।

यह विशेषांक हम उन सभी पाठकों को समर्पित करते हैं, जिनके भीतर अरुणाचल प्रदेश को जानने की जिज्ञासा और सह-यात्रा करने का भाव जीवित है। हमारी आकांक्षा है कि यह अंक पाठकों के भीतर पूर्वोत्तर भारत के प्रति एक नया भाव जगत रचे, एक ऐसी आत्मीयता उत्पन्न करे, जो केवल पठन तक सीमित न रहे, बल्कि समझ, संवाद और सहभागिता तक पहुँचे। कंचनजंघा परिवार की ओर से यह अंक सभी सुधी पाठकों को सादर समर्पित है- सप्रेम, सह-भाव और संकल्प के साथ।

(प्रदीप त्रिपाठी)

अतिथि संपादकीय

अरुणाचल प्रदेश अंक : सुख-दु:खे समे कृत्वा

"खुली छतों के दियें कब के बुझ गये होते,

कोई तो है जो हवाओं के पर कतरता है।" (वसीम वरेलवी)

यही हकीकत है। 'कंचनजंघा' पत्रिका के संपादक डॉ. प्रदीप त्रिपाठी और प्रो. देवराज जी मेरे संबल का मुख्य आधार बने। परिणामस्वरूप अरुणाचल प्रदेश पर केंद्रित यह विशेष अंक आप सबके समक्ष प्रस्तुत है। मनुष्य होने के नाते लिखना और पढ़ना सबसे बड़ा सत्कर्म है। ऐसा कर हम अपने इंसान बने रहने की पुष्टि करते हैं। स्वयं से यह जान पाते हैं कि हमारी सीमाएँ क्या हैं और पहुँच भी।

यह अंक हिंदुस्तानी भूगोल और देशज समाज-संस्कृति को पूर्वोत्तर की आँख से जानने-समझने का विनम्र प्रयास मात्र है। यद्यपि यह अंजुरी भर सच है, जहाँ से अरुणाचल प्रदेश की खिड़की खुलती है। अरुणाचल प्रदेश पर केंद्रित यह अंक कंचनजंघा पत्रिका का पूर्वोत्तर के साथ अपने अंत:संबंधों का निर्वाह और विस्तार दोनों है।

हाल के वर्षों में अरुणाचल प्रदेश का लेखकीय संसार हिंदी भाषा में बेहद समृद्ध हुआ है। इस प्रदेश की रचनात्मकता राष्ट्रीय स्तर पर अपनी मौलिक पहचान के साथ उपस्थित हुई है, जिस ओर हिंदी समाज का ध्यान गया है। अरुणाचल प्रदेश का लेखक-वर्ग परस्पर परिचित और सम्मानित भी हुआ है। अब हिंदी के पाठक इस प्रदेश के रचनाकारों से परिचित हैं या उनका ध्यान जा रहा है, तो यहाँ के रचनाकार भी हिंदी भाषी लेखकों और पाठकों से सीधे मेल-मिलाप और साक्षात्कार कर पा रहे हैं। यह रचनात्मक घोल या मिश्रण बनाने में 'कंचनजंघा' पत्रिका का उद्यम काफी अधिक रहा है, यह मैं मानता हूँ। डॉ. प्रदीप त्रिपाठी जी के मन में अरुणाचल प्रदेश पर केंद्रित विशेष अंक निकालने का विचार आया और उन्होंने यह जिम्मेदारी मुझे सौंपी, तो मुझे ठीक ही लगा। यह संपादन कार्य करने का सुख मैंने बटोरा है और यश भी पाया है। मेरा विश्वास आलोचनात्मक विवेक और खरी-खरी कहने-सुनने पर अधिक रहा है। अतएव, सुधि पाठक इस अंक को अपना मान स्वीकार करेंगे और पढ़ेंगे, सुझाव और मंतव्यों से अवगत कराएँगे। मुझे अपने इस संयोजन से इतनी अपेक्षा तो जरूर रखनी चाहिए।

मुझे अरुणाचल प्रदेश में रहते कई वर्ष हुए। मैं अपनी आँखों के भरोसे से कुछ बात कहना चाहता हूँ। अरुणाचल प्रदेश 28 जिलों से मिलकर बना एक हरित प्रदेश है। यह राज्य मुख्यत: वन क्षेत्र से आच्छदित भू-भाग है, जिसकी अंतरराष्ट्रीय सीमा चीन, भूटान और म्यांमार देशों से लगी हुई हैं। यह प्रदेश नदी, घाटी, पहाड़, वनस्पति, वन्यजीव, पशु-पक्षी, बारिश, धूप, बर्फ, आदिवासीजन से भरा-पूरा है। 'दोन्यी पोलो' का

यह प्रदेश प्रकृतिजीवी होने का इश्तहार नहीं करता है, बल्कि यहाँ के लोगों की निर्मिति ही इस तरह हुई है कि अरुणाचलवासी प्रकृति से अलग करके खुद को देख ही नहीं सकते हैं। जैसे आबोतानी की पुरखाई परंपरा के बिना उनकी कोई पहचान, अस्मिता, इतिहास-बोध, स्मृति, सामाजिक-सांस्कृतिक विरासत आदि की कल्पना नहीं की जा सकती है; वैसे ही प्रकृति उनके स्वदेशी आस्था का केंद्र और उनकी वाचिक परंपरा और लोक-साहित्य का सच्चा कोठार है। इस लोक साहित्य में पुरा कथाएँ, पुरा अनुभव, मिथकीय स्मृतियाँ, आनुष्ठानिक संस्कार बहुतायत मिलते हैं। दरअसल, लोक-साहित्य के बारे में गहन समझ और गहरी पैठ के लिए जनजातीय ज्ञान परंपरा से जुड़ाव जरूरी है। यह जुड़ाव आदिवासी-जन के मूल्यवान अतीत और उसमें व्याप्त बौद्धिक संपदा से परिचय कराता है। यह परिचय भारत बोध के आदिम इतिहास और मिथकीय चेतना का पुरा-अनुभव भी है जो भारतीय लोक विद्या और लोक साहित्य में प्रचुर मात्रा में विद्यमान है। स्थानीय समाज के अगुआ के रूप में तानी समुदाय का पुरखा पूर्वज आबोतानी हैं। आबोतानी की साहसिक योग्यता और बुद्धिमत्ता के साथ जुड़ी मानवीय दुर्बलताओं के बारे में तानी समुदाय एक दार्शनिक अवधारणा भी संजोये हुए है जिसे 'तानी दर्शन' कहा जाता है। अरुणाचली लोक साहित्य में भिन्न-भिन्न पात्रों की बेजोड़ उपस्थिति है जो नैतिक आदर्श और मूल्यों का संवृत्त रचते हैं।

उदाहरण के लिए न्यीशी जनजाति के लोक साहित्य को देखें, तो लिन्खी सोज और मीरी सोज शिकारी हैं जिनकी वीरता और शिकार-कौशल के बारे में न्यीशी लोक-कथा के माध्यम से बताया जाता है। दोजोंग याशिंग के बारे में न्यीशी समुदाय चर्चा करते हुए बताता है कि यह एक आत्मा है। इसी तरह ताई बिदा के बारे में दिलचस्प बात सुनने को मिलती है कि वह एक अमीर आदमी था। अमीर इस मामले में कि उसके पास मिथुन के बड़े झुंड थे। अरुणाचली लोक कथाओं में इसी तरह बरम दीमिन का नाम आता है जो एक जिद्दी लड़की थी। वह अपने जिद्दीपन के कारण जंगल में एक बरगद के पेड़ की जड़ों के बीच में फंस जाती है। इसी तरह बर्ज बर्ज नामक एक सुंदर युवती की कथा है, जो अपने माता-पिता की सलाह को न मान एक बड़े पत्थर के बीच फंसकर अपना दम तोड़ देती है। जरपू तेचि एक साहसी युवा लड़की है, जो किसी से नहीं डरती है। उसकी निर्भीकता के बारे में बताते हुए न्यीशी समुदाय गर्व-बोध से भर जाता है। पोबर एक गरीब भाई है, जिसे अपनी छोटी बहन से बहुत प्रेम है और उसकी बड़ी चिंता करता रहता है। जरी एक गरीब बहन है, जो अपने बड़े भाई की शादी को लेकर हमेशा चिंतित रहती थी। रुमियांग एक बुद्धिमान आदमी है और उसकी बुद्धिमत्ता की सभी प्रशंसा करते हैं। तोदू तोखू एक आत्मा का नाम है तो तुकी एक शिकारी है, जो अपनी पत्नी से बहुत प्रेम करता है। काद और कागर शिकारी हैं, जो अपनी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए शिकार करते हैं। बरिलूरा एक चतुर लड़का है, जिसकी चतुराई के किस्से न्यीशी समुदाय चाव से सुनाते हैं। आपापल्ली एक नरभक्षी बूढ़ा है, जिसके बारे में जानना रोचक है। पोईतालो एक ऐसा व्यक्ति है, जो अपने ही दोस्त से बहुत जलता है। नियोतालो की साहसिक कहानी प्रसिद्ध है जिसने पेता-लाबरा को मारा था। निम्यो आबोतानी की बेटी है और तलंग आबोतानी की बेटी निम्यो की पति है। ये कुछ रोचक नाम भर नहीं हैं, बल्कि अरुणाचल प्रदेश की लगभग सभी जनजातियों और उनकी

उप-जनजातियों में ऐसे अनगिनत कथानक, कथावस्तु और कथा-प्रसंग मिलते हैं जिनका दृष्टांत रोचक और वृत्तांत सुखकर बहुत है।

लोक-साहित्य की दृष्टि से अरुणाचल प्रदेश का पुरखा हिमालय अपनेआप में ऐतिहासिक है। इस हिमालय में बसे अरुणाचली जनसमुदाय का इतिहास लिखित नहीं है, लेकिन ऐतिहासिक साक्ष्यों की मौजूदगी के ढेरों प्रमाण बिखरे पड़े हैं। यह देशकाल अपनी प्राचीनता में ई.पू. से 1200 ई. तक वर्णित एवं उल्लिखित है। असम का बुरंजी ग्रंथ इसका उदाहरण है। समाजविज्ञानी एवं अध्येता डॉ. भिक्षु कौण्डिन्य ने अपनी किताब 'अरुणाचल का खाम्ति समाज साहित्य' में इस पर विस्तार से चर्चा की है। चीन, तिब्बत और बर्मा का भारत के उत्तर-पूर्व से संबंध प्रमुख है। बौद्ध धर्म के अलावे बर्मा के गोदना कला का प्रभाव अरुणाचल प्रदेश में आज भी देखा जा सकता है। सन् 1826 ई. का एन्दायबू की संधि अहोम शासित अरुणाचल प्रदेश के लिए बेहद महत्त्वपूर्ण है, जिसके बाद शासन का अधिकार ब्रिटिशों को हस्तांतरित हो गया। अरुणाचल प्रदेश की जनजातियों द्वारा विरोध अथवा विद्रोह किए जाने का क्रमवार उल्लेख ऐतिहासिक दस्तावेजों में मिलता है जिसका अंग्रेजों ने चालाकीपूर्वक हल निकाला, उन पर दबाव डालकर प्रत्यक्ष न सही परोक्ष ढंग से अपने अधीन बनाए रखा। पुरातत्त्व के आचार्य इस प्रदेश की प्राचीनता को भारत की गौरववर्णी सभ्यता का केंद्रक मानते हैं और इसे 'उदयाद्रि' पुकारते हैं। अरुणोदय की इस भूमि में 'दोङ' वह स्थल है जहाँ सूर्यकिरण का सबसे पहले आगमन होता है। अरुणाचल प्रदेश प्राकृतिक रूप से चेतस है। लोकास्था में प्रकृतिजीवी है। नदियों में 'सांग्पो' का इतिहास पुराना है जो असम में उतरकर ब्रह्मपुत्र कहलाती है। अरुणाचल प्रदेश की पहचान पेड़ भी हैं। बाँस तो जैसे इनकी सहज खुराक है। इसके अलावे लंबे और झमठार पेड़ हैं। अलग-अलग नाम-होलोंग, नाहर, बम्बू, मुदरी, कोम्पे, तोको पात, उनतरा, ताम, तरू, संलार, तापिल, कोमकेर, मुद्री, बअला, तरिकाम। हिंदी में अमरूद को 'मुद्री' कहा जाता है। कटहल को 'बअला', तो बाँस को 'अह' कहा जाता है। अरुणाचल प्रदेश में आम, अमरूद, नीम, कटहल, अनन्नाश, संतरा, सेब, केला आदि खूब देखने को मिल जाते हैं। इस पहाड़ी प्रदेश के त्योहार मनभावन हैं। इनके नाम हैं- न्योकुम, लोंग्ते, सोलुंग, मोपिन, मोह मोल, सी-दोन्यी, लोसर, रेह, द्रि, तमलाडू, चालोलोकू, एतोर, उईंग आरान, पोदी बार्बी, बूरी बूत, खिकसबा इत्यादि। त्योहार के मैदान यानी ग्राउंड यहाँ अपना महत्व रखते हैं- मोपिन ग्राउंड, सोलुंग ग्राउंड, न्योकुम ग्राउंड आदि। न्यीशी जनजाति का न्योकुम त्योहार और इस मौके पर गाया जाने वाला खास गीत 'रिकमपादा' सुनिए। 'जाजिन जा' गुनगुनाइए। एकदम अलग अहसास होगा। अरुणाचल प्रदेश के आदिवासी लोकगीत के स्वर लुभा लेंगे, नएपन का अहसास जरूर होगा। पल भर के लिए सुध-बुध खो देना क्या कम है। कई चर्चित लोक-गायक और गायिका हैं- देलोंग पादुंग, मोगे दोजी, दागजुंग जुगली, चोरूम मुगली, दोमिन कारबाक, हिपु जोसेफ इत्यादि। इन लोक-कलाकारों के गीत और बोल अपनी परंपरा और संस्कृति से जुड़े होने के अहसास से भर देते हैं।

आदिवासी जीवन में गीतों का पाँव के थिरकन से बहुत मेल है। यहाँ हर अहसास को गहराई से जीने और उसमें रंगने का न्योता 'नृत्य' है। अस्तु, यहाँ का लोक-परिवेश बेहद आत्मीय और समूह-मन

लिए हुए है। खेती-किसानी में मेल-मिलाप और परस्पर सहयोग बहुत है। गालो जनजाति में पानी खेती को 'इसरींग' कहा जाता है, तो आदी जनजाति में झूम खेती को 'आदि आरिक'। इस प्रदेश में भाषा-बोली की विविधता बहुत है। यहाँ के सुदूर सीमा से सटे ग्रामवासी स्वागत के लिए शब्द 'जय हिंद' बोलते हैं, तो स्वाधीनता आंदोलन के साक्षी रहे 'अबोर-हिल्स' मशहूर बहुत है। इसी तरह 'पटकाई हिल्स', 'मिश्मी हिल्स', 'लाल आने हिल्स', 'नक्शा हिल्स', 'जीरो पठार' इत्यादि को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है। यहाँ के रहवासियों का सामाजिक-सांस्कृतिक बोध गहरा है।

यहाँ की पारिस्थितिकी को देखें, तो वन्य, जीव, पशु, पक्षी, नदी, घाटी, पहाड़, हवा, बतास आदि का प्रकृति में समाहार लौकिक और प्रत्यक्ष है। सूर्य और चंद्रमा की उपासना का विधान बहुविध है तो अनुषंगी कार्यकलापों में खेती-किसानी सर्वश्रेष्ठ है। यहाँ भी अन्न की पालिका और जंगल के पालक हैं जिनके प्रति श्रद्धा और विश्वास बहुत है। इन प्रकृति अराध्यों को पर्व-त्योहार के अवसर पर विशेष रूप से स्मरण किया जाता है तथा इनसे सामूहिक मंगल, सुख, समृद्धि आदि की प्रार्थना की जाती है। मिथुन अरुणाचल प्रदेश का राजकीय पशु है जो अपनी बनावट और आकृति में गाय और भैस की तरह होता है, लेकिन उसके जैसा बिल्कुल नहीं है। अरुणाचल प्रदेश में मिथुन का आनुष्ठानिक महत्त्व बहुत अधिक है। इसे न्यीशी जनजाति में 'सब'/'सबे' के नाम से जानते हैं, वहीं आदी जनजाति इसको 'एसो' कहती है। इसी तरह तवांग क्षेत्र में याक पशु देखने को मिलते हैं। तवांग परिक्षेत्र मोंपा जनजाति का है जिनके अनन्य अराध्य बुद्ध हैं। सत्य और अहिंसाप्रिय बुद्ध की सेवा अरुणाचलवासियों ने पूर्ण आस्था और भक्ति-भावना से की है। आज भी अरुणाचल प्रदेश में बुद्ध लोकास्था के केंद्र हैं, शीर्ष पर विराजमान हैं।

अरुणाचल का लेखकीय समाज आदिवासी चेतना एवं मानवीय संवेदना से लैस है। सृजन-कला और अपनी रचनात्मकता को उभारने में लगातार प्रयत्नशील है। अरुणाचल प्रदेश सरकार के आईपीआर डिपार्टमेंट ने वर्ष 2018 में 'अरुणाचल लिट फेस्टिवल' मनाने का निर्णय लिया, तो वरिष्ठ साहित्यकार येशे दोरजी थोङची एवं ममाङ दाई इसकी अगुवाई कर रहे थे। यदि आपने येशे दोरजी थोङची का नाम नहीं सुना है, तो 'मौन होंठ मुखर हृदय' अवश्य पढ़ना चाहिए। साहित्य अकादमी से प्रकाशित यह किताब असमीया से हिंदी में अनूदित होकर वर्ष 2017 में आई है। हिंदी के पाठकों के लिए यह एक बड़ी उपलब्धि है जिसे कवि, लेखक एवं अनुवादक दिनकर कुमार ने संभव किया है। संक्षेप परिचयनामा में कहें, तो येशे दोरजी थोङछी एक पहाड़ी लेखक हैं। वे सुदूरवर्ती अरुणाचल प्रदेश के एक ऐसे उपन्यासकार हैं जो मूलतः असमीया में लिखते हैं। कविता एवं नाट्य लेखन में उनकी समान गति है। उनकी अब तक प्रकाशित प्रमुख कृतियों की जानकारी होनी चाहिए, जो हैं-'सोनाम', 'लिङझिक', 'पापोर', 'फुखुरी', 'बाह फुलर गंध', 'मिशिङ', 'शव काटने वाला आदमी' तथा 'मौन होंठ मुखर हृदय'। येशे दोरजी का व्यक्तित्व सुघड़ और कद-काठी प्रभावशाली है। वे मृदुभाषी हैं और उनके चेहरे पर मुस्कान हमेशा होती है। अरुणाचल प्रदेश पर केंद्रित उनकी कृतियाँ मूलतः असमीया भाषा में लिखी गई हैं और वह अरुणाचली मूल के महत्त्वपूर्ण असमीया कथाकार हैं। आदिवासी स्त्री-पुरुष प्रेम की उन्मुक्तता और परिवेश की जटिलता का यथार्थपूर्ण

चित्रण येशे दोरजी थोङ्छी के उपन्यासों में मिलता है, जो पाठक की संवेदना और मर्म को छूते और उनकी स्मृतियों में टँक जाते हैं। कई बार विह्वल पाठक येशे दोरजी थोङ्छी से सीधे संपर्क करते हैं और अपनी दिली बात उनसे साझा किये बिना नहीं रह पाते। सुदूर उत्तर-पूर्व का यह रचनाकार अरुणाचली-असमीया दिलों में बसता है और सभी उनको अपना 'साहित्यिक गार्जियन' मानते हैं। इस अंक में उनकी कहानी 'पुण्य ध्वजा' शामिल है, जो उनकी हिंदी में लिखी और छप रही पहली कहानी है।

अरुणाचल प्रदेश की सुपरिचित लेखिका एवं कवयित्री हैं, मंमाङ दाई। साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित मंमाङ दाई आदिवासी स्वातंत्र्य-बोध और अरुणाचली माटी-महक की करीबी लेखिका हैं। ममाङ दाई अरुणाचली लड़कियों-स्त्रियों के लिए 'हिल लेडी' हैं जिन्होंने आईएएस होना नहीं स्वीकार किया। उनकी प्रतिरोधी चेतना का बाँकपन उनको पत्रकार बनने पर बाध्य किया। कई वर्षों तक पत्रकारिता के क्षेत्र से जुड़ी रहीं। ममाङ दाई 'द टेलीग्राफ', 'हिन्दुस्तान टाइम्स', 'द सेंटिनल' से जुड़ी रही हैं। अपने प्रदेश के आकाशवाणी और दूरदर्शन की वह एक ऐसी शख्सियत हैं जिन पर पूरे प्रदेश को नाज है। उनका योगदान राष्ट्रीय स्तर के अंग्रेजी लेखकों में वरेण्य है तथा वे आज भी अपने प्रदेश के कई साहित्यिक एवं पत्रकारीय संगठनों-संस्थानों से जुड़ी हुई हैं। ममाङ दाई अपनी समकालीनता में वैचारिक-बोध के साथ प्रवेश करती हैं। उनके उपन्यास में सजीव चित्रण मिलेंगे, तो कथानक में जीवंत प्रसंग बहुलांश। वह कोशिश करती हैं कि उनके उपन्यास अपनी अरुणाचली गंध लिए हुए पाठकों तक पहुँचे जिसकी आज सख्त जरूरत है। 'आदिवासी लाइव मैटर' पत्रिका में दीप्ति मेरी मिंज ने ममाङ दाई के उपन्यास 'द ब्लैक हिल' के बारे मे लिखा है-"साल 2014 में प्रकाशित किताब 1945 की आज़ादी से पहले उत्तर पूर्व क्षेत्र की कहानी बताती है। यह किताब काल्पनिक लेखन है, लेकिन ये असल घटनाओं पर आधारित है, जो आज के वर्तमान हालातों पर भी सोचने को मजबूर करती है। इसे साल 2017 में साहित्य अकादमी अवॉर्ड मिला।" अभी हाल ही में उनका चर्चित उपन्यास हिंदी में छपकर आया है, 'काली पहाड़ी'। इस किताब की सुचिंतित समीक्षा इस अंक में प्रकाशित की गई है जो मंमाङ दाई के रचना संसार से परिचित कराता है और हिंदी के बृहद हिंदी संसार को उनकी रचनाशीलता से जोड़ता भी है।

अरुणाचल प्रदेश का हिंदी लेखन उर्वर और अत्यंत संभावनाशील है जिसमें पहला नाम जुमसी सिराम जी का है। जुमसी सिराम, अरुणाचली मूल के पहले हिंदी लेखक हैं। अचरज नहीं कि जुमसी सिराम जैसा असाधारण लेखक साधारण तरीके से रहता हो। लेकिन उनकी जीवटता ऐसी कि लेखन के लिए सब कुछ दाँव पर लगा दे और अपनी निज जवाबदारी की भूमिका भी निभाते चले। पर कहे कुछ भी नहीं। सारी कठिनाइयों के बीच जुमसी सिराम लेखन पर बातचीत करते हैं, तो कंठ से अनुभव के तार बजते हैं-निष्कलुष, बेहद आत्मीय। पढ़-लिख कर पद-प्रतिष्ठा पाए लोग भी जुमसी सिराम से मिलते हैं, तो अचरज करते हैं। जुमसी सिराम 'नीनो' की 'मातमुर जामोह' उपन्यास चर्चित रहा है। इस उपन्यास में उन्होंने एक ऐसे गुमनाम स्वतंत्रता सेनानी के ऊपर औपान्यासिक ढंग से कलम चलाई है जो एक जरूरी दस्तावेज है, एक प्रामाणिक साक्ष्य है। यह उपन्यास मुख्य रूप से आंग्लो-अबोर युद्ध पर केंद्रित है। इस युद्ध के दौरान पूर्वोत्तर का एक

बड़ा हिस्सा प्रभावित हुआ था। खासतौर से 1911 ई. में अंग्रेजी बटालियन के मुखिया नोएल विलियमसन की हत्या ने पूरे भारत में सनसनी फैला दी। उस दिन विलियमसन सहित करीब 44 अंगरक्षकों को मौत के घाट उतार दिया गया था। इतना साहसपूर्ण कृत्य जिस भारतीय ने किया, वे थे-मातमुर जामोह। अरुणाचल प्रदेश के युवा मातमुर जामोह को जबरिया घुसपैठ और धौंस बिल्कुल नापसंद थी। इस तरह की दखलअंदाजी से उनकी आदिवासी चेतना को न सिर्फ ठेस पहुँच रही थी, बल्कि उनकी स्वतंत्रता पर भी अंकुश लग रहे थे। उन्मुक्त प्रवृत्ति और प्रकृति पर अधिकाधिक निर्भरता के कारण आदिवासी समुदाय अन्य किसी भी प्रकार के दबाव अथवा सामाजिक जोर-जबर्दस्ती का शिकार कभी नहीं रहा था। ब्रिटिशों के उत्तर-पूर्व तक पहुँच और पैठ के कारण उनमें अक्सर टकराव की स्थिति पैदा होने लगी थी। अंग्रेजी अफसर की हत्या के पीछे मुख्य कारण आदिवासी गरिमा को पहुँच रही चोट मुख्य रही। जुमसी सिराम ने ऐसे ही एक जरूरी विषय को अपने कथानक के लिए चुना है जिसका नाम है-'मेरी आवाज सुनो'। उनका उपन्यास 'मेरी आवाज सुनो' आदिवासी स्त्री के जज़्बातों को बहुत ही सजीव ढंग से दिखाता है; जीवंत तरीके से चित्रण करता है। इस उपन्यास की कथावस्तु स्थानीयता-बोध के वैश्विक-सूत्र को स्थापित करता है। सामाजिक बंधनों में जकड़ी स्त्री अपनी पीड़ा और वेदना में किस तरह घुटती है तथा अपने जीवन के तमाम संत्रास झेलती है; यह इस उपन्यास का मुख्य प्रतिपाद्य है। लेखक ने गालो जनसमाज की बहुप्रचलित कुरीति 'नेप्प निदा' को अपने उपन्यास का विषय बनाया है, जो आदिवासी आत्मा की अकुंठ मुक्ति का उपन्यास है। इस अंक में 'मेरी आवाज़ सुनो' की समीक्षा जरूरी तौर पर शामिल की गई है।

अरुणाचली लेखिका जोराम यालाम अपने पहले कहानी-संग्रह 'साक्षी है पीपल' के साथ हिंदी लेखन में आईं और आज वह अरुणाचल प्रदेश की महत्त्वपूर्ण आदिवासी विमर्शकार के रूप में समादृत हैं। उनकी अन्य कृतियाँ हैं- 'जंगली फूल', 'गाय गेका की औरतें', 'तानी कथाएँ' आदि। 'साक्षी है पीपल' संग्रह के बारे में वह स्वयं कहती हैं-''यह वृक्ष विराट समाज के एक वर्ग-सा साक्षात खड़ा है, जिनकी संख्या अधिक है। इसी के सामने न्याय होता है, इसी के सामने अन्याय भी होता है, लेकिन यह हर समय खामोश है। यह एक सामूहिक खामोशी है। एक अपराध है। ये एक प्रकार के भयग्रस्त लोग हैं। एक ही वृक्ष में बसने वाले जीवों को भी एक-दूसरे के प्रति अपराध करता देख यह चुप है। फिर भी इसी का सम्मान है! जब समाज के नाम पर व्यक्ति की हत्या होती है तब क्या कहानियाँ नहीं कही जानी चाहिए? ये कहानियाँ रुदन गीत हैं।'' जोराम यालाम स्वतंत्र 'ट्राइबल कोड' को लेकर आंदोलनरत रहीं हैं। उनकी वैचारिक मुहिम में अकेले हो जाने का डर था, लेकिन वह थमी नहीं, रूकी नहीं। वह लगातार देश भर के बुद्धिजीवियों से संपर्क-संवाद करती दिखीं। उनकी माँग है कि भारतीय जनगणना-2021 में आदिवासी जनसमाज के लिए स्वतंत्र रूप से 'रिलिजन' का एक विकल्प हो। जोराम यालाम जिस विचार को गति दे रही हैं, पूरी ताकत से जिस आवाज़ को बुलंद कर रही हैं; वह विचारणीय है। पेशे से अध्यापिका डॉ. यालाम एक जिम्मेदार भारतीय नागरिक हैं। उनकी बात की लेखी हवा-हवाई नहीं कही जा सकती है। उनके उपन्यास 'जंगली फूल' ने उनकी लेखकीय प्रतिबद्धता को न सिर्फ पुख्ता किया है, अपितु अरुणाचली हिंदी लेखिका के बतौर

स्थापित भी किया है। समीक्षित संग्रह 'साक्षी है पीपल' वरिष्ठ संस्कृतिकर्मी और साहित्यकार प्रो. देवराज के प्रोत्साहन तथा रचनात्मक संबल के साथ वर्ष 2012 में ही प्रकाशित होकर आ गया था। आज स्थिति यह है कि इस पुस्तक पर एम.फिल. शोध-कार्य हो चुका है तथा पीएच.डी. का काम भी हो रहा है। इन कहानियों की चर्चा केरल के लाल बहादुर शास्त्री शिक्षा महाविद्यालय के प्रिंसिपल डा. इसपाक अली ने अपनी डी. लिट् में भी किया है। 'साक्षी है पीपल' का परिवेश अरुणाचल प्रदेश का है, लेकिन ये सभी कहानियाँ अपने अंतरावलंबन में आधी आबादी के हक-हकूक की पूरी कहानी है। जोराम यालाम को पढ़ना सहज ही अरुणाचली मन और आत्मा के करीब हो जाना है। इस अंक में जोराम यालाम की पुस्तकों पर गहन चर्चा और आलोचनात्मक विचार प्रस्तुत है, जो पाठकों को अच्छी लगेंगी-यह उम्मीद है। इस अंक की उपलब्धि यह भी है कि जोराम यालाम जी की एक कहानी को भी इस अंक में शामिल किया गया है, जो पाठकों को छुएंगी और संवेदित भी करेंगी।

अरुणाचली कवयित्री और लेखिका जमुना बीनी का नाम बेहद सुपरिचित है। उनके लिए पहाड़ पुरखे की भूमिका में हैं। यह बात उनके कविता संग्रह 'जब आदिवासी गाता है' में मुखर ढंग से ध्वनित हुआ है। परिन्दे प्रकाशन, दिल्ली से वर्ष 2018 में छपे इस कविता-संग्रह को पढ़ना एक ऐसे राज्य के करीब हो जाना है, जिसे लेकर चीन भारतीय संप्रभुता पर आए दिन चोट करता रहता है। इसके उलट यहाँ के रहवासियों में गजब की राष्ट्रीयता है, देशभक्ति है जो मुख्यधारा के फैशनेबुल-नेशनलिस्ट जो कि ठेके के चियरलिडर्स हैं; पर भारी पड़ती है। जमुनी बीनी की पहली किताब 'दो रंगपुरुष: मोहन राकेश एवं गिरीश कर्नाड' नाम से छपी जो कि मूलतः उनके पीएच.डी. शोध-प्रबंध पर आधारित थी। जमुना बीनी अपने लहजे में हिंदी को यूँ बरतती हैं कि आप मुग्ध हों ले। आत्मीयता उनकी खूबी है जिसे वह हमेशा सहेज कर रखती हैं। प्रेम उनके लिए आत्मीयता की घानी है। पूरी गंभीरता संग विचार प्रकट करने का हुनर जमुना बीनी बखूबी जानती हैं जो उनके अनुभव और अध्ययन का हासिल है। पिछले साल इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मानव संग्राहलय, भोपाल के अंतर्गत कावेरी बुक्स से उनकी न्यीशी लोककथाओं का संग्रह 'उईमोक' नाम से प्रकाशित हुआ है। अन्य रचनाओं में 'अयाचित अतिथि और अन्य कहानियाँ' महत्त्वपूर्ण हैं। जमुना बीनी की रचनाएँ भारतीय भाषाओं सहित अन्य भाषाओं में अनूदित और बेहद चर्चित हुई हैं। इस अंक में जमुना बीनी जी की पांच कविताएँ शामिल हैं।

युवा कवि तारो सिंदिक 38 साल के अरुणाचली साहित्यकार हैं। 'अक्षरों की विनती' अनन्य प्रकाशन से प्रकाशित उनका पहला कविता-संग्रह है। अपने इर्द-गिर्द हो रहे बदलाव या खुद संग अन्य लोगों द्वारा किए जा रहे बर्ताव को तारो शिद्दत से महसूस करते हैं। इसी छटपटाट संग तारो सिंदिक हिंदी कविता की बारहखड़ी में प्रवेश करते हैं, अवतरित हरगिज नहीं होते। वे अपनी अनगढ़ता से वाकिफ़ हैं। अपनी ही कविता को शऊर संग बरतने में वे खुद को असफल मानते हैं। गोकि कुल संकोच के बावजूद वह कविता रचते भी हैं, तो मनुहार के लहजे में। विनती के स्वर में। उनकी साफगोई अरुणाचल प्रदेश के जन-जन की अनुकृति है जिसमें जनजातीय रचाव-बनाव का खुरदुरापन और अनगढ़ता बेशुमार है, लेकिन उनका कहन

अरुणाचली हिंदी का प्रतिनिधि है जिसमें नमने के लिए अरुणाचली दिलोदिमाग होना जरूरी है; क्योंकि यहाँ दिल बैठने की जगह लोग बैठते हैं। आपसदारी के रिश्ते में सामूहिकता संग निवास करते हैं। उनका दूसरा प्रकाशित काव्य-संग्रह 'फिर आना तुम' है। 'फिर आना तुम' के फ्लैप पर तारो सिंदिक के गुरुवर और इलाहाबाद विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में प्राध्यापक अमरेन्द्र त्रिपाठी लिखते हैं-''तारो एक दार्शनिक और विचारक कवि हैं। प्रकृति के प्रति गहन राग उन्हें समाज से दूर नहीं ले जाता, बल्कि उसके प्रति और अधिक जिम्मेदार बनाता है। समाज और व्यक्ति का भटकाव कवि को विचलित करता है। "तारो सिंदिक की पहली कृति को साहित्य अकादमी का युवा कवि पुरस्कार प्राप्त हुआ है। अरुणाचल का यह युवा कवि अपार संभावनाओं से लबालब है और इस कवि के पास एक अपनी विकसित की हुई दृष्टि भी है जो उसे विचारों के खेमे में आत्मनिर्भर और विवेकी बनाती है। इस अंक में तारो सिन्दिक की लिखी कहानी को हम शामिल कर रहे हैं जो हमारे पाठकों के लिए किसी उपहार से कम नहीं है।

अरुणाचल प्रदेश के भाषाई संसार में 'मोनपा लोक-साहित्य' की ज्ञाता डॉ. सोनम वाङमू ने मोनपा लोक साहित्य को सामने लाने का रचनात्मक उपक्रम किया है। अरुणाचल प्रदेश में मोनपा जनजाति भाव-संवेदना के स्तर पर बेहद मुखर है। जबकि स्वभाव एवं व्यवहार के स्तर पर मोनपा लोग अतिशय विनम्र हैं। सलीकेदार उनकी यह प्रकृति सहज ही आपको आकर्षित करती है तथा हम उन्हें और निकट से जानने को आकृष्ट होते हैं। बुद्ध की शांत और शीतल छवि को वे अपने हाव-भाव और सत्कार-प्रेम के तौर-तरीकों से साकार करते मालूम होते हैं, जो शोभनीय है। तवाङ परिक्षेत्र में उनका रहवास काफी पुराना है तथा प्रकृति से उनकी अंतरंगता सर्वाधिक देखी जा सकती है। उनकी चेतस संस्कृति में लोक-साहित्य बहुलांश मात्रा में है। सोनम वाङमू अपनी जनजाति के लोक-साहित्य को जुटाती और जोड़ती हुई उसे जिस पुस्तक के रूप में संग्रहीत करती हैं; उसका नाम है-'मोनपा लोक साहित्य'। सोनम वाङमू की मेहनत और रचनात्मक अवदान का मोनपा समाज ऋणी रहने वाला है, जिसके लिए उन्हीं की भाषा में यह कहना उचित होगा-'दुइछोत रनपुर फन तोजुम'। यानी समय आने पर काम आएगा। दरअसल, लोक-साहित्य सृजन का सच्चा संसार है जिसमें वाचिक अभिव्यक्ति की उपस्थिति सार्थक कही जाती है। अरुणाचल प्रदेश की जनजातीयबहुल आबादी इस लोक-साहित्य में जीती और अपने उत्स के साथ मौजूद रहती आई है। गोकि लोक-साहित्य जीवन की मौजूदा धुरी पर अतीत से भविष्य तक की यात्रा करता है। वास्तव में लोक-साहित्य अनुभव आधारित लोक स्मृति का कोठार है जिसमें भाषा, लय, छंद, राग, थिरकन, नृत्य, उतार-चढ़ावदार लहजा, संगीतात्मकता, मिथकीय चेतना, सामूहिकवृत्ति लाजवाब है। इस अंक में सोनम वाङमू भी शामिल हैं और अपने लेख में मोनपा भाषा और हिंदी के बीच एक 'पुल' बनाती दिखती हैं।

अरुणाचल प्रदेश की लेखिका मोर्जुम लोयी के उपन्यास 'मिनाम' ने सबका ध्यान आकृष्ट किया और उनकी दूसरी प्रकाशित गालो जनजाति के लोकगीतों के संग्रह 'ननम पोनू' ने उनकी उपस्थिति और लेखकीय उपस्थिति को मजबूती प्रदान की है। पेशे से प्राध्यापिका मोर्जुम लोयी को पता है कि आने वाली पीढ़ी के लिए इसके क्या मायने और महत्त्व हो सकते हैं। कहना न होगा कि लोक-साहित्य का भारतीय

लोकवृत्त किसी 'पट्टी' विशेष तक नहीं सीमित है। वह लोक-मन की रंगरेज मालूम देती हैं। उनके कहन में अल्हड़ भावनाएँ और गाढ़ी रंगत की संवेदनाएँ दिखाई देती हैं। लोकगीत अपनी जनजातीय चेतना के वास्तविक संवाहक हैं जिनकी गूँज-अनुगूँज अरुणाचल प्रदेश की गालो जनजाति में स्पष्ट लक्षित की जा सकती है। 'योई बाबो' की अंतिम कुछ पंक्तियाँ आपके समक्ष रखना उचित होगा-''हीरअ गो इरमेन लाजुके, ननम सीरे गो इरमेन लाजुके, योई बाबोआ होई।/मेबाम गो बाम्मेन लाजुके, पोनु मोबाम गो बाम्मेन लाजुके, योई बाबोआ होई।/टाजेना ईतो लाके, आजेन गाद्दा ईतो लाके, योई बाबोआ होई।।'' गालो लोक-जगत का यह मनोरंजन गीत अपने भावार्थ में जिस मर्म को उद्घाटित करता है, वह जड़बुद्धि या जड़मति के लिए उत्तम संदेशा है। मोर्जुम लोयी शब्दार्थ-संबंध के साथ कहती हैं-''इस जड़बुद्धि में प्रेम की मीठी वाणियों से ऊर्जा का संचार कर देती हूँ। ताकि हम मिलकर समाज में बदलाव ला सकें, इसकी जड़ता को खत्म कर एक नवनिर्माण कर सकें। चलो मिलकर मन के सोए हुए संगीत को जागृत करें। संगीत के तारों को छेड़कर उससे एक गीत बनाएँ। ताकि इस सोए हुए संसार को, समाज में फैली हुई अराजकता को, भेद-भाव सबको दूर कर सकें। चलो, मिलकर संगीत के सुरों से माहौल को संगीतमय बना दें।'' इस संग्रह में लोकगीतों की बहुलता ही नहीं है, बल्कि विविधता भी अनेकानेक हैं। इसमें गालो जनजाति के जल-आह्वान संबंधी इतिहास से जुड़ा एक लोकगीत संकलित है। जल की देवी एक मिथकीय स्त्री है जिनकी सुमिरन में यह कहकर बुलावा भेजा गया कि हे देवी, आपके बिना यह संसार सूना है। जमीन बंजर हो गई है। मनुष्य, पशु, पक्षी सब प्यासे हैं। हमें जीवनदान देने के लिए अपना दर्शन करा दो। आगे का प्रसंग रोचक है और इस दुनिया के हरे-भरे यानी हरीतिमायुक्त होने का मुख्य कारण भी। यह अंक मोर्जुम लोयी की रचनात्मक उपस्थिति का साक्षी बना है।

भारत का लोक बहुरंगा और उसकी विविधता इंद्रधुनुषी है। इस लोकायत की परंपरा में लोक-साहित्य बिना किसी भेदभाव के आत्मीयता के संबोधक हैं। अपनी प्रकृति में पुरखों की वंशावली का सूचक हैं। आगे बढ़ने का संबल देने में लोककथाएँ अगुवा का काम करती हैं। देखें तो, आदिवासी लोककथाओं का संसार इस मायने में बहुत बड़ा है। तुम्बम रिबा 'लिली' की इसी विषय पर प्रकाशित पुस्तक 'काताम' अत्यंत महत्त्वपूर्ण है, जिसमें अरुणाचली समाज की बहुचर्चित लोककथाएं संकलित हैं। तुम्बम रिबा 'लिली' पेशे से प्राध्यापिका हैं और अपनी दिनचर्या में बेहद गतिशील रहती हैं। उनका उपन्यास 'उस रात की सुबह' पठनीय है। यह उपन्यास अरुणाचली स्त्रियों के पिछले अतीत को वर्तमान सत्य के साथ बखूबी उजागर करता है जिसमें पहाड़ी स्त्रियों की पीड़ा और संत्रास का संवेदनशील वृत्तांत है।

इसी क्रम में गुम्पी डूसो का नाम शामिल है जो अरुणाचल प्रदेश की ऊर्जावान लेखिका हैं जिनका 'यापोम' नाम से गालो लोक कथाओं का संग्रह प्रकाशित है। इस संग्रह में एक दिलचस्प लोककथा है जो पारस्परिक अन्योन्याश्रित संबंध होने का संकेत देती है और आदिम लोककथाओं के माध्यम से इस मिथकीय सचाई को पुख्ता करती है-"गालो समाज में यह कथा प्रचलित है कि-एक बार सुंदर युवती के रूप में आबोतानी से कोसूक (यानी सूखी पत्ती) का विवाह हो जाता है। विवाह के बाद उनके घर एक नन्हा

शिशु जन्मा, वह शिशु तापेक (जोंक) के रूप में पैदा हुआ। बच्चा चाहे कितना ही जहरीला क्यों न हो तथा देखने में कितना ही भयंकर क्यों न हो, अपने माता-पिता के लिए दुलारा ही होता है। मानव-रूपी उस सूखी पत्ती में स्तनपान के लिए कुछ नहीं होता है। नन्हें शिशु को भूखा-प्यासा देखकर आबोतानी उदास हो जाते हैं। जीव-जंतु, पशु-पक्षी इत्यादि सभी की व्यथा को वह पहला मानव समझते थे। तभी तो प्रकृति की हर एक सृष्टि उनसे बातें करती थी और उनके लिए मानव-रूप धारण करती थी। ऐसी स्थिति में आबोतानी के दिमाग में एक उपाय सूझता है। तेज धारदार किसी वस्तु से तानी अपने शरीर का एक अंग हल्के ये काट लेता है और जोंक को उस जगह खून चूसने के लिए छोड़ देता है। तभी से यह समुदाय ऐसा मानता है कि जोंक इसी कारण मानव का खून चूसता है।" ऐसी दिलचस्प कथाएँ अरुणाचल प्रदेश के मिथकीय इतिहास को अधिक दिलचस्प बनाती हैं जिनमें मूल्य आधारित जीवन और मानवीयता जबरदस्त है।

अरुणाचल प्रदेश की कवयित्री नोमी मागा गुमरो हिंदी में लिखती हैं। उनकी कविताओं में आदिवासियत की संवेदना स्फूट है जो छूती और अंतस में रच-बस जाती है। अरुणाचल प्रदेश की नोमी मागा गुमरो महसूस करती हैं कि अनुभूति से अभिव्यक्ति की यात्रा आसान नहीं है, लेकिन उसे जज्ब किये रखना और भी कठिन है। अरुणाचल प्रदेश लिटरेरी सोसायटी से प्रकाशित काव्य-संग्रह 'एहसास' नोमी मागा मुगरो की पहली कृति है। सहज और सरलतम ढंग से नोमी अपनी बात ऐसे रखती हैं जैसे वह साझेदारी में कोई बात सबके सामने रख रही हों। कोई कृत्रिम बेल-बूटे नहीं। कोई अतिरिक्त सजावट या मेकअप नहीं। जो और जैसा वह महसूस करती हैं, बस उसी एहसास को सबसे बाँटने का उपक्रम करती दिखती हैं। उनकी कविता अपनी इसी साफगोई में सचबयानी का माद्दा रखती है-''मौत का मंजी देखकर,/डर का सफर बढ़ता है/किसी न किसी बहाने से/अक्सर अपने/चपेट में ले लेता है।'' अपना यह काव्य संग्रह नोमी मागा गुमरो ने आमा और आबा को समर्पित किया है। इस संग्रह की भूमिका राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त और पद्मश्री सम्मान व साहित्य अकादमी पुरस्कार से विभूषित येशे दोरजी थोंग्ची जी ने लिखी है। वह नोमी की चंद पंक्तियाँ उल्लेख करते हैं-''कलम, तुमसे यह गुजारिश है/हर सच को उजागर करो/हर एहसास को बयां करो।'

हिंदी के नवलेखन क्षितिज में रबोम बेलो, दोरजी लोन्पु, रेमोन लोंग्कु, आईनाम इरिंग, तुनुङ ताबीङ, जोम्यिर जीनी, वांगो सोसिया जैसी प्रतिभाएं समादृत हैं। इनकी रचनात्मकता और उनकी सद्यःप्रकाशित रचनाएँ अरुणाचल प्रदेश में हिंदी लेखन का नवविस्तार कहा जाना चाहिए जिनकी रचनाधर्मिता और लेखकीय प्रतिबद्धता चकित करती हैं और पाठकों को पढ़ने के लिए आमंत्रित भी।

अरुणाचल प्रदेश पर केंद्रित इस अंक में ऐसी कई रचनाएँ शामिल हो रहीं हैं जिन्हें 'कंचनजंघा' पत्रिका के पाठकों के लिए विशेष रूप से संजोया गया है या बड़ी निहोरा से प्राप्त किया है। आदिवासी माटी में सृजन के फूल खिलाने वाले प्रो. देवराज मेरे अभिभावक हैं। वह मेरी सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना के नाविक हैं। उनके विश्वास ने मुझे इस अंक को इस रूप में प्रस्तुत करने का भरोसा दिया है। यह और बात है

कि मैं उनके भरोसे पर कितना खरा उतार पाया हूँ, यह पाठक और आप सुधिजन तय करेंगे। इस अंक में प्रो. देवराज के दो लेख पाठकगण पढ़ सकेंगे जो इस पत्रिका का हासिल है।

संत साहित्य के मर्मज्ञ और केंदीय हिंदी संस्थान के पूर्व निदेशक रहे प्रो. नन्द किशोर पाण्डेय जी का अरुणाचल प्रदेश से गहनतम नाता रहा है और उन्होंने अपने अकादमिक जीवन का एक लंबा हिस्सा यहाँ अध्यापन करते हुए बिताया है। यह अंक प्रो. पाण्डेय के आत्मीय संस्मरण से सुभाषित है जिसे पढ़ना रोचक और आह्लादकारी होगा। इसी कड़ी में प्रो. हरीश कुमार शर्मा जी का लेख शामिल है। प्रो. शर्मा ने अपने आलेख में प्रो. नन्द किशोर पाण्डेय जी के गतिशील व्यक्तित्व और रचनात्मक उपलब्धियों पर लिखा है, जिसे पाठक मनोयोग से पढ़ेंगे और प्रसन्न होंगे। दयाराम वर्मा जी का मैं विशेष रूप से आभार प्रकट करता हूँ, जिन्होंने मेरे आग्रह को सर आँखों पर रखा और अपना लिखा यात्रा-वृत्तांत कंचनजंघा के पाठकों के लिए भेजा। उन्होंने अरुणाचल प्रदेश में अपना लंबा समय व्यतीत किया है और हाल ही में एक साहित्यिक सम्मलेन में भागीदारी करने अरुणाचल प्रदेश आए, तो पुरानी यादें ताजा हो गईं।

मेरी बौद्धिक और चारित्रिक निर्मिति के नियामक प्रो. अवधेश नारायण मिश्र मेरे लिए प्रातःवंदनीय हैं। प्रो. मिश्र और डॉ. मीना कुमारी का आलेख इस अंक में होना मेरी उपलब्धि है। यह आलेख अरुणाचल प्रदेश में भाषा-शिक्षण की प्रविधि का शोधपरक विश्लेषण विस्तारपूर्वक प्रस्तुत करता है। मूलतः अंग्रेजी और असमीया में लिखने वाली अरुणाचल प्रदेश की लेखिका अजन्ता जी ने अपनी कहानी मुझे भेजी जो इस अंक के लिए अनुपम भेंट है। इस कहानी को राजीव गाँधी विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के शोधार्थी माधुर्ज्य कमल हजारिका ने हिंदी में अनूदित किया है, आप दोनों का दिल से आभार। मैं डॉ.ज्योतिष पायेङ जी को याद करना चाहूँगा जिन्होंने अरुणाचल प्रदेश की बहुसांस्कृतिक और भाषाबहुल छवि को अपने विस्तृत आलेख में अनुवाद-अध्ययन के माध्यम से उजागर किया है, आपका दिली आभार। सचेत अध्येता और गतिशील व्यक्तित्व के धनी डॉ. मुनीन्द्र मिश्र जी ने अपना लिखा एक ऐतिहासिक नाटक 'हारमती निर्वासन' इस अंक को उपलब्ध कराया है, आपका हृदय से आभार। मेरे आग्रह को मानते हुए मियाजी हज़ाम, दोयिर एते, गोकेन गेई, गंखु सुमन्याँ जैसे प्रबुद्ध आत्मीयजनों ने इस अंक के लिए अपनी रचनाएँ मुझे उपलब्ध कराई, आप सबका समवेत आभार और दिल से धन्यवाद।

पुनश्च, अरुणाचल प्रदेश पर केंद्रित यह विशेष अंक प्रो. देवराज के मार्गदर्शन और डॉ. प्रदीप त्रिपाठी के आदर्श प्रेम का परिणाम है। सिक्किम विश्वविद्यालय के जनसंचार विभाग के अमज़द हुसैन ने इस अंक का शोभनीय और आकर्षक मुख्य आवरण बनाया है। 'कंचनजंघा' पत्रिका के वेबसाइट मॉडरेटर और तकनीकी पक्षों के कुशल प्रबंधक गोविंद जी ने इस अंक की ऑनलाइन सुलभता सुनिश्चित की है। साथी और अग्रज पंकज कुमार सिंह जी का दिल से आभार जिन्होंने इस अंक के अभिविन्यास को व्यवस्थित रूप और क्रम प्रदान किया है। इस समिधा में कई-कई लोगों की शुभाकांक्षा, स्नेह और आशीर्वाद जुड़ा है, सबका आभार, सभी का अभिनंदन।

मैं बार-बार आदिवासी समाज की प्रतिबद्धता और प्रकृति के साथ के तादात्म्य को दुहराना चाहता हूँ- अरुणाचल प्रदेश के लोग जिमी-जमा की संतान हैं। आबोतानी उनके पुरखा हैं, तो दोन्यी-पोलो, रांग्फ्रा, नानी इंतैया, कीने नाने, मोपिन, न्योकुम, साक्षात् बुद्ध इत्यादि देवी-देवताएँ। लोक-साहित्य उनकी स्वर-लहरी है, जिनकी लहरें नदी के रूप में सदानीरा बहती और 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' शैली में नया-पुराना होती हैं। यह धरती 'ॐ माने पेमे हुंग' की जाग्रत ध्वनि से गुंजायमान है। अरुणाचली भाषा और बोलियाँ भारतीय ज्ञान परंपरा का आद्यबिंब और पुरखाई कोठार हैं। अरुणाचली समाज उत्सवधर्मी और अनुष्ठानप्रिय है। जनजातीय समरसता और प्रकृतिजीविता इस मनोरम भूमि की पहचान और वास्तविक मूल्य-बोध है। यहाँ के सामूहिक इतिहास-दर्शन में मिथकीय थाप है, तो आदिवासी लोक-विश्वास वाचिक परंपरा में अभिव्यक्त और जीवंत होते दिखाई देते हैं।

अरुणाचली हृदय की विराटता और उसकी आंतरिक सूक्ष्मता को 'लघु भारत' कह समेट लेना अपर्याप्त ही होगा, यह जानते हुए भी अरुणाचल प्रदेश पर केंद्रित यह विशेष अंक आप सबके समक्ष हम उपस्थित कर रहे हैं। इस अंक में 20 से अधिक शोधपरक लेख हैं। 20 महत्त्वपूर्ण उपखंड हैं। यथा: अंत:करण का आयतन, पहाड़ी कोठार से, घाटियों का स्वर, भीतरी पाट से, भाषा-चेतना, भाषा-शिक्षण, कहानी (मूल हिंदी में लिखी हुई और हिंदी में अनूदित), कविताएँ (मूल हिंदी में लिखी हुई और हिंदी में अनूदित), स्त्री-बोध, आदिवासी-दर्पण, यात्रा-वृत्तांत, गाँव-ज्ञान, कृति-संधान, शोध-वातायन, संस्मरण, लोकश्रुति नाट्य, सिने-साक्षात्कार, पुस्तक-समीक्षा इत्यादि। इस अंक में विविधता का कलरव है। सामाजिक-सांस्कृतिक भूगोल का खुला वातायन है।

अतएव, यह सबकुछ संभव और साकार कर पाने के संदर्भ में एक बात कहना जरूरी है-मेरे आत्मीय मित्रों जिसमें मेरे अपने विद्यार्थी और शोधार्थी अधिक हैं; ने इस अंक के मायने को समझा और अपनी रचनाएँ 'कंचनजंघा' पत्रिका को भेजी-आपका तहेदिल से आभार। दरअसल, हमारी कोशिश रही है कि हम अरुणाचल प्रदेश पर केंद्रित इस विशेष अंक के बहाने एक सहयात्रा शुरू करें, जिसमें पूर्वोत्तर के सभी राज्य एक क्रम में जुड़ते चले जाएँ। इस परिकल्पना का पहला कदम आप सबको समर्पित है...

(राजीव रंजन प्रसाद)

हिंदी के अनुष्ठान में अर्घ्य बनी एक पत्रिका : अरुण नागरी

देवराज

(प्रो. देवराज का पूर्वोत्तर से घनिष्ठ संबंध रहा है। वे पूर्वोत्तर के लेखन से सुपरिचित हैं तथा इस बारे में उनका गहन अध्ययन और शोधपरक मूल्यांकन 'कंचनजंघा' पत्रिका के पाठकों के लिए नया नहीं है। अपने समय में राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर चुकी 'अरुण नागरी' पत्रिका अरुणाचल प्रदेश से प्रकाशित एक सुरुचिपूर्ण बौद्धिक विमर्श की पत्रिका थी, जिसके बारे में देवराज जी ने बड़ी आत्मीयता और मनोयोगपूर्वक आलोचनात्मक ढंग से लिखा है। यह लेख 'कंचनजंघा' पत्रिका के पिछले अंक में प्रकाशित किया जा चुका है, लेकिन इसके महत्त्व को दृष्टिगत रखते हुए हम अरुणाचल प्रदेश केंद्रित इस विशेष अंक के लिए यह आलेख अपने सुधि पाठकों के लिए पुनः प्रकाशित कर रहे हैं।)

अरुण नागरी (अरुणाचली भाषा साहित्य की त्रैमासिक पत्रिका) का प्रवेशांक सन् 1995 में प्रकाशित हुआ था। इसके संपादकीय में कहा गया था, "'नागरी लिपि' को विश्व नागरी का नाम देने वाले सर्वोदयी संत आचार्य श्री विनोबा भावे का यह जन्म शताब्दी वर्ष है। अरुणाचली भाषाओं को जितनी स्पष्टता और सरलता से नागरी लिपि में लिखा जा सकता है, उतनी स्पष्टता से रोमन में नहीं। आचार्य भावे समस्त देश को नागरी के द्वारा जोड़ना चाहते थे। देश को जोड़ने और देश को जानने की दिशा में किया जाने वाला हमारा प्रयास कैसा रहता है, वह भविष्य के गर्भ में छोड़ते हैं।" (पृ. 4)। प्रवेशांक की मुख्य सामग्री में कविताओं के पश्चात 'अरुणाचल की जनजातीय भाषाओं, बोलियों के लिए संपर्क लिपि का प्रश्न' शीर्षक से अरुणाचल प्रदेश के तत्कालीन राज्यपाल श्री माता प्रसाद का वह लंबा पत्र छपा है, जिसे उन्होंने 25 मार्च, 1994 को उस राज्य के सभी मंत्रियों, विधायकों, उपायुक्तों और सामाजिक संस्थाओं को भेजा था। यह एक अर्ध शासकीय पत्र है, जिसे पत्रिका में इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है, कि ध्यान से न देखने पर उसके आलेख होने का भ्रम होता है। यह पत्र माता प्रसाद जी की सन् 1995 में ही प्रकाशित अति महत्त्वपूर्ण पुस्तक "मनोरम भूमि अरुणाचल" के परिशिष्ट के रूप में (पृ. 299 पर) विद्यमान है। अरुण नागरी का प्रवेशांक जनवरी-मार्च अंक है, अत: इस बात की संभावना अधिक है, कि वह पुस्तक का अंश बाद में बना होगा। इसका कलेवर पत्रिका के ढाई पृष्ठ में समाया हुआ है, जिसमें माता प्रसाद जी ने नौ बिंदुओं में अपना मंतव्य प्रकट किया है। पहले ही वे इस पत्र को लिखे जाने की पृष्ठभूमि स्पष्ट करते हैं- "यह पत्र आपको लिखने का मेरा उद्देश्य मेरे इस दृष्टिकोण से आपको अवगत कराना है, कि हमारी जनजातियों की भाषा अथवा बोली के लिए 'देवनागरी' लिपि ही सर्वोत्तम है। यद्यपि मैं किसी विशेष लिपि का समर्थक अथवा विरोधी नहीं हूँ, परंतु मेरे दृष्टिकोण के पीछे कुछ ठोस तथ्य हैं।" (पृ. 18)। इसके पश्चात वे अपने पत्र में विभिन्न बिंदुओं के अंतर्गत अरुणाचल प्रदेश में सामान्य संपर्क-माध्यम के रूप में हिंदी भाषा की व्यापक स्वीकृति तथा वहाँ की जनजातियों की भाषाओं के संदर्भ में देवनागरी लिपि की भाषावैज्ञानिक उपादेयता समझाते हैं। अंत की ओर बढ़ते हुए आठवें बिंदु में कहते हैं- "... आप विद्वज्जन को मैं यह यकीन दिलाना चाहता हूँ, कि मैं किसी भी रूप में अपने विचारों को किसी पर थोपना नहीं चाहता। मैं तो केवल अपने मत अथवा पक्ष को आप बुद्धिजीवियों के समक्ष गंभीरतापूर्ण विचार-विमर्श के लिए रखना चाहता हूँ। मेरी धारणा है कि देवनागरी ही केवल ऐसी लिपि है, जो पूरी तरह से विकसित और संपन्न है, जो हमारी बोलियों को

सच्चे अर्थों में व्यक्त कर सकती है; क्योंकि यह लिपि किसी भी अन्य लिपि से अधिक वैज्ञानिक है। हमारे इतिहास और परंपराओं में इसकी जड़ें हैं।" (पृ. 20)। पत्र के नौवें बिंदु से पता चलता है कि माता प्रसाद जी अरुणाचल की राजनीति, प्रशासन और सामाजिक संस्थाओं से जुड़े लोगों के साथ एक ऐसी बैठक की योजना बना रहे थे, जिसमें लिपि-विहीन भाषाओं के लिए अधिकतम सही और वैज्ञानिक-लिपि के चयन पर विचार करके किसी ठोस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सके। पत्र में एक महत्त्वपूर्ण तथ्य यह भी है, कि किसी भाषा और लिपि के संबंध का प्रश्न जितना वैज्ञानिकता और व्यावहारिकता से जुड़ा होता है, उतना ही इतिहास और संस्कृति से। इनमें से एक की भी उपेक्षा करके भाषा व लिपि के प्रश्न का स्थाई समाधान नहीं खोजा जा सकता।

प्रवेशांक में धर्मराज सिंह का शोधपरक आलेख, "अरुणाचल की भाषाओं बोलियों के लिए देवनागरी लिपि" तीन दशकों से भी अधिक वहाँ के जनजातीय जीवन और उनकी भाषाओं के अध्ययन का परिणाम है। इस आलेख में दो स्पष्ट धाराएँ हैं, एक- अरुणाचल की समस्त जनजातीय भाषाओं के ध्वनि-साम्य के आधार पर वर्गीकरण की धारा और दो- उन जनजातीय भाषाओं के लिए देवनागरी लिपि की व्यावहारिकता।

अरुणाचल की जनजातीय भाषाओं के अपने अध्ययन का निष्कर्ष बताते हुए धर्मराज सिंह कहते हैं, कि "भाषा-अध्ययन के क्रम में ऐसा पाया जाता है कि यद्यपि एक भाषा दूसरी भाषा से मेल नहीं खाती, फिर भी कुछ भाषाओं की ध्वनि-प्रवृत्तियाँ एक-दूसरे से काफी मिलती-जुलती हैं। इसी ध्वनि-साम्य को ध्यान में रखते हुए ऐसी कई बोलियों को मिलाकर कई जनजातियों के लिए एक भाषा बनाई जा सकती है।"(पृ. 24)। इसके पश्चात शोधकर्ता ने अरुणाचल की समस्त जनजातीय भाषाओं के चार वर्ग निर्मित किए हैं-

क. "एक- तावांग, दो- ईस्ट कामेङ्, तीन- कामेङ् और चार- मेप्पा की बोलियों की ध्वनियों में काफी साम्य है।

ख. एक- सुवनसिरि, दो- लोअर सुवनसिरि, तीन- पापुमपारे, चार- वैस्ट मियाङ्, पाँच- ईस्ट मियाङ्, छः - दिवाङ् वैली के कुछ हिस्सों में रहने वाले लोगों की ध्वनियों में काफी समानता है।

ग. एक- दिवाङ् वैली के ईदु मिसमी और दो- लोहित के दिगारु मिसमी की बोलियों की ध्वनियों में समानता है।

घ. एक- तिराप और दो- चाङ्लाङ् के लोगों की ध्वनियों में काफी समानता है।" (पृ. 24-25)।

इस वर्गीकरण के आधार पर धर्मराज सिंह ने प्रस्ताव किया है कि "यदि भाषा-वैज्ञानिक तथा अन्वेषण विभाग मिल कर काम करें, तो अरुणाचल प्रदेश के लोगों के लिए मुख्यतः चार भाषाएँ उभर कर सामने आएँगी और उन्हीं में असंख्य बोलियाँ मिल जाएँगी।" (पृ. 25)। यहाँ यह स्पष्ट कर देना अनिवार्य प्रतीत होता है कि यह एक भाषावैज्ञानिक का प्रस्ताव भर है, जिसमें एक प्रदेश विशेष की मूलत: छब्बीस जनजातियों और ऐतिहासिक व राजनैतिक कारणों से उनके अंतर्गत स्वीकृत एक-सौ से अधिक जनजाति-समूहों की छोटी-बड़ी भाषाओं के बारे में एक भाषा-वैज्ञानिक अभिकल्पना तो विद्यमान है, किंतु सामाजिक-सांस्कृतिक पहचान की विविधता का ध्यान नहीं रखा गया है। शोधकर्ता-लेखक अपने आग्रहों के कारण यह भूल गया है, कि अरुणाचल की मूल छब्बीसों जनजातियाँ अपनी स्वतंत्र सामाजिक और भाषाई पहचान के प्रति अत्यधिक संवेदनशील हैं तथा उनमें से किसी को भी अपनी भाषा का किसी अन्य भाषा में विलीन होना स्वीकार करना कठिन होगा। इसलिए वर्तमान परिस्थितियों में इस प्रस्ताव की उपादेयता भाषाओं के मध्य साम्य के अध्ययन तक ही सीमित है।

इस आलेख में धर्मराज सिंह का अरुणाचल की लिपि-विहीन भाषाओं को लिखने के लिए देवनागरी लिपि के प्रयोग के संबंध में किया गया अध्ययन विशेष महत्त्वपूर्ण है। यह एक 'केस-स्टडी' अध्ययन है, जिसमें आदी-भाषा (आदी जनजाति की भाषा) को आधार बनाया गया है तथा इसके आधार पर अन्य भाषाओं के समान-अध्ययन की सशक्त पृष्ठभूमि उपलब्ध हुई है। इस अध्ययन में पाया गया है, कि 'आदी भाषा में 8 (आठ) स्वर हैं, जबकि देवनागरी में स्वरों की संख्या 12 (बारह) है। आदी भाषा में 18 (अठारह) व्यंजन हैं, जबकि देवनागरी में 31 (इकतीस) व्यंजन हैं। इन तथ्यों के अतिरिक्त एक तथ्य यह है, कि आदी भाषा में कुछ ध्वनियाँ अवश्य ही ऐसी हैं, जिनके लिए देवनागरी लिपि में चिह्न उपलब्ध नहीं हैं। लेखक का सुझाव है कि ऐसी ध्वनियों के लिए उच्चारण-संकेत निर्मित किए जा सकते हैं।' अपने इस अध्ययन में शोधकर्ता-लेखक ने अरुणाचल की जनजातीय भाषाओं के लिए रोमन-लिपि के प्रयोग की व्यावहारिकता की परीक्षा भी की है। रोमन-लिपि में केवल 5 (पाँच) स्वर हैं, अत: लेखक के मतानुसार- "रोमन-लिपि में इतने कम ध्वनि-संकेत होने के कारण यह समस्त स्वर-ध्वनियों को स्वतंत्र रूप से व्यक्त नहीं कर सकते।" (पृ. 26)। इसी के साथ "रोमन-लिपि के वर्णों के नाम तथा उच्चारण में साम्य नहीं है। इतना ही नहीं, एक वर्ण के अनेक उच्चारण हैं, जैसे--- जी (G) से 'ज' और 'ग'। सी (C) से 'स' और 'क'। कई व्यंजन वर्णों को एक साथ मिला कर नई ध्वनि पैदा की जाती है और एक ही संयुक्त व्यंजन कहीं पर कुछ ध्वनि पैदा करता है, तो कहीं पर कुछ। जैसे--- ch से कहीं 'च', तो कहीं 'क'…। रोमन-लिपि में अनेक ध्वनियाँ मौन रहती हैं, जो पढ़ते समय कठिनाई पैदा करती हैं। जैसे--- Pslam (साम), Calm (काम)… ।"(पृ. 26-27)। आश्चर्य नहीं, कि इसी प्रकार की अराजक स्थिति से परेशान होकर जॉर्ज बर्नार्ड शॉ ने अपनी वसीयत में यह इच्छा व्यक्त की थी, कि उनके धन का एक हिस्सा रोमन-लिपि को सुधारने में लगाया जाए, ताकि वह अंग्रेज़ी भाषा के लिए एक सुविधाजनक लिपि बन सके। जहाँ तक अरुणाचल की जनजातीय भाषाओं में उपलब्ध उच्चारण-ध्वनियों का प्रश्न है, उनके लिए रोमन-लिपि नितांत अव्यावहारिक है। धर्मराज सिंह ने आदी भाषा का जो विवेचन प्रस्तुत किया है, उससे स्पष्ट है कि यदि जनजातीय भाषा-विशेषज्ञों की सहमति से विशिष्ट ध्वनि-चिह्नों को निर्मित करके लिपि में समाहित कर लिया जाए, तो इस भाषा को रोमन-लिपि की अपेक्षा देवनागरी-लिपि में ही सर्वोत्तम ढंग से लिखा जाना संभव है। अरुणाचल की न्यिशी तथा कुछ अन्य जनजातियों की भाषाओं के संबंध में भी ऐसे अध्ययन किए गए हैं और उनके निष्कर्ष भी इससे भिन्न नहीं हैं।

अरुण नागरी के प्रवेशांक में डिब्रूगढ़ विश्वविद्यालय (असम) के तत्कालीन कुलपति, मुकुंद माधव शर्मा का जनजातीय भाषाओं के लिए सुसंगत लिपि के प्रयोग पर विचार करने वाला एक आलेख प्रकाशित किया गया है। 'जनजातीय बोलियों के लिए उपयुक्त लिपि की तलाश और देवनागरी लिपि की प्रासंगिकता' शीर्षक से यह आलेख मूलत: अंग्रेज़ी में लिखा गया था, पत्रिका के लिए जिसका हिंदी अनुवाद, शासकीय महाविद्यालय, ईटानगर के प्राध्यापक वैद्यनाथ सिंह ने किया है। मुकुंद माधव शर्मा ने अपने इस आलेख में असम राज्य की जनजातियों की भाषाओं को लिखने के लिए असमीया, देवनागरी और रोमन लिपि का विवेचन किया है। वे रोमन-लिपि के वैश्विक-विस्तार, प्रौद्योगिकी व तकनीकी क्षेत्रों में उसके प्रवेश, उसके माध्यम से समृद्ध अंग्रेज़ी साहित्य की सुलभता आदि की चर्चा करके कहते हैं--- "अंग्रेज़ी लिपि का चुनाव सर्वप्रथम होना चाहिए। लेकिन जहाँ तक अंग्रेज़ी लिपि का संबंध है, यह 'लेकिन' अंग्रेज़ी की तमाम विशेषताओं के बावजूद एक बहुत

बड़ा 'लेकिन' है।" (पृ. 22)। इसके पश्चात अपने गहन, किंतु सूत्रात्मक-विवेचन के आधार पर वे रोमन लिपि को असम की जनजातीय भाषाओं के लिए न तो लिपि की वैज्ञानिक-व्यावहारिकता की दृष्टि से उपयुक्त मानते हैं और न ही सांस्कृतिक आधार पर। लिपि-विज्ञान के स्तर पर उनके अधिकांश तर्क वही हैं, जिनका उल्लेख धर्मराज सिंह के आलेख के संदर्भ में किया जा चुका है।

मुकुंद माधव शर्मा ने असम की जनजातीय भाषाओं के लिए असमीया लिपि के व्यवहार पर भाषाई और साहित्यिक के साथ ही सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक आधारों पर विचार किया है। वे इन सभी दृष्टियों से असम की जनजातियों और बहु-संख्यक असमीया भाषियों के मध्य स्वाभाविक निकटता मानते हैं और कहते हैं-"... असम की प्रगति और शांति काफी हद तक बहु-संख्यक असमीया भाषी समुदाय और विभिन्न जनजातीय समुदायों की भावनात्मक एकता पर निर्भर करती है। इसलिए जनजातीय समुदाय की तरफ से असमी-लिपि के प्रति एक सहयोगात्मक रवैया तमाम संबंधित लोगों के लिए एक सराहनीय कदम होगा।" (पृ. 23)। लेकिन यहीं, मुकुंद माधव शर्मा दो बहुत महत्त्वपूर्ण पक्षों की ओर हमारा ध्यान खींचते हैं। इनमें से एक पक्ष असमीया लिपि के क्षेत्र-विस्तार और उसकी लिपि-विज्ञान संबंधी सीमाओं से जुड़ा है, जबकि दूसरा पक्ष स्वयं उन्हीं के शब्दों में- "लेकिन कुछ लोगों का कहना है कि आदिवासियों को डर है कि अगर वे असमी लिपि को अपनाएँगे, तो इसका मतलब होगा, अधिक शक्तिशाली असमी संस्कृति के अधीन हमेशा रहना। आदिवासी लोग अपनी स्वतंत्र और निर्बाध अभिव्यक्ति चाहते हैं और अपनी संस्कृतियों को स्वतंत्र रूप से विकसित होते हुए देखना चाहते हैं। विशालकाय वृक्ष की छाया में छोटा पौधा कभी भी फलफूल नहीं सकता। यही कारण है कि आदिवासी लोग असम की बहुसंख्यक असमीया भाषा संस्कृति से अपने आपको दूर (अलग) रखना चाहते हैं।"

हमें ध्यान रखना होगा कि यह कटु-यथार्थ एक असमीया भाषी विद्वान की लेखनी से ही प्रकाश में आया है, जिसमें उपनिवेशवादी-साम्राज्यवादी और कुछ विशिष्ट धार्मिक शक्तियों द्वारा बहुसंख्यक असमीया भाषियों और आदिवासियों के बीच खड़ी की गई दीवार (जो भारत के अन्य क्षेत्रों के बारे में भी सच है) का संकेत छिपा हुआ है। विवेचनीय विषय की सीमाओं के कारण मुकुंद माधव शर्मा इस यथार्थ का विस्तार नहीं करते। वे अपने को भाषा और लिपि के सांस्कृतिक सरोकारों पर केंद्रित करते हुए एक तटस्थ अभिमत प्रस्तुत करते हैं- "असम के सभी लोगों के लिए यह वांछनीय होगा कि अगर उनके मस्तिष्क में सही विचार प्रस्फुटित हों, तो वे आपसी समझदारी के माहौल में एक-दूसरे के साथ मिल-जुल कर परिवार के सदस्य के रूप में बिना किसी द्वेष-भाव के शांति और भाईचारे के साथ रहने का एक रास्ता ढूँढ़ निकालें। परंतु अगर आदिवासी लोग असमीया लिपि अपनाने की वांछनीयता से अपने आप को आगाह नहीं कर पाते हैं, तो हिंदी (देवनागरी) लिपि को अपनाने के सुविचार से अपने आप को अवगत कराना होगा। इसका कम से कम यह लाभ होगा कि अगर वे अपने सर्वाधिक समीप की संस्कृति के पास नहीं रहेंगे, तो देश की मूल संस्कृति के सन्निकट अवश्य होंगे। अंग्रेज़ी लिपि को अपनाने से कुल मिला कर वे भारत की पारंपरिक संस्कृति से बिल्कुल अलग-थलग पड़ जाएँगे। इससे जनजातीय समुदाय का अवांछित अलगाव बढ़ेगा, जो उनके अपने हित को ही नुकसान पहुँचाएगा और उनका सांस्कृतिक स्वास्थ्य प्रभावित होगा।" (पृ. 23)।

यह अभिमत देवनागरी-लिपि के उन सभी समर्थकों को मार्ग दिखाने वाला है, जो लिपि-विहीन भाषाओं के लिए देवनागरी के व्यवहार के समर्थन में केवल इस लिपि की वैज्ञानिकता का महिमा-मंडन करते रहते हैं, जबकि जनजाति विशेष अथवा क्षेत्र विशेष के सांस्कृतिक विकास में देवनागरी-लिपि की भूमिका समझने-समझाने में कोई रुचि नहीं लेते।... असम के साथ ही अरुणाचल का संदर्भ भी जोड़ें, तो पाएँगे कि सभी जनजातियाँ लिपि के प्रश्न को संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में सुलझाने के प्रति अत्यधिक संवेदनशील हैं। इसका एक उदाहरण तानी-लिपि के निर्माण की घटना है। अरुणाचल की 'तानी' जनजाति के अंतर्गत पाँच जानजाति-समुदाय हैं- आदी, गालो, आपातानी, तागिन और न्यिशी। इन सभी की अपनी-अपनी भाषाएँ हैं और वर्तमान में उन्हें लिपि की आवश्यकता है। गालो जनजाति के एक शोधकर्ता विद्वान, तोनी कोयु ने सभी तानी भाषाओं के लिए एक लिपि का निर्माण किया और उसे 'तानी-लिपि' नाम दिया। जब उन्होंने इस तानी-लिपि का प्रचार किया और तानी भाषाओं के लिए उसके व्यवहार पर बल दिया, तो आश्चर्यजनक रूप में जनजातीय समूहों ने इस लिपि को स्वीकार करने में कोई रुचि नहीं दिखाई। फलत: तोनी कोयु अपने तमाम प्रयासों के बावजूद अपनी योजना में असफल रहे। यह कोई प्राचीन नहीं, बल्कि बीसवीं शताब्दी के अंतिम चरण से लेकर इक्कीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण की ही घटना है।

लगभग दस वर्ष पूर्व आदी जनजाति के एक हिंदी विद्वान, ओकेन लेगो ने मुझे बताया था कि तोनी कोयु की तानी-लिपि की ध्वनि-चिह्नों की दृष्टि से परीक्षा नहीं हो सकी। मेरा अनुभव है कि यह इसकी अस्वीकृति का एक कारण है, इसका दूसरा कारण सांस्कृतिक है। तानी जनजाति-वर्ग के जनजातीय-समुदाय अपने धार्मिक अनुष्ठानों में कुछ लिपि-चिह्नों का निर्माण करते हैं। उनका विश्वास है कि उनकी पूर्वज-परंपरा में लिपि विद्यमान थी, जो समय और परिस्थितियों के कारण नष्ट हो गई। यह भी मान्यता है कि जो लिपि-चिह्न बचे रह गए, उन्हें अनुष्ठानों में निर्मित किया जाना अपनी पूर्वज-परंपरा का सम्मान करना और उससे जुड़े रहने के संकल्प को जीवित किए रखना है, क्योंकि अपनी संस्कृति और पूर्वज-परंपरा से कट कर जीवन नहीं जिया जा सकता। इसी के साथ यह मान्यता भी है, कि प्रत्येक लिपि-चिह्न में पूर्वजों का कोई-न-कोई संदेश निहित है। अरुणाचल प्रदेश की हिंदी कथाकार, जोराम यालाम नाबाम (जो स्वयं न्यिशी जनजाति में जन्मी हैं और पूर्वज-परंपराओं के अध्ययन में लगी हैं) के अनुसार तानी-लिपि के निर्माता ने पूर्वज-परंपरा के बचे रह गए इन लिपि-चिह्नों को कोई महत्त्व नहीं दिया। उन्होंने तानी समूह के जनजातीय समुदायों के बौद्धिकों को भी लिपि-निर्माण के अभियान से नहीं जोड़ा। न उनके साथ कोई विचार-विमर्श किया और न उन्हें अपनी बात समझाई। परिणामस्वरूप लिपि-निर्माण का उनका यह अभियान किसी सार्थक परिणति को प्राप्त होने के पूर्व ही निष्प्रभावी हो गया।

प्रवेशांक में हिंदी के विद्वान और भारत के महामहिम राष्ट्रपति, शंकरदयाल शर्मा की अनुवाद के संबंध में एक अत्यंत उपयोगी टिप्पणी (जो संभवत: उनके किसी भाषण अथवा लेख का अंश है) प्रकाशित हुई है, जिसमें वे कहते हैं- "... भारतीय भाषाओं का हिंदी में अनुवाद सीधे-सीधे होना चाहिए, अन्य भाषा के माध्यम से नहीं। यदि तमिल साहित्य का अनुवाद हिंदी में होता है, तो वह सीधे तमिल से हिंदी में आए, न कि अंग्रेज़ी या अन्य किसी भाषा के माध्यम से। भारतीय भाषाओं और हिंदी भाषा के बीच किसी अन्य भाषा की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए। तभी उस अनुवाद में जान आ सकेगी और तभी दोनों भाषाएँ एक-दूसरे से कुछ ग्रहण कर अपने आप को समर्थ कर सकेंगी।" (पृ. 6)। शंकरदयाल जी ने यह अभिमत भारत की राजभाषा, हिंदी

की भूमिका के संदर्भ में प्रकट किया है। संदेश स्पष्ट है, जैसे अन्य भाषाभाषी हिंदी सीख कर अपनी-अपनी भाषाओं से हिंदी में अनुवाद करते हैं, वैसे ही हिंदीतर भाषी क्षेत्रों में (और हिंदी क्षेत्रों में भी) रहने वाले हिंदी-प्रेमी विद्वान कोई-न-कोई भारतीय भाषा सीख कर उससे सीधे हिंदी में अनुवाद करें, तभी हिंदी के तृणमूल-विकास को गति प्राप्त होगी। कहना होगा, यही अनुवाद-प्रक्रिया हिंदी से अन्य भाषाओं में अनुवाद के संबंध में भी व्यवहार में लाई जानी चाहिए। साहित्यिक आदान-प्रदान की इस प्रक्रिया से समस्त भारतीय भाषाओं का विकास संभव होगा तथा भारत की सामूहिक-चेतना अपने वास्तविक रूप में प्रकट हो सकेगी।

अरुण नागरी के प्रवेशांक में 'आंतर भारती' नाम से एक खंड की प्रस्थापना है, जिसमें गालो भाषा-भाषी हिंदी लेखक (जो अरुणाचल के पहले हिंदी लेखक हैं), जुमसी सिराम द्वारा एक कविता का गालो भाषा में किया गया अनुवाद देवनागरी-लिपि में प्रकाशित किया गया है। साथ में हिंदी-पाठ भी है। इसका एक अंश है- "मैं करूँगा सुरक्षा अपनी मातृभूमि की/और लड़ूँगा भेड़ियों के विरुद्ध/ दुर्भिक्ष के विरुद्ध/लूट-खसोट करने वाले/व्यापारियों के विरुद्ध/तथाकथित न्यायालयों के विरुद्ध/और करूँगा सुरक्षा अपनी मातृभूमि की/मैं खो बैठूँ भले ही/अपने पशु, अपने/खेत, अपने वन और उपवन/भले ही खो बैठूँ/अपना लाभांश/अपनी आय, अपना ब्याज/परंतु करूँगा सुरक्षा/अपनी मातृभूमि की।" (पृ. 16)। यहाँ उल्लेखनीय है, कि इसे प्रकाशित करते हुए कहीं इसकी मूल भाषा का संकेत नहीं किया गया है और गालो अनुवाद के साथ हिंदी-पाठ भी दिया गया है, अत: यह भ्रम होता है कि मूल कविता हिंदी में रची गई होगी। उधर संपादक ने इसे जर्मनी के प्रो. फ्रांसिस जे. को 1985 के पूर्व ही भेजने की सूचना भी दी है। इससे भ्रम और भी बढ़ जाता है। इस लेखक ने इस विषय में संपादक से ही बात करने का निश्चय किया, तो अरुण नागरी के संपादक, रमण शांडिल्य से 18 अगस्त, 2020 को हुई चर्चा में पता चला, कि मूल कविता जर्मन भाषा की है, जिसका उन्हें अंग्रेज़ी अनुवाद मिला था। उन्हें यह कविता इतनी पसंद आई, कि उन्होंने इसका हिंदी अनुवाद कर डाला और तत्कालीन पश्चिमी जर्मनी के प्रोफेसर के अनुरोध पर जुमसी सिराम से गालो भाषा में अनुवाद करवा कर (अपने हिंदी अनुवाद सहित) उन्हें भेजा। इसके बाद जब अरुण नागरी प्रकाशित हुई, तो इसके हिंदी और गालो अनुवाद को प्रकाशित कर दिया। निस्संदेह कविता बहुत प्रभावशाली है और जर्मनी के साथ ही वर्तमान भारतीय संदर्भ में भी प्रासंगिक है, किंतु इसके संबंध में दिया गया स्पष्टीकरण भविष्य में किए जाने वाले शोध-कार्य के लिए आवश्यक होने के साथ ही इसलिए भी आवश्यक है कि प्रवेशांक में ही शंकरदयाल शर्मा ने दो भाषाओं के बीच किसी तीसरी भाषा को लाए बिना सीधे अनुवाद का आग्रह किया है, जबकि उपर्युक्त अनुवाद इस पद्धति का पालन नहीं करता। इस सबके बावजूद, आंतर भारती योजना अपने आप में एक अनूठी शुरुआत थी।

हिंदी कवियों की कई कविताएँ भी प्रवेशांक में हैं, जिनमें अरुणाचल के महत्त्व को प्रस्तुत करने वाली वहाँ के तत्कालीन राज्यपाल माता प्रसाद जी की कविता उल्लेखनीय है- "पर्वतराज हिमालय-सुत सा/शोभित अरुणाचल है/स्नात: सूर्य किरण से प्रात:/इसका तन निर्मल है/सज्जन-सरल सुपुत्र यहाँ के/राष्ट्र भक्ति में अविचल/भारत माता गर्व करे/इसका ऐसा अंचल है।" (पृ.11)

देवनागरी लिपि, हिंदी और अरुणाचल की जनजातीय भाषाओं के संबंध में प्रवेशांक में जिस दृष्टिकोण और दिशा की उपस्थापना की गई थी, अगले सभी अंकों में उसका विस्तार देखने को मिला। दूसरे अंक के संपादकीय में लिपि के संबंध में भीतर तक हिला देने वाला रहस्योद्घाटन किया गया- "... अंग्रेज अरुणाचल के

पासीघाट नामक स्थान में जब आए, तो उन्होंने उस क्षेत्र में बसने वाली एक जनजाति, पादाम की भाषा-लिपि के लिए एक नया शब्द गढ़ा-'पादाम आखर'। यह पादाम भाषा को रोमन में लिखने-प्रचारित करने की एक सुनियोजित साजिश थी।" रोमन-लिपि को पादाम आखर कह कर प्रचारित करने का लक्ष्य आदिवासी समुदायों के सहज विश्वासी मानस को भुलावे में डाल कर एक ऐसी लिपि को लागू करना था, जिसमें उनकी भाषा को सही-सही नहीं लिखा जा सकता था और न जिसके माध्यम से उनकी सांस्कृतिक आवश्यकताओं को पूरा किया जा सकता था। बरसों पहले आदिवासियों को अंग्रेजी भाषा की वर्णमाला सिखाने के लिए ऐसे ही प्रयास नागालैंड में दिखाई पड़े थे। वहाँ दु:खद ढंग से अंग्रेज भाषा प्रचारकों ने धर्म का सहारा लिया था। यह प्रसंग फिलहाल यहीं तक...

देवनागरी लिपि के संबंध में अरुण नागरी के तीसरे अंक में अति महत्त्वपूर्ण सामग्री प्रकाशित की गई। यह बापू लक्ष्मण श्रीधर वाकणकर 'लिपिकार' की पुस्तक, 'साइंटिफिक नागरी फोनोग्रेफी' के एक अंश का अनुवाद है, जिसे 'नागरी लिपि की वैज्ञानिकता और उसकी कंप्यूटर युग में सार्थकता' शीर्षक आलेख के रूप में छापा गया है। इस सामग्री में अनेक ऐसी जानकारियाँ हैं, जिसने सामान्य हिंदी पाठक प्राय: अनभिज्ञ रहते हैं। वाकणकर देवनागरी लिपि के बारे में कहते हैं- "पश्चिमी लोगों ने जिसके लिए 'देवनागरी नाम' लोकप्रिय किया, वह प्राचीन नहीं है। पद्म पुराण में उसे 'देवलिपि भारती' ऐसा कहा जाता है। वातुलागम में उसे 'नागर' यानी शहर की लिपि कहा है। ऋग्वेद के पाणिनि मुनि (ने) प्रचलित 'शिक्षाध्याय' में उसे 'शंभु' मते यानी माहेश्वरी कहा है। संत विनोबा भावे उसके लिए केवल 'नागरी' नाम ही पर्याप्त मानते थे। बौद्ध-जैन काल के प्रारंभ में शिलालेखों ताम्रपत्रों पर उत्कीलन के लिए जो लिपि सुधार हुआ, 'ब्राह्मी' नाम से लोकप्रियता प्राप्त हुई।" (पृ. 14-15)। यहीं लिपि के इतिहास के संबंध में प्रचलित भ्रम का वाकणकर द्वारा किया गया निवारण भी उल्लेखनीय है। वे कहते हैं-"ब्राह्मी पूर्वकालीन अभिलेखों की उपलब्धि गत (19वीं) शताब्दी में नहीं हुई थी, इस कारण से प्रथम कल्पना यह प्रसूत की गई, कि 'वेद-काल में लेखन-विद्या नहीं थी' और ब्राह्मी लिपि ही सभी भारत जन्य लिपियों की जननी थी। जब सिंधु नदी की उपत्यका से सैंधवी अभिलेख प्रकाश में आए, तो ब्राह्मी लिपि का संबंध उससे जोड़ने के प्रयत्न होने लगे।... 1966 में ऋग्वेद की एक ऋचा में स्पष्ट मिला कि 'अश्वारूढ़ इंद्र के लिए रचा हुआ नया काव्य (ब्रह्म) हम गौतम वंश वाले उत्कीलन (अतक्षत्त्) कर रहे हैं' (सनायते गौतम इंद्र नव्यं अतक्षत् ब्रह्म हरियोजनाय। ऋ. 1.62.13)।..... गीली ईंट पर सूची से उत्कीलन करने का वर्णन कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय संहिता तथा अथर्ववेद में मिलते हैं (यस्यां आद्रायां इष्टकायां त्रिपुंड्रवद् रेखायां क्रियते.... तद् देवानां चिह्नम्- तै. सं. 4.2.9..... ऋग्वेद संहिता में 'लिख' धातु से बना एक शब्द भी है।...)।" (पृ. 15)।

इस आलेख से पता चलता है, कि "चिकने बनाए हुए स्लेट पत्थर पर उल्टी अक्षर पंक्तियाँ खुदवा कर उसमें गेरुआ रंग भरने के बाद कपड़े पर श्लोक छापने का प्रयत्न ईसा की 11वीं शताब्दी के प्रारंभ में धारा नगरी के राजा भोज ने किया था। उसका प्रमाण आज उपलब्ध है।" (24)। लेकिन पश्चिम में टंकण प्रौद्योगिकी आधारित खोजें पूरी तरह रोमन लिपि की अनुकूलता को ध्यान में रख कर की गईं। वही टंकण मशीन जब पश्चिम से भारत आई, तो नागरी लिपि में एक ऐसे सुधार-युग का प्रारंभ हुआ, जो इस भय पर टिका हुआ कहा जाता था, कि यदि नागरी लिपि में टंकण मशीन के अनुसार बदलाव न किए गए, तो हमें रोमन-लिपि अपनानी होगी। वाकणकर

ने कहा, कि "इस डर के कारण सन् 1914 से 60 तक 'लिपि सुधार' का आंदोलन भारत में चला।" (पृ. 24)। कहना होगा, कि यह अभी तक चल रहा है, क्योंकि भारत में कंप्यूटर-क्रांति आने के बाद से शासन के स्तर पर नागरी-लिपि में निरंतर बदलाव की कोशिशें हो रही हैं। इस बदलाव का आधार किसी प्रकार की तार्किकता-अतार्किकता न होकर केवल कंप्यूटर के लिए अनुकूलता है। इस संदर्भ में वाकणकर का कथन आँखें खोलने वाला है, वे लिपि सुधार युग का मूल्यांकन करते हुए कहते हैं- "यंत्र में सुधार करने के बजाय लिपि को तोड़ना-मरोड़ना इस आंदोलन का स्वरूप बन गया था। 21 जनवरी, 1960 को भारत के शिक्षा मंत्रालय ने जब 'मानक देवनागरी' अक्षरों के नियम बनाकर उसे जारी किया, तो उस दिन से आंदोलन की समाप्ति हो गई। अब प्रश्न आया, कुंजी-पटल के सुधार का। एक विशेष व्यक्ति के हठ के कारण कुंजी-पटल इतना दोषपूर्ण बना, कि बाएँ हाथ तथा उसकी सबसे छोटी उँगली पर श्रम-भार सबसे अधिक पड़ने लगा, परंतु वही दोषपूर्ण कुंजी-पटल आज भी सरकारी हठ के कारण वैसा ही दोषपूर्ण रह गया है।" (पृ. 14)।

लक्ष्मण श्रीधर वाकणकर के इस आलेख में सबसे संघर्षपूर्ण और रोमांचक अभियान की जानकारी कंप्यूटर में देवनागरी-लिपि के व्यवहार को संभव बनाने की है। कंप्यूटर का संकेतक-कोष्ठक रोमन-लिपि के अनुकूल बनाया गया था, जिस कारण उसमें देवनागरी के सभी लिपि-चिह्न, अर्धाक्षर और संयुक्ताक्षर समायोजित नहीं हो सकते थे। वाकणकर को अचानक सूझा, कि "यदि हमारी लिपियाँ वैज्ञानिक दृष्टि से 'ध्वन्यात्मक' हैं, तो आकृतियों को अंत: प्रेरित करने के बजाय, यदि हम ध्वनि-परमाणुओं (photonic-atoms) को अंत: प्रेरित करें तो क्या होगा?" (पृ. 25)। यही वह शोध-प्रश्न है, जिसने वाकणकर को 'टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ फंडामेंटल रिसर्च' नामक प्रख्यात संस्थान के वैज्ञानिक एस. पी. मुदूर के साथ मिलकर प्रयोगों की एक श्रृंखला पर अहर्निश जुट जाने के लिए प्रेरित किया। काफी परिश्रम के बाद, "…जब अवयवों के 'अकात्मक' (digital) चित्र बना कर कंप्यूटर की स्मरणिका में बैठाए गए, उसका ध्वन्याकृतिक (phonographic) कुंजी-पटल बनाया, उसकी आज्ञावली (software) बनी, और वह निरपवाद बनी, तब चल कर एक दिन कंप्यूटर के पर्दे पर संस्कृत वाक्य प्रकट हुए।"(पृ. 25)। यह एक लिपि-वैज्ञानिक की अद्भुत परिकल्पना के साथ ही नागरी-लिपि की वैज्ञानिकता को मिली प्रौद्योगिकीय सफलता की गौरवशाली घटना है। इसीलिए वाकणकर कहते हैं-"वैज्ञानिक प्रगति की कोई सीमा नहीं होती, परंतु यह मौलिक तथ्य ध्यान में रखना आवश्यक है, कि नागरी तथा सहभागिनी लिपियाँ इतने थोड़े समय में आरूढ़ हो सकीं, उसका कारण है, उसकी वैज्ञानिक संरचना, जो हमारी धरोहर है। ऐसा एक दिन अवश्य आएगा, जब 'नागरी-लिपि' विश्व-लिपि के सिंहासन पर आसीन होगी। परंतु हम कितना काम करेंगे, इस पर यह सुयश अवलंबित होगा (न हि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशंति मुखे मृगा:)।" (पृ. 24)।

अरुण नागरी के अंकों में वहाँ के राज्यपाल, माता प्रसाद जी के पाँच भाषण प्रकाशित हुए। यह स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए, कि इन भाषणों के प्रकाशन का कारण किसी भी रूप में उनका राज्यपाल होना न होकर हिंदी का एक अच्छा लेखक होना, अरुण नागरी का मुख्य संबल होना और अरुणाचल की जनजातीय भाषाओं व साहित्य के हित के लिए काम करने की भावना रखना प्रतीत होता है। उनके पाँच भाषणों में से तीन पूरी तरह हिंदी भाषा पर केंद्रित हैं। पहला भाषण गौहाटी विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग (स्था. 31 अक्तूबर, 1970)के रजत जयंती समारोह के अवसर पर 18 नवंबर, 1995 को दिया गया था। इस भाषण में उन्होंने असम के हिंदी-प्रचार आंदोलन में लोकप्रिय गोपीनाथ बरदोलई की ऐतिहासिक भूमिका का स्मरण करने के साथ ही

नागरी लिपि के संदर्भ में आचार्य विनोबा भावे एवं हिंदी-सेवा के लिए कामिल बुल्के सहित अनेक विदेशी हिंदी विद्वानों को याद किया है। लेकिन माता प्रसाद जी के इस भाषण का उल्लेखनीय पक्ष हिंदी में किए जाने वाले शोध-कार्य को प्रस्तुत किए जाने के लिए हिंदी भाषा के ही प्रयोग की अनिवार्यता से संबंधित है। यह इसलिए भी महत्त्वपूर्ण कहा जाना चाहिए, कि वे जिस विश्वविद्यालय में भाषण दे रहे थे, उसी में हिंदी विषय का पीएच. डी. उपाधि हेतु किया जाने वाला शोध-कार्य अंग्रेजी में प्रस्तुत किए जाने की बाध्यता थी। यह दशा उस विश्वविद्यालय में थी, जहाँ हिंदी विभाग स्थापित हुए पच्चीस वर्ष पूरे हो चुके थे। इसलिए अनुमान है, कि उन्होंने इस प्रसंग को जान-बूझ कर अपने भाषण में शामिल किया होगा। उन्होंने कहा- "... कुछ विश्वविद्यालयों में तो हिंदी विषय के शोध-पत्र भी रोमन लिपि में लिखवाए जाते हैं। यह हिंदी का मज़ाक उड़ाना ही कहा जाएगा। यह सती-सावित्री और सीता जैसी आदर्श नारी को घुटनों तक स्कर्ट पहना कर समाज के सामने खड़ी करके उनकी हँसी उड़ाने जैसा है।"(अंक-5, पृ. 16)। उन्होंने इस प्रसंग को तीन वर्ष बाद पुन: मेघालय की राजधानी शिलाङ् में रूपंबरा संस्था द्वारा आयोजित 'दसवें अखिल भारतीय राजभाषा सम्मेलन' में उठाया। स्वतंत्रता के स्वर्ण जयंती और महात्मा गांधी के एक-सौ अट्ठाईसवें जन्म वर्ष के अवसर पर आयोजित इस सम्मेलन में माता प्रसाद जी ने कहा-"देश के कुछ अहिंदी भाषी राज्यों में विश्वविद्यालयों में हिंदी में अनुसंधान कार्य किए जाते हैं, इसके लिए वे विश्वविद्यालय बधाई के पात्र हैं। लेकिन ऐसे कुछ विश्वविद्यालयों में हिंदी विषय के शोध प्रबंध को हिंदी भाषा की नागरी लिपि में लिखने के स्थान पर रोमन लिपि में लिखने को विवश किया जाता है, इससे तो हिंदी की टांग ही तोड़ने का प्रयास किया जाता है।" (अंक-13-14, पृ. 20)। लगता है, वे एक बार फिर अपनी आवाज़ गौहाटी विश्वविद्यालय के कानों तक पहुँचाना चाहते थे, जो शिलाङ से केवल तीन घंटे दूर है। आखिर, सन् 2019 में गौहाटी विश्वविद्यालय के कानों में माता प्रसाद जी की आवाज़ पहुँची और उसने अन्य हिंदी सेवियों की आवाज़ भी सुनी तथा हिंदी विषय के शोध प्रबंध हिंदी भाषा (देवनागरी लिपि) में प्रस्तुत किए जाने की बात आधिकारिक रूप से मान ली।

माता प्रसाद जी के कुलाधिपतित्व-काल में ही राजीव गांधी विश्वविद्यालय (उस समय अरुणाचल विश्वविद्यालय) में हिंदी विभाग प्रारंभ किया जाना संभव हुआ था, जिसकी घोषणा उन्होंने प्रथम दीक्षांत समारोह में सन् 1997 में की थी, "मुझे बताते हुए प्रसन्नता हो रही है, कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने इस विश्वविद्यालय के लिए नवीं पंच वर्षीय योजना में 2 करोड़ 20 लाख रुपए की धनराशि आवंटित की है, जिसमें हिंदी विभाग के लिए एक रीडर और दो लेक्चरर की नियुक्ति की व्यवस्था है।" (अंक- 13-14 पृ. 37)। स्मरणीय है, कि 4 फरवरी, 1984 में अरुणाचल विश्वविद्यालय की स्थापना हो जाने के बावजूद तेरह-चौदह वर्ष बाद तक भी हिंदी विभाग नहीं खुला था। यहाँ तक कि अरुण नागरी के संपादक ने सन् 1998 के अंक 13-14 के संपादकीय में भी इस प्रकरण को उठा कर विश्वविद्यालय में हिंदी विभाग प्रारंभ किए जाने के औचित्य की ओर ध्यान आकर्षित किया- "राज्य के अनेक जनजातीय युवक-युवतियाँ दूसरे विश्वविद्यालयों से हिंदी में स्नातकोत्तर शिक्षा प्राप्त कर कहीं न कहीं सेवारत हैं, किंतु उन छात्रों की समस्या इन चौदह वर्षों में यथावत बनी हुई है, जो यहाँ के डिग्री कॉलेजों से स्नातक स्तर तक तो हिंदी विषय रख कर अपनी शिक्षा पूरी कर लेते हैं, पर अरुणाचल विश्वविद्यालय में हिंदी विभाग नहीं होने के कारण दिशाहारा बने फिरते हैं।" इस प्रकार के प्रयासों और जनता की मांग के फलस्वरूप सन् 1999 में अरुणाचल विश्वविद्यालय में हिंदी विभाग प्रारंभ कर दिया गया। इससे न

केवल भारी संख्या में स्थानीय विद्यार्थियों को हिंदी में उच्च शिक्षा प्राप्त करने की सुविधा प्राप्त हो गई, बल्कि आदिवासी समुदाय के योग्य व्यक्तियों को प्राध्यापक के रूप में नियुक्तियाँ भी मिलीं।

इन भाषणों में डॉ. राममनोहर लोहिया, डॉ. रघुवीर और क्यूबा में भारत के राजदूत से जुड़े प्रसंग भी हैं, जिनसे विश्व-मंच पर किसी देश ही नहीं, बल्कि उसके समस्त नागरिकों की स्वतंत्र पहचान के लिए उसकी अपनी भाषा के महत्त्व का पता चलता है। प्रसिद्ध है, कि जब लोहिया जी अपने शोध-कार्य का अंग्रेजी में लिखा प्रतिवेदन लेकर डॉ. जुंबार्ड के पास गए, तो उन्होंने कहा, मुझे अंग्रेज़ी नहीं आती, इसे जर्मन भाषा में लिख कर लाइए। वे जर्मन थे। लोहिया जी ने जर्मन सीखी और उसमें अपना शोध-प्रतिवेदन तैयार किया। जब वे उसे फिर से लेकर गए, तो "डॉ. जुंबार्ड ने डॉ. लोहिया से कहा, मैं अंग्रेज़ी खूब जानता हूँ, किंतु मुझे अपनी राष्ट्र-भाषा से प्रेम है।" (अंक 9-12, पृ. 13)। इसी प्रकार एक भाषण में प्रसिद्ध विद्वान डॉ. रघुवीर का प्रसंग प्रस्तुत करते हुए माता प्रसाद जी ने कहा-"वे फ्रांस के एक राज-परिवार में वहाँ जाने पर टिका करते थे। वहाँ पर उन्हें एक भारतीय मित्र का पत्र डाकिया गृह-स्वामिनी को दे गया। गृह-स्वामिनी की ग्यारह वर्षीय पुत्री वह पत्र डॉ. रघुवीर को देने गई। पत्र देकर वह उत्सुकतावश रुक गई, यह देखने के लिए कि वह पत्र किस भाषा में लिखा गया है। पहले तो डॉ. रघुवीर ने आनाकानी की, किंतु बाद में उन्होंने वह पत्र उस लड़की को दिखा दिया। लड़की बोली, यह पत्र तो अंग्रेज़ी में है, क्या आपके राष्ट्र की कोई भाषा नहीं है? डॉ. रघुवीर को सचाई बतानी पड़ी। उस दिन भोजन के बाद गृह-स्वामिनी ने कहा, - डॉ. रघुवीर, मुझे बड़े दुख के साथ कहना पड़ रहा है- आगे से आप हमारे घर नहीं ठहर सकेंगे। आइंदा आप अपना ठिकाना कर लें, क्योंकि मुझे मेरी लड़की ने बताया है, कि आपकी कोई भाषा नहीं है, जिसकी अपनी कोई भाषा न हो, फ्रेंच लोग उसे बर्बर कहते हैं तथा उससे कोई संबंध रखना अपमान की बात मानते हैं। डॉ. रघुवीर बहुत लज्जित हुए। गृह-स्वामिनी ने पुन: कहा, हम फ्रेंच लोग आतिथ्य के लिए प्रसिद्ध हैं, इसलिए आपका तिरस्कार करते हुए मुझे दुख है, लेकिन भाषा के नाम पर कोई समझौता नहीं कर सकते।" (अंक-5, पृ. 14-15)। अपने शिलाङ् वाले भाषण में माता प्रसाद जी ने क्यूबा में भारत के राजदूत वाला प्रसंग उठाया। उन्होंने कहा- "क्यूबा में हमारे देश के राजदूत एक अवसर पर वहाँ अंग्रेज़ी में बोलने लगे, तो वहाँ एक व्यक्ति ने कहा, दूसरे सभी देशों के राजदूत तो अपने देश की भाषा में बोल रहे हैं, क्या आपके देश की कोई भाषा नहीं है? फिर स्वयं ही उसने उत्तर दिया- अच्छा, भारत तो दो-तीन सौ वर्षों तक इंग्लैंड का उपनिवेश रहा है, इसलिए अंग्रेज़ी ही आपकी राजभाषा है।" (अंक-13-14, पृ. 16)। कहा जाता है, कि इसी से मिलती-जुलती घटना तत्कालीन सोवियत रूस में भारत की राजदूत के रूप में कार्यभार संभालने की प्रक्रिया का पालन करने के क्रम में वहाँ के राष्ट्रपति के समक्ष अपने दस्तावेज़ प्रस्तुत करते समय विजयलक्ष्मी पंडित के साथ भी हुई थी।

अरुण नागरी में 'दस्तावेज़' के अंतर्गत माता प्रसाद जी का एक पत्र प्रकाशित हुआ है, जो हृदय नारायण सिंह (प्रधान संपादक- साहित्य धर्मिता, जौनपुर) के पत्र के उत्तर में लिखा गया है। यह पत्र अरुण नागरी के ही छठे अंक में प्रकाशित हुआ था, जिसके मूल भाग का एक अंश इस प्रकार है- "माता प्रसाद जी अरुणाचल में हिंदी के लिए सराहनीय कार्य कर रहे हैं, पर थोपने से भयभीत होने की बात क्यों करते हैं। सदाचार, संविधान, न्याय-विधान, राष्ट्रीय ध्वज, राष्ट्रगान के बारे में थोपना सर्वथा उचित है, वैसे ही राष्ट्रभाषा के विषय में भी। हमारे नेता यह नहीं समझ पा रहे हैं।" (अंक-6, पृ. 9)। माता प्रसाद जी ने उन्हें जो उत्तर दिया है, उसमें हिंदी के

संदर्भ में अरुणाचल की यथार्थ स्थिति और कुछ तर्क समाहित हैं। इस आलेख में पत्र को ज्यों-त्यों प्रस्तुत न करके उसके निबंधात्मक-कथ्य में प्राप्त स्थितियों और तर्कों का चयन करके उन्हें संख्या देकर प्रस्तुत किया गया है। ऐसा मात्र विषय को समझाने की दृष्टि से किया गया है। सभी संख्याओं के सामने उद्धरण-चिह्नों के बीच की भाषा पत्र के मूल-पाठ की भाषा है, उसमें कोई परिवर्तन नहीं किया गया है। इस पत्र में जो बिंदु उभर सके हैं, वे आगे दिए जा रहे हैं- 1. "अरुणाचल प्रदेश पूर्वोत्तर में एक अहिंदी भाषी राज्य है।" 2. "अंग्रेज़ी शासन-काल में यह नेफा के नाम से जाना जाता था। असम के गवर्नर का एक एडवाइजर इसका प्रशासक होता था। एडवाइजर प्राय: अंग्रेज़ होते थे। वे सारा कामकाज अंग्रेज़ी में करते थे। उन्होंने अंग्रेज़ी को प्रोत्साहित किया।" 3. "यहाँ के ट्राइबलों की अपनी-अपनी भाषाएँ थीं। क्योंकि यह असम से शासित होता था, इसलिए कुछ स्थानों में असमी भी पढ़ाई जाती थी।" 4. "जब नए राज्य के रूप में इसका उदय हुआ तब अंग्रेज़ी इसकी राज-भाषा बनी, उसे पढ़ाने को प्रोत्साहन दिया गया।" 5. "नया राज्य बनने पर यहाँ केंद्र और राज्य सरकार में देश के प्राय: हर राज्यों से हिंदी या अहिंदी भाषी अधिकारी, इंजीनियर, अध्यापक नियुक्त हुए, उस समय उनके बच्चों के लिए केंद्रीय विद्यालय खुले, जिनमें हिंदी भी पढ़ाई जाती है।" 6. "आवश्यकता को देखते हुए यहाँ की सरकार ने अपने पाठ्यक्रमों में कक्षा 10 तक हिंदी को द्वितीय भाषा के रूप में आवश्यक कर दिया।" 7. "भारतीय सेना, रेडियो और टीवी के गीतों ने यहाँ के लोगों लोगों को हिंदी सीखने में बड़ी सहायता की।" 8. "यहाँ जो लोग हिंदी बोलते हैं, उसकी लिपि रोमन ही है। इसी बात की तरफ ध्यान दिलाने के लिए मैंने यहाँ के अधिकारियों और विधायकों को एक अर्ध-शासकीय पत्र लिखा था, जिसमें सुझाव दिया था, कि जिन जनजातीय भाषाओं की अपनी लिपि नहीं है, उसे नागरी लिपि में लिखना उचित है।" 9. "इसी संदर्भ में मैंने यह भी लिखा था, कि किसी पर यह थोपा नहीं जा रहा है।"10. "भारत के संविधान की धारा 343 [3] में यह व्यवस्था की गई है, कि भाषा की दृष्टि से 'ग' श्रेणी के राज्य, जो अहिंदी भाषी हैं (पूर्वोत्तर के सातों राज्य...) उन्हें अंग्रेज़ी में कार्य करने की छूट है, उनके लिए हिंदी अनिवार्य नहीं है। इसलिए मैंने यहाँ हिंदी संविधान के विरुद्ध थोपना उचित नहीं समझा।" 11. "जहाँ तक न्याय-विधान, संविधान, राष्ट्रीय ध्वज, राष्ट्रगान का प्रश्न है, वह तो सबके लिए अनिवार्य है, क्योंकि इनका कोई दूसरा विकल्प नहीं है। किंतु राष्ट्र-भाषा का दूसरा विकल्प है।" 12. "न्यायालय की भाषा भी संविधान की धारा 348 के अंतर्गत सर्वोच्च न्यायालय, उच्च न्यायालय की प्रामाणिक भाषा अंग्रेज़ी ही है।" 13. "अरुणाचल एक सीमांत राज्य है। इसमें क्रिश्चियन धर्म के लोग भी हैं, इनके 10 एम. एल. ए. और कुछ मंत्री भी हैं। ये अंग्रेज़ी के समर्थक हैं। यदि मैं उन पर हिंदी थोप दूँ, तो यहाँ आज जो हिंदी का विकास हो रहा है, उसका विरोध शुरू हो जाएगा।" 14. "एक राज्य में हिंदी प्रसारवाद का विरोध हो रहा है।....आपकी बात मान कर यदि मैं उन पर हिंदी थोप दूँ, तो यहाँ पर भी हिंदी और हिंदी के समर्थकों के विरूद्ध एक आंदोलन खड़ा हो जाएगा।" 15. "प्रदेश के कई विधायकों ने, जिनमें क्रिश्चियन भी हैं, उन्होंने मुझसे कहा है, कि हमारे बच्चे तो अब घर में भी अपनी ट्राइबल भाषा न बोल कर हिंदी ही में बोलते हैं।" 16. "बहुत से शासन के अधिकारी भी अपनी मीटिंगों में हिंदी ही बोलते हैं।" 17. "हिंदी का कहीं भी विरोध नहीं है। यदि इन पर हिंदी थोप दी जाए, तो इसकी प्रतिक्रिया होगी और हिंदी का विरोध शुरू हो जाएगा।" (पृ. 49-50)।

उपर्युक्त में से किसी भी बिंदु पर न तो टिप्पणी की आवश्यकता है और न उसकी व्याख्या की। केवल यह कहना आवश्यक है, कि माता प्रसाद जी का यह पत्र हिंदी के उन सभी अति-उत्साही भक्तों के लिए एक

समर्थ सीख है, जो ऐतिहासिक और राजनैतिक परिस्थितियों के कारण उत्पन्न भारत की भाषा-समस्या के यथार्थ पर विचार न करके शासन-सत्ता के बल पर एक ही झटके में समस्त राज्यों में हिंदी को अनिवार्य बनाना चाहते हैं। वे भूल जाते हैं, कि हिंदी मूलत: न शासन की भाषा है, न राज्य-सत्ता की, बल्कि वह जन-सामान्य की भाषा है और जनता की सामूहिक इच्छा-शक्ति के बल पर ही संपूर्ण राष्ट्र में फैलेगी। अरुणाचल में जन-सामान्य की सामूहिक इच्छा-शक्ति ने अपना प्रभाव दिखा दिया है। इसका एक प्रमाण माता प्रसाद जी के पत्र में दिखाई देता है, जबकि एक और प्रमाण अरुण नागरी के ही दूसरे अंक में प्रकाशित वैद्यनाथ सिंह के आलेख, 'बहुभाषाई समुदायों में भाषा का प्रयोग- अरुणाचल के विशेष संदर्भ में' से प्रस्तुत किया जा सकता है- "प्रत्येक अरुणाचलवासी की भाषा दैनंदिनी तीन भाषाओं से संबंधित है- हिंदी, अंग्रेज़ी और उनकी अपनी मातृ-भाषा।... लिखने-पढ़ने का कर्म अंग्रेज़ी में संपादित होता है, यह मुख्यत: कार्यालय और शिक्षण संस्थाओं तक सीमित है। किसी भी जटिल सवाल का समाधान वे हिंदी में आसानी से समझते हैं।.... वे अपने घर और कार्यालय के बाहर तमाम कार्य हिंदी में संपादित करते हैं। यहाँ हिंदी निस्संदेह एक समृद्ध संपर्क भाषा (लिंक लैंग्वेज) की भूमिका निभाती है।" (अंक-2, पृ. 12)।

अरुण नागरी के 'आंतर भारती' कॉलम के अंतर्गत दूसरे और तीसरे अंक में न्यिशी भाषा की कवयित्री, दिमिन तेली की दो कविताएँ संपादक द्वारा किए गए हिंदी-अनुवाद सहित प्रकाशित हुईं। इनमें से एक में दिमिन कहती हैं- "आप लोगों को, इस संसार से छोड़ कर/जाने को सोचा भी नहीं था/प्रतिदिन प्रति वर्ष इस जीवन को/एक साथ जीने का सोचा था/मेरा यह सोचना निरर्थक हो गया/मैं नहीं रहूँगी तब भी यह सूरज रहेगा/मैं नहीं रहूँगी तब भी यह चांद निकलता रहेगा।" (अंक-2, पृ. 4)। दूसरी कविता में उन्होंने कहा- "हम दोनों जब साथ-साथ रहते थे/सुबह-सुबह चिड़ियाँ चहचहा कर जगाती थीं/जब हम दोनों साथ-साथ घूमते-फिरते थे/प्रति सुबह फूलों को खिला हुआ देखते थे/अभी न तो चिड़ियाँ चहचहाती हैं/न फूल खिल रहे हैं/ हर सुबह जगाने वाली चिड़ियाँ/आपको अब भी जगाती होंगी/हर सुबह आपके बगीचे में फूल अब भी खिलते होंगे/आपका दुख मैं समझती हूँ/मेरे जीवन का सारा सुख आपको मिले।" (अंक-3, पृ. 7)। पाँचवें अंक में आपातानी कवि, मिहिन कानिङ् की कविता है, जिसके अनुवादक का नाम नहीं दिया गया है। इस कविता में कहा गया है- "सूर्य देवता की पूजा करेंगे/शशि देवता की पूजा करेंगे/सूर्य देवता की गोद में हम/शशि देवता की गोद में हम/सूर्य देवता की पूजा करके/शशि देवता की पूजा करके/सूर्य देवता का आशीर्वाद लूँगा/शशि देवता का आशीर्वाद लूँगा/जीने से भी सच बोल कर जिएँगे/मरने से भी सच बोल कर मरेंगे।" (पृ. 9)। छठे अंक में होङ्गर इङो की गालो कविता है, अज्ञात कारणों से जिसका हिंदी अनुवाद नहीं दिया गया है। अंक 9-12 में आदी जनजाति का परंपरागत उद्बोधन-गीत दिया गया है, जिसका भावार्थ धर्मराज सिंह द्वारा प्रस्तुत किया गया है। इस गीत में जातीय-एकता का संदेश है। इसके भावार्थ का एक अंश इस प्रकार है- "सृष्टि के आरंभ से ही हम सब एक हैं। भले ही हम मिन्योङ्, गालो, पासी, पादाम, बोरी, बोकार, कार्को, शिमोङ् आदि जनजातियों के नाम से जाने जाते हैं।.... हमारे जीवन की पद्धति में हम लोग सोलुङ्, मोपिन, रेह, न्योकुम, लोसर, द्री, सांकेत, मोल, लोकू, खान आदि त्योहारों को अलग-अलग ढंग से मनाते हैं, लेकिन इन सारे त्योहारों का संदेश एक है; इसलिए ये सारे त्योहार हम सबके हैं।" (पृ. 9)। अंक-13-14 में मिहिन कानिङ् की आपातानी कविता, 'म्योको दीतुङ्' (म्योको त्योहार) प्रकाशित की गई है, जिसके भावार्थकर्ता का नाम नहीं दिया गया है। यह भी उल्लेखनीय है, कि छठे अंक में आंतर भारती से

अलग असम के किंवदंती-पुरुष संगीतकार भूपेन हजारिका के साथ ही पुष्पा काकति और श्रीगोकुल काकति बायन की एक-एक असमीया कविता बिना हिंदी अनुवाद के प्रकाशित की गई है। इस प्रकार, अरुण नागरी का आंतरभारती कविता-आयोजन नागरी लिपि में विभिन्न भाषाओं के काव्य के प्रकाशन के साथ ही भारतीय साहित्य के लिए अध्ययन सामग्री उपलब्ध कराने की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। इससे जहाँ अरुणाचल की भाषाओं को लिखने के लिए नागरी लिपि की शक्ति-सामर्थ्य का पता चलता है, वहीं पूर्वोत्तर के भाषा-समाजों की सृजनात्मकता एवं उनके सांस्कृतिक-वैभव की आंशिक जानकारी भी मिलती है।

\+ + + + + +

अरुण नागरी का चौथा अंक (अक्तूबर-दिसंबर, 1995) 'शंकरदयाल सिंह स्मृति अंक' है। शंकरदयाल सिंह (27 दिसंबर, 1937 – 25 अक्तूबर, 1995) राजनीतिक क्षेत्र के प्रभावशाली व्यक्ति और लेखक होने के साथ ही संसद तथा संसद के बाहर हिंदी के प्रबल समर्थक के रूप में जाने जाते थे। इस अंक के संपादकीय में उनके व्यक्तित्व के विविध पक्षों का स्मरण किया गया है। इसके साथ ही उनके पाँच लेख प्रकाशित किए गए हैं- 'हिंदी अस्मिता और राष्ट्रीयता की भाषा', 'उन्हें भूल नहीं पाता', 'वे मुझे खंड-खंड में याद आते हैं', 'कुछ ख्यालों में कुछ ख्वाबों में' तथा 'स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य की अंतश्चेतना'। इनमें से पहला लेख उन्होंने विशेष रूप से अरुण नागरी (संपादक को उनके आकस्मिक निधन के कुछ दिन पूर्व ही 13 अक्तूबर, 1995 को प्राप्त) के लिए ही लिखा था।

\+ + + + + +

अरुण नागरी में अरुणाचल के समाज और संस्कृति को गहराई से समझने के लिए अनेक आलेखों का प्रकाशन भी किया गया। स्मरणीय है, कि 19.11.1995 को अरुणाचल विश्वविद्यालय द्वारा 'अनादि ट्राइबल आर्ट एंड कल्चर' विषय पर एक संगोष्ठी आयोजित की गई थी, जिसके उद्घाटन-सत्र में तत्कालीन राज्यपाल, माता प्रसाद जी ने जो भाषण दिया था, उसे अरुण नागरी के छठे अंक में प्रकाशित किया गया है। उस भाषण में अरुणाचल प्रदेश के आदिवासी समुदायों की संस्कृति और उनके विकास के संबंध में भारत के पहले प्रधानमंत्री, पंडित जवाहरलाल के पाँच सूत्रों का उल्लेख है। दरअसल, नेहरु ने तत्कालीन नेफा के प्रशासन के संबंध में असम के राज्यपाल के सलाहकार, वेरियर एल्विन की पुस्तक, 'फिलॉसफी फॉर नेफा' की भूमिका लिखी थी। इस पुस्तक के प्रथम संस्करण की भूमिका (16 फरवरी, 1957) में जवाहरलाल नेहरू ने इस बात पर बल दिया था, कि आदिवासी समुदायों और क्षेत्रों पर राजनैतिक और आर्थिक शक्तियाँ थोपी नहीं जानी चाहिए। इतना ही नहीं, इसी भूमिका में वे यहाँ तक कहते हैं, कि "जल्दबाज़ी में उनके ऊपर कोई चीज़ थोपी नहीं जानी चाहिए। इनमें परिवर्तन धीरे-धीरे आने देना चाहिए; जिससे वे स्वयं अपनी समस्याओं का निराकरण करते रहें" (माता प्रसाद की 'मनोरम भूमि अरुणाचल' पुस्तक के पृ. 297 पर प्रकाशित हिंदी अनुवाद से)। पंडित नेहरू ने वेरियर एल्विन की इसी पुस्तक के दूसरे संस्करण की भूमिका (9 अक्तूबर, 1958) लिखते हुए पुन: इस बात पर बल दिया, कि 'आदिवासी क्षेत्रों का विकास मंद गति से न हो, किंतु अति-प्रबंधन से बचा जाए।' (वही, पृ. 298)। इसी भूमिका में वे पाँच सूत्र दिए, जिन्हें अरुणाचल विश्वविद्यालय की संगोष्ठी में पढ़ कर सुनाया गया और अरुण नागरी में प्रकाशित किया गया। ये सूत्र इस प्रकार हैं-

1. लोगों को अपनी प्रतिभा के सहारे प्रगति करनी चाहिए। उन पर हमें कुछ थोपना नहीं चाहिए। उनकी पारंपरिक कला और संस्कृति को बढ़ावा देने का प्रयास करना चाहिए।
2. जनजातियों के भूमि और वन के संबंध के में प्राप्त जनजातीय अधिकारों का हमें सम्मान करना चाहिए।
3. उनके ही लोगों के बीच से एक टीम को, प्रशासन और विकास-कार्य के लिए प्रशिक्षित करना चाहिए। नि:संदेह आरंभ में कुछ तकनीकी व्यक्तियों को बाहर से लाना चाहिए तो भी इन क्षेत्रों में बहुत अधिक बाहरी लोगों को नहीं लगाना चाहिए।
4. हमें इन क्षेत्रों में योजनाओं का अधिक बोझ नहीं लादना चाहिए। हमें इनके सामाजिक और शैक्षणिक क्षेत्रों में प्रतिद्वंद्विता की भावना से नहीं, बल्कि सहयोग की भावना से कार्य करना चाहिए।
5. हमें सांख्यिकी या खर्च किए गए धन के आधार पर उपलब्धियों का आकलन नहीं करना चाहिए, वरन मानवीय गुणवत्ता की प्राप्ति के आधार पर परिणाम का मूल्यांकन करना चाहिए।

(अरुण नागरी, अंक-6, पृ. 19)

वेरियर एल्विन की किताब अंग्रेज़ी में थी, इसलिए भारत की अधिसंख्य जनता को नेहरु के इन सूत्रों के बारे में पता चलना कठिन था, जबकि हिंदी की पुस्तक, मनोरम भूमि अरुणाचल और पत्रिका, अरुण नागरी ने इन्हें बड़े स्तर पर प्रचारित किया तथा यह भी बताया, कि अरुणाचल के आदिवासी-क्षेत्रों के जीवन और विकास के लिए प्रस्तुत ये सूत्र न केवल अरुणाचल, बल्कि संपूर्ण भारत के आदिवासी-समुदायों के संदर्भ में प्रासंगिक हैं।

आदिवासी समुदाय प्रकृति पर आश्रित होते हैं। उसी की गोद में, उसी से प्राप्त स्रोतों से उसका जीवन संभव होता है, अंत: वे उसके प्रति भावनात्मक लगाव, आस्था और पूजा-भाव रखते हैं। 'अरुणाचल प्रदेश में प्रकृति पूजन' शीर्षक लेख में वैद्यनाथ सिंह कहते हैं- "अरुणाचल के मूल निवासियों में प्रकृति अपने विभिन्न रूपों में धार्मिक प्रेरणा की स्रोत रही है। लोगों की प्रतिक्रियाएँ, आदर, भय, उत्सव, आश्चर्य, कौतूहल, जिज्ञासा आदि रूपों में दृष्टिगत होती है। सूर्य और चंद्रमा का प्रभाव जीवन के अस्तित्व के लिए प्रेरणादायक और भयावह, दोनों होता है, अंत: तानी समुदाय की जनजातियाँ दोन्यी (सूर्य) और पोलो (चंद्रमा) पर आधारित एक अद्वितीय विश्वास की पोषक बन गई हैं।" (अंक-9-12, पृ. 39)। दोन्यी-पोलो संबंधी यह विश्वास केवल तानी समूह में ही नहीं, बल्कि कुछ भिन्न रूप में अन्य समुदायों में भी पाया जाता है। वीरेंद्र कुमार सिंह ने 'दोन्यी-पोलो की अवधारणा' शीर्षक लेख में बताया है- "'दोन्यी-पोलो' की सत्ता में अधिकांश जनजातियाँ विश्वास करती हैं। लेकिन दोन्यी-पोलो की अवधारणा के संबंध में मतभेद है। सामान्यत: इसे सूर्य और चंद्रमा का प्रतीक माना जाता है। दोन्यी-पोलो को सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापी, सर्व हितकारी और सर्वांतरयामी माना जाता है।" (अंक-2, पृ. 22)।

अरुण नागरी के प्रवेशांक में 'दो मिनियोड् पुरा कथाएँ' शीर्षक के अंतर्गत सृष्टि-निर्माण संबंधी दो पुरा-कथाएँ प्रकाशित हुई हैं। इन्हें भारती वर्मा ने वेरियर एल्विन द्वारा संग्रहीत करके अंग्रेज़ी में लिखी गई पुरा-कथाओं में से चुन कर हिंदी में अनूदित किया है। इनमें से एक में पृथ्वी पत्नी है और आकाश पुरुष। कभी ये दोनों पास-पास ही रहते थे, लेकिन एक दिन मिथुन नामक पवित्र-पशु ने अपने सींगों से आकाश को ऊपर उछाल दिया, जिससे वह बहुत ऊपर चला गया। एक समय जब पत्नी पृथ्वी की इच्छा अपने पति आकाश से मिलने की हुई,

तो उसने अपना शरीर ऊपर की ओर उठाना प्रारंभ किया। उसी समय दोन्यी-पोलो के आकर उपस्थित हो जाने से प्रकाश फैल गया। इससे पृथ्वी को भारी लज्जा हुई। कहा जाता है, कि उसके जो अंग अन्य से अधिक ऊपर उठ गए थे, वे वैसे-के-वैसे ही रह गए। वे ही इस पृथ्वी पर पर्वत बन गए। धर्मराज सिंह ने 'सृष्टि निर्माण के संबंध में गालो जनजाति के लोगों का विश्वास' शीर्षक लेख में एक कथा का उल्लेख किया है- "सृष्टि के आरंभ में केवल घने बादल, जिन्हें इनकी भाषा में 'पांब्' कहते हैं और कोहरा, जिन्हें ये लोग 'पाम्बा' कहते हैं, सब जगह छाए हुए थे। समय बीतने के साथ-साथ धीरे-धीरे इन दोनों का कुछ हिस्सा कड़ा होने लगा। बादलों का परिवर्तित यह भाग उसका पेट बन गया और कुहरे का परिवर्तित कठोर भाग उसका वीर्य बन गया। समय के साथ-साथ ये दोनों अंग एक-दूसरे की ओर आकर्षित होने लगे। एक दिन ऐसा हुआ, कि ये नए दोनों अंग एक-दूसरे से चिपक गए। दोनों के संयोग के परिणामस्वरूप कालांतर में पृथ्वी (हिसी) और आकाश (मेदो) का जन्म हुआ। दोनों एक साथ रहने लगे और धीरे-धीरे उनमें विकास होने लगा। दोनों अंडाकार (तार्पी)- एक तरह के स्थानीय फल की तरह ही थे। दोनों की बाह्य परिधि अंधेरे में जुगनू की तरह चमकती थी। इनमें पृथ्वी पुरुष और आसमान स्त्री थे। पुन: पृथ्वी (हिसी) और आकाश (मेदो) के संयोग से सृष्टि की आदि-माता, 'जीमी आने' और आदि-पुरुष 'ओपो ताको' का जन्म हुआ।" (अंक- 9-12, पृ. 32)। इसके पश्चात इस पुरा-कथा में बताया गया है, कि जीमी आने और ओपो ताको के बीच उपजे आकर्षण के फलस्वरूप सूर्य, चंद्रमा, यक्ष, स्त्री की अजस्र-शक्ति, पशु-पक्षियों तथा ऋतुओं की उत्पत्ति हुई।

भारती वर्मा ने अरुण नागरी के अंकों में अरुणाचल के समाज और संस्कृति के संबंध में निरंतर लिखा। 'सिमोङ् जनजाति में पारिवारिक व्यवस्था' शीर्षक लेख में वे एक स्थान पर लिखती हैं- "सिमोङ् जनजाति की पारिवारिक व्यवस्था पितृ-सत्तात्मक है। परिवार के सभी सदस्य पिता की आज्ञा का पालन करते हैं। पुत्रों के जवान होने पर प्राय: परिवार बँट जाते हैं, अंत: अधिकांश परिवार एकल-परिवार हैं। पिता अगर चाहे, तो अपने पुत्रों को उत्तराधिकार के अधिकार से वंचित कर सकता है।" (अंक-2, पृ. 27)। यह आदिवासी समुदाय अरुणाचल की 'आदी' जनजाति के 'मिन्योङ्' वर्ग के अंतर्गत आता है और परिवार संस्था में मामा का महत्त्व अनेक संदर्भों में अधिक माना जाता है। भारती वर्मा ने बताया है, कि "सिमोङ् जाति के परिवार में मामा का विशेष महत्त्व है। वहाँ मामा, अर्थात माँ के भाई को ही व्यक्ति का वास्तविक शुभचिंतक माना जाता है। कुछ विशेष मामलों में तो वह पिता से भी अधिक महत्त्वपूर्ण समझा जाता है। उदाहरण के लिए यदि किसी व्यक्ति के साथ मार-पीट की घटना हो, तो भले ही यह कार्य उसके पिता ने ही क्यों न किया हो, उस व्यक्ति के मामा उसकी तरफ से दोषी व्यक्ति के विरुद्ध 'केबाङ्', अर्थात परंपरागत रीति से मुकद्दमा शुरु करेंगे और अपने भांजे को न्याय दिलाने का भरपूर प्रयास करेंगे।" (वही, पृ. 28)।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि पारिवार नामक संस्था की दृष्टि से जहाँ सिमोङ् जनजाति में एकल-परिवारों का आधिक्य पाया जाता है, वहीं वीरेंद्र कुमार सिंह ने अपने लेख, 'शेरदुक्पेन जनजाति : संक्षिप्त परिचय' में सूचित किया है, कि शेरदुक्पेन-समुदाय संयुक्त परिवार व्यवस्था वाला जनजाति-समुदाय है। वे शेरदुक्पेन जनजाति की परिवार व्यवस्था के विषय में लिखते हैं- "शेरदुक्पेन समाज पितृसत्तात्मक है। पिता ही परिवार के सभी दायित्वों का वहन करता है। उसकी अनुमति के बिना परिवार का कोई सदस्य किसी प्रकार का फैसला नहीं कर सकता है। इस समाज में संयुक्त परिवार की प्रधानता है।" (अंक- 9-12, पृ. 20)।

आदिवासी समुदायों में स्त्री की स्थिति और भूमिका हमेशा से मानव-विज्ञानियों और समाजशास्त्रियों के अध्ययन का विषय रही है। आधुनिक युग में नव-विकसित स्त्री-अध्ययन नामक ज्ञानानुशासन में इसका महत्त्व और भी बढ़ गया है। अरुण नागरी में प्रकाशित अनेक लेखों में प्रसंगवश स्त्री की स्थिति का उल्लेख प्राप्त होता है, लेकिन एक ही साथ अनेक जनजातियों की परिवार और समाज व्यवस्था में स्त्री की यथार्थ स्थिति का पता वीरेंद्र कुमार सिंह के, 'अरुणाचल प्रदेश में महिलाओं की स्थिति' शीर्षक लेख से चलता है। यह लेख अरुण नागरी के पाँचवें अंक में (पृ. 26-31) प्रकाशित हुआ है। इससे चुने गए कुछ उद्धरण एक ही स्थान पर देखें-

- "आदी समुदाय के अन्य वर्ग की अपेक्षा गालो समुदाय की लड़कियों पर अत्यधिक प्रतिबंध होता है। उनके बाहर आने-जाने पर नज़र रखी जाती है तथा माता-पिता अपनी लड़कियों की गतिविधियों पर नियंत्रण रखते हैं।" (पृ. 28)।

- "पादाम समुदाय की लड़कियों को गालो वर्ग की लड़कियों से अधिक स्वतंत्रता प्राप्त है। इस समुदाय की लड़कियों का अपना अलग शयनागार होता है, जिसे 'रासेंग' कहा जाता है। रासेंग में लड़कियाँ अपने प्रेमियों से मिल सकती हैं और स्वेच्छा से अपने जीवन साथी का चयन कर सकती हैं।" (पृ. 27)।

- आपातानी समाज में महिलाओं को सामाजिक और राजनैतिक मामलों में भाग लेने का अधिकार नहीं है। इस समाज में नारियों को कुछ अधिक स्वतंत्रता तो प्राप्त है, लेकिन उनकी बुद्धि को पुरुषों की बुद्धि से प्राय: हीन समझा जाता है।" (28)।

- "निशिंग समाज में महिलाओं को अपेक्षाकृत अधिक स्वतंत्रता प्राप्त है। जो लड़की मेहनती और बुद्धिमान है, उसे यह स्वाधीनता है, कि वह अपनी रुचि के अनुसार अपना जीवन व्यतीत कर सकती है। विधवा को पुनर्विवाह की छूट है। यदि कोई कम उम्र की महिला विधवा हो जाती है, तो समाज उसे यह अधिकार देता है, कि अपनी पसंद के अनुसार वह किसी भी पुरुष के साथ शेष जीवन व्यतीत कर सकती है।"(पृ. 29)।

लेखक के इस अध्ययन में यह संकेत छिपा हुआ है, कि उसने जिन आदिवासी समुदायों की स्त्रियों के बारे में जानकारी दी है, उनके बारे में शोधपरक अध्ययन के अनेक अवसर हैं और यह भी, कि इसे (लेखक के प्रस्ताव के बावजूद) अरुणाचल के सभी आदिवासी समुदायों की स्त्रियों पर लागू करना उचित नहीं होगा। इस अध्ययन में यह भी पता चलता है, कि कुछ आदिवासी समुदायों ने अपनी ओर से स्त्री को प्रेम और विवाह के संदर्भ में स्वयं निर्णय लेने की स्वतंत्रता प्रदान की है। इसी के साथ विधवा-विवाह प्रचलन में है, इससे भी आगे बढ़कर कुछ आदिवासी समुदाय स्त्री को विधवा हो जाने पर अपनी इच्छा के अनुकूल पुरुष के साथ जीवन बिताने की स्वतंत्रता देते हैं, ऐसा निर्णय करने पर उसकी सामाजिक मर्यादा को कोई नुकसान नहीं पहुँचता। इसी के साथ यह जान लेना भी आवश्यक है, कि कुछ आदिवासी समुदायों में बहुपत्नी रखने, अर्थात बहुविवाह जैसी सामाजिक कुप्रथा को कोई सामाजिक मान्यता प्राप्त नहीं है। आदिवासी समुदायों में स्त्री घर और गाँव की आर्थिक गतिविधियों से अनिवार्य रूप से जुड़ी हुई है, कोई भी धार्मिक कृत्य उसके बिना प्राय: संपन्न नहीं होता, इसके बावजूद कहीं-कहीं स्त्री को गाँव-पंचायतों के कार्यों में निर्णायक भूमिका से वंचित किया जाता है और

कहीं-कहीं उसे बौद्धिक दृष्टि से पुरुष के संदर्भ में दोयम दर्जे का माना जाता है। स्त्री के संदर्भ में आदिवासी-समुदायों का यह जीवन-यथार्थ हमारी नागरिक संस्थाओं (सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक) के अस्तित्व में आने से बहुत पुराना है। इसलिए यह सहज ही हमारे आधुनिक स्त्री-चिंतन, उससे संबंधित अवधारणाओं और शोध योजनाओं के समक्ष चुनौती है। अरुणाचल की स्त्रियों के संबंध में अध्ययन का एक पक्ष इस प्रदेश के जीवन में आधुनिक शिक्षा, प्रौद्योगिकी, सूचना-संचार, बाज़ार के विस्तार और नवीन आर्थिक-सामाजिक परिवर्तनों के हस्तक्षेप से जुड़ा हुआ भी है। वर्तमान में स्थानीय शिक्षण-संस्थानों में स्त्रियों की उपस्थिति उत्साहजनक है, संख्या में कम ही सही, किंतु उन्हें अपने देश और विश्व के श्रेष्ठतम शिक्षा-केंद्रों में अध्ययन करते देखा जाने लगा है, वे खेल, लेखन, वैज्ञानिक-शोध, चिकित्सा, पत्रकारिता, मनोरंजन, फैशन और सौंदर्य जैसे क्षेत्रों में आगे आने लगी हैं। उनमें धीरे-धीरे राजनैतिक चेतना का विकास हो रहा है, वे पर्यावरण और जल-जंगल-ज़मीन से जुड़े जनांदोलनों में भाग लेने लगी हैं और अपने ही समुदाय के सामाजिक-जीवन की बुराइयों के विरूद्ध आवाज़ भी उठाने लगी हैं। यह भविष्य में होने वाले एक बड़े परिवर्तन की भूमिका है, जिसकी ओर समाज वैज्ञानिकों का ध्यान जाना चाहिए।

राजनीतिशास्त्र के भारतीय अध्येताओं में से अनेक ने अब यह मान लिया है, कि हमारे देश की वर्तमान पंचायत-प्रणाली के निर्णायक-सूत्र भारत के आदिवासी समुदाय में प्राचीन-काल से व्यापक रूप में प्रचलित पंचायत व्यवस्था में छिपे हैं। अरुण नागरी के सक्रिय लेखक और पूर्वोत्तर के जन-जीवन के अध्ययन में गहरी रुचि रखने वाले, वीरेंद्र कुमार सिंह ने 'अरुणाचल का लोक जीवन' लेख में 'केबाङ्' का परिचय दिया है- "'केबाङ्' अरुणाचल के जन-जीवन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह इस प्रदेश की अत्यंत प्राचीन पंचायती व्यवस्था है, जिसमें आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक सभी विवादों का निपटारा किया जाता है। यह गाँव की पूरी शासन-व्यवस्था के लिए उत्तरदायी होता है। ग्राम-प्रधान को 'गाँव बूढ़ा' के नाम से जाना जाता है। 'गाँव-बूढ़ा' बहुत सम्मानित व्यक्ति होते हैं, जिनके निर्णयों की आलोचना नहीं की जा सकती। विभिन्न जनजातियों में केबाङ् के भिन्न-भिन्न नाम हैं।" (अंक-3, पृ. 10)। लेखक ने अपने एक अन्य लेख, 'शेरदुक्पेन जनजाति : संक्षिप्त परिचय' में इस जनजाति की परंपरागत पंचायत के ढाँचे का परिचय प्रस्तुत किया है, जो हमारी वर्तमान पंचायत व्यवस्था और लोकतंत्र के जानकारों की आँखें खोलने वाला है- "प्रत्येक शेरदुक्पेन गाँव में एक ग्राम परिषद होती है, जो आंतरिक प्रशासन एवं ग्राम-सुरक्षा के लिए उत्तरदायी होती है। इसके सभी सदस्य अवैतनिक होते हैं। परिषद का प्रधान होता है, उसे 'थिक अखाव' कहते हैं। 'जंग में' (परिषद सदस्य) काचंग तथा चौकीदार प्रशासन के कार्यों में थिक अखाव अथवा ग्राम प्रधान की सहायता करते हैं।" (अंक-9-12, पृ. 21)। इसी आलेख में थिक अखाव के निर्वाचन, उसे पद से हटाने और नए थिक अखाव के चयन का उल्लेख भी किया गया है- "आम सभा में सभी ग्रामवासी ग्राम प्रधान या थिक अखाव का चुनाव करते हैं। पद वंशानुगत नहीं है। यदि थिक अखाव ग्रामवासियों का विश्वास खो देता है, तब गाँववासी उन्हें हटा कर नए थिक अखाव का चुनाव करते हैं।" (वही, पृ. 21)। यह ग्राम-परिषद यातायात-सुविधा की व्यवस्था और सामाजिक-धार्मिक उत्सवों के आयोजन का कार्य भी करती है।

अपने एक लेख, 'अरुणाचल में बाल जन्म के समय रीति-रिवाज' में मनहंस कुमार 'नील' ने बालक के जन्म और नामकरण के अवसर पर प्रचलित प्रथाओं के बारे में कहा है कि अरुणाचल के आदिवासी समुदायों

में "पुजारियों के निर्देशानुसार ही नवजात बच्चे के संस्कार पूरे किए जाते हैं। बच्चे का नामकरण मामा करता है। पुजारी भी नामकरण कर सकता है।" (अंक-9-12, पृ. 30)। वे कुछ जनजातियों के बारे में विशेष रूप से भी बताते हैं। उदाहरण के लिए "शेरदुक्पेन समाज में बच्चा जब तीन दिन का हो जाता है, तब उसका नामकरण किया जाता है। बच्चे का उचित नाम निकालने के लिए पुजारी बच्चे की जन्म-तिथि के आधार पर पवित्र पुस्तक से फल निकालता है। उसी फल को पढ़कर या समझ कर ही पुजारी बच्चे का नामकरण करता है..... शेरदुक्पेन लोग बच्चे को सूर्य-दर्शन भी कराते हैं।" (वही, पृ. 30)। इसी प्रकार नोक्ते आदिवासी समुदाय की प्रथा के विषय में वे बताते हैं, कि "नोक्ते लोगों में भी पुजारी तथा भविष्यवक्ताओं को सम्मान दिया जाता है। नामकरण के समय अनुमानकर्ता स्वर्गीय व्यक्तियों के नामों पर विचार करते हैं।... इसी तरह नोक्ते लोग भी बच्चे को प्रकृति के दर्शन कराते हैं। माँ, वृद्ध महिलाएँ तथा युवा लड़कियाँ बच्चे को लेकर खेत को जाती हैं। वहाँ वे पूजा-गान करती हैं।" (वही, पृ. 30)।

विवाह संबंधी प्रथाओं की जानकारी की दृष्टि से विनोद कुमार मिश्र का लेख, 'आदी जनजाति की विवाह पद्धति' ध्यान आकर्षित करता है। उन्होंने पादाम (पादाम मिन्योङ् वर्ग की उप-जनजाति) की विवाह-पद्धति के विषय में कहा है, कि "लड़के की माँ एक बाँस की नली में आपोङ् तैयार करती है। इस भेंट को लेकर वह लड़की के घर जाती है तथा अपने लड़के की ओर से वह लड़की अथवा उसकी माँ के सामने शादी का प्रस्ताव रखती है। यदि भेंट स्वीकार कर ली जाती है, तो समझा जाता है, कि प्रस्ताव मंजूर है।" (अंक-5, पृ. 35)। वे गालो (गालो वर्ग की उप-जनजाति) के बारे में कहते हैं- "जब कोई लड़का अथवा उसके माँ-बाप किसी लड़की से शादी करने के लिए इच्छुक होते हैं, तो वे किसी मध्यस्थ को लड़की के घर भेजते हैं। जब मध्यस्थ की बातों पर कुछ दिनों तक ध्यान नहीं दिया जाता और कन्या-पक्ष की ओर से कोई जवाब नहीं आता, तो लड़का अपने पिता तथा कुछ संबंधियों को लेकर लड़की के घर जाता है। साथ में वह आपोङ् और मांस भी ले जाता है। वर पक्ष के लोग कन्या पक्ष के सामने परोक्ष रूप से शादी का प्रस्ताव रखते हैं। अगर प्रस्ताव स्वीकार करना होता है, तो लड़की का पिता लाई हुई भेंट को स्वीकार कर लेता है।" (वही, पृ. 36)। त्युत्सा जनजाति में प्रचलित विवाह पद्धति के संबंध में धर्मराज सिंह ने अपने एक लेख, 'त्युत्सा जनजाति' में जो जानकारी दी है, वह आदिवासी जीवन का अध्ययन करने वाले समाज वैज्ञानिकों को यह बताने के लिए पर्याप्त है, कि उन्हें उसका विश्लेषण आधुनिक नागर-समाज की परंपराओं के मूल स्रोतों को खोजने व समझने की दृष्टि से भी करना चाहिए। त्युत्सा जनजाति पता नहीं कब से विवाह को जैविक गुणवत्ता के साथ ही स्त्री की निर्णय-स्वाधीनता से जोड़ कर देखती आ रही है। धर्मराज सिंह कहते हैं- "एक उपजाति की शादी पूर्व निश्चित चार-पाँच उपजातियों में ही हो सकती है। लेकिन अपनी ही उपजाति में शादी वर्जित है। ऐसा करने वाला व्यक्ति समाज से निकाल दिया जाता है और उसे जुर्माना किया जाता है।" (अंक- 13-14, पृ. 26)। इसके आगे वे बताते हैं- "जब किसी लड़के के माँ-बाप लड़की के माँ-बाप के घर जाकर उनसे उनकी लड़की को अपने लड़के के लिए माँगते हैं, लड़की के माँ-बाप उन्हें यह कह कर विदा करते हैं, कि वे अपनी लड़की के विचार जान कर ही इस प्रस्ताव की स्वीकृति देंगे।" (वही, पृ. 26)। त्युत्सा जनजाति में विवाह की विधि में कोई जटिलता नहीं है- "शादी के दिन लड़के के माँ-बाप गोरु, सूअर और मुर्गे की बलि चढ़ा कर उनका मांस पकाते हैं और लड़की के माँ-बाप तथा अन्य सगे संबंधियों को आमंत्रित करते हैं। लड़का और लड़की अगल-बगल बैठते हैं और एक ही पात्र में दोनों

एक साथ खाना खाते हैं। एक ही मांस के टुकड़े को एक बार लड़का फिर लड़की, एक दूसरे का जूठा खाते हैं। इस प्रकार उनकी शादी संपन्न हो जाती है।" (वही, 27)। विवाह के संदर्भ में एक अति महत्त्वपूर्ण तथ्य वीरेंद्र कुमार सिंह ने अपने लेख, 'शेरदुक्पेन जनजाति : संक्षिप्त परिचय' में प्रस्तुत किया है, जिसे भारत के समाज-सुधार आंदोलनों के अंतर्गत विवाह के साथ जुड़ी कुरीतियों के विरोध की दृष्टि से जान लेना उपयोगी होगा। वे कहते हैं, कि शेरदुक्पेन आदिवासी समुदाय में "एक विवाह का विधान सख़्ती से लागू है। बहुपति विवाह और बहुपत्नी विवाह मान्य नहीं है। किसी भी स्थिति में एक पुरुष एक ही समय में दो पत्नियाँ नहीं रख सकता है। विधवा-विवाह सामाजिक मान्यता प्राप्त है। समाज विधवा-विवाह को हेय नहीं समझता है।" (अंक- 9-12, पृ. 20)।

व्यक्ति की मृत्यु हो जाने पर आदिवासी समुदायों में पालन की जाने वाली परंपराओं का कई लेखों में उल्लेख प्राप्त होता है। 'दिरांग मोनपा' लेख में अरुण कुमार पांडेय ने अरुणाचल की 'मोङ्पा'(कुछ लेखकों ने मोंपा या मनपा भी लिखा है) जनजाति में मृत्यु के अवसर पर प्रचलित विधि-विधान का वर्णन किया है। वे कहते हैं- "ये लोग मरने के बाद लाश को लामा से पूछ कर या तो नदी में 108 टुकड़ा काट कर फेंक देते हैं या जला देते हैं। उस मरी हुई आत्मा की शांति के लिए कई दिनों तक कई चक्रों में पूजा करते हैं। मरने की तिथि से हर सातवें दिन लामा पूजा करता है। इस प्रकार 7 चक्रों में पूजा जाकर खत्म हो जाती है। मृत्यु संस्कार का प्रदोष 49 दिन तक रहता है। उसके बाद सभी लोग प्रदोष मुक्त होते हैं। मोनपा जब लाश को टुकड़ा करके फेंकता है, तब उस नदी की मछलियों को नहीं खाता। मोनपा लाश को टुकड़ा करके नदी के जानवरों को दान रूप में सौंपता है। मोनपा के अनुसार दान की गई वस्तु फिर ग्राह्य नहीं होती।" (अंक- 9-12, पृ. 28)। इसी जनजाति की मृत्यु संबंधी परंपरा को केंद्र में रख कर प्रसिद्ध लेखक, येसे दरजे थोङ्छी ने असमीया भाषा में, 'शव कटा मानुह' उपन्यास लिखा है, जिसका दिनकर कुमार ने 'शव काटने वाला आदमी' शीर्षक से हिंदी में अनुवाद किया है।

अरुण नागरी के विभिन्न अंकों में 'आदी (मिन्योङ) त्योहार' (भारती वर्मा, अंक-3), 'मिन्योङ् जन का पर्व- उनिङ' (मनहंस कुमार 'नील', अंक-6), 'आत्मिक शुद्धता का पर्व 'दिरी'' (त्रिभुवन लाल श्रीवास्तव, अंक-6), 'रेह-पूजा से जुड़े इदू-मिश्मी' (कृष्णेश्वर शर्मा, अंक-9-12) आदि लेख प्रकाशित हुए, जिनमें अरुणाचल के अनेक आदिवासी समुदायों के न्युकुम, सिरोम मोलो सोचुम,सोलुङ्, आरान्, एतोर, दोरुङ्, रेह आदि पर्व-त्योहारों की जानकारी प्रस्तुत की गई। इसके अतिरिक्त 'शेरदुक्पेन जनजाति : संक्षिप्त परिचय' (वीरेंद्र कुमार सिंह, अंक-9-12) में लोसर और छेकर त्योहारों का परिचय भी प्राप्त होता है। इनके बारे में दिए गए विवरण से पता चलता है, कि ये मुख्यत: कृषि-पर्व हैं या देवताओं को प्रसन्न करने वाले पर्व-त्योहार हैं। उदाहरण के लिए "न्युकुम या न्योकुम : न्युक = संपूर्ण पृथ्वी + उम = एक स्थान पर एकत्र करना। पृथ्वी के समस्त देवताओं का एक स्थान पर आह्वान करके उत्सव मनाना। इसमें मुख्य पुजारी शुभ आत्माओं और सहायक पुजारी दुष्ट आत्माओं की पूजा करता है। पूजा के साथ नृत्य भी किया जाता है" और "सिरोम मोलो सोचुम : कृषि-पर्व है। सभी एक-दूसरे को फसल अच्छी होने की शुभकामना देते हैं। ग्रामवासी एक स्थान पर एकत्र होते हैं। गायक निशि समुदाय का इतिहास गा कर सुनाता है। कृषि की देवी को प्रसन्न किया जाता है।" (भारती वर्मा)। आपातानी त्योहार 'दिरी' के विषय में एक किंवदंती प्रचलित है- "प्राचीन काल में एक समय की बात है कि अच्छी और स्वस्थ धान की फसलें एकाएक सूखने लगीं और बाद में पता चला कि उन्हें कीड़े-मकोड़े खा रहे

हैं।... अगले वर्ष भी इसी कारण फसलों का यह नुकसान पूर्ववत रहा। उसके बाद खेती के सलाहकारों 'अबा-लिबो' और 'आने-डोनी' ने 'अबुतानी' को सलाह दी कि इन कीड़े-मकोड़ों को मारने के लिए 'दिरी' का आयोजन किया जाए। 'अबूतानी' ने पुजारी की नियुक्ति की, जिन्होंने 'दिरी-पारो-यारी-अम्की' से प्रार्थना की, कि वे सारे कीड़े-मकोड़े को चट कर जाएँ और फसलों की रक्षा करें।" (त्रिभुवन लाल श्रीवास्तव)। इसी प्रकार इदु-मिश्मी आदिवासी समुदाय के 'रेह' नामक त्योहार के बारे में भी कई किंवदंतियाँ प्रचलित हैं, जिनमें से एक में कहा गया है, कि "पृथ्वी खाली थी। पेड़-पौधा नहीं था। एक अदमा (नारी) को सूर्य भगवान की शक्ति प्राप्त हुई। वह पहाड़ पर चढ़ रही थी। चढ़ने के समय हवा के कारण साड़ी खुल गई। वह गर्भवती हुई। हवा ने कहा कि तुम्हें यहीं बच्चा छोड़ कर जाना पड़ेगा। लड़का हुआ। इसी भाँति एक के बाद एक कई बच्चे हुए। बच्चे अपने खाने-पीने का सामान परिश्रम से जुटाने लगे। पुन: सूर्य भगवान ने एक लड़की दी और कहा, कि खेती करनी होगी। अब सृष्टि का विधिवत संचालन होने लगा। धीरे-धीरे काफी अर्से बाद आदमी में छल, प्रपंच, बेईमानी, चोरी जैसे कुकृत्य आने लगे। पापाधिक्य के परिणामस्वरूप पृथ्वी पानी से भर गई। लोगों ने सूर्य भगवान से बड़ी विनती की। फलस्वरूप पानी कम हुआ। पुन: खेती शुरु हुई।" (कृष्णेश्वर शर्मा)। यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि लेखक ने अपने लेख में यह किंवदंती एक गाँव के अति वृद्ध सज्जन से सुन कर लिखने का दावा किया है, किंतु स्त्री के अधोवस्त्र के रूप में साड़ी का उल्लेख किया है, जो अरुणाचल के आदिवासी समुदायों के परिधान के संदर्भ में स्वाभाविक प्रतीत नहीं होता। संभव है, आदिवासी वृद्ध ने जिस शब्द का प्रयोग किया हो, उसे लेखक ने न समझा हो और अपने मन से साड़ी लिख दिया हो। इस संभावित दोष को छोड़ दिया जाए, तो यह किंवदंती त्योहार की प्रकृति को समझने में हमारी सहायता करती है। अरुण नागरी के अंक 13-14 में 'लोक नृत्य' (वीरेंद्र कुमार सिंह) शीर्षक लेख का प्रकाशन हुआ, जिसके सात पृष्ठों की सामग्री में से ढाई पृष्ठ लोक-नृत्य और उनके वर्गीकरण को दिए गए हैं, शेष साढ़े चार पृष्ठों में न्यिशी, तागिन, आपातानी, हिलमीरी, वांचू, नोक्ते, तांग्सा, सिंग्फो, आका, मीजी, खाम्ती और मिश्मी आदिवासी समुदायों के लोक नृत्यों के बारे में टिप्पणियाँ की गई हैं। समझना कठिन नहीं है, कि इसे पढ़ कर अरुणाचल के लोक नृत्यों का कोई स्पष्ट चित्र नहीं उभरता।

अरुणाचल प्रदेश में एक पौराणिक महत्त्व का स्थान है, 'मालिनीथान'। इसके साथ महाभारत काल की एक कथा जुड़ी हुई है। कहा जाता है, कि "श्रीकृष्ण की शादी राजा भीष्मक की पुत्री रुक्मिणी से हुई थी, शादी के बाद भीष्मक नगर से द्वारिका वापस जाते समय श्रीकृष्ण और रुक्मिणी ने इसी स्थान (मालिनीथान) पर आराम किया था। इस स्थान पर शंकर अपनी पत्नी पार्वती के साथ रहते थे। श्रीकृष्ण और रुक्मिणी जैसे विशिष्ट अतिथियों के स्वागतार्थ पार्वती ने सबसे सुंदर फूलों की माला स्वयं बनाई और इसे श्रीकृष्ण को पहनाया। इस माला के सौंदर्य से श्रीकृष्ण बहुत आकर्षित हुए और प्रशंसा तथा परिहास की मुद्रा में उन्होंने पार्वती को मालिन (मालिनी) कह कर संबोधित किया। तब से ही इस स्थान विशेष का नाम मालिनीथान (मालिनी स्थान) पड़ा।" यह उल्लेखनीय है, कि पौराणिक विश्वास के अनुसार कृष्ण ने रुक्मिणी का हरण किया था, जबकि इस कथा में केवल विवाह की बात कही गई है। मालिनीथान के निकट ही लीकाबाली नामक स्थान के पास एक अन्य पौराणिक स्थल, 'आकाशी गंगा' है। इसके बारे में कालिका पुराण में एक कथा आती है। उस कथा के अनुसार "सती (पार्वती) के मृत शरीर को अपने कंधों पर लेकर शंकर भगवान पागल की अवस्था में घूम रहे थे और भगवान विष्णु अपने सुदर्शन चक्र से सती के विभिन्न अंगों को काट कर गिराते जा रहे थे। इसी क्रम में सती

(पार्वती) का सिर 'आकाशी गंगा' के आस-पास कहीं गिरा। 'आकाशी गंगा' उस जल प्रपात का व्यंजक है, जो खड़े पहाड़ से सीधे नीचे गिरता है।..... मालिनी थान आने वाले तीर्थयात्री आकाशी गंगा में पवित्र स्नान करने जाते हैं।" ये दोनों पौराणिक कथाएँ धर्मराज सिंह के 'मालिनी थान : एक दृष्टि' शीर्षक लेख में वर्णित हैं, जो अरुण नागरी के छठे अंक (पृ. 20-22) में प्रकाशित हुआ। इस लेख का अति महत्त्वपूर्ण भाग मालिनीथान के बारे दी गई पुरातात्विक जानकारी से संबंधित है। लेखक ने उल्लेख किया है, कि 'बीसवीं शताब्दी के शुरू में ही कभी पासीघाट के सहायक पॉलिटिकल ऑफिसर डब्ल्यू. एच. कलबर्ट ने मालिनीथान की स्थिति का पता लगाने की योजना पर कार्य किया था। इसके बाद सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य 1965-66 में अरुणाचल (तत्कालीन नेफा) के शोध-विभाग के उप-निदेशक, एल. एन. चक्रवर्ती ने किया। उन्होंने मालिनीथान में खुदाई करवाई, जिसमें हिंदू देवी-देवताओं, नृत्यरत अप्सराओं तथा पशु-पक्षियों की मूर्तियाँ निकलीं। सन् 1971 में यहीं एक टीले की खुदाई करवाई गई। बारह मार्च से 14 जून तक चली इस खुदाई में गणेश का मंदिर, एरावत पर इंद्र, मयूर पर कार्तिकेय, वीणाधारण किए सरस्वती, दुर्गा, नांदी और मंदिर के चार कोनों पर हाथियों पर सिंह आदि की मूर्तियाँ प्राप्त हुईं।' इस पुरातात्विक जानकारी के बाद भी, शिलालेख आदि प्रमाणों के अभाव में लेखक इस प्रश्न के विवेचन से दूर ही रहता है, कि ये मंदिर और मूर्तियाँ किसने निर्मित करवाई होंगी तथा इनका संबंध वास्तव में किस काल से है? फिर भी वह यह निष्कर्ष अवश्य देता है कि, "भारत की विभिन्न संस्कृतियों का मेल यहाँ हुआ है। भारत के विभिन्न राज्यों के लोग यहाँ समय-समय पर आते रहे हैं और उनके साथ यहाँ के लोगों (अरुणाचल प्रदेश के निवासियों) का संबंध रहा है।...यह क्षेत्र बहुत पहले हिंदू धर्मावलंबियों की कला तथा संस्कृति के प्रभाव से प्रभावित था।"(अंक-6, पृ. 22)। इस राज्य में परशुराम कुंड भी है, जहाँ प्रति वर्ष मेला लगता है और भक्त-जन बड़ी संख्या में एकत्र होकर कुंड में स्नान करते हैं। इनके अतिरिक्त भी इस अंचल में अनेक पौराणिक स्थल हैं, जो पुरातत्व के साथ ही भारत के सांस्कृतिक परिदृश्य के विविध पक्षों को समझने की दृष्टि से गंभीर शोध की प्रतीक्षा में हैं।

अरुण नागरी ने उस अंचल के आदिवासी समुदायों में प्रचलित मंत्रों, प्रार्थनाओं तथा लोक-समाज द्वारा व्यवहार में लाई जाने वाली लोकोक्तियों को भी उनका हिंदी में भावार्थ सहित प्रकाशित किया। 'अरुणाचली मंत्र और प्रार्थना' शीर्षक लेख (अंक- 9-12) में योगेंद्र पाल कोहली द्वारा संकलित एक न्यिशी प्रार्थना-मंत्र इस प्रकार है- "तुंगुम बो बुगे/हुमको लो/तुंगुंग देर हिइरदो/ यापिंग बुगे, हमको ली। (हम ईश्वर 'तुंगुम बो' की पूजा करते हैं, जब हम एक साथ बैठकर खाना खाते हैं। हम उससे प्रार्थना करते हैं कि वह हम पर प्रसन्न हो।)..... दोन्यी बो कापा दो/सी बो तापा दो। (माता दोन्यी सदा हमारी गतिविधियों को देखती हैं, अत: सत्य मार्ग पर चलना चाहिए।)" (पृ. 46)। इसी प्रकार पादाम मिन्याङ् आदिवासी समुदाय में प्रचलित समृद्धि की देवी की प्रार्थना का एक मंत्र इस प्रकार है-"सिकिंग इगोगे नाने नोक/टिलिंग एसिगे पासुन नापे/आन्यी अमने नागक नामेम/आन्यी ओबोइ दुइपोर बिदुंग/ नोम आन्यी नुलुंगे तुउसी डाक्कु/आन्यी सुल बुंगेम तेनंग मोलेग का। (हमारी माता हमारे भोजन संबंधी अभाव को दूर करें। आपने ही भोजन की कमी दूर करने के लिए 'बीज' भेजा। आज बीज बोए गए हैं, खेतों में ये खूब उगें, फलें, फूलें, हम सब आपकी प्रार्थना करते हैं।)" (पृ. 47)। रमण शांडिल्य का 'गालो लोकोक्तियाँ' शीर्षक लेख अरुण नागरी के दूसरे अंक में ही प्रकाशित हुआ, जिसमें उन्होंने गालो आदिवासी समुदाय की पच्चीस लोकोक्तियाँ उनके भावार्थ सहित प्रस्तुत की हैं। उनमें से चुनी गई कुछ

लोकोक्तियाँ इस प्रकार हैं- "न्यिलो मेंकिना कारा मेम्वि हिला/हिपिक नुजिना हिरा नुबिहिला। (सुवक्ता किसी बात को अपने पक्ष में उसी प्रकार खींचता है, जैसे तीव्र जल-धारा अपनी दिशा में बहती है।), इसी बिस्सोम कापो/आगोम में असोम ताप्पो। (जल-धारा जिस प्रकार देखने में अच्छी होती है, ठीक उसी प्रकार कोई अच्छी बात सुनने में।), योरलो पोब्लो हिरिबिन्ना/देक मार-मो-लो पुआरता ना। (जिस प्रकार समस्त भूमि के बीच पहाड़ होता है, उसी प्रकार निष्पक्ष होकर रहना अच्छा है।), बुसे दोरोना ताको युब्बुला/तासाक दोरोना ताक्क-कायोला। (अकेला व्यक्ति सदा शक्तिहीन होता है।), तासी नोन्यि होवो, पामा/तायेन तिता येगरो मेम्मा। (बाहरी दिखावे से कोई बड़ा नहीं होता, जिस प्रकार पहनने से कुछ नहीं होता, जबकि एक मिथुन नहीं मार सकता।)" (पृ. 18, 19, 20)।

अरुण नागरी के प्रकाशन के मूल में एक रोमांचक-संयोग है। लेखक-राजनीतिज्ञ, माता प्रसाद जी ने 21 अक्तूबर, 1993 को अरुणाचल प्रदेश के राज्यपाल का पदभार ग्रहण किया, तो वे तात्कालीन राष्ट्रपति, माननीय शंकरदयाल शर्मा की प्रेरणा से उस प्रदेश का परिचय देने वाली एक पुस्तक लिखने के उत्साह से भरे थे। उन्होंने पाया, कि वहाँ के मूल छब्बीस आदिवासी समुदायों के लोग हिंदी को पारस्परिक संपर्क-माध्यम के रूप में व्यवहार में लाते हैं, किंतु उनकी लिपि-विहीन भाषाओं (केवल खामती और मोनपा भाषाओं की अपनी लिपियाँ हैं) को अधिकतम वैज्ञानिक देवनागरी लिपि में न लिखा जाकर, कभी स्वयं अंग्रेज़ी के लिए भी अपर्याप्त मानी जाने वाली रोमन लिपि में लिखे जाने की गंभीर कोशिशें हो रही हैं, जिससे उनकी ध्वनि-व्यवस्था को भारी नुकसान पहुँच रहा है। उधर विशाल हिंदी-जगत न केवल इस त्रासदी से आँखें मूंदे हुए है, बल्कि भाषाई और सांस्कृतिक वैविध्य के उस अद्भुत अंचल से प्राय: अनजान भी है। उन्होंने इसके एक बड़े कारण का उल्लेख करते हुए लिखा-"अरुणाचल प्रदेश के राजभवन पुस्तकालय में अंग्रेज़ी में विभिन्न विषयों की पुस्तकें हैं। अरुणाचल प्रदेश की स्थिति, यहाँ की जनजातियों, उनके उत्सवों-त्योहारों पर भी बहुत-सी पुस्तकें अंग्रेज़ी में उपलब्ध हैं। यहाँ तक कि प्रत्येक जनजाति और उनके धार्मिक रीति-रिवाजों पर अलग-अलग पुस्तकें यहाँ पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं। परंतु हिंदी में ऐसी कोई पुस्तक नहीं मिली।" ('मनोरम भूमि अरुणाचल' (1995), पृ. 8)। उस समय तक 'अरुणाचल प्रदेश की जनजातियों के त्योहार' (वी. पी. पांडेय, 1978), 'अरुणाचल का खामती समाज और साहित्य' (भिक्षु कौण्डिन्य, 1982),'मिसिङ् जनजाति' (भिक्षु कौण्डिन्य),'अरुणाचल की आदी जनजाति का समाजभाषिकी अध्ययन' (धर्मराज सिंह, 1990), आदि पुस्तकें प्रकाशित हुई थीं, हिंदी साहित्य कोश (सं. धीरेंद्र वर्मा), 'हिंदी पत्रकारिता : विविध आयाम' (सं वेदप्रताप वैदिक) 'पूर्वांचल की ओर' (मधुकर दिघे) आदि में इस प्रदेश के बारे में संक्षिप्त जानकारी दी गई थी और रमण शांडिल्य के कुछ लेख सरस्वती (इलाहाबाद), परिषद पत्रिका (पटना), राष्ट्रभाषा संदेश (इलाहाबाद), धर्मयुग (मुंबई) आदि में प्रकाशित हुए थे। उन्होंने सत्तर के दशक में 'साङ्पो' नामक एक पत्रिका का प्रकाशन भी किया था, जिसके नौ अंकों में अरुणाचल के आदिवासी जन-जीवन पर केंद्रित लेख प्रकाशित किए गए थे। लेकिन यह सामग्री इतनी कम थी, और धर्मयुग को छोड़ कर कहा जाए, तो इसकी पहुँच इतनी सीमित थी, कि इससे हिंदी-क्षेत्रों के विशाल समाज में अरुणाचल के बारे में अपेक्षित जागरूकता विकसित नहीं हो सकी। दूसरी ओर अंग्रेज़ी में इस प्रदेश के आदिवासी समुदायों और उनकी भाषाओं पर केंद्रित पुस्तकों की सूची बहुत बड़ी है और उस भाषा में प्रकाशन का इतिहास भी हिंदी से बहुत पहले प्रारंभ हो गया था। इसके अलावा, उपनिवेशवादी पृष्ठभूमि का बल अंग्रेज़ी के पक्ष में होने के साथ

ही बड़ी संख्या में भारतीयों की उपनिवेशवाद से बुरी तरह प्रभावित मानसिकता के चलते पाठकों के हाथों और राज्य-सत्ता के गलियारों में अंग्रेज़ी पुस्तकों तथा पत्र-पत्रिकाओं की पहुँच और प्रभाव का अनुमान करना कठिन नहीं है। अरुणाचल के संदर्भ में हिंदी भाषा के समक्ष यह अति गंभीर चुनौती थी (इसमें प्रवासी और स्थानीय हिंदी लेखकों की सक्रियता बढ़ने के साथ धीरे-धीरे कमी आ रही है), जिसने माता प्रसाद जी के हृदय को पीड़ा पहुँचाई। उन्होंने अरुणाचल के बारे में स्वयं हिंदी में लिखने के साथ ही यह खोज भी की, कि वहाँ दूसरे कौन लोग साहित्य, संस्कृति और भाषाओं पर लिख रहे हैं। फलस्वरूप रमण शांडिल्य को एक दिन राजभवन से बुलावा आया। काफी देर चले विचार-विमर्श में माता प्रसाद जी ने उनसे अरुणाचल की भाषाओं की स्थिति को समझा और उन्हें देवनागरी में लिखे जाने के भाषावैज्ञानिक औचित्य पर भी बात की। इसके बाद रमण शांडिल्य से पूछा, 'आप इस बारे में क्या कर सकते हैं? हमने कहा, कर क्या सकते हैं, मैं एक पत्रिका निकालता हूँ, उसके माध्यम से देवनागरी के बारे में समझाया जाएगा और अरुणाचली साहित्य को उसमें लिख कर दिखाया भी जाएगा। तब रोमन और देवनागरी की क्षमताओं की तुलना भी हो जाएगी, दूध का दूध, पानी का पानी हो जाएगा। माता प्रसाद जी ने कहा पत्रिका का क्या नाम होगा? हमने कहा, 'अरुण नागरी'। उन्हें पसंद आया, बोले, अब एक संस्था भी बना लें, ताकि पत्रिका के लिए संसाधन जुट सकें और वह चलती रहे। इस तरह एक संस्था की बात हुई, नाम रखा गया, 'अरुण नागरी संस्थान, ईटानगर'। धर्मराज सिंह शासकीय महाविद्यालय में थे, माता प्रसाद जी के सुझाव पर उन्हें अरुण नागरी का प्रधान संपादक बनाया गया, मैं संपादक बना।' (18 अगस्त, 2020 को लेखक की रमण शांडिल्य से फोन पर हुई वार्ता का अंश)।

अरुण नागरी संस्थान, ईटानगर की स्थापना 22 अगस्त, 1994 को हुई और उसकी मुख पत्रिका, 'अरुण नागरी' का प्रवेशांक 1995 (जनवरी-मार्च) में पाठकों के हाथों में आ गया। इस पत्रिका की जीवन-यात्रा साढ़े तीन साल (जनवरी, 1995 – जून, 1998) की रही और केवल चौदह अंक प्रकाशित हुए, जिनमें से पहले छ: स्वतंत्र अंक हैं और बाद के आठ संयुक्तांक (7-8, 9-12, 13-14)। इतनी छोटी-सी जीवनावधि और इतने कम अंकों के बल पर ही अरुण नागरी ने अरुणाचल के जन-जीवन, आदिवासी भाषाओं और संस्कृति को न केवल हिंदी-जगत के समक्ष प्रस्तुत किया, बल्कि देश-भाषाओं के संवर्धन, संरक्षण और उन पर केंद्रित भाषावैज्ञानिक शोध का आधार भी निर्मित किया।

थोड़ी-सी चर्चा अरुण नागरी की समस्याओं की भी, ताकि हिंदीतर भाषी क्षेत्रों से प्रकाशित होने वाली लघु पत्रिकाओं से नाभिनालबद्ध कटु यथार्थ का संकेत मिल सके। अरुण नागरी के पास आदिवासी समुदायों के निकट रहते हुए अपने अनुभव और स्थानीय स्रोतों से जानकारियाँ जुटा कर तथा आवश्यकता होने पर अंग्रेज़ी पुस्तकों से सहायता लेकर हिंदी में लिखने वाले लेखकों की एक छोटी-सी टीम तो थी, लेकिन धन का अभाव था। यद्यपि पत्रिका की वार्षिक सदस्यता 25 रुपए रखी गई थी, जिसे बाद में 50 रुपए कर दिया गया, इसके विभिन्न अंकों में आजीवन सदस्यों के काफी नाम मिलते हैं और संरक्षक के रूप में भी 5 नाम हैं। एक अंक (9-12) में आजीवन सदस्यता के लिए 250 रुपए और संरक्षक के लिए 5,000 रुपए या इससे अधिक की घोषणा भी दिखाई देती है। लेकिन संपादक, कार्यकारिणी के एक समय के महासचिव तथा कई सदस्यों से जानकारी करने पर वे सभी स्पष्ट कहते हैं, कि यह राशि कभी प्राप्त नहीं हुई। अरुण नागरी की टीम संपर्क अवश्य करती थी और जो भी सौ-पचास या उससे भी कम दे देता था, उसका नाम छाप देती थी। टीम के एक सदस्य के अनुसार

कोई-कोई इन लोगों की बात ध्यान से सुनता था, चाय पिलाता था और अंत में हाथ जोड़ कर खाली हाथ विदा कर देता था। इसलिए ये लोग अधिकतर आपस में ही पैसा जमा करके अंक प्रकाशित करते रहे। यह अवश्य है, कि माता प्रसाद जी ने इस बात का बराबर ध्यान रखा कि अरुण नागरी का प्रकाशन बंद न हो जाए और समय-समय पर अपनी व्यक्तिगत आय में से आर्थिक सहायता करते रहे। इससे अरुण नागरी टीम का मनोबल बना रहा। इस पत्रिका के प्रकाशन में उदिता ऑफसेट, गुवाहाटी के स्वामी, विनोद रिंगानिया के सहयोग की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। अरुण नागरी को स्थानीय व्यापारियों के कुछ विज्ञापन भी मिले, किंतु उनकी कहानी भी वार्षिक या आजीवन सदस्यों से भिन्न नहीं है। फिर भी नाहरलागुन स्थित 'साङ चाय उद्योग' की प्रबंध निदेशक, श्रीमती याने दाई को अवश्य याद रखा जाना चाहिए, जिन्होंने अरुण नागरी के प्रवेशांक में अरुणाचल की उर्वरा भूमि में उत्पन्न होने वाली 'साङ चाय' का एकमात्र विज्ञापन दिया था।

*(**लेखकीय परिचय:** देवराज का मणिपुरी भाषा, साहित्य एवं संस्कृति के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। वह एक गंभीर साहित्य-चिंतक, भाषाविद् एवं आलोचक हैं। देवराज की मणिपुर पर केंद्रित कई महत्त्वपूर्ण पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।*
मोबा. 7599045113, ईमेल : dr4devraj@gmail.com)

अरुणाचल प्रदेश में हिंदी के अभिभावक अध्यापक रमण शाण्डिल्य

राजीव रंजन प्रसाद

आजादी के बाद के दिन थे- 'साठ के दशक'। डॉ. रमण शाण्डिल्य अरुणाचल प्रदेश में अध्यापक की नियुक्ति पाए तो यहाँ की संपर्क भाषा असमीया थी। मातृभाषा बोलते यहाँ के आदिवासी पहाड़, नदी, घाटी एवं जंगल के बीच रह रहे थे। प्रकृति उनकी लोक-आस्था एवं लोक-विश्वास की वास्तविक सत्ता और सर्जक थी। अरुणाचलवासी बाहरी दुनिया से जुड़ने के लिए असमीया और अंग्रेजी को दूसरी और तीसरी भाषा के रूप में बरत रहे थे। उन दिनों शिक्षा का प्रचार-प्रसार बहुत अधिक नहीं था, लेकिन शैक्षणिक वातावरण की नई धारा और धुरी बननी शुरू हो गई थी। डॉ. रमण शाण्डिल्य हिंदी भाषा के प्रस्तावक और उन्नायक के रूप में यहाँ आए। वह यहाँ के लोगों से हिंदी में संवादी ही नहीं हुए, बल्कि लिखने-पढ़ने की परंपरा में नई पीढ़ी को जोड़ते हुए भी दिखाई दिए।

हिंदी भाषा एवं नागरी लिपि की समिधा में लवलीन हिंदी सेवी डॉ. शाण्डिल्य ने अपनी आँखे सदा के लिए मूँद ली थी। उन्होंने अंतिम सांस अपनी जन्मभूमि पर ली। मूलतः बिहार के रहने वाले रमण शाण्डिल्य पूर्वोत्तर के लिए सुपरिचित विद्वान रहे हैं। वह उत्तर-पूर्व की अटूट कड़ी रहे हैं। हिंदी भाषा के साधक डॉ. रमण शाण्डिल्य ने अपने तईं जो और जैसा भाषाई वातावरण सिरजा, वह मौजूदा अरुणाचल प्रदेश के लिए बड़ी उपलब्धि के रूप में दर्ज है। उनका संपादक व्यक्तित्व विराट था। वह भाषा के गहन एवं गंभीर पुरस्कर्ता रहे हैं। अरुणाचल प्रदेश से प्रकाशित 'साङपो' और 'अरुण नागरी' पत्रिका उनके ही संपादन में निकली तथा अरुणाचल प्रदेश में हिंदी भाषा की नींव मजबूत की। वह राष्ट्रीय स्तर पर अरुणाचली भाषाओं और यहाँ के आदिवासी समुदाय के बारे में अलख जगाते रहे। अरुणाचली समाज-संस्कृति, मूल्य-दर्शन, भाषा-बोली, इतिहास व समकालीन स्थितियों के विषय में उन्होंने श्रमसाध्य ढंग से लगातार संवेदनशील होकर लिखने का महती कार्य किया। वर्ष 2019 में राजीव गाँधी विश्वविद्यालय एवं हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के तत्त्वावधान में आयोजित राष्ट्रीय सम्मेलन में डॉ. शाण्डिल्य को 'वाचस्पति सम्मान' से विभूषित किया गया, तो यह क्षण कभी न भूलने वाला था। इसी मौके पर रमण शाण्डिल्य की उपस्थिति में देरा नातुङ शासकीय महाविद्यालय के हिंदी विभाग ने 'अरुणाचल प्रदेश में हिंदी: अतीत से वर्तमान तक' विषयक व्याख्यान आयोजित हुआ जो अकादमिक अभिनंदन की तरह लगा। अरुणाचल प्रदेश की नई पीढ़ी रमण शाण्डिल्य को कम जानती है, लेकिन पुरानी पीढ़ी का उनसे जुड़ाव अद्भुत था। अरुणाचल प्रदेश के पहले हिंदी लेखक जुमसी सिराम उन्हें अपना गुरु मानते थे। जोराम आनिया ताना, जमुना बीनी, जोराम यालाम, तुम्बम रीबा की रचनाशील पीढ़ी उनके प्रति आज भी विशेष आदर का भाव रखती है।

अरुणाचल प्रदेश में प्रकृति की बहुलता मात्र नहीं है, बल्कि यहाँ इसके अनूठेपन में जो सादगी और सचाई है, रमण शाण्डिल्य उसे पूरी निष्ठा के साथ सार्वजनिन करते मालूम देते हैं। डॉ. शाण्डिल्य जनजातीय समाज में जिन मूल्यों की प्रतिष्ठा करते हैं, वे रही हैं-भाषा-बोध, स्मृति, अनुभव, दृष्टिकोण, प्रेम, सेवा, त्याग,

बलिदान, सहिष्णुता, सह-अस्तित्व, सामूहिकता, भावनात्मक जुड़ाव, आत्मिक निष्ठा, लौकिक सत्य, आदिवासी चेतना, मानुष गंध, सहजानुभूति इत्यादि। अरुणाचल प्रदेश भारतीय संघ राज्य का एक ऐसा भूभाग है, जिसके सामाजिक-सांस्कृतिक लोकवृत्त को लेकर एक अजनबीयत आज भी पूरे देश में तारी है। लोग भूगोल में भटकने के कारण कई बार अरुणाचल प्रदेश और हिमाचल प्रदेश में अंतर करना भूल जाते हैं। यह भारतीय-जन की जानकारी की सीमाएँ हैं, लेकिन जब आप जानने की कोशिश करें, तो यहाँ से प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं के पुराने अंक बेहद मददगार साबित होते हैं। 'अरुण नागरी' इन्हीं में से एक प्रमुख पत्रिका है, जिसका संपादन रमण शाण्डिल्य के हाथों हुआ है। उत्तर प्रदेश हिंदी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष रहे बाबू वृंदावन दास 'ब्रज भारती' पत्रिका में रमण शाण्डिल्य के योगदान तथा सांगपो पत्रिका के महत्त्व का स्मरण करते दिखते हैं। इसी तरह संपूर्ण भारतीय लोक एवं वाङमय को केंद्रित कर वरिष्ठ पत्रकार मुनीन्द्र 'दक्षिण समाचार' नाम से साप्ताहिक पत्र निकालते थे। इस पत्रिका में 'अरुण नागरी' के आरंभिक अंकों की समीक्षा देखने को मिलती है। 'अरुण नागरी' को मिली राष्ट्रव्यापी लिखित प्रतिक्रियाएँ इस पत्रिका की पहुँच और उपलब्धि को स्वतः उजागर कर देती हैं। यह पत्रिका देश के विविध क्षेत्रों प्रयागराज, वाराणसी, पटना, उज्जैन, नई दिल्ली, जयपुर, हापुड़, अहमदाबाद, बम्बई, मद्रास, बालाघाट, मथुरा, सीतामढ़ी, देवघर, दुमका आदि में पढ़ी और सराही गई, जिनके प्रेषित पत्रों को डॉ. रमण ने आदरपूर्वक इस पत्रिका में छापा। देहरादून से मिली बाबूराम वर्मा की प्रतिक्रिया का कुछ अंश द्रष्टव्य है- "अरुण नागरी के सफलतापूर्वक प्रस्तुत करने पर कोटिशः बधाइयाँ। पत्रिका छोटी ही सही, परंतु बहुत अच्छी तरह संपादित की हुई है और प्रस्तुतीकरण अज्ञेय की याद दिलाता है। 'आन्तर भारती' तो बहुत ही आकर्षक स्तंभ आपने रखा है। हिंदी और अरुणाचल भाषाओं को परस्पर निकट लाने का, समझने-समझाने का अन्यतम आयोजन है यह।"

अरुणाचल प्रदेश के पूर्व राज्यपाल और साहित्यमना व्यक्तित्व के धनी श्री माता प्रसाद जी के शुभाकांक्षाओं ने उन्हें 'अरुण नागरी' पत्रिका निकालने के लिए न सिर्फ प्रेरित किया, बल्कि वे इस उद्देश्य में सफल भी हुए। एक चितेरा अध्यापक क्या कर सकता है, इसके मिसाल हैं- रमण शाण्डिल्य। रमण शाण्डिल्य बतौर शिक्षक अरुणाचल प्रदेश में पदस्थापित हुए। अरुणाचल प्रदेश के सुदूर इलाके पेसिङ परिक्षेत्र में रहवास के बावजूद उनकी सक्रियता और कार्यकलाप आज भी स्तुत्य है। रमण शाण्डिल्य ने इस प्रदेश के हित-लाभ में ज़मीनी काम किया, हिंदी भाषा की पौध को सींचा और लेखन के बिरवे को पकने का औजार उपलब्ध कराए। सांस्कृतिक-साहित्यिक परास को चौरस करते हुए इस प्रदेश में संपर्क भाषा हिंदी को हिंदी भाषा शिक्षण के दरवाजे तक पहुँचाने में सफल सिद्ध हुए। उनके प्रयास का ही प्रतिफल रहा कि अरुणाचल प्रदेश पर केंद्रित उनकी पुस्तकें पटना यूनिवर्सिटी और बिहार विश्वविद्यालय में बतौर पाठ्यक्रम लगीं। डॉ. रमण शाण्डिल्य की अब तक 125 संपादित और प्रकाशित रचनाएँ हैं, तो 24 पुस्तकें उनके सृजनधर्मिता के विपुल संसार को इंगित करती हैं। सीतामढ़ी से प्रकाशित 'नई सुबह' पत्रिका में रमण शाण्डिल्य जी पर केंद्रित अंक एक बड़ी उपलब्धि है, जिसे डॉ. दशरथ प्रजापति के संपादन में उचित आकार मिल सका। डॉ. रमण शाण्डिल्य के व्यक्तित्व और

रचना-कर्म को लेकर कालीचरण झा का साक्षात्कार भी पठनीय हैं, जो उनके योगदान का गरिमावंदन करता दिखाई देता है।

अरुणाचल प्रदेश में हिंदी आचार्यत्व की भूमिका में रमण शाण्डिल्य के काम की जितनी भी सराहना की जाए, कम है। लेकिन इस सचाई से बहुत कम लोग भिज्ञ होंगे कि एक समय अरुणाचल प्रदेश में हिंदी में हस्ताक्षर के कारण उनकी तनख़्वाह रोक दी गई थी। तथापि आत्मसंघर्ष की चेतस गरिमा से संपन्न डॉ. रमण ने कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा। वह भी तब जब पत्रकारिता में अरुणाचल प्रदेश की चर्चा बेमानी थी। इनर लाइन जैसे विशेष प्रावधान के कारण यहाँ के बारे में बहुत कुछ खुलकर कह-सुन सकना भी संभव नहीं था। इन सब चुनौतियों के बीच डॉ. रमण शाण्डिल्य ने अपने लेखन की धार को कुंद होने नहीं दिया, वे 'सरस्वती' पत्रिका में छद्म नाम से अरुणाचल प्रदेश को लेकर नियमित लेख लिखते रहे थे। उन्होंने लिखने-पढ़ने की ऐसी दुनिया गढ़ी, जिसकी पूर्व कोई शिरोरेखा नहीं मौजूद दिखाई देती है। अरुणाचल प्रदेश की पहली हिंदी पत्रिका 'सांगपो' थी। 1970 में निकली इस पत्रिका के सूत्रधार रहे-डॉ. रमण शाण्डिल्य। यह चक्रलिखित रूप में प्रकाशित त्रैमासिक पत्रिका थी। इसके कुल 9 अंक प्रकाशित हुए। बाद के दिनों में 'पूर्व भारतीय जनपद' का भी संपादन किया था। 1995 में प्रकाशित 'अरुण नागरी' का प्रवेशांक रमण शाण्डिल्य की संपादन-दृष्टि की अविस्मरणीय मिसाल कही जाएगी, इन अंकों की राष्ट्रीय स्तर पर पहुँच और स्वागत उल्लेखनीय है। यह पत्रिका वरिष्ठ पत्रकार विनोद रिंगानिया जी के सहयोग से गुवाहाटी में छपती थी।

अरुणाचल प्रदेश में हिंदी भाषा के लिए जुझारु प्रयास और व्यक्तिगत संघर्ष करने वालों में रमण शाण्डिल्य की भूमिका प्रथमकर्ता की रही है। इस दिशा में उन्होंने देश के प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी से लेकर उनके सचिव कृष्ण चंद पंत से पत्राचार स्थापित किया था। उनका इस प्रदेश से टान इतना स्वाभाविक है कि वे अरुणाचल प्रदेश को 'उर्वर्शीयम' कहा करते थे जो नाम समाजवादी चिंतक राममनोहर लोहिया ने दिया था। यद्यपि वे 'उदयाद्रि' शब्द का व्यवहार भी इस प्रदेश के संबोधन में किया करते थे। रमण शाण्डिल्य मनीषी साहित्यकार वासुदेवशरण अग्रवाल को याद करते हैं, जिनके अनुसार कल्हण ने इस शब्द का प्रयोग इस पर्वतीय परिक्षेत्र के संदर्भ में बहुधा किया है।

रमण शाण्डिल्य मनीषी परंपरा के अनुभवी अध्येता ही नहीं, अपितु अरुणाचली जनसमाज के लिए प्रेरणास्रोत और हिंदी भाषा-शिक्षण के अगुवा हैं। रमण शाण्डिल्य द्वारा संपादित 'अरुण नागरी' के कुछ अंक मुझे मिले, तो लगा जैसे ऐसी महाकृतियाँ हाथ लगी हैं, जिसकी बदौलत अरुणाचल प्रदेश के बीते कल की यात्रा संभव हो सकेगी। रमण शाण्डिल्य जी के अवदान के बारे में राजीव गाँधी विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में प्रोफेसर श्याम शंकर सिंह अपनी किताब 'अरुणाचल प्रदेश में हिंदी: अध्ययन के नये आयाम' में लिखते हैं- उल्लेखनीय तौर पर 'अरुण नागरी' का प्रवेशांक (जनवरी-मार्च) 1995 ई. में प्रकाशित हुआ। इसका 7वाँ-8वाँ, 9वाँ-12वाँ और 13वाँ-14वाँ अंक संयुक्तांक रूप में प्रकाशित हुआ। इस पत्रिका के प्रधान संपादक धर्मराज सिंह थे। संपादन का दायित्व डॉ. रमण शाण्डिल्य पर था। दोनों का काम अवैतनिक था। पत्रिका के शुभकामना

संदेश में डॉ. नामवर सिंह ने लिखा था- "अरुणाचल प्रदेश में हिंदी में 'अरुण नागरी' नामक पत्रिका का प्रकाशन ऐतिहासिक घटना है।''

आज की तारीख में 25 छोटे-बड़े जिलों वाला यह प्रदेश पूर्व में कैसा रहा होगा, इसके लिए 'अरुण नागरी' एक मुकम्मल दस्तावेज़ की तरह है। 'अरुण नागरी' के दूसरे अंक की संपादकीय में रमण शाण्डिल्य की आत्मस्वीकृति गौरतलब है- "20 जनवरी, 1972 को यह उत्तर-पूर्व सीमांत अंचल (नेफा) 'अरुणाचल प्रदेश' नाम से एक केंद्रशासित प्रदेश बनाया गया। बाद में 20 फरवरी, 1987 को यही केंद्रशासित राज्य पूर्ण राज्य में परिवर्तित हो गया। वर्तमान अरुणाचल प्रदेश में 13 जिले हैं। यथा: तावाङ, पश्चिमी कामेङ, पूर्वी कामेङ, पापुमपारे, निम्न सुबनसिरी, ऊपरी सुबनसिरी, पश्चिमी सियाङ, पूर्वी सियाङ, दिबाङ घाटी, लोहित, चाङलाङ और तिराप। इन जिलों के मुख्यालय क्रमशः इस प्रकार हैं- तावाङ, बोम-दि-ला, सेप्पा, दोईमुख, जीरो, दापोरिजो, आलोङ, पासीघाट, इन्कियोङ, अनिनि, तेजू, चाङलाङ, खोन्सा। इनमें कुछ जिलों के नाम तो इंग्लिश (अंग्रेजी) में हैं जिनका मैंने हिंदी अनुवाद कर दिया है।''

प्रश्न है, किसी भी स्थान की ऐतिहासिकता पर कैसे गुमान किया जाए। इसके लिए लोक-साहित्य अथवा लोक-मिथक की शरण स्वाभाविक है। अरुणाचल प्रदेश में तो मिथकीय नामों से सुमेलित कई ऐसे स्थान हैं, जो सहज ही आपको कुछ सोचने पर विवश कर देंगे। महामना रमण शाण्डिल्य अरुणाचली भूगोल के कुछ जगहों का जिक्र 'अरुण नागरी' के इसी अंक में करते हैं। जैसे-भीष्मकनगर, मालिनीथान, परशुराम कुण्ड, विजयनगर, जयरामपुर, महादेवपुर आदि। ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य से जुड़ी बातों के संदर्भ में वह पूछने पर कुछ खास स्थानों को प्रकाश में लाते हैं। आलोंग से उत्तर-पश्चिम की दिशा में मणिगांग अंचल में स्थित एक पर्वत का जिक्र करते हुए वे कहते हैं कि यह पर्वत बिल्कुल शिवलिंग के आकार का है, जिसे स्थानीय तौर पर 'नामाङ शिबो' कहते हैं जो 'ओम नमो शिवाय' का अपभ्रंश रूप कहा जा सकता है। प्राक् साक्ष्य और लौकिक इतिहास इस बारे में अपनी वैज्ञानिक दृष्टि चाहे जो भी प्रकट करते हों, लेकिन डॉ. रमण शाण्डिल्य की पौराणिकता का बाना स्मरणीय अवश्य है।

ध्यातव्य है कि हिंदू मिथकों की यहाँ साम्यता मिलना इस बात की तसदीक है कि यहाँ के जनजातीय समाज की पुरखा-परंपरा हिंदू-आर्य-सनातन देशकाल की घोषणा से पूर्व की हैं। अर्थात् जिस धर्म को भारतीय धर्म का चोला-बाना पहनाने का राष्ट्रवादी उपक्रम जारी है, वह खुद आदिमजनों की इतिहास-संस्था से निकली और बाद के दिनों में विकसित हुई मालूम देती है। जबकि इस देश की असल सभ्यता की मुख्य धुरी आदिम समाज या कहें आदिवासी समाज ही है। देखें कि अरुणाचल प्रदेश के प्रकृतिजीवी आदिम जनजातियों ने मानव-मुक्ति केंद्रित आचरण तथा मूल्यविधान को सृष्टि के आरंभकाल से ही सर्वोपरि माना है। बौद्ध धर्म के फैलाव तथा इस जगह में रहवास के मिलते स्थापत्य इस बात की स्वमेव घोषणा करती हैं कि विश्वस्तरीय बौद्ध धर्म का अवगाहन करने वाला जनसमाज अरुणाचल प्रदेश में भी रहा है। इसके लिए बौद्ध मठ, भोटी भाषा के साहित्य तथा लामाओं की अपनी ज्ञानशाखाएँ मददगार साबित हो सकती हैं। यद्यपि हिंदी साहित्य के अध्येताओं से यह सब मालूम होने की अपेक्षा स्वाभाविक है, जिसका उल्लेख रामविलास शर्मा 'भारतीय इतिहास के साहित्य

की समस्याएँ' किताब में यथेष्ट ढंग से करते हैं। वह एक जगह लिखते हैं कि- "विष्णु पुराण के द्वितीय अंश के तीसरे अध्याय में भारतवर्ष का वर्णन है। जो देश समुद्र के उत्तर में है और हिमालय के दक्षिण में है, वह भारतवर्ष है, उसकी संतति का नाम भारती है। इस देश के पूर्वी भाग में किरात है, पश्चिमी भाग में यवन है। इसमें शतद्रु, चन्द्रभागा, गोदावरी, ताम्रपर्णी आदि नदियाँ बहती हैं। इस देश में कुरु, पांचाल, कोसल, कामरूप, पुण्ड्र, कलिंग, मगध, सौराष्ट्र आदि जन रहते हैं। ये सब लोग मिलकर रहते हैं और इस देश की नदियों का जल पीते हैं: आसा पिवन्ति सलिलं वसन्ति सहिताः सदा'। कवि के अनुसार ये सब लोग सहित भाव से निवास करते हैं अर्थात् मिलकर रहते हैं। यही राष्ट्रीय एकता का समर्थ आधार है।''

देखिए विडंबना कि अपनी आयातित धर्म-परंपरा का प्रचार करते आते लोग यहाँ के लोगों को जोड़ना बहुत चाहते हैं, लेकिन जुड़ना बिल्कुल नहीं। विडंबना यह भी कि यहाँ आए और सुविधानुसार भाग गए लोग अपनी हेकड़ी और दंभ में इस प्रदेश में अपने किए का कुहराम बहुत मचाते हैं; लेकिन उनकी निष्ठा, सेवाभाव और समर्पण डॉ. रमण शाण्डिल्य की तरह नहीं है जो ताउम्र यहीं का हो कर रह गए। अपनी शिष्य परंपरा का कोई दावा न करने वाले डॉ. रमण शाण्डिल्य का खुला व्यक्तित्व और खुला व्यवहार आपको अपनी मोहपाश में खींच लेता है। ऐसे मनीषी आचार्य के संपर्क, संवाद और सान्निध्य में बहुत कुछ सीखा-जाना जा सकता है, जो इस राज्य में रहवास करते हुए उन्होंने हासिल किया हुआ है। डॉ. रमण शाण्डिल्य राष्ट्रीय स्तर की पत्र-पत्रिकाओं में अरुणाचल प्रदेश के प्रतिनिधि चेहरे के तौर पर कई दशकों तक लेखन करते रहे हैं। वे कई बार छद्म नाम 'नीलकंठ', 'पूर्वमित्र', जानकी रमण यायावर' से लिखा करते थे, जो उन्हें अरुणाचल प्रदेश की स्थानीय समस्याओं, संदर्भों और सामाजिक-सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में उजागर करना जरूरी लगता था। उस समय की राष्ट्रीय तेवर और कलेवर की प्रमुख पत्रिकाएँ थीं -'कल्पना', 'जन', 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान', 'धर्मयुग', 'लोकराज' आदि। इस बारे में डॉ. रमण शाण्डिल्य 'कल्पना' पत्रिका के संपादन मण्डल से जुड़े जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी का नाम आप आदर से लेते हैं, जिनका आपके उत्तर-पूर्व के लेखन से गहरा लगाव था। जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी जी ने उन्हीं दिनों टीकमगढ़ से बनारसीदास चतुर्वेदी के साथ मिलकर 'मधुकर' पत्रिका निकाली। बाद के दिनों में यही चतुर्वेदी जी इंदिरा गाँधी से निकटता के कारण उनके साथ पत्रकार-मण्डली में विदेशों की यात्रा में कई बार गए। डॉ. रमण जी ऐसे महानुभावों के संग-साथ मिलकर अरुणाचल प्रदेश में हिंदी भाषा का अलख जगा रहे थे। रमण शाण्डिल्य अरुणाचली जनभाषाओं को हिंदी में पूरे सामाजिक-सांस्कृतिक गरिमा और बोध के साथ प्रकाश में लाने के लिए दृढ़प्रतिज्ञ दिखाई पड़ते हैं। आज उनके योगदान को भाषा के पैरे में बाँध सकना मुश्किल है, तथापि उनकी शिष्य परंपरा में शामिल जुमसी सिराम, जोराम आनिया ताना, जमुना बीनी, तुम्बम रीबा का नाम उल्लेखनीय है।

अतः ऐसे स्वनामधन्य महर्षि आचार्य जिन्होंने अरुणाचल प्रदेश की जनजातीय ज्ञान-संपदा, कला-कौशल, भाषा-समाज, संस्कृति-साहित्य आदि को राष्ट्रीय स्तर पर प्रचारित-प्रसारित किया है, वह इस प्रदेश की हिंदी पीढ़ी के लिए शिरोधार्य है। 'अरुण नागरी' पत्रिका के अलावे उनके लेखन का जो फलक या वितान रहा है, वह काफी विस्तृत है। आने वाली पीढ़ी को उसमें काफी कुछ जोड़ना है, उसे आगे बढ़ाना है। आत्मिक

निष्ठा और पूर्ण समर्पण के साथ डॉ. रमण शाण्डिल्य ने आदिवासी चेतना की जन-संस्कृति को मुखरित किया है। यहाँ कि जन-संवेदना को हिंदी भाषा में अभिव्यंजित कर अखिल भारतीय स्वरूप प्रदान किया है। यह कार्य दुष्कर और कंटिकापूर्ण होने के बावजूद उन्होंने अपने को अरुणाचल प्रदेश की सेवापूर्ति में खपा दिया, इस भूमिका की याद अरुणाचलवासियों के दिलोदिमाग में सदैव बनी रहेगी और बनी रहनी भी चाहिए।

*(**लेखकीय परिचय**: डॉ. राजीव रंजन प्रसाद वर्तमान में राजीव गाँधी केंद्रीय विश्वविद्यालय, अरुणाचल प्रदेश के हिंदी विभाग में सहायक प्राध्यापक हैं तथा भारतीय समाज विज्ञान अनुसंधान परिषद् द्वारा अनुदानित 'अरुणाचली लोक-साहित्य और मीडिया: अंतःसंबंध एवं अंतःक्रिया' शीर्षक शोध-परियोजना कार्य पूर्ण कर चुके हैं। संपर्क : rajeev.prasad@rgu.ac.in, मोबा. 6909115086)*

न्यीशी लोक कथाओं का विभिन्न दृष्टियों से अध्ययन

जोराम आनिया

लोक कथा, लोक साहित्य की एक महत्त्वपूर्ण विधा है। यह विधा केवल मनोरंजन करने तक सीमित न होकर जन-मानस में आत्मविश्वास की भावना को जागृत करती है। उन्हें जीवन में संघर्ष से जूझने और आपदाओं में स्थिर रहने की शक्ति प्रदान करती है। दुःखी मन इन कथाओं को सुनकर अपना संताप भूलता आया है। इन कथाओं के सहारे उसने अपनी कल्पनाओं के सुंदर से सुंदर चित्र संजोए हैं। 'वसुधैव कुटुंबकम्' की भावना को फैलाने में भी लोक कथाओं की विशेष भूमिका रही है। अरुणाचल प्रदेश की न्यीशी लोक कथाएं भी इसका अपवाद नहीं हैं। लोक कथाओं में जो ऐतिहासिक तत्त्व है, समकालीन परिस्थितियों का जो प्रभाव है, उसे नकारा नहीं जा सकता। इनका मनोरंजन-पक्ष तो सर्वोपरि है ही। यही कारण है कि विश्व के सभी भागों में लोक कथाएं अनंत काल से कही-सुनी जाती रही हैं और आज भी उनका महत्त्व कम नहीं हुआ है। लोक कथा ही एक सरल साधन है, जिससे किसी भी देश के लोक-जीवन और संस्कृति का सुगमता से अनुमान किया जा सकता है। लोक कथाओं में वहां के आचार-विचार की झलक तो मिलती ही है, समाज का चित्र भी नज़र आता है, साथ ही वहां के रीति-रिवाजों और धार्मिक विश्वासों का भी बोध होता है। लोक कथाओं में जनता की युग-युग की अनुभूतियों का निचोड़ संचित रहता है, अतएव किसी भी राष्ट्र के सांस्कृतिक नवोत्थान में उनका विशेष महत्त्व है।

न्यीशी जनजातीय समाज का आधार आबोतानी है, जिसे इस समुदाय के लोग अपना पिता मानते हैं। अधिकतर कहानियों में मुख्य अथवा गौण चरित्र के रूप में आबोतानी आ ही जाते हैं। मोटे तौर पर न्यीशी आदिवासी समाज में कई प्रकार की कथाएं सुनने को मिलती हैं। ऐतिहासिक लोक कथाएं, वीरता और साहस की ऐतिहासिक कथाएं, हास-परिहास की कथाएं, बेवकूफी और चालाकी की कथाएं, अंधविश्वास की कथाएं, पशु-पक्षियों की कथाएं, नीतियुक्त उपदेशात्मक कथाएं तथा पारिवारिक एवं सामाजिक रिश्ते-नातों की कथाएं आदि। ध्यातव्य है कि न्यीशी समाज में बहु-पत्नी प्रथा रही है, इसलिए इनकी लोक-कथाओं में पारिवारिक रिश्ते और सामाजिक व्यवहार के किस्से तो मिलते हैं, लेकिन सौतेली माँ से संबंधित कथाओं का अभाव पाया जाता है।

ऐतिहासिक लोक कथाएँ

न्यीशी जनजातीय समाज का आधार आबोतानी है, जिसे इस समुदाय के लोग अपना पिता मानते हैं। अधिकतर कहानियों में मुख्य अथवा गौण चरित्र के रूप में आबोतानी आ ही जाते हैं। ऐतिहासिक लोक कथाओं में मनुष्य से लेकर देवी-देवता, भूत-प्रेत, राक्षस, पशु-पक्षी, कीट-पतंग जीवन-मृत्यु आदि की उत्पत्ति का वर्णन मिलता है, साथ ही भूत-प्रेत, मनुष्य और देव-दानव के बीच द्वंद्व तथा उसके परिणाम में नाना पूजा विधि की उत्पत्ति का भी वर्णन मिलता है। इसके अलावा पूजा-पाठ आदि धार्मिक गतिविधियों का उल्लेख भी इनमें देखने को मिलता है। इस प्रकार की कथाओं के उदाहरण के रूप में बरम दीमिन, ताई बिड़ा, नीमा और निया, मृत्यु की उत्पत्ति, रुई की उत्पत्ति, आबोतानी और रोव पचा- I, II, और III को देखा जा सकता है। यथा 'मृत्यु की

उत्पत्ति' शीर्षक कहानी में न्यीशी जनजाति में मृत्यु एवं उसके बाद की गतिविधियों की शुरुआत कैसे हुई, इसका वर्णन है-

एक बार बहुत भयानक ओलों-भरा विनाशकारी तूफ़ान आया। बहुत सारे पेड़ उखड़ गए थे। चूंकि सभी प्राणियों को पता था कि ऐसा विनाशकारी तूफान आने वाला है, इसलिए सबने पहले ही अपने बचाव की जगह खोज ली थी। लेकिन इस तूफान में एक चिड़िया के सारे अंडे नष्ट हो गए थे, इसलिए वह बहुत दु:खी थी और शोक में रोते हुए प्रलाप कर रही थी। आबोतानी को दूर से आता हुआ यह प्रलाप किसी मधुर संगीत की तरह लग रहा था। वह करीब जाकर इसका आनंद लेना चाहते थे, लेकिन उन्हें जित्त-अन और चित्तुम बोतह द्वारा ऐसा न करने की चेतावनी दी।

आबोतानी जिद्दी और मनमौजी स्वभाव के थे। उन्होंने यदि कोई काम ठान लिया, तो उन्हें कोई रोक नहीं सकता था। सो वे तुरंत शोक में डूबी चिड़िया के पास जा पहुँचे और उससे पूछा कि, आखिर वह इतने मीठे स्वर में क्यों गा रही थी? चिड़िया ने रोते हुए कहा कि, मैं गा नहीं रही, शोक में प्रलाप कर रही हूँ। आपको मेरे पास ऐसे समय में नहीं आना चाहिए था। आबोतानी ने कहा कि, मैं तो आपका दु:ख साझा करने यहाँ आया था, लेकिन चिड़िया तानी को इसमें भागीदार नहीं बनाना चाहती थी, क्योंकि वह जानती थी कि यदि उसने अंडों के नष्ट होने के बारे में बताया तो पृथ्वी मानव-जीवन जो अभी तक अजर-अमर था, उन्हें दु:ख-दर्द और मृत्यु का ज्ञान हो जाएगा, उनकी भी एक समय बाद मृत्यु होनी शुरू हो जाएगी। लेकिन जिद्दी तानी बिना जाने मानने वाले नहीं थे। आखिर, चिड़िया ने तानी से यह कहते हुए कि, आपकी जिद के कारण मनुष्य के लिए आज का दिन बेहद अभिशापित बन गया है खैर! उसने तानी के साथ अपनी व्यथा साझा की, जिसके बाद वे वापस लौट गए। जब आबोतानी अपने आवास पर पहुंचे, तो सभी ने उसे मौत की उत्पत्ति कर देने के कारण फटकार लगाई, जो कि उस समय तक मानव के लिए अज्ञात थी।

सबसे पहले जित्त-अन और चित्तुम बोतह को एहसास हुआ कि आबोतानी की मृत्यु होने वाली है, क्योंकि वे बहुत बूढ़े हो चले थे। दोनों को पहली बार मृत्यु और उसके बाद की प्रक्रिया की चिंता हुई। तब उन्होंने कहा कि आबोतानी के मरने के बाद उन्हें पृथ्वी में दफ़न किया जाएगा। चूंकि आबोतानी न्यीशी लोगों के देवता हैं, इसलिए उनके बाद न्यीशी लोगों में में भी मृतकों को दफनाने का चलन शुरू हुआ।

रीति-रिवाज संबंधी लोक कथाएँ

रीति रिवाज ऐसी परंपराएँ या संस्कार हैं, जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी मानव जाति में चले आ रहे हैं। इनका संबंध दैनिक -चर्या या जीवन की प्रमुख घटनाओं से होता है। कभी-कभी तो धर्म और त्योहार का भी हिस्सा होता है। न्यीशी समाज में प्रचलित रीति-रिवाजों के लिए भी अनेक लोक कथाएँ कही जाती हैं, यथा-बरम दीमिन, कादो और कागर, आबोतानी और आत्मा तथा आबोतानी और अकाल।

आबोतानी और आत्मा कहानी के अनुसार न्यीशी जनजाति में धार्मिक पूजा-पाठ की शुरुआत कैसे हुई, इसका पता मिलता है। इसी तरह रिखाम जाम और अकाल से यह जानकारी मिलती है कि न्यीशी जनजाति के लोग कभी भी अपना भंडार-गृह पूरी तरह खाली क्यों नहीं करते हैं। न्यीशी बुजुर्गों के कहेनुसार, आबोतानी और आत्मा कहानी में आबोतानी को यह पता था कि प्रेतात्माओं द्वारा उसकी और उसकी संततियों के पृथ्वी पर जीवित होने को सहजता से नहीं लिया जाता। उन्हें लगता था कि आबोतानी और उसकी संततियों का निर्वाह

उसके रक्षक पर निर्भर था। प्रेतात्माएँ बहुत सावधानी से इसकी निगरानी कर रही थी, क्योंकि उन्हें पता था कि आबोतानी के पास अदृश्य चीजों को देख पाने की अलौकिक शक्ति थी। काफ़ी सोच विचार कर प्रेतात्माओं ने आबोतानी के इस शक्ति को छीनने की योजना बनाई।

आबोतानी को अलौकिक शक्तियाँ तो अर्जित थीं, पर आखिरकार वह एक इंसान था, जिसकी अपनी विशेषताएँ और कमजोरियाँ दोनों थीं। इसी दौरान आबोतानी ने उन प्रेतात्माओं से पेड़ों की लटकी जटाओं पर झूलते हुए ये चर्चा सुनी कि वे कैसे कुछ दूरी पर स्थित खूबसूरत घाटियों को देख रहे हैं और वहाँ के लोग कितने सुंदर दिखते हैं? कुछ दूरी पर। इन चर्चाओं को सुनकर आबोतानी सुंदर घाटियों और प्यारे लोगों को देखने के लिए इतना उत्सुक हो गया कि वह एक बार के लिए भूल गया कि ये उसे मारने की कोई चाल हो सकती है। आबोतानी यह अनुरोध करते हुए उस ओर चल पड़ा कि उसे भी प्रेतात्माओं की तरह झूलने की अनुमति दी दी जाए। योजना के अनुसार कुछ समय तो प्रेतात्माओं ने उसकी बात पर ध्यान नहीं दिया, लेकिन आखिरकार उन्होंने आबोतानी को झूला झूलने की अनुमति दे दी। घाटियों में किसी को नहीं पाकर, आबोतानी झूलते हुए नीचे आना चाहता था, लेकिन वह नीचे आने से पहले रुक गया और उसने अपनी अदृश्य को देखने की अपनी शक्ति से देखा कि झूले को काटने के लिए नीचे की ओर नुकीले बांस लगाए हुए थे। जब आबोतानी को समझ में आया कि वह कितना मूर्ख है और अब वह सिर्फ़ प्रेतात्माओं की दया पर निर्भर था। लेकिन अब उसके पास जाने का कोई और रास्ता नहीं था। प्रेतात्माओं ने आबोतानी से उसकी इस अलौकिक शक्ति की मांग की। पहले तो आबोतानी ने इसके बारे में अनभिज्ञ होने का नाटक किया, लेकिन आखिरकार वह टूट गया। उसने प्रेतात्माओं से कहा कि उसने अपनी शक्ति को नीचे पत्तों में रख दिया है, आप ले लो। प्रेतात्माओं ने उसे खोज लिया और तुरंत चाट गए।

आबोतानी कुछ समय बाद किसी तरह झूले से उतरा और जल्दी से वहाँ पहुंचा, जहाँ उसने अपनी शक्ति को छिपाया था, लेकिन उसने पाया कि वहाँ कुछ भी नहीं बचा था। फिर भी उसने इस उम्मीद के साथ पत्तों को चाट लिया कि उन पर कुछ शक्ति लगी हो सकती है। कुछ नहीं से कुछ तो बेहतर है।

परिणामस्वरूप प्रेतात्माओं को सारी अलौकिक शक्तियाँ मिल गईं और आबोतानी एक साधारण इंसान बन गया। उसके बाद से आबोतानी और उनकी संततियों को प्रेतात्माएँ दिखनी बंद हो गईं, जबकि वे उन्हें देख सकती थीं। कुछ समय के लिए सब सामान्य रहा, लेकिन आबोतानी ने ताड़ के पत्तों को चाट लिया था, इसलिए तब से केवल न्यीशी पुजारी ही प्रेतात्माओं को देख सकते हैं और अगर कोई प्रेतात्मा किसी आबोतानी की किसी यानी न्यीशी लोगों को परेशान करती है तो पुजारी अपनी अलौकिक शक्ति के माध्यम से प्रेतात्मा का पता लगाकर उसका उपचार कर सकते हैं। तब से लेकर आज तलक प्रेतात्माओं और आबोतानी के वंशजों के बीच पीढ़ियों से संघर्ष चला आ रहा है।

उपदेश संबंधी लोक कथाएँ

लोककथाओं में मानव कल्याण के लिए विभिन्न प्रकार के उपदेश भरे पड़े हैं। ऐसी कथाएँ प्राय: अप्रत्यक्ष रूप से शिक्षा देती हैं। इसलिए ऐसा आभास नहीं होता कि उनका निर्माण उपदेश के लिए ही किया गया होगा। इनके माध्यम से गृहकलह एवं सामाजिक बुराइयों से बचने के लिए प्रेरणाएँ मिलती हैं। ऐसी बहुत सी कथाएँ हैं, जिनमें परिवार को विभिन्न प्रकार के कष्टों का भाजन होना पड़ा है। कथा के नायक को तथा उससे

संबंध रखने वालों को विभिन्न संघर्षों का शिकार होना पड़ता है। पर ये सभी कथाएँ अंत में सुख एवं संयोग में समाप्त होती हैं। जब तक कथा समाप्त नहीं होती तब तक पात्रों और मुख्य रूप से नायक को इतनी भयानक घटनाओं में फँसा देखा जाता है कि सुनकर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। उन्हें ये सारी घटनाएँ सही मालूम पड़ती हैं। न्यीशी लोककथाओं में नीतिपरक उपदेशात्मक कथाएं काफ़ी देखने-सुनने को मिलती हैं, इनमें लोक व्यवहार के कई ऐसे पात्र दृष्टिगोचर होते हैं जिनसे समाज में अच्छे-बुरे कर्मों के लिए दण्ड और वरदान जैसे विधि-विधान के माध्यम से बुराई से बचने और अच्छाई की ओर अग्रसर होने के उपदेश मिलते हैं। डोजिंग यसिंग, लूरम बर्ज, लिन्खी सोज आदि इसका जीवंत उदाहरण है। उदाहरण के लिए 'डोजिंग यासिंग' की कथा प्रस्तुत है।

यह एक भाई और बहन की कथा है। वे बहुत गरीब थे। वे किसी तरह अपनी थोड़ी सी खेती पर गुजर करते थे। वे गरीबी के कारण शादी नहीं कर पा रहे थे। एक दिन एक खूबसूरत लड़की भाई के पास आई और उसने भाई के सामने शादी करने का प्रस्ताव रखा। उसने कहा कि शादी के बाद उसके पति को काम करने की जरूरत नहीं पड़ेगी क्योंकि वह जादुई शक्तियाँ रखती है। पर उसने एक शर्त रखी कि उसे अपनी बहन की हत्या करनी होगी क्योंकि वह और उसकी ननद एक-साथ नहीं रह सकते। भाई ने लड़की का प्रस्ताव ठुकरा दिया। लेकिन वह लड़की अपने प्रयास में लगी रही और एक दिन भाई ने उसकी बात मान ली और भाई ने बहन का सिर काटकर उसकी हत्या कर दी। हत्या के बाद वह उसके लिए न्यिबुंग बनाने चला गया। न्यिबुग बनाकर जब कुछ देर बाद जब वह लौटा तो उसने पाया कि उसकी बहन का शव गायब था। वह घबरा गया और शव की खोज में इधर-उधर भटकने लगा। तभी उसने देखा कि उसकी बहन का शव एक बरगद के पेड़ पर लटका हुआ था और उसे डोजिंग यासिंग खा रहा था। तब उसे अहसास हुआ कि डोजिंग यासिंग और कोई नहीं, एक आत्मा है। इसके बाद भाई को एहसास हुआ कि उसे शादी की चाहत एक खूबसूरत लड़की की आड़ में डोजिंग याशिंग द्वारा मूर्ख बनाया गया है। इस घटना के बाद भाई को बेहद अफसोस और पीड़ा हुई। उसे कहीं भी शांति नहीं मिलती। वह जहां भी जाता, उसकी बहन की आत्मा एक चिड़िया के रूप में उसका पीछा करती और यह कहते हुए चिढ़ाती- 'भाई, आपके लिए डोजिंग द्वारा एक पूरी डेगची भरकर चावल पकाए हुए हैं। क्या उसने आपके लिए अपने यहाँ उपजी थोड़ी सी मकई की भी शराब बना डाली है?' न्यीशी यों का विश्वास है कि आज भी चिड़िया उसे चिढ़ाती रहती है।

न्यीशी जनजाति की मान्यता के अनुसार प्रकृति का दोहन करना पाप है, यानी आप प्रकृति की संतान हैं, उससे जीवन जीने के लिए जितनी जरूरत है, उतना तो ले सकते हैं लेकिन बेहिसाब लेने लगोगे तो आप सजा के पात्र बनेंगे। लूरम-बर्ज नामक लोककथा इसी बात को दर्शाती है। यह एक सुंदर और युवा लड़की की कथा है, जो अपने माता-पिता के साथ रहती थी। उसका नाम बर्ज था। वह जितनी सुंदरी थी, उतनी ही अपने कामों में दक्ष।

एक बार खेतों से लौटते समय वह मछलियों से भरी एक टोकरी अपने साथ लाई। पर किसी ने उसे गंभीरता से नहीं लिया है, लेकिन जब वह इसे नियमित अभ्यास की तरह करने लगी तो उसके माता पिता को चिंता होने लगी। न्यीशी समाज में एक समय में मछली की इतनी भारी मात्रा में पकड़ने वाले व्यक्ति अथवा उसके परिवार के लोगों के लिए अशुभ संकेत माना जाता है। माता पिता ने उसे सलाह दी और उसे नियमित

रूप से मछली नहीं पकड़ने को कहा। लेकिन बर्ज ने उनकी इस सलाह पर ध्यान नहीं दिया और वह पहले की तरह टोकरी भर-भरकर मछलियाँ लाना जारी रखा।

इसी तरह कुछ दिन चलता रहा। एक दिन जब वह परिवार के एक बच्चे के साथ मछलियाँ पकड़कर लौटने वाली थी, तभी तालाब के किनारे पड़ा रहने वाला विशाल पत्थर अचानक लुढ़का और उसके बर्ज का रास्ता रोक लिया। जब वह देर तक घर नहीं लौटी तो उसके माता पिता को चिंता हुई, वे उसे खोजते हुए तालाब पर आए और देखा कि एक पत्थर ने बर्ज का रास्ता रोका हुआ है। तमाम प्रयासों के बावजूद वे लूरम (पत्थर) को नहीं तोड़ पाए, वह तीन-चार महीने तक उस विशाल पत्थर की कैद में रही और अंतत: वह रहस्यमय पत्थर की कैद में भुखमरी से मर गई।

अर्थ एवं व्यापार संबंधी लोक कथाएँ

न्यीशी समाज में व्यापार अथवा अर्थ संबंधी कथाएँ भी पाई जाती हैं, जैसे बरम दीमिन, दो बहनें आदि कथाओं में आए प्रसंगों को इस संदर्भ में खासतौर पर देखा जा सकता है। अरुणाचल प्रदेश में न्यीशी जनजाति वीरता, साहस, पराक्रम आदि के लिए चर्चित है तथापि इनका समुदाय अत्यंत संघर्षशील रहा है, ऊँची पहाड़ियों एवं दुर्गम जंगलों में निवास करने के साथ-साथ, कठिन जीवन स्थितियों, वातावरण और प्रकृति के घात-प्रतिघात का प्रतिबिंबन न्यीशी जनजाति की लोक कथाओं में दिखाई पड़ता है। इमिनदीमिन, किमिनरिंक, बरम दीमिन आदि अनेक लोक कथाएँ इसका ज्वलंत उदाहरण हैं।

न्यीशी जनजाति के जीवन संघर्ष से संबंधित एक लोककथा 'बरम दीमिन' का कथा सारांश यहाँ प्रस्तुत है। यह बरम दीमिन नाम की एक लड़की की कथा है, जो अपने दो भाईयों और विधवा मां के साथ रहती थी। परिवार की इकलौती बेटी होने के नाते उसे अपने भाईयों और माँ से खूब लाड़-प्यार मिलता था। इस लाड़-प्यार से उसमें एक जिद्दीपन विकसित होता गया और बड़ी होकर वह बेहद अकड़ू स्वभाव की बन गई।

एक दिन उसके भाई व्यापार और वाणिज्य के लिए नियामनेपा (ऊँची पहाड़ियों से परे उत्तर में एक जगह) जाने की तैयारी कर रहे थे, तो बरम दीमिन भी उनके साथ जाने की इच्छा जताई। इलाके की प्रकृति, खड़ी पहाड़ियों और रास्ते पर खतरे की संभावना को देखते हुए भाइयों ने उसे साथ ले जाने से बचने की कोशिश की। पर वह अपनी जिद पर अड़ गई। आखिर भाइयों को कुछ शर्तों के साथ ले जाने के लिए सहमत होना पड़ा। शर्त ये थी कि उसे रास्ते के दौरान दिखने वाली किसी भी चीज को लेकर कुछ नहीं बोलना है, न किसी आवाज की नकल करनी है, न ही कोई गीत आदि गाना है, किसी अदभुत दृश्य पर आश्चर्य व्यक्त नहीं करना है और किसी भी हालत में किसी डरावने जानवर आदि को देखकर डर नहीं दिखाना है। वह इन शर्तों को मानने के लिए राजी हो गई।

वे घर पर अपनी बूढ़ी मां को छोड़कर नियामनेपा के लिए निकल पड़े। लेकिन रास्ते में बरम दीमिन सारी शर्तें भूल गई और उनके विपरीत काम करने लगी। खैर, वे हमेशा की तरह नियामनेपा पहुंच गए और अपने काम को पूरा करने के बाद वापस घर की ओर लौटने लगे। चूंकि यह एक महीने से भी अधिक का लंबा दुरूह सफर था, इसलिए उनको जगह-जगह रुकना पड़ा। एक बार ऐसे ही ये लोग एक बरगद के पेड़ के नीचे ठहरे हुए थे। रात को डेढ़ बजे के आस-पास बरगद के पेड़ की एक जड़ निकली और बरम दीमिन को इस तरह जकड़ लिया कि उसका हिलना-डुलना मुश्किल हो गया।

उसके दो भाइयों ने चाकू की मदद से उस जड़ को काटकर रिंके को बचाने की कोशिश की, लेकिन वे जितना उसे काटते, जड़ आश्चर्यजनक रूप से फ़िर बढ़ जाती, वे फ़िर काटते, फ़िर जड़ निकल आती और रिंके को पैरों की ओर से जकड़ लेती। दोनों भाई काटते-काटते थक गए। एक बार उन्हें लगा कि उन्होंने पूरी जड़ काट डाली है, पर फ़िर नई जड़ निकल आई। आखिर उसने रिंके के पूरे शरीर को अपने आगोश में ले लिया। दोनों भाई निराश होने लगे थे।

रिंके समझ गई कि उसके साथ ऐसा क्यों हो रहा था। उसे एहसास था कि यह भाइयों द्वारा उसे दी गई सलाह के अनुपालन नहीं करने के कारण था, जो उन्होंने नियाम नेपा के लिए चलते समय तय किया था। उसे लगा कि अब बचने का कोई रास्ता नहीं था। सो उसने अपने भाइयों से कहा कि वे उसके लिए दु:खी न हों और उसे छोड़कर आगे का रास्ता तय करें। लेकिन भाई उसे यूँ जंगल में अकेला नहीं छोड़ना चाहते थे। जंगली जानवर आकर उसे खा सकते थे। उसने भाइयों से कहा कि वे उसके पास एक धनुष और तीर रख जाएँ ताकि जरूरत पड़ने पर वह जंगली जानवरों को डरा सके। वे उसके पास जरूरत की सारी चीजें छोड़ गए, जैसे ईगिन (न्यीशी औरतों द्वारा पीठ पर ढोई जाने वाली टोकरी), बेम्या (न्यीशी औरतों द्वारा पहाड़ियों पर चढ़ाई करते समय प्रयोग की जाने वाली बाँस की छड़ी), ओपू (फूल) आदि। जाते समय उसके भाई बहुत दुखी थे। रिंके ने उन्हें कहा-हे मेरे भाईयों, तुम मेरी सुरक्षा की चीजें छोड़े बिना मत जाओ। कृपया मेरे साथ ईगिन, बेम्या, चुचा और ओपू छोड़कर जाना। कृपया घर पहुँचते ही माँ को मत बताना कि मैं किस हालत में हूँ। उसे मेरे लिए दुखी मत होने देना, न ही आंसू बहाने देना बल्कि इस हालत का निर्भीकता से सामना करने के लिए प्रोत्साहित करना। यह सब मेरी ही गलती के कारण हुआ। किसी का कोई दोष नहीं है। भाइयों को बहन को इसी हालत में छोड़कर जाना पड़ा। वे जैसे ही घर पहुँचे, माँ ने बेटी को साथ में न देखकर उसके बारे में पूछा। बातों-बातों में भाइयों ने बहन की सारी बात माँ को बता दी। माँ से यह दु:ख बर्दाश्त नहीं हुआ और उसने वहीं दम तोड़ दिया।

पशु-पक्षी संबंधी लोक कथाएँ

हम जानते हैं कि विभिन्न प्रकार के दैविक एवं प्राकृतिक प्रकोपों का भय दिखाकर श्रोताओं को धर्म तथा कर्तव्य-पालन के पथ पर ले आना भी बहुत सी लोककथाओं का लक्ष्य होता है। सारी सृष्टि उस समय एक धरातल पर उतर आती है जब सभी जीव-जंतुओं की भाषा एक हो जाती है। कहीं मनुष्य पशु से बात करता है तो कहीं पशु पक्षी से। सब एक दूसरे के दु:ख-सुख में समीप दिखाई पड़ते हैं। ये बात दुनिया भर की लोक कथाओं में देखी जा सकती है। इन कथाओं की विशेषता यह भी है कि ये मानव जीवन के सभी पहलुओं से संपर्क रखती हैं। न्यीशी जनजाति की लगभग सारी लोक कथाओं में पशु-पक्षियों का आना एक सहज स्थिति है।

इस क्रम में जरपूतेचि जैसी कथा प्रस्तुत है-जरपूतेचि एक ऐसी साहसी युवा लड़की की कथा है, जो किसी से नहीं डरती थी। वह अक्सर अपने खेतों में अकेले ही चली जाया करती और रात को फसलों की जंगली जानवरों, पक्षियों से रखवाली किया करती और खेत में ही वह एक समतल पत्थर पर सोया करती थी। उस पर सोते हुए एक दिन उसे लगा कि वह गर्भवती हो गई है। वह हैरान थी कि यह कैसे हुआ। तभी एक दिन बरको (नाग देवता) प्रकट हुआ और उसने जरपूतेचि को बताया कि एक बार जब वह अपने बिस्तर पर सो रही थी, तो उसने आकर उसके साथ संबंध बनाया और अब जरपू के पेट में उस बरको का बच्चा था। कुछ समय पश्चात

जरपू ने कंकड़ों के बीच एक बच्चे को जन्म दिया और उसे नदी में बहा दिया। कुछ दिनों तक जरपूतेचि और बरको के बीच का गुप्त प्रेम शांति से चला। फ़िर एक दिन जरपूतेचि ने इस संबंध के बारे में अपने घर वालों को बताने की इच्छा जताई। बरको ने शुरू में इस पर आपत्ति की, लेकिन अंत में उसने स्वीकृति दे दी। जब जरपूतेचि ने बरको के साथ अपने संबंध के बारे में अपने माता पिता को सूचना दी, तो उन्होंने इस पर कोई आपत्ति नहीं की, बल्कि बरको को अपने घर पर ससम्मान आमंत्रित किया, क्योंकि बरको अब उनका माकबो (दामाद) बन गया था।

बरको ने इस शर्त पर आने की सहमति जताई कि जब भी वह घर पर आएगा, कोई उसके बारे में कुछ नहीं कहेगा। सबने इस बात को स्वीकार कर लिया। इसी के अनुसार बरको के आगमन की तैयारियां की गईं। परिवार में सभी को इसके बारे में बता दिया गया था। लेकिन किसी तरह परिवार की बूढ़ी औरतों में से एक को यह बात पता नहीं चली या फ़िर वह भूल गई।

नियत दिन पर बरको आया और आंगन में आकर उसने जरपूतेचि से जानना चाहा कि उसे घर के भीतर कैसे आना है। उसने पूछा, "हे तेचि, मुझे किस तरफ से चढ़ना चाहिए, प्लीज मुझे बताओ."

"कृपया बातुंग के माध्यम से आओ", तेचि ने कहा।

इस पर बरको ने उत्तर दिया कि वह बातुंग द्वारा नहीं आएगा, क्योंकि अन्य सारे लोग उसी के माध्यम से गए हैं, इसलिए वह अशुद्ध हो चुका है। उसने फ़िर पूछा, "हे तेचि, मुझे किस तरफ से चढ़ना चाहिए, प्लीज मुझे बताओ."

"कृपया ब्यातु के माध्यम से आओ", तेचि ने कहा।

बरको ने फिर यह कहकर आने से इंकार कर दिया कि वह ब्यातु से नहीं आएगा, क्योंकि इसके माध्यम से शिकार किए हुए पशुओं को अंदर लाया गया है।

अंत में जरपू ने बरको को चूल्हे के माध्यम से आने की सलाह दी और चूल्हे के बगल में मौजूद एक टोकरी में आकर बैठने को कहा। बरको वहाँ आकर आराम से बैठ गया। लेकिन तभी वह बूढ़ी औरत जो भूल गई थी, झाड़ू लगाने आई और टोकरी में बरको को देखकर भय से चिल्लाने लगी- साँप, साँप, साँप। इससे बरको ने खुद को बेहद अपमानित महसूस किया और उसने तुरंत वह जगह छोड़ दी। जरपूतेचि को भी इस बात का बुरा लगा और वह अपने परिजनों के साथ बरको को मनाने पहुँची। बरको का निवास एक झील में था, सो जब जरपूतेचि परिजनों समेत वहां पहुंची तो बरको ने आने से तो इंकार कर दिया पर झील में मौजूद मछली और अन्य जीवों को अपनी पत्नी के रिश्तेदारों के सामने पेश किया। यह देखकर पूतेचि ने भी अपने घर वापस आने से मना कर दिया और वह अपने पति बरको के साथ रहने के लिए झील में चली आई।

न्याय संबंधी लोक कथाएँ

इनमें विभिन्न प्रकार की बुराइयों से उत्पन्न घटनाओं का समावेश होता है। इनमें विशेषकर दो भाइयों के झगड़े एवं दुश्चरित्र और आत्मा की करनी आदि दिखाया जाता है। बाल विवाह, बेमेल विवाह, बहु विवाह, इन कथाओं में मिलती हैं। योग्य या निरपराध व्यक्ति अयोग्य दुष्ट व्यक्ति के चंगुल में फँसकर परेशान होते दिखाई पड़ते हैं। न्याय संबंधी कथाओं में वे कथाएँ अपना विशेष स्थान रखती हैं जिनमें नायिका मुख्य रूप से और

नायक गौण रूप से भयानक परीक्षाएँ देते हैं। ऐसी परीक्षाओं में प्राय: सामाजिक एवं व्यक्तिगत चरित्र को प्रधानता दी जाती है। जिन नायक-नायिकाओं के चरित्र ठीक होते हैं, वे ऐसी कठोर परीक्षाओं में उत्तीर्ण होते दिखाई पड़ते हैं। जैसे सच्चरित्र स्त्री कठिन से कठिन काम को भी उसके अंजाम तक ले जाती है, उसके भय से बड़े बड़े दैत्य-दानव, आत्माएँ तथा भूत-प्रेत पास नहीं फटकते। इसी तरह चरित्रवान् नायक चाहे वह मानव रूप में हो या पशु-पक्षी रूप में, वे भी विकट परीक्षाओं में उत्तीर्ण होकर अपने लक्ष्य की प्राप्ति करते हैं।

तादो-तोकू नामक लोककथा इसका जीवंत उदाहरण है। यह एक व्यक्ति की कथा है, जो अपनी दो बेटियों के साथ रहता था। पिता को शिकार का बहुत शौक था। वह अक्सर शिकार खेलने के लिए जाया करता। एक बार शिकार के लिए जाते समय उसने अपनी दोनों बेटियों को बुलाकर अपने घर से थोड़ी दूर स्थित एक पहाड़ी की ओर इशारा करके बताया कि अगर मैं एक-दो दिन में शिकार से वापस न लौटूँ तो वहाँ जाकर मेरी तलाश करना।

तद्नुसार, जब उनके पिता नियत दिन पर नहीं लौटे तो दोनों बेटियों ने उन्हें खोजने के लिए सोचा। सबसे पहले वे जंगल में बनी हुई एक अस्थाई झोपड़ी में पहुंची, जहां शिकारी रात होने पर रुका करते थे। पर उन्हें वहाँ उनके पिता तो नहीं मिले, पर ताविये में उनके अवशेष जरूर मिल गए। इससे उन्होंने अंदाजा लगाया कि जरूर उनके पिता को आपापल्ली नामक नरभक्षी द्वारा खा लिया गया होगा। यह सोचकर दोनों बहनों ने आपापल्ली से बदला लेने की कसम खाई।

इसके बाद दोनों बहनों ने अपने पिता के खून के निशानों का पीछा करना शुरू किया और आखिर वे आपापल्ली के घर जा पहुंची। वहाँ उन्हें माँ आपापल्ली मिली। वे वहीं रहने लगी, कुछ समय बाद माँ आपापल्ली ने दोनों लड़कियों के सामने अपने बेटों तादो और तोकू के साथ विवाह करने का प्रस्ताव रखा उन्होंने तुरंत माँ आपापल्ली के प्रस्ताव को मंजूर कर लिया। शाम को जब तादो और तोकू घर लौटे तो उनकी मां ने उनकी सगाई कर दी और इसके कुछ ही समय बाद दोनों की शादी कर दी गई।

एक दिन पतियों के गहरी नींद में जाने के बाद पत्नियों ने अपने-अपने योशि बाहर निकाले और दोनों पतियों की जीभ काट डाली। पति कुछ नहीं बोल सके, बस बिस्तर पर दर्द से करवटें बदलते रहे। इसके बाद दोनों बहनों ने माँ आपापल्ली से अनुरोध किया कि वह कुछ देर मालकिन के रूप में घर की रखवाली करें ताकि वे बाहर पेशाब करके आ सकें। माँ आपापल्ली बिना किसी शक के अपनी जिम्मेदारी पूरी करने लगी और दोनों बहनें घर से निकलकर भाग निकलीं। भागने से पहले दोनों बहनें चूल्हे की राख और बांस की पिनें अपने साथ लेती गईं।

कुछ समय बाद जब मां आपापल्ली को असलियत समझ में आई तो उसने बहनों का पीछा करना शुरू कर दिया। जब दोनों बहनों ने यह देखा कि माँ आपापल्ली द्वारा उनका पीछा किया जा रहा है तो वे एक पल को रुक गई और माँ आपापल्ली की ओर राख को जोर से फ़ेंककर बोली- यह राख बर्फ़ में बदल जाए। बस क्या था, कुछ ही देर में चारों ओर बर्फ़ ही बर्फ़ हो गई और माँ आपापल्ली का रास्ता रुक गया।

बर्फ़ द्वारा माँ आपापल्ली का रास्ता अवरुद्ध करने के बाद, दोनों बहनों ने उसकी ओर सारे पिन फेंककर कहा- ये पिन गहरे जाल में बदल जाए। तो बांस के पिन तुरंत एक गहरे जाल में बदल गई, जिससे माँ आपापल्ली का पीछा करने का रास्ता पूरी तरह अवरुद्ध हो गया। इस तरह दोनों बहनों ने अपने पिता का बदला पूरा किया।

हास्य अथवा मनोरंजन संबंधी लोक कथाएँ

ऐसी कथाओं का मुख्य उद्देश्य श्रोताओं के लिए मनोरंजन की सामग्री प्रस्तुत करना होता है। छोटे बच्चे ऐसी कहानियों को तुरंत याद कर लेते हैं। ये कथाएँ प्राय: छोटी हुआ करती हैं। भिन्न-भिन्न जानवरों जैसे कुत्ता, साँप, बंदर, सुअर, बाघ, शेर, चिड़िया आदि से संबंध रखने वाली ये कहानियाँ बालकों का मनोरंजन करती हैं। इनमें वर्णित विषय गंभीर भी होते हैं किंतु प्राथमिकता हल्की फुल्की बातों को दी जाती हैं। उदाहरण के लिए बरिलूरा नामक कथा लें - यह बरिलूरा नामक एक चतुर न्यीशी लड़के की कथा है। कुछ समय के लिए एक बंदर और केंकड़े की दोस्ती हुई। दोनों ने तय किया कि केंकड़ा ईनिङ खोदेगा और बंदर उन्हें आग में भून दिया करेगा, फ़िर दोनों मिलकर उन्हें खाएंगे। एक दिन केंकड़े ने ईनिङ खोदे और उन्हें बंदर को भूनने के लिए देकर, खुद पानी लेने चला गया। बंदर ने उन्हें भूना जरूर, लेकिन अकेले ही खा गया। केंकड़े को कुछ नहीं दिया। कुछ देर बाद केंकड़े ने आकर बंदर से अपने हिस्से की मांग की। इस पर बंदर बचे हुए ईनिङ को लेकर पेड़ पर चढ़ गया और केंकड़े को बोला- मैं ऊपर से ईनिङ गिरा रहा हूँ, तुम उन्हें एक-एक कर लपको और खाओ। केंकड़े ने ईनिङ पाने की उम्मीद में अपने हाथ चौड़े कर लिए, पर बंदर ने ईनिङ नहीं, उसके छिलके नीचे फ़ेंके। जब केंकड़े के कहाँ कि ये तो तुमने छिलका फ़ेंका है। तब बंदर ने कहा कि मैंने तो ईनिङ ही फ़ेंके थे, हो सकता है, ईनिङ जमीन खा गई हो।

तब केंकड़े को बिना सोचे-समझे बंदर के साथ दोस्ती करने की मूर्खता का एहसास हुआ। वह मौका आने पर इसका बदला जरूर लेगा, समय का इंतजार करने लगा। केंकड़े ने अपने सभी रिश्तेदारों को इकट्ठा किया और उन्हें एक बंदर द्वारा खुद के ठगे जाने की दुख भरी कहानी सुनाई। यह सुनकर केंकड़े के सारे रिश्तेदार भी उचित समय आने पर बंदर से बदला लेने के लिए सहमत हो गए।

केंकड़े को पता था कि बंदर पानी के लिए तालाब पर जरूर आएगा। सो उसने खुद को पानी के नीचे छिपा लिया और उसका इंतजार करने लगा। उम्मीद के मुताबिक बंदर पानी पीने के लिए तालाब में आया और जैसे ही पानी पीने के लिए तालाब में अपना मुंह डाला, केंकड़े ने मजबूती से उसकी नाक पकड़ ली। दोनों के बीच खींचातानी शुरू हो गई। बंदर ने अपनी नाक छुड़ाने की भरपूर कोशिश की लेकिन केंकड़े ने अपने अनेक पैरों से उसे कसकर पकड़ लिया था, इसलिए बंदर कुछ नहीं कर सका। कुछ दिन इसी तरह गुजर गए। तब तक बंदर काफी कमजोर हो गया था। कई दिनों से खाने के लिए कुछ नहीं मिलने के कारण वह भूख से मरा जा रहा था। उसी समय एक बाघ पानी पीने के लिए तालाब पर आया था। बाघ को देखकर पर बंदर ने अपनी पूंछ हिलाकर केंकड़े द्वारा मौत के मुंह से निकालने का अनुरोध किया।

बाघ ने यह कहते हुए साफ़ मना कर दिया कि बंदर से उसकी कोई रिश्तेदारी थोड़े ही है, जो वह उसे बचाए। इस पर बंदर ने बाघ की यशोगाथा गाना शुरू कर दिया कि उसी के संरक्षण की वजह से वन में बंदर जैसे अनेक छोटे जानवर सुरक्षित महसूस करते हैं। अगर बाघ ने उसकी मदद नहीं की, तो उसे बहुत पाप लगेगा। इस पर बाघ को लगा कि उसे अपने कौशल के लिए पहचाना जा रहा है, उसने खुद पर गर्व महसूस किया और बंदर की मदद करने का मन बना लिया। उसने बंदर को पूंछ से पकड़कर जोर से खींचा, इससे बंदर तो केंकड़े की पकड़ से छूट गया, पर खुद बाघ पानी में गिर गया और उसकी नाक को केंकड़े ने अपने अनेक पैरों से कसकर पकड़ लिया।

जब बाघ ने केंकड़े से पूछा कि तुम ऐसा क्यों कर रहे हो तो केंकड़े ने कहा कि, उसकी वजह से वह बंदर से अपना बदला पूरा नहीं कर सका, अब जब बाघ ने बंदर से दोस्ती कर उसको छुड़ा दिया है, तो अब बाघ उसका दुश्मन हो गया है, सो अपना बदला वह बाघ से पूरा करेगा। हालांकि केंकड़े की तुलना में बाघ काफी मजबूत और बड़ा था, पर केंकड़े ने उसकी नाजुक नाक को पकड़ा हुआ था और खुद पानी में एक पत्थर के नीचे छुपा हुआ था, इसलिए बाघ चाहकर भी कुछ नहीं कर पाया। इसी तरह कुछ दिन बीत गए। कुछ खाने को नहीं मिलने और कई दिन से पानी भी नहीं पी सकने के कारण बाघ बहुत कमजोर और मरियल हो गया। एक दिन बाघ ने देखा कि एक लड़का हाथ में मछली पकड़ने का काँटा लिए गुजर रहा था। वह बहुत गरीब लग रहा था। उसके कपड़े फटे हुए और गंदे थे। वास्तव में वह लड़का अनाथ था। बाघ ने उससे अपनी मदद की गुहार लगाई और केंकड़े से बचाने को कहा। लेकिन लड़का एक बाघ को देखकर डर रहा था, इसलिए वह दूर से ही बात कर रहा था। तो बाघ ने थोड़ी समझदारी दिखाते हुए कहा कि, उसे पता है कि लड़का अनाथ है। इस दुनिया में कोई उसकी मदद करने वाला नहीं है। अगर वह अभी बाघ की केंकड़े से बचाने में मदद कर देगा तो बाघ न केवल उसे नुकसान नहीं पहुंचाएगा बल्कि जीवन भर उसके लिए शिकार ढूँढ़ने में मदद करेगा।

इस पर लड़के को आश्चर्य हुआ कि बाघ उसे कैसे पहचान सकता है। खैर, लड़के ने बाघ की मदद करने की सोची और अपने मछली के काँटे से उसे केंकड़े से छुड़वा दिया।

केंकड़े से छूटते ही बाघ ने कुछ दूरी तक दौड़ लगाई, फिर वह रुक गया और मुड़कर लड़के को आवाज लगाई। लड़का उसके पास जाने में डर रहा था, पर बाघ ने उसे अपनी शर्त याद दिलाते हुए कहा कि, वह हमेशा उसका शिकार में मदद करेगा, लेकिन एक शर्त है, उसे कभी किसी के सामने इस राज को नहीं खोलना है, अगर ऐसा हुआ तो बाघ नाराज हो जाएगा और लड़के को मार डालेगा।

इसके बाद लड़का वहाँ से चला आया और जंगल में ऐसे ही घूमने लगा। वहाँ उसने भैंसों का एक झुंड देखा। झुंड में एक भैंस को बाँईं आँख से नहीं दिखता था। लड़का भूखा-प्यासा था, जब उसने देखा कि भैंस की बाँई आंख में रोशनी नहीं है, तो उसने बाँईं ओर जाकर भैंस के बाँएँ थन को पकड़ा और उसका दूध पी लिया। भैंस को लगा यह उसका अपना बच्चा है, सो उसने कोई आपत्ति नहीं की। जब दिन में भैंसों का झुंड चरने चला जाता, तो लड़का रोज उस भैंस का दूध पीकर चला जाता और रात होने से पहले ही जंगल में जाकर छिप जाता। जब शाम में भैंस के पड्डे लौटकर आते तो उन्हें अपनी माँ के थनों में दूध ही नहीं मिलता। उन्हें समझ ही नहीं आया कि ऐसा कैसे हो रहा था। जब उन्होंने माँ से पूछा तो वह नाराज होते हुए बोली कि तुम दो-दो बार मुझसे दूध कैसे माँग सकते हो, जब दिन में खुद ही आकर दूध पी जाते हो! पड्डों ने इसका खंडन किया। लेकिन जब यह प्रक्रिया आगे भी चलती रही तो पड्डों ने इसका पता लगाने की योजना बनाई।

तद्नुसार एक दिन वे असलियत जानने के लिए चरने की जगह पर जाकर पास ही में छिप गए। कुछ देर बाद उन्होंने जंगल से आ रहे एक लड़के को देखा, जो बाईं तरफ से उनकी माँ का दूध पीने लगा, क्योंकि उसे बाँईं ओर से दिखता नहीं था। जब पड्डों ने उसे देखा तो वे बाहर आ गए और लड़के को पकड़ लिया। लड़का डर के मारे गिड़गिड़ा कर अपने अनाथ और गरीब होने की बात बताकर जान की भीख मांगने लगा। पड्डों को उस पर दया आ गई। तब लड़के ने उनसे यह समझौता किया कि अब से जब भी वे चरने जाएंगे, लड़का उनकी माँ की देखभाल करेगा, बदले में उसे दूध मिलेगा। पड्डे मान गए। धीरे-धीरे समय बीतता गया। भैंस काफ़ी बूढ़ी

हो गई और एक दिन मर गई। इस पर पड्डों ने, जो अब बड़े हो चुके थे, लड़के को भैंस की खाल और आँत निकालकर सुखा लेने को कहा। साथ ही, उसके सीगों से दो पाइप बनाने के लिए कहा। इसके बाद पड्डों ने उससे कहा कि जब वे घास चरने के लिए जंगल में दूर जाएंगे और लड़के को किसी भी तरह का खतरा महसूस होगा तो वह बाई सींग के पाइप को मुंह से बजाएगा और यदि उसे भूख लगेगी तो दाँईं सींग के पाइप को बजाएगा। कुछ समय तक व्यवस्था चलती रही।

एक दिन लड़का हाथ में भूख लगने पर बजाने वाला पाइप लिए एक पत्थर पर बैठा था। खतरा महसूस होने पर बजाने वाला पाइप एक ओर रखा हुआ था। तभी वहाँ एक कौवा आया जिसने अपनी चोंच में एक आम पकड़ा हुआ था। उसने लड़के से अनुरोध किया कि आम के बदले में वह एक पाइप उसे दे दे। लड़के ने उसकी बात नहीं मानी, तो कौए ने चालाकी दिखाई। उसने जिस ओर लड़का बैठा था, उसकी उल्टी दिशा में आम गिरा दिया। लड़का ज्यों ही उसे देखकर उठाने के लिए झुका, कौआ आया और खतरे वाला पाइप उठाकर उड़ गया।

कौए ने उस पाइप को ले जाकर दूर एक मैदान में डाल दिया कुछ समय बाद जब लड़के ने अपने हाथ वाले पाइप को बजाया तो पड्डे आ पहुंचे। पर लड़के के पास आकर उन्हें मैदान की ओर से खतरे वाला पाइप बजने की आवाज आई। उन्हें बहुत अजीब लगा और लड़के से इसका कारण पूछा। लड़के ने उन्हें सारी बात बता दी।

दोनों ने लड़के को सलाह दी कि वह मैदान में जाए और उस पाइप को खोज कर बजाए। जैसे ही उसकी आवाज आएगी, भैसों का पूरा झुंड मैदान में पहुंच जाएगा और लड़के को पाइप समेत सुरक्षित वापस ले आएगा। उन्होंने लड़के को सलाह दी कि वह जाते समय रास्ते में जगह-जगह उनकी मां की खाल के टुकड़े डालता जाए ताकि भैंसों के झुंड को उस तक पहुंचने का रास्ता खोजने में सुविधा हो।

योजना के अनुसार लड़का नीचे मैदान में गया और पाइप को खोजने लगा। कुछ देर में वह उसे मिल गया पर साथ ही मैदान में उसे अनेक मनुष्य भी मिल गए, जिन्हें देखकर उसे बहुत खुशी हुई और वह भैंसों वाली बात भूल गया। कुछ दिन बाद जब उसे भैंसों की बात याद आई तो उसने मैदान में मिले पाइप को बजाया। योजना के मुताबिक सारी भैंसे उसके द्वारा चिह्नित किए गए रास्ते से होते हुए लड़के तक पहुंच गईं और उन्होंने जोर-जोर से रंभाना शुरू कर दिया। जिसे देखकर लड़के ने उनको रोकते हुए कहा कि ये सारे मनुष्य उसके अपने हैं, दुश्मन नहीं हैं, इसलिए आप शांत हो जाओ। इनसे कोई डर नहीं है।

खैर, भैंसें शांत हो गईं और उन्होंने लड़के को अपने साथ वापस जंगल में चलने का अनुरोध किया, लेकिन उसने उन्हें मना कर दिया और कहा कि यह मैदान ही उसका असली निवास-स्थान है। लड़के ने भैंसों को सलाह दी कि उनके झुंड में जितनी भैंसें चाहें, उसके साथ यहीं मैदान में रुक जाएँ और जो भैंसे वापस जाना चाहें, आराम से जंगल में वापस चली जाएँ। कुछ भैंसे उसकी बात पर मान कर रुक गईं और लड़के तथा अन्य मनुष्यों के साथ रहने लगीं। बाकी भैंसे वापस जंगल में चली गईं। न्यीशी समुदाय का मानना है कि जो भैंसे उस लड़के के साथ मैदान में रुक गईं, वे सब पालतू भैंसें बन गईं और जो-जो जंगल में चली गई वे सब मिथुन बन गए।

अब लड़का बड़ा हो चुका था और बाघ की शर्त के अनुसार उसे रोज अच्छा शिकार मिल जाता था। समाज में उसकी एक अच्छे शिकारी के रूप में पहचान बन चुकी थी। उसके आस-पास के लोग इस बात पर हैरान थे कि वह जब भी बाहर जाता, उसे हमेशा बढ़िया शिकार कैसे मिल जाता था। सबने उससे शिकार की कला के बारे में जानना चाहा, लेकिन उसने बाघ से हुई शर्त के मुताबिक हर बार इस रहस्य को बताने में टाल मटोल की। लेकिन पड़ोसियों द्वारा बार-बार पूछे जाने पर तथा कोई मुसीबत आएगी तो मिलकर उसकी मदद करने का आश्वासन दिए जाने पर उसने सच्चाई बताने का मन बना लिया। उसने जैसे ही बाघ के साथ हुई कहानी खत्म की, वहां अचानक वही बाघ प्रकट हो गया और लड़के को सबके बीच से उठाकर जंगल में लाकर एक बड़े से पत्थर के पीछे छुपा दिया। उसके बाद बाघ सोचने लगा कि उसे अभी मार कर खा जाए या कुछ देर बाद। वह इसी सोच में था कि लड़के को बहुत भूख लग आई। उसके पेट से गुड़गुडी की आवाज आने लगी। इस पर बाघ ने पूछा कि यह कैसी आवाज थी। लड़के ने कहा कि उसके पेट में वही केंकड़ा है, उसके मां-बाप ने बचपन में उसे खिलाया था और अब वह बाघ का सामना करने के लिए बाहर आने को मचल रहा है। यह सुनते ही बाघ बुरी तरह डर गया और अपनी जान बचाकर भागा। इस तरह लड़के ने समझदारी से अपनी जान बचा ली और वापस अपने न्यीशी समुदाय में लौट आया।

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. नाबाम, प्रो. नाकाहिना. (2012). *कटमरी लॉ ऑफ न्यीशी ट्राइब ऑफ अरुणाचल प्रदेश*. नई दिल्ली: ऑथरप्रेस ग्लोबल नेटवर्क.
2. ताना, सोरेन विलीव. (2022). *मेमोरी एंड इंस्टीट्यूट*. गुवाहाटी: देवाप्रकाशन.
3. साक्षात्कार-श्री नीति साङदो, वर्ष-70 न्यूबो, ईस्ट कामिंग जिले, सिला गाँव, 10/08/2023
4. नावुम, ताता. (2019). *न्यिताम*. अरूणाचल प्रदेश: न्यदर नामलो.
5. Tana, Showren. (2009). *The Nyshi of Arunachal Pradesh, An Ethno Historical Study*. New Delhi: Regency Publication.
6. अग्रवाल, अनसूया. (2009). *हिंदी लोक साहित्य शास्त्र सिद्धांत और विकास*. नई दिल्ली: नीरज बुक सेंटर.
7. अंसारी, परवीन निजाम. (2016) *लोक साहित्य के विविध आयाम*. वाराणसी: विश्वविद्यालय प्रकाशन.
8. उपाध्याय, कृष्णदेव. (1957). *लोक साहित्य की भूमिका*. नई दिल्ली: लोकभारती प्रकाशन.
9. उपाध्याय, डॉ. कृष्णदेव, भारत के लोक साहित्य, साहित्य भवन, इलाहाबाद, 1985

*(**लेखकीय परिचय :** डॉ. जोराम आनिया देरा नातुङ शासकीय महाविद्यालय, ईटानगर, अरुणाचल प्रदेश के हिंदी विभाग में सह प्रोफेसर हैं। आप अरुणाचल प्रदेश की साहित्यिक अभिरूचि की विभिन्न गतिविधियों में निरंतर सक्रिय हैं और अरुणाचल प्रदेश में युवा लेखन को प्रोत्साहन देने में जुटी हैं। मोबा: 7005147047, ई-मेल : drjoramaniya@gmail.com)*

उद्दात्त, मजबूत और यथार्थ स्त्री-छवि को उकेरती गालो लोक कथाएँ

तुम्बम रीबा 'लिली'

लोक साहित्य में लोकप्रियता की श्रेणी में लोक गीतों के बाद लोक कथाएँ आती हैं। लोक कथाओं का हमारे जीवन में बहुत ही महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। भारत में कथा साहित्य की परंपरा अत्यंत ही पुरानी है। मनुष्य के जन्म के साथ ही लोक कथा का जन्म माना गया है। भारत में कथा-वाचन की परंपरा सदियों से चली आ रही है। लोक कथा की परंपरा न सिर्फ भारत में बल्कि विश्व भर में प्रसिद्ध है। विदेशों में बच्चे इसे 'बेड टाइम स्टोरी' के रूप में सुनते आए हैं। 'लोक में प्रचलित और परंपरा से चली आने वाली मूलत: मौखिक रूप में प्रचलित कहानियाँ ही लोक कहानियाँ कहलाती हैं'। हमारे देश में लोक कथाओं की परंपरा अत्यंत ही पुरानी है, यह प्राचीन काल से चली आ रही है। यहाँ वेदों में यह आख्यान के रूप में कथाओं के बीज पाए जाते हैं। डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय के शब्दों में, "लोक-कथाओं की परंपरा अत्यंत उद्गम दिखाई पड़ती है। ऋग्वेद में बहुत से ऐसे सूक्त होते हैं जिनमें दो या तीन पात्रों में कथोपकथन पाया जाता है। इन सूक्तों को संवाद सूक्त कहते हैं। ऋग्वेद में ऋषि शुन:शेप का प्रसिद्ध आख्यान उपलब्ध होता है। अपाला अत्रेयी के आदर्श नारी चरित्र हमें सर्वप्रथम इसी वेद में देखने को मिलता है। च्यवन भार्गव और सुकन्या मानवी की कथा भी बड़ी सुंदर रीति से इसमें वर्णित हैं।"

लोक कथाएँ हर संस्कृति में विद्यमान होती हैं। ऐसी कहानियाँ जो विशेष समूह के लोगों द्वारा पीढ़ी दर पीढ़ी सुनते-सुनाते आए हैं। यानी कि पूरखों/पूर्वजों द्वारा अपनी नवीन पीढ़ी तक हस्तांतरित हो चले आए हैं। कुछ लोग इसे पूरखा कथा भी कहते हैं। ऐसी कथाएँ आमतौर पर मौखिक ही होती हैं, पर आजकल यह पुस्तकों के रूप में उपलब्ध होने लगी हैं। कथा सुनने की प्रवृत्ति लोगों में बचपन से ही होती है और बच्चे अपने बुजुर्गों से सुनने के लिए लालायित रहते हैं। इससे अच्छी बात यह होती है कि बच्चे अपने बुजुर्गों से जुड़े हुए रहते हैं और दादी-नानी, माता-पिता से इन्हीं कथाओं के माध्यम से रोचक तरीके से नीति एवं आदर्श आदि की शिक्षा पाते रहते हैं। आरंभ में लोक कथाएँ मौखिक रूप में थी पर बाद में यह लिखित रूप में आनी शुरू हो गई। लोक कथा को अंग्रेज़ी में फोकलोर (Folklore) कहते हैं उसका अर्थ होता है, किसी मानव-समूह की उस साझी अभिव्यक्ति जो कथाओं, कहावतों, चुटकुलों आदि अनेक रूपों में अभिव्यक्त होता है। इसके अलावा लोक वार्ता में उस मानव-समूह की लोककला, लोक वस्तु, लोकगीत, लोक-उत्सव आदि सब कुछ आ जाते हैं। डॉ. सत्येंद्र के अनुसार, "लोक में प्रचलित और परंपरा से चली आने वाली मूलत: मौखिक रूप में प्रचलित कहानियाँ ही लोक कहानियाँ कहलाती हैं।" डॉ. धर्मराज सिंह के अनुसार, "जनजातियों की भूमि अरुणाचल प्रदेश में हजारों लोक कथाएँ मौखिक परंपरा में उपलब्ध हैं। इन कथाओं में जीवन के सभी पहलुओं का चित्रण होता है। रोचकता इन कथाओं का प्रमुख गुण है। अधिकांशत: इन कथाओं में वन एवं वन्य प्राणियों से संबंधित कथाओं के अतिरिक्त परियों से संबंधित कथाओं की भरमार है। भूत-प्रेत, अलौकिक पत्थर और वृक्ष, नदी, वर्षा, जंगली जानवर, धूर्त मनुष्य, अलौकिक शक्ति संपन्न मानव इत्यादि से संबंधित कथाएँ रोचक होने के साथ ही ज्ञानवर्धक भी होती हैं।"

गालो लोक कथाओं में इंसान और पशुओं में मैत्री भावना दिखलाया गया है, वे एक-दूसरे की भाषा समझ और बोल सकते हैं। आबोतानी और बंदरों की लोक कथा में वे एक दूसरे से प्रतिस्पर्धा करते हुए दिखाई देते हैं। इन कथाओं में यह भी बताया गया है कि आबोतानी का संबंध न सिर्फ पशुओं से था बल्कि उनका पक्षियों से भी रिश्ता था। यही नहीं उन्होंने 'पेजक' नामक पक्षी से विवाह भी किया था, इस विवाह के टूट जाने पर उन्होंने मेंढक (तातिक, सूखी पत्ती, कोसुक, अग्नि, ओञोर (काँटेदार पत्तों वाली पेड़) आदि से एक-एक कर विवाह किया था। अर्थात्, गालो लोक कथाओं में इंसान, जीव-जंतुओं और पेड़-पोधों में कोई भेदभाव नहीं होता था; सभी जीव-जंतु आपस में मिल जुलकर साथ रहते थे। गालो लोक कथाओं में चुड़ैल, भूत–प्रेत आदि की कथाएँ भी उपलब्ध हैं। ऐसी कथाएँ केवल मनोरंजन की दृष्टि से ही रची गई थी। काची-मिरी, ञिकाम पिर्बो, तित्ति मिरी आदि लोक कथाएँ इस श्रेणी में आती हैं। ये लोक कथाएँ अत्यंत ही रोचक है और इनमें कौतुकता है। गालो लोक कथाओं की यह विशेषता होती है, इनमें धर्म, जात-पात, लिंग आदि के आधार पर किसी भी तरह की कोई भेदभाव नहीं होता है। लोक कथाओं में आबोतानी का सभी जीव-जंतुओं के साथ मैत्री संबंध दिखाया गया है साथ ही लोक कथाओं के स्त्री पात्रों को अत्यंत ही सहृदया, मंगलकारी, ममतामयी और समदर्शी रूप में चित्रित किया गया है। हरीश कुमार शर्मा के अनुसार, "लोक कथाएँ हमारे भीतर रोमांच भरती हैं, साहसिकता जगाती हैं, हमें हमारे जीवन मूल्यों से जोड़ती हैं, जीवन–दर्शन सीखाती हैं। अतीत की हमारी असफलताओं के कारणों की पड़ताल करती हैं और हमारे द्वारा प्राप्त की गई सफलताओं की युक्तियाँ बतलाती हैं। इन लोक कथाओं में रहस्य–रोमांच है, अलौकिकता है, जादू-टोने हैं, दैवीय एवं आसुरी शक्तियाँ, प्राकृतिक आपदाएँ हैं और उन सबसे जूझते हुए आदमी का साहसिक व दुस्साहसिक संघर्ष है। उसकी विजय की महान गाथाएँ हैं। अरुणाचल प्रदेश की लोक कथाएँ इन सब विशेषताओं से युक्त हैं।

गालो समाज के विद्वान श्रीमान मोर्गअ अतअ के अनुसार, "गालो जनजातीय समाज में पारंपरिक, विधि-विधानों, मान्यताओं और संस्कृति की एक बहुत ही सुदीर्घ परंपरा है और यह सब पीढ़ी–दर–पीढ़ी लोक कथाओं के द्वारा ही प्रसारित होती आई है। इनमें से कुछ में सत्य है और तथ्यों पर आधारित होती हैं, कुछ-कुछ कल्पित कथाओं पर आधारित हैं। इन लोक कथाओं का कोई लिखित दस्तावेज़ नहीं है अत: ये लोगों की जुबानी एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी होती हुई आई हैं जो इस प्रक्रिया में कुछ-कुछ खो गई हैं तो कुछ लोगों के जेहन में रह गई हैं।"

पश्चिम सियांग जिले वर्तमान लेपारादा के पागी ग्राम के हेड गाम श्रीमान ञादो रीबा के अनुसार- "कोरुम ताने ओक्के आने आबो, ञिन-हागे, ञिक–ञिकोक गादग आगोम मेंनाम रिनाम गाद्देम दोयी-लुमा, नितोम–दोयी ब मेंदो कुक्का। जिमी आनअग ञि मिपू गअ नेन्को एम, हिची गे मेदो ग नेंकोम, आबो–तानी गअ लोक्के न्गुन्नम बअलेन कोम नारु अम रिलेन–मेनलेन नम्मेम दोयी– नितोम एम्दो कुन्ना।" अर्थात्, प्राचीन काल के किस्से-कहानियाँ जिसे बड़े–बुजुर्ग, विद्वान और ज्ञानी लोगों के द्वारा हम लोग सुनते आए हैं, वही लोक कथा है। इन लोक कथाओं में जिमी आनअ से मिपू का जन्म, हिची/पृथ्वी और आसमान के जन्म की कथा, आबो तानी से लेकर जीव–जगत के सभी प्राणियों के जन्म की कथाओं को ही नितोम दोयी अर्थात् लोक कथा कहते हैं। गालो में कल्पित लोक कथाओं की अक्षय निधि है। इन लोक थाओं का महत्त्व तब तक है जब तक ये गालो

जनजातीय लोगों के जन-जीवन से संबंधित हैं। पर वक़्त की रफ्तार के साथ-साथ पीढ़ी दर पीढ़ी इन लोक कथाओं का महत्त्व और इनके स्वरूप में परिवर्तन के आसार नज़र आने लगे हैं।

यह सत्य है कि परिवर्तन समय की मांग होती हैं, वक़्त बहुत बड़ी शक्ति होती है, इसमें हर चीज़ को बदलने की ताक़त होती हैं। गालो लोक कथाओं में भी समय–समय पर परिवर्तन होती आई है इसलिए कई बार एक ही लोक कथा को लोग भिन्न–भिन्न तरीके से सुनाते हैं। लोक कथाओं में विभिन्न प्रकार के विषय समाहित होते हैं, पर इसका मुख्य उद्देश्य होता है श्रोता को नैतिक शिक्षा प्रदान करना। विभिन्न लोक कथाओं में नैतिकता की विभिन्न कहानियाँ जुड़ी हुई होती हैं, जो आगे चलकर बच्चों को सही-गलत की शिक्षा देकर उनका मार्गदर्शन करती हैं। अत: इसका बच्चों के व्यक्तित्व के विकास में बहुत ही अहम महत्त्व होता है। गालो जनजाति में जब भी कोई बच्चा कुछ गलत आचरण करता है तो लोग कहते हैं– 'आनअ आबो दोयी मोमा पानाम गारिबअ रिला, आनअ आबो दोयी-लुमा तामाना ओमेअ ञी रिमा दो', अर्थात् 'माता–पिता ने जैसे उसे लोक कथा नहीं सुनाया हो.... माता-पिता एवं बुजुर्गों द्वारा कथा-कहानियाँ नहीं सुनने वाले बच्चे आगे चलकर अच्छे इंसान नहीं बनते'। अर्थात्, इंसान के व्यक्तित्व की रचना में इन कथाओं की बहुत ही अहम भूमिका होती है। लोक कथाओं से व्यवहार ज्ञान, लोक ज्ञान, समाज के आचार-विचार, रहन-सहन, खान–पान, रीति-रिवाजों आदि की शिक्षा मिलती है।

इन्हीं कथनों से पता चल जाता है कि हमारे जनजातीय समाज में लोक कथाओं का कितना अधिक महत्त्व है। लोक कथाओं के द्वारा बुजुर्ग अपने नवीन पीढ़ियों में नीति एवं आदर्श की शिक्षा देते हैं। लोक कथाएँ बच्चों के बौद्धिक शक्ति और उनके व्यक्तित्व के विकास में काफी योगदान देती हैं।

गालो लोक कथाओं का वर्गीकरण:

गालो में बहुत सारी लोक कथाएँ हैं जो सदियों से पीढ़ी देर पीढ़ी मौखिक परंपरा में चली आ रही हैं। ये लोक कथाएँ गालो जनजातीय जीवन की लोक संस्कृति एवं परंपरा के परिचयात्मक इतिहास की द्योतक हैं। गालो लोक कथाओं पर गालो जनजाति के प्रमुख विद्वान श्रीमान मोर्गअ अतअ के अनुसार गालो लोक कथाओं के अनेक प्रकार होते हैं, इनमें से कई कथाएँ वीर पुरुषों पर आधारित होती हैं। इस प्रकार की लोक कथाओं में वीर पुरुषों की वीरता एवं शौर्यपूर्ण कार्यों का ही वर्णन अधिक होता है। इस प्रकार उन्होंने गालो लोक कथाओं के जो विभिन्न प्रकार बताए हैं उसे अध्ययन की सुविधा हेतु इस शोध पत्र में उसके विषयानुसार विभिन्न वर्गों में विभाजित किया है।

(क) उत्पत्तिमूलक लोक कथाएँ

(ख) उपदेशात्मक लोक कथाएँ

(ग) प्रेममूलक लोक कथाएँ

(घ) मनोरंजनपरक लोक कथाएँ

(ङ) भूत-प्रेत की लोक कथाएँ

गालो लोक कथाओं में संप्राप्य स्त्री-विषयक सामाजिक दृष्टि-

गालो में स्त्री से संबंधित विभिन्न विषयों पर लोक कथाओं का बहुत ही समृद्ध भण्डार है। इन लोक कथाओं में प्रमुख विषय हैं- सृष्टि के विकास की लोक कथा, धरती पर इंसान और सभी जीव-जंतुओं की उत्पत्ति पर लोक कथा, मनुष्य के विस्थापन की कथा, आदिम मानव आबोतानी के विवाह की कथाएँ, उपदेशात्मक लोक कथाएँ आदि। इनमें से कई लोक कथाएँ स्त्री विषयक हैं, जिनमें स्त्रियाँ ही मुख्य पात्र की भूमिका निभाती हैं। इन लोक कथाओं में स्त्री पात्रों के लौकिक एवं अलौकिक दोनों रूपों का वर्णन उपलब्ध है। गालो लोक कथाओं में परी-कथाओं का अभाव है, वह शायद इसीलिए है कि गालो लोक कथाएँ वास्तविकता के धरातल पर बुनी गई जिसमें स्त्रियों की छवि वास्तविक रूप में रेखांकित हुए हैं। इन लोक कथाओं में रोचकता, नीति एवं आदर्श की शिक्षा एवं मनोरंजन के साथ गालो जनजातीय जीवन के प्राचीनकाल के इतिहास और उससे संबंधित स्त्री-जीवन से जुड़ी कई महत्त्वपूर्ण जानकारियाँ भी समाहित हैं। इन लोक कथाओं में गालो जनजातीय जीवन में स्त्री के महत्त्व, सृष्टि की उत्पत्ति में जिमी आनअ के रूप में स्त्री की महत्त्वपूर्ण भूमिका, मनुष्य के धरती पर कृषि-कार्य के प्रारंभ में मोपीन आनअ के रूप में स्त्री की भूमिका, स्त्री के अदम्य साहस एवं वीरता, बहन के प्रति बहन का असीम प्रेम, माता, पत्नी, बहन आदि के रूपों में पुरुष की मार्गदर्शिका बनी स्त्री के रूपों एवं आयामों का वर्णन उपलब्ध हैं।

आधारित कई आस्थाओं एवं मान्यताओं पर आज भी गालो लोगों का विश्वास है। आज भी लोग जिमी आनअ को माता स्वरूप मानते हैं, मोपीन आनअ की आराधना करते हुए प्रत्येक वर्ष पाँच से सात अप्रैल तक मोपीन त्योहार मानते हैं, दियी तामी को लक्ष्मी देवी का अवतार मानकर अपने नासू (धान रखने के गोदाम) में उनकी याद में अनाज रखते हैं, सूर्य को माता मानकर अपने जीवन का साक्षी मानते हैं, क्योंकि उससे कुछ भी छुपा हुआ नहीं है यह मानकर कोई भी पाप-अपराध आदि करने से डरते हैं। यहाँ तक कि इन्हीं लोक कथाओं पर आधारित और इनसे जन्मी लोक आस्थाओं एवं मान्यताओं पर गालो समाज की आचार-संहिता एवं दंड-संहिता आधारित होती है। गालो लोक कथाओं की स्त्रियों की छवि अत्यंत ही उद्दात्त, मजबूत और यथार्थ के धरातल एवं वास्तविकता से मेल खाती हुई है, जो परी कथाओं जैसी भ्रामक और राजसी व सजावटी ठाठ–बाठ और शानो शौकत से कोसों दूर है।

गालो लोक गाथाओं के तहत विभिन्न लोक गाथाओं पर विचार प्रस्तुत किया गया है, जिसके तहत यह पाया गया है कि गालो लोक गाथाओं में मनोरंजन, रोचकता, आनंद आदि प्रदान करने के साथ–साथ इसमें नीति और उपदेश का भी समावेश है। इसके पठन से कई बार ऐसा लगता है कि मनोरंजन के बहाने इनमें नैतिकता का संदेश ही अधिक दिया गया हो। इन लोक गाथाओं में गालो जनजातीय समाज के स्त्री–जीवन के तमाम पहलुओं का चित्रण प्रस्तुत किया गया है। इनके हर लोक गाथाओं से जुड़े गीतों पर स्त्रियाँ नृत्य करती हैं। नृत्य न केवल लोगों के तन और मन में स्फूर्ति जगाता है बल्कि यह आपसी एकता, सद्भावना और आपसी-सौहार्द्र का भी परिचायक है।

लोक गाथाओं में वर्णित समाज और उससे जुड़ी संस्कृति में स्त्री का जो स्थान है वह अत्यंत ही गौरवपूर्ण एवं महत्त्वपूर्ण है। हरेक लोकगाथा में समाज में स्त्री के अत्यंत ही अहम भूमिकाओं का चित्रण है। जिमी आनअ, मोपिन देवी, आञी पिंकू–पिंतअ, दियी तामी आदि का अलौकिक रूप अत्यंत ही गौरवपूर्ण है, साथ ही साथ

अन्य लौकिक पात्र जैसे तोपो गोनअ, आञि कारपू–कारलू, आञि कोयो-कोयी, लूब राय की बड़ी बहन अञि राय आदि पात्र भी किसी से कम नहीं हैं। वे सभी अपने सामर्थ्य के अनुसार अपने घर-परिवार और समाज के उत्थान में अपना योगदान देती हैं। ञिर्मेन आलो लोकगाथा में धूर्त तापेन के बहकावे में आकर अपनी ज़िंदगी बर्बाद करने वाली बहन दीडूम भी एक अत्यंत ही महत्त्वपूर्ण पात्र है जो युवतियों को जीवन का बहुत ही अहम पाठ पढ़ाती है। वास्तव में गालो लोक गाथाओं की दुनिया साहित्यिक दृष्टियों से बहुत ही समृद्ध और महत्त्वपूर्ण है। इनमें स्त्रियाँ कभी अलौकिक रूप में होती हैं, जिनके पास पूरे ब्रह्मांड को रचने की शक्ति होती है, तमाम जीव-जंतुओं को पैदा करने की ताकत होती है। विश्व–जननी के रूप में चमत्कार करती हैं आदि। इस प्रकार वे आदिम मानव आबोतानी का मार्गदर्शन भी करती हैं, उन्हें कृषि-कार्य सिखाकर पारिवारिक ज़िंदगी जीने की प्रेरणा देती हैं। गालो लोक गाथाओं में स्त्री के विविध रूपों का चित्रण किया गया है जो विभिन्न भूमिकाएँ निभाती हैं। अपनी हर रूप में स्त्री पुरुषों की सहचरी बनकर उनकी प्रेरणा बनकर उनका सही मार्गदर्शन करती हुई उन्हें सदा उन्नति और प्रगति की ओर अग्रसर करती हैं।

इन लोक गाथाओं में वर्णित आम स्त्रियाँ उपेक्षिता, शोषित, असहाय, अबला, पददलित बिल्कुल भी नहीं होती वे साधारण स्त्रियाँ होते हुई भी अत्यंत ही सच्चरित्र, सुशील और मजबूत होती हैं। इन लोक गाथाओं में मनुष्य के जीवन में स्त्री की महत्ता को प्रतिपादित किया है। संकलित लोक गाथाओं में कल्पना की प्रचुरता है, पर यही साहित्य समाज का इतिहास है भले ही इसकी प्रामाणिकता संदिग्ध हो पर कल्पना यथार्थ की ही भूमि पर पनपती हैं और वहीं से उड़ान भरती है। लोक साहित्य में लोक कथा, लोक गाथा, लोकगीत आदि में बहुत कुछ तथ्य कल्पना के साथ घुल मिलकर रचा गया होता है, जिससे मानव के इतिहास की बहुत सारी जानकारियाँ प्राप्त होती हैं। गालो लोक कथाओं के अनुसार आबोतानी के जीवन में जितनी भी स्त्री पात्र आई, सभी गुणवती, सच्चरित्र, सुशील, मंगलकारी और आदर्श स्त्रियों की सर्वोत्तम मिसाल थी। वे आबोतानी के साथ थी पूरी तरह से समर्पित अर्धांगिनी बनकर उनकी सेवा करती रही मगर फिर भी आबोतानी नहीं सुधरे। उनकी पत्नियाँ आदर्श पत्नी की प्रतिमूर्ति बनकर सदा उनकी सेवा में जुटी रहती थी। मगर अपनी चंचल पुरुष वृत्ति के कारण आबोतानी का अपनी पत्नियों से बहुत जल्द जी भर जाता था। उन्होंने कई विवाह किए, वह एक के बाद एक करके जितनी जल्दी नई पत्नी ब्याह लाते उतनी ही जल्दी उन्हें त्याग भी देते थे। आबोतानी की पत्नियाँ उनके सभी दुर्व्यवहार सहती रही पर नारी सुलभ सौम्यता एवं कोमल भावनाओं के कारण उनसे प्रेम करती रही और सदा उनको उत्कर्ष के मार्ग पर चलने की प्रेरणा देती रही। धरती की तरह सहनशील और शांत ये स्त्रियाँ, आबोतानी से कभी नहीं लड़ी; अपनी गरिमा एवं गौरव को बनाए रखी।

उपर्युक्त विश्लेषण के बाद यह निष्कर्ष निकलता है कि गालो लोक कथाओं में स्त्री के विविध रूपों एवं आयामों का वर्णन उपलब्ध है। इन लोक कथाओं में रोचकता, नीति एवं आदर्श की शिक्षा एवं मनोरंजन के साथ गालो जनजातीय जीवन की प्राचीनकाल के इतिहास और उससे संबंधित स्त्री-जीवन से जुड़ी कई महत्त्वपूर्ण जानकारियाँ भी समाहित हैं। इन लोक कथाओं में गालो जनजातीय जीवन में स्त्री के महत्त्व, सृष्टि की उत्पत्ति में जिमी आनअ के रूप में स्त्री की महत्त्वपूर्ण भूमिका, मनुष्य के धरती पर कृषि-कार्य के प्रारंभ में मोपीन आनअ के रूप में स्त्री की भूमिका, स्त्री के अदम्य साहस एवं वीरता, बहन के प्रति बहन का असीम प्रेम, माता, पत्नी, बहन आदि के रूप में पुरुष की मार्गदर्शिका बनी स्त्री के रूपों का वर्णन उपलब्ध है। इन लोक कथाओं में प्राप्त

लोक-आस्थाओं एवं मान्यताओं पर आज भी गालो लोगों का विश्वास है। आज भी लोग जिमी आनअ को माता स्वरूप मानते हैं, मोपीन आनअ की आराधना करते हुए प्रत्येक वर्ष पाँच से सात अप्रैल तक मोपीन त्योहार मनाया जाता है, दियी तामी को लक्ष्मी देवी का अवतार मानकर अपने नासू (धान रखने के गोदाम) में उनकी याद में अनाज रखती हैं, सूर्य को माता मानकर अपने जीवन का साक्षी मानते हैं, क्योंकि उस से कुछ भी छुपा हुआ नहीं है यह मानकर कोई भी पाप-अपराध आदि करने से डरते हैं।

गालो लोक गाथाओं के तहत विभिन्न लोक गाथाओं पर विचार प्रस्तुत किया गया है, जिसके तहत यह पाया गया है कि गालो लोक गाथाओं में मनोरंजन, रोचकता, आनंद आदि प्रदान करने के साथ–साथ इसमें नीति और उपदेश का भी समावेश है। इसके पठन से कई बार ऐसा लगता है कि मनोरंजन के बहाने इनमें नैतिकता का संदेश ही अधिक दिया गया हो। इन लोक गाथाओं में गालो जनजातीय समाज के स्त्री–जीवन के तमाम पहलुओं का चित्रण प्रस्तुत किया गया है। इनके हर लोक गाथाओं से जुड़े गीतों में स्त्रियाँ नृत्य करती हैं। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि सांस्कृतिक एवं पारंपरिक विरासत के निर्माण में अरुणाचल प्रदेश की गालो जनजातीय गालो लोक कथाओं में स्त्री की भूमिका अत्यंत ही अहम एवं महत्त्वपूर्ण हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

कृष्णदेव उपाध्याय, लोक साहित्य की भूमिका, साहित्य भवन, दिल्ली.

सत्येंद्र, लोक साहित्य विज्ञान, हिन्दी साहित्य मंदिर, राजस्थान, जोधपुर, संस्करण-2006

हरीश कुमार शर्मा, फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यासों में लोक संस्कृति, प्रथम संस्करण, नई दिल्ली

धर्मराज सिंह, अरुणाचल की गालो जनजाति और उसकी सामाजिक व्यवस्था, नई दिल्ली

ईली दोय, ए स्टडी ऑफ द गालो मिथ्स, नेशन प्रेस, नई दिल्ली

तेजूम पादू, गालो पोनू एण्ड मेम्मेन, विवेकानंद केंद्र इंस्टीट्यूट, गुवाहाटी

आर.एन कोली, बातम पर्टिन एण्ड एस.चन्दा– द एडिटोर्स, फोल्क सोंग्स ऑफ अरुणाचल प्रदेश वॉल्यूम डाइरेक्टोरेट ऑफ रिसर्च, अरुणाचल प्रदेश, 2018

*(**लेखकीय परिचय :** अरुणाचल प्रदेश की लोकप्रिय कथाकार डॉ. तुम्बम रीबा 'लिली' देरा नातुङ शासकीय महाविद्यालय, ईटानगर, अरुणाचल प्रदेश के हिंदी विभाग में सह प्रोफेसर हैं। आपकी कई पुस्तकें प्रकाशित हैं- 'कातम', 'उस रात की सुबह' आदि। मोबा: 9436635234, ई-मेल: lilyriba2006@gmail.com)*

अरुणाचल केंद्रित लेखन और नंद किशोर पाण्डेय

हरीश कुमार शर्मा

राजीव गांधी विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग को प्रोफेसर नंदकिशोर पांडेय एक वरदान की तरह मिले। उनका इस विभाग के लिए योगदान अप्रतिम है। विभाग के माध्यम से उन्होंने अरुणाचल प्रदेश में हिंदी के विकास के लिए, विशेषकर उच्च शिक्षा में हिंदी के विकास के लिए जो कुछ किया; वह अमिट है, अविस्मरणीय है। उन्होंने विद्यार्थी नहीं, भावी शिक्षक तैयार किए। रचनाकार तैयार किए। आज उनके कई शिष्य रचनात्मकता की अच्छी-खासी ऊँचाइयों को स्पर्श कर चुके हैं, परंतु उनमें लेखन का प्रारंभिक आत्मविश्वास और उत्साह पैदा किया प्रो. नंदकिशोर पांडेय ने। उन्होंने विभाग से 'अरुण प्रभा' पत्रिका की शुरूआत की। उनके लिखने के लिए बहुतेरे मंच थे। स्वयं विश्वविद्यालय से एक शोध पत्रिका निकलती थी, जिसमें हिंदी के लिए भी एक कोना छेका रहता था। उनके कुछ लेख उसमें प्रकाशित भी हैं। मगर इससे उनका उद्देश्य पूरा नहीं होता था। हिंदी-लेखन हेतु उसकी एक सीमा थी। जिसके कारण वे स्वयं तो लिख सकते थे, पर अपने विद्यार्थियों को एक व्यापक मंच नहीं दे सकते थे। साथ ही अरुणाचल से संबंधित सामग्री का भी उतने बड़े पैमाने पर प्रकाशन उसके माध्यम से नहीं हो सकता था, जैसा वे चाहते थे। अतः उन्होंने हिंदी में एक स्वतंत्र शोध पत्रिका निकालने के लिए सफल प्रयास किया। कहा जा सकता है कि 'अरुण प्रभा' उन्होंने अपने लिए नहीं, अरुणाचल में हिंदी-लेखन के नवोदय के लिए विशेषकर निकाली। अरुणाचल प्रदेश की रचनाधर्मिता को आगे लाने के लिए तथा देश की रचनाधर्मिता से अरुणाचल के अपने विद्यार्थियों को परिचित कराने के लिए निकाली। उन्होंने इसमें अपने विद्यार्थियों को प्रोत्साहित कर उनसे तो लिखवाया ही, विश्वविद्यालय के अन्य प्रतिष्ठित विद्वानों से भी हिंदी में लिखवाया या उनसे अंग्रेजी में लिखवाकर हिंदी में अनुवाद करके छपवाया। उनके समय में 'अरुण प्रभा' के भले ही दो अंक निकल सके, लेकिन उनके विभागाध्यक्ष रहने के दौरान प्रकाशित हुआ दूसरा संयुक्तांक, जो कि अरुणाचल पर केंद्रित था; आज भी एक मानक संदर्भ-स्रोत है। तब अरुणाचल से हिंदी में पत्रिका निकालना आसान काम नहीं था। हिंदी में टाइप करने वाला भी कोई ढूँढ़ने से नहीं मिलता था। अतः इस कार्य की कठिनता को समझा जा सकता है।

अरुणाचल-केंद्रित लेखन की बात करें तो प्रो. नंदकिशोर पाण्डेय का लिखने से भी अधिक महत्त्व लिखवाने को लेकर है। उनके समय में 'अरुण प्रभा' के दो अंक प्रकाशित हुए, जिनमें से एक अरुणाचल विशेषांक के रूप में था। आरा से निकलने वाली एक पत्रिका 'जनपथ' का भी अरुणाचल विशेषांक उनके अतिथि संपादन में निकला। 'अरुण प्रभा' का प्रवेशांक सन् 2001 में प्रकाशित हुआ। पत्रिका की दिशा का संकेत तत्कालीन कुलपति कमल कांत द्विवेदी के संदेश से स्पष्ट हो गया था- ''आप 'अरुण प्रभा' के प्रवेशांक में ही राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय स्तर के विद्वानों का लेख छाप कर प्रशंसनीय कार्य कर रहे हैं। अरुणाचल पर भी उल्लेखनीय सामग्री प्रकाशित करने से पत्रिका अवश्य संग्रहणीय बनेगी। महाविद्यालयीय प्राध्यापकों की भागीदारी से पत्रिका का क्षेत्र व्यापक होगा।'' अरुणाचल विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग तथा 'अरुण प्रभा' से यहाँ के लोगों की क्या अपेक्षा थी, इसको भी इसी प्रवेशांक में प्रकाशित विश्वविद्यालय के उस समय के

कुलसचिव श्री जोराम बेगी के संदेश में व्यक्त इन विचारों से समझा जा सकता है- ''अरुणाचल विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के ऊपर अरुणाचल में हिंदी साहित्य ही नहीं, हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार तथा संवर्धन का भी गुरुतर दायित्व है। अरुणाचल की जनजातीय संस्कृति, पारिवारिक-सामाजिक व्यवस्था आदि को भी हिंदी माध्यम से प्रस्तुत करने और देश के शेष भागों से परिचित कराने का दायित्व भी इस विभाग के ऊपर है।'' कहना न होगा कि प्रो. नंदकिशोर पांडेय की अगुवाई में विभाग ने इस दायित्व को स्वीकारा और पूरी गंभीरता और सफलता के साथ इसका निर्वहन किया। हिंदी विभाग से 'अरुण प्रभा' का प्रकाशन तो आरंभ हुआ ही, स्थानीय बोलियों और उनमें मौखिक रूप से उपलब्ध लोक साहित्य पर शोध कार्य भी आरंभ हुआ।

यह भी हिंदी के आचार्यों के लिए कोई सहजता से गले उतर जाने वाली बात नहीं थी। दूसरी भाषाओं में लिखे साहित्य के हिंदी अनुवाद पर सीधे शोध करने की परंपरा हिंदी में नहीं रही है। यह माना जाता रहा है कि या तो हिंदी के साथ तुलनात्मक रूप में उस पर कार्य हो सकता है या फिर अनुवाद विज्ञान की दृष्टि से उसका मूल्यांकनपरक अध्ययन। और, अरुणाचल की उन बोलियों पर कार्य, जिनका संविधान की अष्टम अनुसूची में स्थान भी नहीं है! अरे, राम-राम! जब अभी तक इस पर मुँह बिचकाने वाले और काम में अड़ंगा लगाने वाले लोग मिल जाते हैं तो उस समय तो और भी कठिनाई रही होगी, जिसे समझना मुश्किल नहीं है। राजीव गांधी विश्वविद्यालय में विभागीय शोध समिति से स्वीकृत होने के पश्चात शोध प्रारूप को विश्वविद्यालय के बाहर के तीन विशेषज्ञ विद्वानों के पास समीक्षा और अनुमोदन हेतु भेजे जाने का नियम है। देश भर के अलग-अलग विद्वानों के पास यह प्रारूप जाता है और स्वीकृति के लिए कम-से-कम दो का सकारात्मक अनुमोदन अनिवार्य है। अभी हाल ही में एक प्रोफेसर ने एक शोध प्रारूप को यह लिखकर नकार दिया कि इस रूप में इस पर शोध कार्य की अनुमति नहीं दी जा सकती। और कारण? कारण वही कि यह अरुणाचली लोक साहित्य पर है, जो हिंदी से सीधे संबंधित नहीं है; क्योंकि अरुणाचल की बोलियाँ हिंदी के अंतर्गत नहीं आतीं। दुखद तो यह कि वे सज्जन संभवतः पूर्वोत्तर के ही किसी विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के प्रोफेसर थे। यद्यपि उनके ऐसा लिखने से कुछ बिगड़ा नहीं, क्योंकि दो अन्य लोगों की रिपोर्ट सकारात्मक थी। स्वीकृति देने वाले वे अन्य दो विशेषज्ञ भी आखिर हिंदी के ही प्रोफेसर थे! हम लोगों ने अपने कुलपति जी को यह बात बताई तो वे भी नाराज हुए और कहा कि ऐसे लोगों को आगे से काली सूची में डालिए। कहने का अभिप्राय यही है कि जब आज के समय में ऐसा सोचने वाले लोग मौजूद हैं, तब जब नंद किशोर पाण्डेय जी के समय इसकी शुरूआत की गई होगी तब कितनी कठिनाइयाँ आई होंगीं। लेकिन, उन्होंने यह किया। हम लोग तो उन्हीं के बनाए पदचिन्हों पर चल रहे हैं।

बहरहाल हिंदी में अरुणाचली लोक साहित्य और उसके माध्यम से अरुणाचली समाज, संस्कृति और भाषा पर अध्ययनों की शुरूआत शोध कार्य में हुई और कई अच्छे शोध-प्रबंध सामने आए। यह परंपरा अब भी जारी है। बात यह है कि अरुणाचल प्रदेश में निवास करने वाली शताधिक जनजातियों के पास अपनी-अपनी ऐसी जनभाषाएँ हैं जिनकी अपनी लिपियाँ न होने से वे बोली तक ही सीमित रह गईं, भाषा का दर्जा न पा सकीं। जबकि इन जनजातियों की सामाजिक, सांस्कृतिक, दार्शनिक अभिव्यक्तियाँ इनमें हुई हैं। यह स्थिति अरुणाचल की बोलियों के ही साथ नहीं है, पूर्वोत्तर की अन्य अनेकानेक बोलियों के साथ भी है। इतना ही नहीं भारत भर में भी ऐसी बहुत सी बोलियाँ मिल जायेंगीं। तो, उनका साहित्य कैसे सुरक्षित हो, किसमें संरक्षित हो? किस भाषा

में उनका अध्ययन-मनन हो? उनका वैशिष्ट्य कैसे उजागर हो? कौन सी लिपि उनके लिखित रूप प्राप्त करने की वाहक बने?

इधर की लगभग सभी जनजातियों और उनके साहित्य पर प्रारंभिक रूप में कुछ काम हो सका तो वह अंग्रेजी में। अतः स्वाभाविक ही रोमन लिपि को भी इन बोलियों की अभिव्यक्तियाँ लिखित रूप में लाने के लिए अपना लिया गया। अब सब लोग यह तो चाहते हैं कि साहब, ये बोलियाँ रोमन के बजाय देवनागरी में लिखी जायें, पर कुछ संकुचित मनोवृत्ति वाले आचार्य यह नहीं चाहते कि उन्हें हिंदी से भी जोड़ा जाए। मतलब कि, आप उन्हें अपनी लिपि तो देना चाहते हैं, पर उन्हें अपनी भाषा नहीं देना चाहते या कि भाषा में नहीं लेना चाहते हैं। यह क्या बात हुई? ठीक है इन बोलियों का हिंदी से प्रकृत्या वैसा संबंध नहीं है, जैसा अवधी, भोजपुरी, ब्रज, मारवाड़ी, निमाड़ी, गढ़वाली आदि का है; परंतु अरुणाचल जैसे प्रदेश, जिन्होंने बोलचाल के स्तर पर हिंदी को अपनी भाषा के रूप में अपना लिया है- तो उनकी बोलियाँ कहाँ जायें? किधर उनकी गिनती हो? इस बात को समझते हुए पांडेय सर के समय विश्वविद्यालय में अरुणाचली लोक साहित्य पर हिंदी में शोध कार्यों का सफल सिलसिला शुरू हुआ, जो आज और भी अप्रतिहत गति से जारी है।

अरुणाचल जैसे प्रदेश, जिसने हिंदी को अपनी संपर्क-भाषा के रूप में आत्मसात कर लिया है और जहाँ पठन-पाठन के लिए तो हिंदी का भरपूर उपयोग हो ही रहा है, लेखन भी आरंभ हो चुका है, वहाँ की बोलियों को तकनीकी दृष्टि से बहुत सही तर्क नहीं होने पर भी व्यावहारिक दृष्टि से हिंदी की ही बोलियाँ मानकर उन पर काम होना चाहिए और हो भी यही रहा है। होना तो यह चाहिए कि यदि किसी भी भारतीय भाषा का साहित्य हिंदी में अनूदित रूप में उपलब्ध है, तो उस पर भी शोध के द्वार विश्वविद्यालयों के हिंदी विभागों को खोलने चाहिए। राजीव गांधी विश्वविद्यालय इस दिशा में भी अपने कदम पहले ही आगे बढ़ा चुका है। साहित्य का शोध विज्ञान और गणित का शोध नहीं है कि एक-एक अक्षर का उसमें ऐसा महत्त्व हो कि वह इधर से उधर हो गया तो सब परिणाम बिगड़ जाएगा और अर्थ के बजाय बहुत अनर्थ हो जायेगा। साहित्य का लक्ष्य भी समाज होता है और शोध तथा आलोचना का भी साहित्य के माध्यम से अंततः लक्ष्य समाज ही होता है। साहित्य के द्वारा हम उसमें अभिव्यक्त समाज विशेष की प्रवृत्तियों को समझते हैं, उनका अध्ययन करते हैं और निष्कर्ष निकालते हैं। इसलिए मूल और अनुवाद से यहाँ बहुत ज्यादा अंतर नहीं पड़ता।

अस्तु, हम बात कर रहे थे हिंदी में अरुणाचली साहित्य, समाज और भाषा को लाने की। इसके लिए विभाग में शोध-कार्यों का जो क्रम आरंभ हुआ वह तो हुआ ही; 'अरुण प्रभा' पत्रिका के द्वारा भी उन्होंने स्तुत्य प्रयास किया। पहले अंक के संपादकीय में उन्होंने लिखा- ''..हिंदी के लिए यह एक व्यापक संभावनाओं वाला प्रांत है। वर्तमान में अरुणाचल प्रदेश से हिंदी की एक भी, किसी भी प्रकार की कोई पत्रिका नहीं निकल रही है। कभी कोई निकली थी, अब बंद हो गयी। हिंदी विभाग ने यह महसूस किया कि यहाँ की कोई हिंदी पत्रिका होनी चाहिए। ऐसा विचार करने के पश्चात् हिंदी विभाग ने ही एक शोध और आलोचना की अर्द्धवार्षिक पत्रिका निकालने का निश्चय किया है।..'' 'प्रवेशांक' सामान्य था। किसी विशेषांक के रूप में नहीं था। फिर भी उसमें अरुणाचल से संबंधित कई लेख प्रकाशित हुए। 'उदयाद्रि से अरुणाचल' पूर्वोत्तर से बहुत प्रतिष्ठित विद्वान के रूप में मान्य प्रो. कृष्णनारायण प्रसाद 'मागध' का लिखा निबंध है, जो इस अंक के प्रथम आलेख के रूप में प्रकाशित है। मागध जी सचमुच के विद्वान थे और उनकी विद्वता का लाभ संपादक ने अपने पाठकों को दिलाया

है। विभिन्न प्राचीन शास्त्रीय, धार्मिक तथा ऐतिहासिक ग्रंथों का हवाला देते हुए उन्होंने इस लेख में अरुणाचल का इतिहास तो प्रस्तुत किया ही है, उसका अति प्राचीन काल से भारत से अभिन्न संबंध होने संबंधी अनेक प्रमाणों का भी ससंदर्भ उल्लेख किया है। डॉ. रमण शाण्डिल्य का 'गालो लोकोक्तियां' आलेख भी इसी अंक में प्रकाशित है, जिसमें उन्होंने गालो समाज में प्रचलित लोकोक्तियों को हिंदी भावार्थ सहित प्रस्तुत किया है। जनजातीय अध्ययन विभाग के प्राध्यापक डॉ. एम. सी. बेहरा ने अरुणाचल प्रदेश में प्रचलित जनजातीय लोककथाओं के आलोक में इस प्रांत के प्रसिद्ध हिंदू तीर्थस्थल 'परशुराम कुण्ड' का परिचय कराया है। राजनतिशास्त्र विभाग के प्रवक्ता श्री नानी बाथ ने अपने आपातानी समुदाय में मान्य धार्मिक विश्वासों एवं उनके प्रचलन की बदलती स्थिति पर प्रकाश डाला है, तो तत्कालीन हिंदी विभागाध्यक्ष डॉ. अनन्तकुमार नाथ ने असमीया उपन्यासों की विकास-यात्रा से परिचित कराया है। इनके अतिरिक्त प्रो. शुकदेव सिंह, प्रो. सूर्यप्रसाद दीक्षित, प्रो. धर्मदेव तिवारी, प्रो. कमलकिशोर गोयनका तथा डॉ. अवधेश नारायण मिश्र जैसे देश के बहुमान्य विद्वानों के आलेख भी इस अंक में प्रकाशित हुए। स्वयं प्रो. नंदकिशोर पाण्डेय जी का भी इसमें एक बड़े महत्त्वपूर्ण विषय 'काव्य विमर्श में कला का हस्तक्षेप' पर सुचिंतनपरक आलेख प्रकाशित है। कुछ अन्य विषयों पर अन्य लोगों के आलेखों को भी इस अंक में स्थान मिला है।

यह तो प्रवेशांक था। असली काम तो 'अरुण प्रभा' के अगले अंक में हुआ। यह अंक एक वर्ष से भी अधिक देर से आया, लेकिन सब्र का मीठा फल लेकर आया। 'अरुण प्रभा' का यह अंक सन् 2002-03 के संयुक्तांक के रूप में प्रकाशित हुआ। प्रवेशांक अर्धवार्षिक रूप में निकला था, परंतु इस अंक तक आते-आते इस पर वार्षिक लिखना पड़ा। मगर विशेष बात है कि यह अरुणाचल विशेषांक था। यही इसमें देरी का कारण भी बना। नंदकिशोर पांडेय जी इसके प्रधान संपादक थे। उनके अरुणाचल में रहते 'अरुण प्रभा' के ये दो ही अंक निकल पाए (आगे एक लंबे अंतराल का व्यवधान आ गया)। परंतु, यह दूसरा अंक अरुणाचल-केंद्रित हिंदी लेखन के क्षेत्र में मील के पत्थर जैसा है। अरुणाचल प्रदेश से संबंधित किसी एक ही स्थल पर इतनी प्रमाणिक, बहुआयामी और संदर्भवान सामग्री हिंदी में पहली बार संचित हुई। अरुणाचल पर कुछ लिखने के लिए यह अंक एक संदर्भ-ग्रंथ की भाँति काम देता है। मैंने कितनी ही बार इसका उपयोग किया है। अरुणाचल पर अभी भी कुछ लिखना होता है तो एक बार इस अंक को अवश्य टटोलता हूँ।

प्रो. नंदकिशोर पांडेय ने अरुणाचल पर अनेक लेख लिखे हैं। दो लेख इस अंक में भी प्रकाशित हैं। मगर, अरुणाचल में रहते उन्होंने इस प्रदेश से संबंधित जो कुछ लिखा; उससे भी अधिक महत्त्व उनका अरुणाचल पर अन्य लोगों से और विशेषकर अपने छात्र-छात्राओं से लिखवाने को लेकर है। यह बात मैं पहले भी कह चुका हूँ। इस अंक को इस रूप में निकालने के लिए उन्हें बहुत परिश्रम करना पड़ा होगा, इसमें कोई संदेह नहीं। इस अंक के संपादकीय में उन्होंने लिखा है- ''यह अरुणाचल विशेषांक है। द्वितीय अंक की तैयारी प्रायः पूरी हो गई थी, उसी समय विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति प्रो. तामो मिबांग ने अपने एक महत्त्वपूर्ण सुझाव में बताया कि आप इस अंक को अरुणाचल विशेषांक के रूप में प्रकाशित कीजिए। ऐसा विचार हम लोगों के मन में भी चल रहा था, लेकिन सामग्री के अभाव के कारण ऐसा कर पाना संभव नहीं लग रहा था। उस दिन से हम लोग सामग्री-संकलन के कार्य में जुट गए। अरुणाचल प्रदेश पर हिंदी में अच्छा लिखने वालों का नितांत अभाव है। निरंतर आग्रहों के फलस्वरूप मुझे कुछ शोधपत्र अंग्रेजी में प्राप्त हुए। अंग्रेजी शोध पत्रों का अनुवाद

एक श्रमसाध्य और चुनौतीपूर्ण कार्य था। इस कार्य को कई सहयोगियों तथा शोध छात्रों की मदद से पूरा किया गया।''

इस अंक की विशेषता यह रही कि इसमें अरुणाचल से संबंधित लगभग हर पक्ष पर उसके अधिकारी विद्वानों द्वारा लिखवाकर लेख प्रकाशित किए गए और विशेषांक को पूर्णता प्रदान करने का कार्य किया गया। इस अंक में प्रकाशित प्रमुख विद्वानों और उनके लेखों का परिचय स्वयं संपादक के ही शब्दों में देखें- ''अरुणाचल विश्वविद्यालय के कुलसचिव डॉ. ताई न्योरी कुशल प्रशासक होने के साथ-साथ विद्वान लेखक भी हैं। उन्होंने ईटानगर पर एक परिचयात्मक लेख लिखकर ईटानगर नामकरण के प्रति जो तरह-तरह की भ्रांतियाँ हैं, उन्हें दूर किया है। प्रो. तामो मिबांग ने आदी साहित्य पर महत्त्वपूर्ण सामग्री का संचयन कर मुझे प्रदान किया। प्रोफेसर मिबांग मूलतः इतिहास के वरिष्ठतम प्रोफेसर हैं। साहित्य, विशेषकर लोक साहित्य उनकी रुचि का विषय है। इसमें उनकी गहरी पैठ भी है। प्रो. सृष्टिधर दत्त पूरे पूर्वोत्तर के सर्वाधिक चर्चित इतिहासकारों में से एक हैं। हमारे विश्वविद्यालय के वरिष्ठतम प्रोफेसर हैं। उन्होंने अरुणाचल के इतिहास के स्रोत पर शोध पत्र लिखकर 'अरुण प्रभा' के स्तर को बढ़ाया है। प्रो. जे. सी. सोनी ने अरुणाचल में माध्यमिक शिक्षा के इतिहास और वर्तमान को व्यौरेवार प्रस्तुत किया ही है, भविष्य के लिए दिशा-निर्देश भी प्रस्तुत किया है। प्रो. सोनी अरुणाचल के वरिष्ठ शिक्षाविद हैं। प्रो. धर्मदेव तिवारी संस्कृत और हिंदी के प्रख्यात आचार्य हैं। आपने आदी भाषा के व्याकरण विशेषकर सर्वनामों पर नूतन दृष्टि से विचार कर उन तमाम लोगों की मान्यताओं को खंडित किया है जो इसे तिब्बत-बर्मीज परिवार से जोड़ते हैं। इस अंक में अरुणाचल के प्रखर विचारकों ने अपने शोध पत्र दिए हैं। डॉ. पुरा तादो अरुणाचल की पुरानी और नई पीढ़ी के बीच के सेतु हैं। ये राजनीतिशास्त्र विभाग में रीडर हैं। इन्होंने अरुणाचल की एक उन्नत जनजाति आपातानी की प्राचीन न्यायिक व्यवस्था पर महत्त्वपूर्ण शोध पत्र लिखा है। पूरे अरुणाचल में इस समय अपने प्राचीन धर्म और संस्कृति से जुड़ने का एक आंदोलन जोरों से चल रहा है। इस आंदोलन के सूत्रधार और प्रखर विचारक श्री ताना सोरेन हैं। इतिहास विभाग में प्रवक्ता हैं। उन्होंने 'दोन्यी-पोलो' से जुड़े 'न्येदर नामलो' के विकास और वर्तमान स्वरूप को शोध और प्रत्यक्ष अनुभवों के आलोक में उपस्थित किया है। डॉ. तोमो रिबा अरुणाचल प्रदेश में भूगोल के एक मान्य प्राध्यापक हैं। इन्होंने यहां की एक बड़ी और चर्चित जनजाति गालो की महिलाओं की स्थिति पर एक सूक्ष्म अध्ययन प्रस्तुत किया है। डॉ रमेश चंद्र जोशी ने अरुणाचल की भौगोलिक स्थिति को वैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत किया है। यह पत्र अरुणाचल के भूगोल को लेकर उत्पन्न तमाम भ्रमों को दूर करता है। हमें ईटानगर संदर्भ पुस्तकालय के पुस्तकालयाध्यक्ष कमलेश कुमार पांडेय, प्रसिद्ध हिंदी सेवी डॉ. रमण शाण्डिल्य एवं मनहंस कुमार नील ने अरुण प्रभा के लिए अपने महत्त्वपूर्ण आलेख दिए हैं। इनके सहयोग को हम विशेष रूप से स्मरण करते हैं। महाविद्यालय के मित्रों यथा डॉ. विनोद कुमार मिश्र, डॉ मनीष शर्मा एवं हरिनिवास पांडेय ने अल्प सूचना पर यथाशीघ्र शोध पत्र लिखकर जो सहयोग पहुँचाया है उसे मैं उनके किसी भी सारस्वत अनुष्ठान के प्रति लगाव का परिचायक मानता हूँ। अरुणाचल के वरिष्ठ पत्रकार श्री फणिभूषण दास गुप्त ने यहां की पत्रकारिता के विकास को क्रमवार प्रस्तुत किया है। दास गुप्त जी यहाँ पीटीआई के मैनेजर रहे हैं। इतने वरिष्ठ कलम से लिखा गया यह लेख इस पत्रिका के लिए उपलब्धि है। अरुणाचल के दिवंगत उपन्यासकार माननीय लुम्मेर दाई की पत्नी श्रीमती नान्यी

दाई ने मेरे आग्रह को स्वीकार करते हुए दाई जी के अंतिम उपन्यास पर श्रद्धांजलि स्वरूप इस अंक के लिए लिखा है। यह उनके सद्भाव और हिंदी प्रेम का प्रतीक है।''

इस प्रकार प्रदेश के इतिहास, भूगोल, शिक्षा, पत्रकारिता, समाज, धर्म, भाषा, साहित्य, कला, लोक-विश्वास, त्योहार, परंपराएं आदि सभी विषयों पर उनके जानकार नामचीन लोगों से आलेख एकत्र कर प्रकाशित किए गए। सबसे अच्छी और बड़ी बात इस अंक की यह है कि इसने पहली बार अरुणाचली विद्यार्थियों-शोधार्थियों को हिंदी में लिखने का हौसला दिया। इस अंक के लेखक-लेखिकाओं में जोराम यालम, जोराम आनिया, ओकेन लेगो, तेची उपेन तारा- ये वे नाम हैं जिनके सबके नाम के साथ अब डॉक्टर लग चुका है और ये सब विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालयों में प्राध्यापक-प्राध्यापिका के रूप में तो कार्यरत हैं ही, एक अच्छे लेखक-लेखिका के रूप में भी प्रतिष्ठित हैं। इस अंक के संपादकीय में प्रो. पांडेय ने लिखा है कि '' 'अरुण प्रभा' अरुणाचल प्रदेश में मात्र एक पत्रिका नहीं है, एक आंदोलन है।'' सचमुच ही यह एक आंदोलन सिद्ध हुआ। जो लोग अंग्रेजी में लिखते थे, उनके लेखन को हिंदी में लाकर उनकी रुचि हिंदी की ओर कुछ जागृत इस पत्रिका के माध्यम से की गई। जिन छात्रों का कभी कहीं कुछ छपा नहीं था, शायद पहले लिखा भी न हो; उनमें लिखने और छपने का चाव इस पत्रिका ने पैदा किया। इन लोगों ने लिखा भले पहली बार हो, छपे भले वे पहली बार किसी शोध-पत्रिका में हों; पर यथार्थ यह है कि उनके लेखों को देखकर यह अहसास होता नहीं है कि वे नवप्रशिक्षुओं द्वारा लिखे गए हैं। अतः इस प्रशिक्षण हेतु तथा उनके लेखन को तराशने में एक अध्यापक और संपादक- दोनों रूपों में उनकी भूमिका को समझा जा सकता है।

इस अंक में स्वयं डॉ. नंदकिशोर पांडेय के भी अरुणाचल से संबंधित दो लेख प्रकाशित हैं। अंक में पहला लेख न्यीशी जनजाति की पूजा-पद्धति और उसके प्रकारों से संबंधित है। यह अरुणाचल प्रदेश की सबसे बड़ी जनजातियों में से एक है। यह जनजाति अरुणाचल प्रदेश में अपनी जनसंख्या और प्रभाव दोनों दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। दोन्यी-पोलो पूजक आबोतानी परिवार की इस जनजाति में विभिन्न समस्याओं एवं अवसरों के अनुसार जो पूजा की विधियाँ प्रचलित हैं, उनको लेख का विषय बनाया गया है। लेखक के ही शब्दों में इस लेख की विषयवस्तु का परिचय देखें- ''न्यीशी जनजाति का विभिन्न प्रकार की पूजा और मंत्रों में बहुत विश्वास है। न्यीशी में पुजारी को न्यूब कहते हैं। बड़ी पूजा में मुख्य पुजारी के साथ सहायक पुजारी भी होता है। यह व्यक्तिगत स्तर पर भी कुछ पूजा संपादित करते हैं। प्रकृति के साथ इनका घनिष्ठ संबंध है। इनकी मान्यता है कि व्यक्ति जब भोजन करता है तो उस समय उस पर कई प्रकार की दृष्टियाँ आ पड़ती हैं। इसलिए भोजन प्रारंभ करने से पूर्व अन्न के कुछ कण विभिन्न दिशाओं में फेंकना चाहिए। कुछ लोग अभी भी ऐसा करते हैं। इनके यहाँ कई प्रकार की पूजा होती है। पूजा में विभिन्न प्रकार के मंत्रों का उपयोग होता है। अलग-अलग बीमारियों के लिए अलग-अलग पूजा है। कुछ पूजा व्यक्तिगत उन्नति से जुड़ी हुई है तो कुछ पूजा शत्रु के नाम से। इस शोध पत्र में न्यीशी जनजाति द्वारा संपन्न की जाने वाली पूजा का वर्णन किया गया है। पूजा में प्रयुक्त पूजा-द्रव्य और अभिचार का भी विवेचन है। पूजा करवाने के कारणों का भी उल्लेख है।''

इस आलेख में प्रेतात्मा उतारने, शक्ति प्राप्त करने, सांसारिक रोगों से मुक्त होने, परिवार में शक्ति-वृद्धि एवं समृद्धि के लिए, पारिवारिक-सामाजिक उन्नति के लिए, न्योकुम त्योहार के अवसर पर, अपाहिज बच्चों को ठीक करने तथा उन्हें अपाहिजपन से बचाने के लिए, जानवरों के स्वास्थ्य एवं संरक्षण के लिए, महामारी से

बचाव के लिए, विष उतारने के लिए, अदृश्य सांसारिक पहरेदारों को प्रसन्न कर उनसे अपने रक्षण हेतु, शाप-मुक्ति हेतु, कसम-मुक्ति हेतु मृत्योपरांत आत्मा की शांति हेतु, पंजिका तथा भविष्य देखने हेतु जो भिन्न-भिन्न प्रकार की पूजाएँ न्यीशी जनजाति में कराए जाने का नियम है, उनका विवेचन किया गया है। यह पूजाएँ न्यूब (पुजारी) द्वारा संपन्न कराई जाती हैं। इन ''पूजाओं और उससे संबंधित मंत्रों पर न्यीशी जनजाति का बहुत विश्वास है। ये अपने पुजारियों को बहुत आदर और सम्मान की दृष्टि से देखते हैं। इनका पुजारी इस जनजाति के रीति-रिवाजों और विभिन्न प्रकार की बीमारियों तथा उनकी पहचान कर उपर्युक्त मंत्रों का प्रयोग करने में दक्ष माने जाते हैं। आज की न्यीशी जनजाति विकसित होती चिकित्सा सुविधाओं का भी उपयोग करने लगी है।''

इन समस्त प्रकार की पूजा-रीतियों का बड़ा प्रमाणिक विश्लेषण इस आलेख में किया गया है। एक गैर जनजातीय व्यक्ति को इतनी सूक्ष्मता के साथ इस विषय को प्रस्तुत कर पाना सहज नहीं रहा होगा। परंतु, उन्होंने विषय को प्रामाणिक बनाने के लिए न्यीशी जनजाति के गहन जानकार विश्वविद्यालय के तत्कालीन कुलपति श्री जोराम बेगी के सहयोग से इसे पूर्णतः प्रामाणिक बना दिया है। न्यीशी समाज की इन पूजा-पद्धतियों के बारे में पढ़कर कहीं-कहीं अपने क्षेत्र में प्रचलित पूजा-पद्धतियों की भी याद आती आती चलती है, जैसे- प्रेत-मुक्ति से संबंधित पूजा। ''मंत्र प्रारंभ करने के पहले और मंत्र प्रारंभ होने के बाद बीच-बीच में जब पुजारी प्रेत ग्रसित व्यक्ति से बात करता है तो वह व्यक्ति प्रेतात्मा के रूप में जवाब देता है। मंत्रों के प्रभाव के कारण जब प्रेतात्मा शरीर छोड़कर चली जाती है तब प्रेतग्रस्त व्यक्ति गहरी नींद में सो जाता है। अगर ऐसे व्यक्ति के लिए पुजारी को बुलाकर शीघ्रता से मंत्र-तंत्र न किया जाए तो व्यक्ति की मृत्यु हो सकती है।'' ऐसे ही भोजन करते करने के पूर्व अन्न के कुछ कण विभिन्न दिशाओं में फेंकने के बारे में जानकर एक सामान्य हिंदू द्वारा खाना आरंभ करने से पहले थाली में से कुछ कर निकाल कर भोग के रूप में रखा जाना याद आ आता है।

दूसरा आलेख आदी जनजाति के भाषा-साहित्य से संबंधित है, जिसमें आदी भाषा और उसके साहित्य की एक झलक प्रस्तुत की गई है। आदी भी न्यीशी की भाँति प्रदेश की एक बड़ी जनजाति है। कहा जाए तो संख्या-बल की दृष्टि से यह दोनों प्रदेश की सबसे बड़ी जनजातियाँ हैं। आदी असल में एक बड़ा जनजातीय समूह है, जिसमें लगभग दर्जन भर उपजनजातियाँ समाहित हैं। इस जनजाति के लोग भी आबोतानी परिवार के अंतर्गत आते हैं। इनकी भाषा का नाम इनकी जनजाति के अनुसार ही आदी है, जिसको डॉ. ग्रियर्सन ने असम के तिब्बत-बर्मन परिवार की भाषा के रूप में रखा है। इस भाषा के पास भी अपनी परंपरागत लिपि न होने से यह बोली के रूप में ही समाज में प्रचलित रही। आधुनिक समय में आकर रोमन लिपि के माध्यम से जो कुछ आदी साहित्य लिखा जा सका है, उसी का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में विवेचन इस लेख में किया गया है। लेखक लिखते हैं- ''आदियों ने रोमन लिपि को अपनी भाषा की लिपि के रूप में अपनाया है और वे विगत तीस वर्षों से इस लिपि में लिखते आ रहे हैं। पासीघाट शहर के निकट डोंपोक गांव के निवासी स्वर्गीय ओकेप तायेंग सबसे पहले आदी लेखक हैं जिन्होंने 1947 में अपनी पहली पुस्तक 'पादाम आखोर' को प्रकाशित किया। इस पुस्तक के माध्यम से उन्होंने रोमन लिपि को लोगों के बीच लाने और उसे लोकप्रिय बनाने का प्रयास किया। आदियों ने इसे सहर्ष स्वीकार किया। फिर भी कुछ लोगों ने इस लिपि को स्वीकार करने की दिशा में कुछ आपत्तियाँ व्यक्त कीं, इसके फलस्वरूप यह पूर्ण विकसित नहीं हो पाई।

आदी भाषा के इतिहास में 1970-71 ने एक महत्त्वपूर्ण मोड़ लिया। यह वह साल था जब आदियों ने पूर्ण रूप से रोमन लिपि को अपना लिया और कालांतर में लेखक उभरकर सामने आए। इन कई आदी लेखकों में तालोम रुकबो, तागांग ताकी, ओशोंग इरिंग, आराक मेगू, तालुक तामुक, कालिंग बोरांग और लुम्मेर दाई आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।'' इस तरह से इस लेख से आदी भाषा और साहित्य के विकास एवं स्थिति के साथ आदी भाषा के लिए रोमन लिपि के प्रयोग के इतिहास-संबंधी जानकारी भी संक्षेप में प्राप्त होती है। प्रदेश में प्रांतीय आस्था और संस्कृति के संरक्षण-संबंधी आंदोलन के जन्मदाता और वाहक के रूप में तालोम रुकबो की बड़ी प्रतिष्ठा है। प्रदेश सरकार में भाषा अधिकारी, एरिया ऑर्गेनाइजर, विशिष्ट अधिकारी (संस्कृति) आदि पदों पर रहे लेखक, कवि, कलाकार और महान समाजसेवी श्री तालोम रुकबो ने ''अपनी सृजनात्मकता और कलात्मकता को पूर्ण अभिव्यक्ति प्रदान करने हेतु तथा समाज सेवा को बल प्रदान करने हेतु.. 1976 में सरकारी नौकरी से त्यागपत्र दे दिया। उन्होंने यह महसूस किया कि आधुनिकता की हवा ने राज्य के जनजातीय लोगों के जीवन और उनकी प्रणाली को पूरी तरह प्रभावित किया है। उन्होंने पाया कि लोगों की परंपरागत जीवन शैली को आधुनिकता की हवा ने झकझोर कर रख दिया है। इसने राज्य के जनजातियों की पहचान पर प्रहार किया है। यही कारण है कि उन्होंने अपनी रचनाओं में परंपरा के संरक्षण और विकास पर विशेष बल दिया है।''

इस आलेख में पांडेय जी ने तालोम रुकबो के अलावा ओशोंग इरिंग, तागांग ताकी आदि लेखकों के अवदान पर तो संक्षिप्त चर्चा की ही है, 'आदी सांस्कृतिक एवं साहित्यिक समाज', 'आदी आगम केबांग' (आदी साहित्य सभा) और 'दोन्यी पोलो येलम केबांग' जैसी संस्थाओं द्वारा प्रकाशित दर्जन भर पुस्तकों की सूची भी प्रस्तुत की है। लेख के अंत में कई कवियों तथा उनके द्वारा रचित कविताओं के नामों की सूची भी प्रस्तुत की है। कुछ उद्धरण देकर रचनाओं की बानगी भी प्रस्तुत की है, जिनसे आदी भाषा के साहित्यिक-सामर्थ्य का पता चलता है। लेख में प्रस्तुत तालोम रुकबो की 'मैं पशु हूँ, मैं पक्षी हूँ' कविता के एक अंश का हिंदी भावार्थ देखें- ''हम लोगों के रहने के लिए अब जंगल नहीं रह गया है। हम लोगों के बैठने के लिए पेड़ नहीं रह गए हैं। हमारी जिंदगी समाप्त करने के बाद अब जंगल बर्बाद किए जा रहे हैं। क्या यह एक असुर की क्रूरता नहीं है? क्या यह एक राक्षसी प्रवृत्ति नहीं है?'' वस्तुतः यह आलेख विश्वविद्यालय के तत्कालीन प्रतिकुलपति प्रो. तामो मिबांग द्वारा अंग्रेजी में एकत्र की गई सामग्री के आधार पर तैयार किया गया था, जिसका उल्लेख लेख के अंत में लेखक ने कर दिया है।

राजीव गांधी विश्वविद्यालय के अपने कार्यकाल में प्रशासनिक समस्याओं के चलते प्रो. नंदकिशोर पांडेय 'अरुण प्रभा' के भले ही मात्र दो अंक निकाल पाए, परंतु उन्होंने इसकी कुछ क्षतिपूर्ति की 'जनपथ' पत्रिका के अतिथि संपादक बनकर। बिहार राज्य के आरा से अनंत कुमार सिंह के संपादन में निकलने वाली मासिक पत्रिका का सन् 2009 का दिसंबर अंक अरुणाचल विशेषांक के रूप में निकला था और इसके अतिथि संपादक थे प्रो. नंदकिशोर पांडेय। 'अरुण प्रभा' की रही-सही कसर उन्होंने पूरी की इस अंक में। इस अंक का स्वरूप कैसा बन पड़ा है और इस तरह के कार्यों का महत्त्व क्या है, इसे समझने के लिए पत्रिका के संपादक अनंत कुमार सिंह के 'पहली हराई' स्तंभ में व्यक्त विचारों को देखा जा सकता है- ''बहरहाल सामग्री के चयन में उनकी व्यापक दृष्टि का, राष्ट्रीयता का, राजभाषा के प्रति प्रेम का भाव साफ जाहिर होता है। डॉ. पांडेय जी

का पूरा प्रयास रहा है कि प्रकृति का कोप और वरदान वाले इस राज्य की वास्तविक स्थिति, यहाँ की सभ्यता, संस्कृति, रीति-रिवाज, न्याय-व्यवस्था, वहां की समस्याएँ, धारणाएँ राष्ट्र के सामने आएं।''

'जनपथ' के इस विशेषांक में पांडेय जी ने कोई लेख तो नहीं लिखा है, लेकिन विस्तृत संपादकीय लिखा है। इस संपादकीय में उन्होंने अति संक्षेप में ही अरुणाचल के इतिहास, राजनीतिक यात्रा और स्थिति, भारत के साथ प्रागैतिहासिक और ऐतिहासिक संबंधों के साक्ष्य, यहाँ के उत्पाद, आवागमन, इतिहास की समस्या आदि पर प्रकाश डाला है। यहाँ की बोलियों और उनके लिए अपनाई जाने वाली लिपि से संबंधित मतभेदों की चर्चा करते हुए प्रदेश में हिंदी की स्थिति पर भी उन्होंने अपनी टिप्पणी की है। लिखते हैं- ''लिपि पर बहस और प्रयास आज अरुणाचल में चरम पर है। ऐसे अरुणाचल में कक्षा एक से शोध स्तर तक हिंदी की पढ़ाई होती है। सभी अरुणाचली हिंदी बोलने में गर्व की अनुभूति करते हैं। अपना अनुभव यह है कि अरुणाचल में जो विद्यार्थी जितना अधिक सीमांत क्षेत्र से ईटानगर आता है, उसकी हिंदी उतनी ही अच्छी है। चीन सीमा से लगे हुए कई पूरे-के-पूरे गांव हिंदी में बोलते हैं। यही स्थिति भूटान और वर्मा से लगे क्षेत्रों की भी है।''

सन् 2000 में डॉ. नंदकिशोर पांडेय अरुणाचल विश्वविद्यालय में रीडर के रूप में नियुक्ति पाकर आए और फिर 2002 में हिंदी विभागाध्यक्ष बने। इस बीच में और इसके बाद उन्होंने विद्यार्थियों के हित में क्या-क्या किया, इससे संबंधित कुछ प्रमुख बातों का तब तक का लेखा-जोखा भी इस संपादकीय में प्रस्तुत किया है। उन्होंने लिखा है- ''मैंने 1 सितंबर 2000 ईस्वी में अरुणाचल विश्वविद्यालय (अब राजीव गांधी विश्वविद्यालय) में रीडर के रूप में कार्यभार ग्रहण किया तो एक-दो वर्ष पढ़ाने के पश्चात यह अनुभव किया कि यहाँ से बड़ी प्रतिभाएँ निकल सकती हैं। आवश्यकता है इन पर यथोचित परिश्रम करने की। हिंदी विभाग एक वर्ष पूर्व ही 1999 में तमाम प्रकार के विरोध, संघर्ष एवं प्रयासों के बीच प्रारंभ हुआ था। बहुत से वरिष्ठ लोगों की यह मान्यता थी कि यहाँ हिंदी कोई क्यों पढ़ेगा? यह विभाग दो-चार वर्षों में यूँ ही बंद हो जाएगा। कार्यभार ग्रहण करने के पहले ही दिन दूसरे विषयों के विद्यार्थियों ने मुझसे कहा सर यहाँ तो स्कूल और महाविद्यालयों में हिंदी वर्षों से है, किंतु अरुणाचली लेक्चरर एक भी नहीं है। यही बात कई बार कुलपतियों ने भी कही। मुझे लगा कि अरुणाचल में काम की दिशा मुझे मिल गई है। 2002 में मैं विभागाध्यक्ष हो गया। मैंने पहला काम स्नातक और स्नातकोत्तर स्तर पर पाठ्यक्रमों में परिवर्तन का लिया। इसका चमत्कारिक असर हुआ। आज हिंदी विभाग में 27 नेट स्लेट उत्तीर्ण छात्र हैं। इनमें से पांच-छह विद्यार्थियों ने दो से तीन बार नेट की परीक्षाएँ उत्तीर्ण की हैं। आज यह कहते हुए गर्व की अनुभूति हो रही है कि तमाम अरुणाचली विश्वविद्यालय से लेकर महाविद्यालय तक हिंदी व्याख्याता पद पर कार्यरत हैं। दूसरी बार मैं 2008 में पुनः विभागाध्यक्ष बना। इस बार प्रोफेसर एवं अध्यक्ष पद से विश्वविद्यालय ने सम्मानित किया। यह एक संयोग है कि इसी के साथ विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में एम. फिल. प्रारंभ करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। पाठ्यक्रम निर्माण करते समय मैंने यह ध्यान रखा कि भारत के बड़े व प्रतिष्ठित विश्वविद्यालयों की तुलना में हमारे विद्यार्थी पिछड़ न जाएं, इसलिए पाठ्यक्रम स्तरीय होना चाहिए। आज हिंदी विभाग में एम. ए. के एक सत्र में 44 स्थान हैं। सौ के आस-पास प्राइवेट छात्र भी एम. ए. की परीक्षा देते हैं। प्रतिवर्ष दो-तीन विद्यार्थी प्रथम श्रेणी में भी उत्तीर्ण होते हैं। इनमें से बहुत से विद्यार्थी भारत के तमाम विश्वविद्यालयों के हिंदी के विद्यार्थियों से कमजोर नहीं हैं। मैं यह बातें इसलिए बता रहा हूँ कि इस हिंदीतर भाषी प्रदेश में हिंदी के विकास की पर्याप्त संभावनाएँ हैं। आवश्यकता उन्हें अवसर देने की है।''

इसी अंक के संपादकीय में वे लिखते हैं- ''यह अंक केवल कुछ सूचनाओं का संग्रह नहीं है। यह देश को जोड़ने का उपक्रम है। हिंदी आंदोलन का हिस्सा है। अल्पज्ञात जनजातीय समाज को हिंदीतर क्षेत्र में हिंदी माध्यम से परिचित करवाने की दिशा में महत कदम है। हिंदी विभाग की शोध पत्रिका 'अरुण प्रभा' के द्वितीय अंक के संपादकीय में मैंने लिखा था कि पहली बार अरुणाचल पर हिंदी में इतनी बड़ी मात्रा में सामग्री प्रस्तुत की जा रही है। अब यह कहा जा सकता है कि 'जनपथ' ने हिंदी में अरुणाचल पर सबसे अधिक सामग्री को प्रकाशित किया है।..'' 'जनपथ' के इस अंक में कुछ लेख और लेखक तो प्रायः वही हैं जो 'अरुण प्रभा' के अरुणाचल विशेषांक में प्रकाशित हैं। परंतु कई नये अरुणाचली लेखक-लेखिका इससे उभरकर सामने आये। जमुना बीनी, तारो सिन्दिक, पद्मावती अंगङ, डॉ. सोनम वाङमू, दोगे ङमदिर आदि ऐसे ही नाम हैं। इनके अतिरिक्त प्रो. ब्योमकेश त्रिपाठी, प्रसिद्ध नारायण चौबे, डॉ. विनोद कुमार मिश्र, डॉ. शिवानंद झा, रमेशचन्द्र चतुर्वेदी, डॉ. अरुण कुमार पाण्डेय, अमरेन्द्र त्रिपाठी तथा हरीश कुमार शर्मा के अरुणाचल से संबंधित विविध पक्षों पर आलेख भी इस अंक में संकलित हैं। अंक में 'अरुणाचल प्रदेश और हिंदी' शीर्षक से लिखा गया अमरेन्द्र त्रिपाठी का विचारोत्तेजक लेख जोरदार है तो जमुना बीनी द्वारा अरुणाचल के प्रसिद्ध लेखक वाई. डी. थोंग्ची से लिया गया साक्षात्कार एवं पत्रकार प्रतुल जोशी का 'संचित कर लेना चाहता हूँ स्मृतियाँ' शीर्षक से अरुणाचल-संबंधी यात्रा-वृत्तांत पत्रिका की उपलब्धि है।

सच कहें तो उन्होंने यह आंदोलन किसी विचार या विचारधारा को फैलाने को लेकर नहीं था। यहाँ हिंदी की स्थिति सुदृढ़ करने को लेकर था। हिंदी में यहाँ अच्छे शोधार्थी, अध्यापक और रचनाकार उत्पन्न करने को लेकर था। इसमें वे कितने सफल हुए, इसके लिए कोई अलग से प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं। आज राष्ट्रीय फलक पर चमकने वाले कई रचनाकार प्रदेश में तैयार हो चुके हैं और ये सब उन्हीं के दौर के उनके शिष्य-विद्यार्थी हैं। सन् 2018 में डॉ. तारो सिंदिक को अपने पहले काव्य-संग्रह के लिए हिंदी में साहित्य अकादमी का युवा पुरस्कार मिल चुका है। यह उनकी और अरुणाचल प्रदेश की ही नहीं, समूचे पूर्वोत्तर की एक बड़ी साहित्यिक उपलब्धि है; क्योंकि इससे पहले हिंदी में किसी को पूर्वोत्तर से साहित्य अकादमी नहीं मिला था। और भी रोचक बात यह कि जिस काव्य-संग्रह 'अक्षरों की विनती' पर उन्हें ये महत् सम्मान मिला, वह उनका तो प्रथम काव्य-संकलन था ही, अरुणाचल प्रदेश के किसी स्थानीय रचनाकार का भी हिंदी में प्रथम काव्य-संकलन था। राजीव गांधी विश्वविद्यालय के हिंदी विभागाध्यक्ष और भाषा संकायाध्यक्ष रह चुके उनके प्रिय शिष्य प्रो. ओकेन लेगो अभी पुनः हिंदी विभागाध्यक्ष हैं। 2017 में उन्हें अपनी हिंदी सेवाओं के लिए मध्य प्रदेश साहित्य अकादमी के एक लाख रुपये के सम्मान से मध्य प्रदेश के तत्कालीन मुख्यमंत्री के हाथों सम्मानित किया गया जा चुका है। उनकी पीएच. डी. शोधार्थी रहीं और अभी राजीव गांधी विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में एसोशिएट प्रोफेसर डॉ. जोराम यालाम नाबाम का एक कहानी संकलन, एक उपन्यास, एक संस्मरण-संग्रह और एक आलोचनात्मक ग्रंथ प्रकाशित हो चुका है और वे ठीक-ठाक पहचान अपनी हिंदी जगत में बना चुकी हैं। इसी विभाग में वरिष्ठ सहायक प्रोफेसर डॉ. जमुना बीनी तादर की एक आलोचना पुस्तक, एक काव्य-संग्रह, एक कहानी संग्रह तथा एक लोककथाओं का संकलन प्रकाशित हो चुका है, उन्हें कई सम्मानों से सम्मानित किया जा चुका है। ईटानगर कॉलेज की हिंदी विभागाध्यक्ष डॉ. जोराम आनिया ताना को मॉरिशस में हुए विगत विश्व हिंदी सम्मेलन में तब की विदेश मंत्री स्व. श्रीमती सुषमा स्वराज द्वारा उनकी हिंदी सेवाओं के लिए 'विश्व

हिंदी सेवी सम्मान' से सम्मानित किया गया था। ईटानगर कॉलेज में ही सहायक प्रोफेसर के रूप में कार्यरत श्रीमती तुम्बम रिबा का भी एक उपन्यास और एक लोककथा-संकलन प्रकाशित हो चुका है तथा अभी उत्तर प्रदेश राज्य कर्मचारी संघ, लखनऊ द्वारा एक लाख रुपये के सम्मान से उन्हें सम्मानित किया गया है। ये सभी इसका प्रमाण हैं। यहाँ के एक महाविद्यालय में सहायक प्रोफेसर ताई तुगुंग नाटककार हैं, जिनके अरुणाचली हिंदी में लिखे नाटक काफी लोकप्रिय हुए हैं। नाम और भी बहुत सारे हैं जो शीघ्र ही राष्ट्रीय पटल पर अपनी चमक बिखेरने की तैयारी में हैं। ऐसे ही प्रदेश के विद्यालयों-महाविद्यालयों में स्थानीय हिंदी अध्यापक-प्राध्यापकों की नित्य-प्रति बढ़ती संख्या भी उनकी सफलता की कहानी कह रही है। तीन तो उनके तराशे हुए पौधे विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में ही हैं, जो अब छायादार विराट वटवृक्ष बनाने की ओर अग्रसर हैं। तीनों की अपनी अलग-अलग विशेषताएं और पहचाने हैं।

'भारतीय लोक साहित्य कोश' का संपादन किया है- डॉ. सुरेश गौतम और डॉ. वीणा गौतम ने। उसके खंड-2 में अवधी, अंगिका, उर्दू, उड़िया, कन्नड़ तथा कन्नौजी के साथ अरुणाचल को भी स्थान मिला है। पृष्ठ 647 से 680 तक 34 पृष्ठ अरुणाचल को समर्पित हैं। अरुणाचल के लोक साहित्य पर लिखने का दायित्व संभाला है डॉ नंदकिशोर पांडेय ने। यह एक बड़े महत्त्व का काम उन्होंने किया है। अरुणाचल प्रदेश के बारे में बहुत अच्छी जानकारी आज भी देश के अन्य भूभाग के लोगों को नहीं है। वहाँ के समाज, संस्कृति, साहित्य और भाषाओं के बारे में तो और भी नहीं। अतः यह एक ऐतिहासिक और राष्ट्रीय महत्त्व का काम उन्होंने किया है। इस लेख में सर्वप्रथम उन्होंने अरुणाचल का संक्षेप में परिचय दिया है। अरुणाचल में लोक साहित्य का क्या महत्त्व है, जनजीवन में इसकी क्या भूमिका है और इसका अध्ययन क्यों आवश्यक है, इसके लिए इस आलेख के आरंभ में ही प्रस्तावना-स्वरूप व्यक्त उनके विचार द्रष्टव्य हैं। लिखते हैं- ''यहां जीवन लोक है, लोक जीवन है। आस्था, विश्वास, रहन-सहन, खान-पान, सृष्टि की उत्पत्ति तथा विकास, सामाजिक, पारिवारिक रिश्ते- सब कुछ लोकगीत, लोककथा, लोकमान्यता और लोकविश्वास से संचालित हैं। अरुणाचल प्रदेश भारत का एक ऐसा प्रदेश है जहाँ विज्ञान लोक में है, दर्शन लोक में है, साहित्य और संस्कृति लोक में है तथा पुराण और इतिहास भी लोक में है। तमाम प्रकार के सांस्कृतिक समूहों का एक मिलन-स्थल हिमालय की गोद में है, जहाँ सबने अपनी-अपनी आस्थाओं और मान्यताओं को यहाँ आकर मिला दिया है या अपार जल समूह में स्वतः घुल गया है। यहाँ दोन्यी-पोलो हैं, रंगफ्राह हैं, बुद्ध हैं, शिव हैं, विष्णु हैं और साथ ही दिक्करवासिनी ताम्रेश्वरी हैं। ये सभी देवी-देवता लोकमुख में हैं। इतिहास और पुराण का दबाव यहाँ नहीं चलता। अरुणाचली भाषाओं की अपनी कोई सर्वमान्य लिपि नहीं है। सब कुछ बानी है। इतिहास के सच को भी ढूँढ़ना है तो लोक से ही निकाला जाएगा।''

अपने इस आलेख में उन्होंने आदी से आरंभ कर न्यीशी, गालो, आपातानी, आका, मिजी, सुलूंग, हिलमिरी, तागिन, मोंपा, शेरदुक्पेन, खामती, सिंहफो, मेंबा और खंबा, मिशमी, फकियल, बांचू, नोक्टे, तांग्सा आदि तक प्रायः सभी प्रमुख जनजातियों का परिचय प्रस्तुत किया है। इस संक्षिप्त परिचय में उनका खान-पान, रहन-सहन, कृषि, कला, जीवन-शैली प्रथा-परंपरा, भौगोलिक स्थिति, इतिहास आदि तक बहुत सी बातें सम्मिलित हो सकी हैं। अरुणाचल और उसके जनजीवन के बारे में परिश्रमपूर्वक गहन जानकारी जुटाकर लेखक ने इसमें प्रस्तुत की है। उदाहरण के लिए देखें आपातानी जनजाति द्वारा नमक-निर्माण की पारंपरिक विधि का

कैसा स्पष्ट ज्ञान लेखक ने कराया है- ''यह जनजाति प्राचीन काल से ही कुछ पौधों की राख के साथ पानी मिलाकर नमक बनाने की कला से परिचित है। जीरो क्षेत्र में कुछ पौधे ऐसे पाए जाते हैं, जो अधिक नमकीन होते हैं। आपातानी लोग इन पौधों को टुकड़े-टुकड़े काटकर तेज धूप में सुखाए जाने के बाद उसे जलाते हैं। उसकी राख को एक पात्र में विशेष ढंग से रखकर उसमें धीरे-धीरे पानी डालते हैं। पानी रिस-रिस कर नीचे गिरता है। इस पानी को संग्रहीत कर लेते हैं। फिर एक निश्चित आँच पर पानी को जलाते हैं। इस प्रकार नमक तैयार हो जाता है। यह नमक आयोडीन-युक्त होता है। आपातानी क्षेत्र में घेंघा के रोगी नहीं मिलते हैं। इसका कारण इस वानस्पतिक नमक का प्रयोग भी बतलाया जाता है।

इसी प्रकार से तांग्सा जनजाति के गृह-निर्माण की विशेषताओं को बताते हुए भी वे लिखते हैं- ''यह जमीन पर चांग जैसा बनाकर उसके ऊपर मकान बनाते हैं। मकान बनाते समय पानी की उपलब्धता और स्रोत पर विशेष ध्यान देते हैं। इनके मकान के तीन मुख्य भाग होते हैं। सामने वाले भाग का उपयोग 'कामनरूम' या अतिथि बैठक की तरह होता है। इस कक्ष को विभिन्न त्योहारों के अवसर पर मारे गए जानवरों यथा भैंसा, सुअर आदि की खोपड़ियों से सजाकर रखते हैं। बीच वाले हिस्से को कई भागों में विभाजित कर देते हैं। इसे जुमोंग कहा जाता है। अतिथि सामने वाले हिस्से में ही बैठते हैं। मध्य भाग में उनको नहीं ले जाते हैं। पिछले भाग में वे अपने घरेलू सामानों को रखते हैं। सामने के हिस्से में आग जलाकर रखते हैं। वहाँ बैठकर बातें करते हैं। आग पर चाय आदि बनाते हैं।''

इस अध्याय का दूसरा भाग लोक साहित्य से संबंधित है। इसमें सर्वप्रथम लोकगीतों का विवेचन किया गया है। कई गीत अपने मूल रूप में हिंदी भावार्थ सहित उद्धृत किए गए हैं। इन गीतों में लोरी गीत, प्रार्थना गीत, सृष्टि की उत्पत्ति-संबंधी गीत सहित अनेक अन्य गीत भी शामिल हैं। अरुणाचली जनों की विशिष्ट जीवन-स्थितियाँ और मनोभावनाएं इनमें प्रकट हुई हैं। इनमें भावनापरक से लेकर कथापरक तक छोटे-बड़े गीत सम्मिलित हैं। अधिकतर गीतों का स्वर विषादी है। देखें एक न्यीशी गीत का भाव, जिसमें लड़की विवाहोपरांत अपने मायके को याद करती हुई अपनी मनोभावनाओं को व्यक्त कर रही है। इस गीत से जनजातीय समाज में लोगों का लोगों से पारस्परिक रागात्मक संबंध तो व्यक्त होता ही है, विवाह-पूर्व घर में लड़कियों के कृत-कर्मों की भी सूचना मिलती है। ''प्रातःकाल मुर्गी के बांग देने के साथ ही हम जगकर अपनी सहेलियों के साथ धान कूटते थे। उसके बाद जंगल में सब्जियाँ तथा लकड़ियाँ इकट्ठा करने जाते थे। अब मैं अपनी सहेलियों की अनुपस्थिति महसूस करूँगीं। उन्हें भी मेरी याद सताएगी। अब मैं अपनी सहेलियों के साथ जंगल में जाकर सब्जियाँ इकट्ठा नहीं कर पाऊँगी। यह सोच-सोच कर मुझे रुलाई आ रही है।

एक अन्य गीत में एक बूढ़ी स्त्री निराला की कविता 'स्नेह निर्झर बह गया है, रेत जो तन रह गया है' की याद दिला देती है। लेख से उद्धृत गीत के भावार्थ रूप में उस वृद्धा के कुछ निराशापूर्ण मनोभाव देखें- ''...मैंने अपने प्रारंभिक जीवन में कई नौकर खरीदे, नौकरानियाँ खरीदीं। कई बहुएँ लाई। सोचती थी तो मुझे लगता था कि मेरी खुशी का कभी अंत नहीं होगा। लेकिन अब इन लड़खड़ाते कदमों का कोई सहारा नहीं है। मैंने बहुत से बच्चों को जन्म दिया। अब सुबह आँखें खोलती हूँ तो कोई दिखाई नहीं पड़ता। शाम को भूख लगती है, लेकिन प्यार से खिलाने वाला कोई नहीं है। अब मेरे पास केवल स्मृतियाँ हैं, और लाठी है। काम करती हूँ तो हाथ काँपने लगते हैं। चलने पर पाँव लड़खड़ाने लगते हैं। मैं ठूँठ पर बैठी अकेली चिड़िया की तरह हूँ। माँ दोन्यी मुझे देखती

होगी।'' यहाँ निराला की पूर्वोक्त गीत की पंक्तियाँ- 'आम की यह डाल जो सूखी दिखी, कह रही है अब यहाँ शिख या शिखी, नहीं आते- अर्थ जीवन का नहीं, जो दह गया है'- अनायास याद आ जाती हैं।

इस विस्तृत आलेख में लोकगीतों के पश्चात् कुछ लोक कथाएँ प्रस्तुत की गई हैं, जिनमें पानी की उत्पत्ति संबंधी आदी कहानी, पानी की उत्पत्ति संबंधी गालो कहानी, सृष्टि की उत्पत्ति और केयुम केरो की कहानी, आग की उत्पत्ति से संबंधित आदी कहानी, मिथुन से संबंधित कहानी, ईटानगर तथा परशुराम कुंड से संबंधित कथा, आभूषण निर्माण से संबंधित कथा तथा जंगली कबूतर का रोना आदि कथाएँ प्रमुख रूप से प्रस्तुत की गई हैं। कुछ सपनों के शुभाशुभ फलों का उल्लेख करने के पश्चात् जनजातिवार प्रमुख लोकनृत्यों का उल्लेख किया गया है। साथ ही कुछ अरुणाचली लोक-नृत्यों का परिचय भी इस आलेख में दिया गया है। इनमें प्रमुख रूप से पोनुंग, देलंग, याकजोंग, पेण्टोमाइन, नारथोन आदि हैं। यों यह लेख एक ही स्थान पर अरुणाचल प्रदेश के लोक साहित्य, समाज और संस्कृति की काफी जानकारी देने में सफल होता है। इस तरह से देखा जाए तो जहाँ भी अवसर हाथ आया है, प्रो. नंदकिशोर पांडेय ने अरुणाचली समाज, संस्कृति, भाषा, साहित्य आदि के उत्थान एवं वैशिष्ट्य-प्रकटीकरण का प्रयास किया है। अरुणाचल में रहते हुए अरुणाचल के उत्थान के प्रति वे बहुत सजग और समर्पित रहे। अरुणाचल से जाने के बाद भी उनको अपनी पूर्व कर्मभूमि का पूरा ध्यान रहा है। इसलिए केंद्रीय हिंदी संस्थान के निदेशक बनने के बाद उन्होंने विशेष तत्परता दिखाते हुए यहाँ की कई बोलियों के अध्येता-कोश तैयार करवाए। लोक साहित्य के संकलन की योजना पर काम आरंभ कराया पिछले दिनों स्वयं और उनके संपादन में 'अरुणाचल की लोककथाएं' नाम से एक पुस्तक प्रकाशित भी हो चुकी है।

(लेखकीय परिचय : *अरुणाचल प्रदेश के मानस और अकादमिक दुनिया से गहरे संपृक्त प्रो. हरीशकुमार शर्मा सिद्धार्थ विश्वविद्यालय, कपिलवस्तु, उत्तर प्रदेश के कला संकाय के संकायाध्यक्ष रह चुके हैं और हिंदी विभाग के प्रोफेसर हैं। इससे पूर्व आपने राजीव गाँधी विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में कई वर्षों तक अध्यापन कार्य किया है तथा विश्वविद्यालय के विभिन्न अकादमिक एवं प्रशासनिक पदों पर रहते हुए अपने दायित्वों का पूर्ण निर्वहन किया है।*

मोबा: 7983809664, ई-मेल : hksgpn@gmail.com)

ताङम के मौखिक साहित्य की दशा: वर्तमान परिप्रेक्ष्य में

तुनुङ ताबिङ

अरुणाचल प्रदेश बहुल जनजातियों वाला प्रदेश है, जहाँ अनेक जनजातियों की भी कई उप जनजातियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। प्रत्येक जनजाति अथवा उपजनजाति की भाषा-बोली एवं मौखिक साहित्य है। उनकी भाषा-बोली एवं मौखिक साहित्य उनके समाज तथा संस्कृति का प्रतिनिधित्व करता है। मौखिक साहित्य किसी भी जनजाति की वह कड़ी है जो उन्हें अपने पूर्वजों से, अपनी अस्मिता से जोड़े रखती है। 'ताङाम आगोम' भी ताङाम उपजनजाति का प्रतिनिधिकर्ता है जो अपनी भाषा-बोली के शब्दों से अपनी पहचान का परिचय देता है। अर्थात् आदी जनजाति की सभी उपजनजातियों की बोली से ताङाम की जुबान थोड़ी अलग है। कहने का तात्पर्य यह है कि ताङाम भाषा-बोली की अनेक शब्दावलियों व उच्चारण प्रवृत्ति आदी जनजाति की अन्य उपजनजातियों से काफी भिन्न जान पड़ती है। किसी भी जनजाति अथवा उपजनजाति की भाषाई दृष्टि से यह अपने आप में बहुत बड़ी विशेषता है। परंतु जब इस विशेष बोली को बोलने वालों की संख्या बहुत कम हो और ऊपर से आधुनिकीकरण का प्रभाव पड़ता जा रहा हो, तो यह उस उपजनजाति के लिए एक विचारणीय स्थिति बन जाती है। अरुणाचल प्रदेश एक ऐसा प्रदेश है जो अपनी प्राकृतिक सुषमा की छटा से सभी के मन को मुग्ध कर देता है, परंतु साथ ही अनेक जनजातीय रंगों की सुंदरता से सबका मन भी जीत लेता है। अरुणाचल प्रदेश जनजाति बहुल प्रदेश है, जहाँ छब्बीस मुख्य जनजातियों एवं अनेक उपजनजातियों का निवास है। इसे 'लघु भारत' जैसे एक समृद्ध ईकाई के रूप में भी जाना जाता है। ऐसा इसलिए क्योंकि भारत की विविधता में एकता के रूप, गुण व स्वर भली-भांति यहाँ दृष्टिगोचर हो जाते है। यहाँ भी त्योहारों के अनेक रंगों को एक साथ देखा जा सकता है। यहाँ की प्रमुख जनजातियों जैसे-आदी, न्यीशी, गालो, मोनपा, अपातानी, तागिन, इदु, मिश्मी, कोरो आका, मिजी, हुसो आका, सिंग्फो आदि सभी की अपनी एक प्रांतीय या यों कह ले कि स्वतंत्र भाषाएँ हैं। इन जनजातियों की अनेक उपजनजातियाँ भी हैं तथा इन उपजनजातियों की संख्या लगभग सौ से अधिक मानी जाती है। अधिकांश उपजनजातियों की अपनी बोली विशेष होती है। किसी भी उपजनजाति की बोली से उनके समुदाय की पहचान बड़े ही आसानी से किया जा सकता है। अन्य शब्दों में कहें, तो ये बोलियाँ अपने समाज व समुदाय का प्रतिनिधित्व करती हैं। भाषाओं की भिन्नता, त्यौहार, रीति-रिवाज, परंपरा, मान्यताएँ, वेश-भूषा, खान-पान, रहन-सहन आदि की विविधताओं के बावजूद भी यहाँ का जनजीवन एक ऐसे सूत्र में बंधा हुआ है, जो सभी को एक-दूजे से जोड़े रखता है। वह सूत्र है-प्रकृति, उनकी पारंपरिक संस्कृति एवं उनका मौखिक साहित्य।

'मौखिक साहित्य' यानी मुंह से सुनाई जाने वाली वैसी वाचिक प्रवृत्तियाँ जिसे हम कथा, कहानी, गाथा, कहावतें, मुहावरे आदि के नाम से जानते हैं, जिसे किसी अन्य व्यक्ति के मुंह से सुनकर हम उसका आनंद उठा पाते हैं, जिनमें किसी लोक जीवन के नीति-नियम, मान्यता, विश्वास तथा शिक्षा आदि की झलकियाँ देखने को मिलती हैं। 'मौखिक साहित्य' की तुलना उस धारा से करना गलत न होगा, जो सदैव सतत रूप से प्रवाहित होती रहती है। यह हमारे जीवन के विकास एवं गतिमयता के गीत गाते हुए प्रवाहित होता रहता है; साथ ही साथ जीवितों को जीविका भी प्रदान करता है। ठीक इसी प्रकार 'मौखिक साहित्य' वह आंतरिक भावधारा है, जो

पीढ़ी-दर-पीढ़ी किसी भी लोक, समाज व समुदाय का पथ प्रदर्शित करता है। वह अपने शब्दों में किसी भी लोक एवं समुदाय आदि की मूल-पहचान, अस्तित्व, अस्मिता, उनके पूर्वजों की देन, बलिदान इत्यादि के स्वर को ध्वनित कर उनकी जीवंत कथा कहता आया है। इनमें अनादर्श, कृत्रिमता आदि बहुत कम देखने को मिलती है, या यों कहें कि इन त्रुटियों के लिए मौखिक साहित्य में कोई स्थान नहीं है, बल्कि वह स्वतंत्र होकर, निर्बाध और निश्छल रूप से अपने जन-जीवन की पहचान उसके गौरव-गान को अपने उत्तर-पीढ़ी को सौंपता जाता है, जिस प्रकार उनके पूर्वजों ने उन्हें सौंपी थी जो कि गौरव से भरा एवं दायित्वपूर्ण विरासत है।

अरुणाचल प्रदेश की अन्य जनजातियों एवं उपजनजातियों के समान ही आदी जनजाति की भी प्रमुख चौदह उपजनजातियाँ हैं। उन उपजनजातियों में से एक उपजनजाति है-'ताङाम'। 'ताङाम' आदी जनजाति की उपजनजातियों में से अल्पसंख्यक उपजनजाति के रूप में जानी जाती है जिसकी जनसंख्या राजीव गाँधी विश्वविद्यालय, ईटानगर के अरुणाचल जनजातीय अध्ययन संस्थान के अंतर्गत 'Center for Endangered Language' (CFEL, 2016) के अनुसार केवल 253 बताई गई है। परंतु टी. के. भट्टाचार्जी द्वारा लिखित 'द ताङाम' (1975) के अनुसार स्पष्ट रूप से हम देख पाते हैं कि किसी अतीत में इस उपजनजाति की जनसंख्या लगभग दो हजार के आस-पास थी। इससे यह प्रमाणित होता है कि इसकी जनसंख्या निरंतर घटती जा रही है और इनकी आबादी के साथ-साथ इनका साहित्य भी विलुप्ति के खतरे से जूझ रहा है। अब ऐसी परिस्थिति में उनका मौखिक साहित्य ही एक मात्र ऐसा माध्यम है जिसके आधार पर वे अपने मूल की, अपने अस्तित्व की रक्षा करते आ रहें हैं। अपने अस्मिता को बनाये रखने के लिए उनकी भाषा एवं उनका मौखिक साहित्य ही एक ऐसा 'पुल' है जिसने अब तक उन्हें उनके मूल से जोड़े रखा है तथा इसी अंतर्सेतु के कारण ही एक पीढ़ी दूसरी पीढ़ी को अपना अस्तित्व बोध कराता आ रहा है। परंतु उनका यह 'भाषायी पुल' जिससे इस समुदाय के पीढ़ियों की आत्मिक गाथा जुड़ी हुई है, इसकी गांठें समय के अंतराल में धीरे-धीरे घिस-घिसकर पतली होती जा रही हैं। आधुनिकता का प्रभाव उनकी संस्कृति एवं परंपराओं पर दिन-ब-दिन हावी होते दिखाई दे रहा है। आज स्थिति यह है कि ताङाम के इस 'भाषायी पुल' के बचाव के लिए उनके साहित्य को एक मुकम्मल सेतु का रूप देना अनिवार्य हो गया है; और वह सेतु है 'लिखित साहित्य' जिसके माध्यम से उनके पूर्वजों व उनके साहित्य को लिपिबद्ध कर संरक्षित किया जा सकता है।

आधुनिकता एवं शहरीकरण का प्रभाव इतना बढ़ता जा रहा है कि सभी उसी के रंग में रंगने लगे हैं। विकास लोगों को सुख-सुविधा देता तो है, लेकिन कहीं न कहीं अभिशापित भी करता है। आधुनिकता की मार विशेष रूप से प्रांतीय तथा जनजातीय जनजीवन पर अधिक खतरनाक ढंग से पड़ती जा रही है। शिक्षा के लिए, रोजगार के लिए, बेहतर जीवनयापन आदि के लिए समकालीन समय में सभी शहरों में शरण खोजने लगे हैं। अंग्रेजी-हिंदी भाषाओं का प्रभाव स्थानीय लोगों पर हावी होती जा रहा है। किसी भी भाषा को सीखना या जानना बुरी बात नहीं है, यदि हम भाषायी ज्ञान एवं साहित्यिक दृष्टि से देखें तो; जब यह हमारे अस्तित्व और निज पहचान के आगे एक बड़ा-सा प्रश्नचिह्न लगे, तब नि:संदेह हमारी भाषा-बोली, हमारी संस्कृति, हमारा साहित्य आदि इस प्रश्नचिह्न का जवाबी प्रत्युत्तर बनकर उभरते हैं।

ताङाम उपजनजाति के मौखिक साहित्य पर एक तो अल्पसंख्यकता के काले बादल मंडरा रहे हैं, तो दूसरी ओर आधुनिकीकरण की मार से वे बचते-बचाते फिर रहे हैं। इस बात से अनजान कि उनकी भाषा, उनकी

संस्कृति, उनकी परंपराएँ ही उन्हें उनकी भावी पीढ़ियों द्वारा अपनी अस्मिता के पहचान के प्रश्नों के वार से बचाएँगी। इस गंभीर प्रश्न से बेख़बर युवा पीढ़ी आधुनिक रंग-रोगन में ढलकर अपने ऐतिहासिक संस्कृति व अस्मिता को नजरअंदाज करते जा रहे हैं जो सही नहीं है। उदाहरण के लिए-'आदी समुदाय में 'उनयिंग-आरान' पर्व (नूतन-दिवस) 7, 8, 9 मार्च को लगातार तीन दिनों तक मनाए जाते हैं। हालांकि आदी जनजाति की कुछ उपजनजातियाँ इस त्यौहार को अपने परिवेश की सुविधा अनुसार मनाते हैं। तब भी इस पर्व के दौरान एक विशेष स्थानीय गीत 'याकजोङ' गाते हुए सभी साथ-साथ क्रमबद्ध पंक्ति में नृत्य करते हुए घर-घर जाकर चावल, मांस (विशेषकर चूहें का मीट) तथा रुपए मांगने का रिवाज निभाते हैं। बहरहाल, यह बताना वाजिब होगा कि घर के सदस्य स्वेच्छा से ये सभी वस्तुएं देने के लिए 'याकजोङ' का बेसब्री से इंतजार करते हैं। 'याकजोङ' के दौरान 'रङगीङ' में जो पारंपरिक गीत गाया जाता है वह इस प्रकार है-

"याकजो ङ सोसोर अ,
याकजो ङ किलु याकजोङ, याकजो ङ सोसोर अ,
याकजो ङ मोमान याकजोङ, याक्जो ङ सोसोर अ,
कोलो आमबिन पुआ को कोलो,
याकजो ङ सोसोर अ,
कोलो कबुंङ गुतुन नाको कोलो,
याकजो ङ सोसोर अ,
कोलो कोजे पाबार को कोलो,
याकजो ङ सोसोर अ,
याकजो ङ सोसोर अ..."

इस गीत का भावार्थ यह है कि इस नवीन दिवस के अवसर पर 'याकजोंग' यानी इस महत्वपूर्ण पर्व का प्रतिनिधित्व करने वाला वह समूह आ गया है, जो आपके घर नवल वर्ष की शुभकामनाओं सहित आनंद व मस्ती लेकर आए हैं। अतः एक कटोरी भर चावल, चूहे का मांस और साथ ही रुपए स्वेच्छा से देने का आग्रह करते हैं। परंतु, यदि किसी कारणवश किसी परिवार के पास इनमें से एक, दो या कोई भी वस्तु उपलब्ध न हो तो यह अनिवार्य नहीं की उसे देना ही हो, हालाँकि ऐसी स्थिति बहुत कम होती है। इन तीनों वस्तुओं का प्रतीकात्मक रूप इस प्रकार है- चावल से तात्पर्य खेत की उर्वरता, मांस से तात्पर्य शिकार करने की क्षमता तथा रुपए से तात्पर्य सुख व समृद्धि।

कहने का अभिप्राय है कि यह त्यौहार आज भी बड़े ही उत्सुकता एवं उमंग के साथ आदी समुदाय में मनाया जाता है। दुर्भाग्यवश इस प्रथा के दौरान गाया जाने वाला प्रसिद्ध 'याकजोङ गीत' का पालन अभी तक केवल बुजुर्ग ही करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं। इन दिनों इस प्रसिद्ध याकजोङ गीत के स्थान पर बच्चे आधुनिक सिनेमा के गीत गाने में अधिक आनंद उठाने लगे हैं जो उनके इस पारंपरिक प्रथा के विलुप्त होते जाने की निशानी है। एक प्रसिद्ध कहावत है कि 'आज के युवा, कल की पहचान हैं।' अतः हमारे समाज का भविष्य ही जब अपनी पहचान, अपने पूर्वजों की अस्मिता को भूलकर जब आधुनिक गीतों पर झूमने लगे तो किसी भी समुदाय के

लिए भविष्य की चिंता करना आवश्यक बन जाता है। ताङाम के मौखिक साहित्य की सुंदरता एवं वर्तमान दुर्दशा पर चिंता जताते हुए ताङाम की स्वर्गवासी वृद्ध महिला जोमिङ दाजी ने कोमबोङ दाराङ द्वारा डॉक्यूमेंट्री फिल्म 'ङोक मिरी दल्लोक्के योयो गागा गोकतुआनाम किदिङ' निर्माण हेतु सामग्री संकलन के दौरान गाकर सुनाया था। उस गीत की बोली एवं भावार्थ इस प्रकार है-

"चीचीङा सिपुना गिअ्दाक्कु,
आरो पेजिन चीचीङा चिपुने गिदाक्कु

(अर्थात, हाँ मैं उन शब्दों के साथ मरने वाली हूँ,
इसीलिए तुम सभी मेरी बात ध्यान से सुनो....)

आरो बिङुआ, चीची या चीपुने योद्न्नअ,
लुतुना पोगिअ् प, दोदिअ् बिकुआ..."

(अर्थात, मैं उन लोड़ियों एवं गीतों के साथ मरने वाली हूँ जो मैं अपनी भाषा में गाया करती थी, इसीलिए मैं तुम सभी के साथ बैठकर अपनी कथा गाकर सुना रही हूँ।)

"लको प दुदुम हिदोकु ला,
तुपेनह लेको पे, दिदुना बिकु

(अर्थात, कितना चाहती हूँ कि मैं फिर से बचपन जिऊँ,
और इस गीत को गाते हुए फिर से बड़ी होऊं।)

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि वर्तमान में जो लोग 'ताङाम' उपजनजाति' की अस्मिता को मौखिक रूप में रक्षित करते आए हैं, वे कराल काल के गाल में कवलित होने की अवस्था में पहुँच चुके हैं। वे अपने पूर्वजों की पहचान को, अपने अस्तित्व की पहचान को कायम रखने हेतु जद्दोजहद करते दिखाई पड़ रहे हैं। जबकि ताङाम युवा पीढ़ी अपनी बोली एवं साहित्य की दशा से अनजान अपने जीवन से अपने ही वजूद को दरकिनार करती जा रही है। अतः ताङाम की वर्तमान दशा को मद्देनजर रखते हुए शीघ्र अति शीघ्र उनके मौखिक साहित्य, जिनमें उनके अस्तित्व की, उनके मूल की पहचान रसी-बसी हुई है; उस पर ठोस कदम उठाना अनिवार्य हो गया है। सबसे गंभीर एवं विचारणीय बात यह है कि वर्तमान में विलुप्ति की यह चुनौतीपूर्ण स्थिति केवल आदी जनजाति के इस 'ताङाम' उपजनजाति की ही नहीं बल्कि अधिकांश अरुणाचली जनजातीय व उनकी उप जनजातियों की भी दिखाई पड़ती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. 'The Tangams' (1975) by Tarun Kumar Bhattacharjee
2. CFEL 2016, Newsletter AITS (RGU)
3. 'NgokMiriDelokke Yoyo Gaga Goktuanam Kiding' (2018), Documentry Film by Kombong Darang
4. 'The Aspects Of Padam-Minyong Culture' (1960) by Sachin Roy
5. 'The Tangam; a Re Study on Dwindling Subtribe of Adi' (2010), by Shri, GammarKakki, M. Phill.
6. 'The Tangams: An Ethnolinguistic study of the Critically Endangered Group of Arunachal Pradesh' (2020) by CFEL, AITS, RGU and Himalayan Publishers

*(**लेखकीय परिचय :** डॉ. तुनुङ ताबिङ राजीव गाँधी विश्वविद्यालय, अरुणाचल प्रदेश के हिंदी विभाग से पीएचडी कर चुकी हैं तथा वर्तमान में आप शासकीय महाविद्यालय, रोईंग, अरुणाचल प्रदेश के हिंदी विभाग में अतिथि सहायक प्रोफेसर हैं। आपका पहला काव्य-संग्रह गोमPI॑-गोमुK॑ नाम से प्रकाशित है। आप रचनात्मक लेखन में लगातार सक्रिय हैं।*
मोबा: 9862438820, ई-मेल : tabingtunung@gmail.com)

गालो समाज में बच्चों के जन्म संबंधी मान्यताएँ

दोगे डम्मदिर

स्त्री का माँ बनना उसका प्रकृतिजन्य उपहार है। हर स्त्री माँ बनने के दौरान प्रसव पीड़ा से गुजरती है। गालो समाज में एक गर्भवती स्त्री को प्रसव पीड़ा के कारण चीखना-चिल्लाना अशुभ माना जाता है। इस बात की भी पाबंदी लगायी जाती है कि गर्भवती स्त्री अपनी पीड़ा के बारे में किसी से न कहे। ऐसा माना जाता है कि अगर कोई गर्भवती अपने प्रसव पीड़ा के बारे में किसी और से कहती है तो बच्चे का जन्म जल्द नहीं होगा। यह भी माना जाता है कि ऐसा करने से बच्चे पर बुरा असर भी पड़ सकता है और बच्चे की मृत्यु भी हो सकती है। इसलिए बच्चे के जन्म के वक्त गर्भवती स्त्री को खासतौर से पीड़ा के कारण आवाज़ न निकालने की हिदायत दी जाती है। कहा जाता है कि आवाज़ निकालने में ही सारी ऊर्जा निकल जायेगी और बच्चे के जन्म में तकलीफ हो सकती है।

बच्चे के जन्म संबंधी मान्यताएं:

बच्चे को जन्म देते वक्त माता को लेटने से मना किया जाता है। यह बिल्कुल डॉक्टरों की हिदायत के विपरीत है। गालो समाज के नियमानुसार कहा गया है कि बच्चे के जन्म के समय घुटनों के बल पर बैठना चाहिए। सही मायने में अगर देखा जाए तो यह बात बिल्कुल गलत और असुरक्षित है। गालो समाज के घरों को हिस्सों में बांटा गया है। घर के कई हिस्से मात्र पुरुषों के लिए होते हैं। वहां स्त्रियों का आना वर्जित होता है। इसी तरह गालो समाज में बच्चे को जन्म देने लिए भी निर्धारित जगह होती है। यह जगह मर्दों के हिस्से वाली जगह से और उसके पास के चूल्हे से दूर होती है। मर्दों की जगह के पास वाले चूल्हे को 'पिन्टे' अर्थात बड़ा चूल्हा और स्त्रियों के जगह के पास वाले चूल्हे को 'पिम्मे' अर्थात छोटा चूल्हा कहते हैं। सामान्यत: पिन्टे मुख्य चूल्हा होता है। इस चूल्हे में हमेशा आग जलाई जाती है और घर वालों के लिए खाना भी इसी में पकाया जाता है। पिम्मे का प्रयोग सामान्यत: कम होता है। इसका प्रयोग तब किया जाता है, जब घर में कोई बड़ा जश्न, पूजा आदि होता है या जब कभी शराब, 'ओपो' बनाई जाती है।

पिम्मे के आस-पास की जो जगह है, उसे स्त्रियों का स्थान माना जाता है और मर्द इस जगह कम ही आते हैं। बच्चे को जन्म देने के लिए यही जगह निर्धारित है। माँ जब बच्चे को जन्म देती है तो उसके आस-पास की सारी स्त्रियाँ जोर-जोर से बच्चों को अपना कहने लगती हैं। इसके पीछे एक अजीब-सा विश्वास है। ऐसा विश्वास है कि कहीं आस-पास भटकती कोई दुष्ट आत्मा नवजात शिशु पर अपना अधिकार न कर ले इसलिए उससे पहले आस-पास के लोगों को बच्चे पर अपना अधिकार कर लेना चाहिए। जन्म होने के साथ-साथ एक अस्थायी नाम भी दे दिया जाता है। कहा जाता है कि अगर कोई दुष्ट आत्मा बच्चे पर अपना अधिकार कर लेती है तो बच्चे का जीवन कष्टों से भरा होता है। इन सबके बाद तुरंत बच्चे के शरीर को ध्यान से परखा जाता है। यह इसलिए किया जाता है कि कहीं बच्चे के शरीर का कोई अंग अधूरा या ज्यादा तो नहीं। सब कुछ ठीक-ठाक होने पर बच्चे के कमर और पैरों में काला धागा बांध दिया जाता है जिससे कि उसे नज़र न लगे। नज़र लगने से बचाने का यह उपाय अक्सर भारतीय संस्कृति में देखा जाता है। बच्चा ठीक-ठाक है तो कोई बात नहीं लेकिन अगर बच्चे में कोई भी असाधारण बात, जैसे–उसका कोई अंग अपूर्ण या ज्यादा है तो यह बच्चे और

साथ ही उसकी माता के लिए बहुत ही दु:ख की बात होती है। दु:ख की बात इसलिए है, क्योंकि बच्चे के असामान्य होने की भनक पाते ही सारे लोग उस जगह से बिना कुछ कहे चुपचाप चले जाते हैं। ऐसा इसलिए, क्योंकि गालो समाज में इसे अशुभ माना जाता है। यह बहुत ही बुरी बात मानी जाती है। उन्हें लगता है कि अगर ज्यादा देर तक वे वहाँ रहें तो इसका उनके परिवार वालों पर बुरा असर पड़ सकता है। बच्चों के असामान्य होने के कारण समाज उस परिवार से परहेज भी करता है। इस परिवार के लोग धार्मिक त्योहारों, पूजा आदि में एक निर्धारित समय तक भाग नहीं लेते।

बच्चे के जन्म होने की खुशी सभी परिवार वाले मिलकर मनाते हैं। इस खुशी में स्त्रियाँ ही अधिकतर भाग लेती थी। लेकिन आजकल मर्द भी इस अवसर पर शामिल होने लगे हैं। गालो समाज में यह परंपरा है कि नवजात शिशु की नाभि खुद सूखकर जब तक गिर न जाए तब तक माता और बच्चा दोनों का घर के मर्दो वाली जगह में उठना बैठना मना होता है। घर में खासतौर से नई माता के लिए अलग से अपनी थाली, गिलास और कटोरी होती है। कभी ऐसा भी होता है कि माता का खाना एक खास पत्ते पर जिसे गालो में 'एक्कम' कहते हैं, उसमें भी परोसा जाता है।

अक्सर देखा जाता है कि नई नई माँ बनी स्त्री का खूब ख़याल रखा जाता है, लेकिन गालो समाज में ऐसा नहीं है। माता जितनी जल्दी अपने काम में लग जाए उसके लिए ठीक है वरना उसे कई प्रकार के ताने सुनने पड़ते हैं। एक हफ्ते में बच्चे की नाभि सूखकर गिर जाती है। इस समाज में ऐसी मान्यता है कि अलग-अलग वंश के बच्चों की नाभि के सूखकर गिरने की अवधि अलग-अलग होती है। उदाहरणत: 'एते' वंश के बच्चों की नाभि 5-6 दिनों में गिर जाती है और 'पादू' वंश के बच्चों की नाभि को गिरने में कम से कम एक सप्ताह का समय लग जाता है। गालो समाज में अगर कोई स्त्री पहली बार माँ बनती है तो सामान्यत: स्त्री की कोई अपनी बहन बच्चे की देखभाल करती है। बच्चे पर बुरी नज़र न पड़े इस कारण बच्चे और उसकी देखभाल करने वाले दोनों के बालों में मुर्गी के पंख मंत्रोच्चारण के पश्चात लगाया जाता है। इस रस्म के लिए अधिकतर श्वेत मुर्गी के पंखों का इस्तेमाल किया जाता है। इस खास अवसर को गालो भाषा में 'आओ लायाप' कहते हैं। इस रस्म के तहत नवजात शिशु का परिवार में सदस्य के रूप में स्वागत किया जाता है। इस अवसर पर खास पकवान बनाये जाते हैं, जैसे –'आमिन ताके', शराब आदि। हिंदू परंपरा में जैसे दही और खीर को शुभ माना जाता है, ठीक उसी प्रकार गालो समाज में आमिन ताके को शुभ माना जाता है और खास अवसरों पर ही इसे पकाया जाता है। इस पकवान के लिए चावल के छोटे-छोटे दाने (आमिन), अदरक (ताके) और मुर्गी के माँस को एक साथ पकाया जाता है। इस शुभ अवसर पर बच्चे का नामकरण भी होता है। गालो में नामकरण संबंधी बातें बहुत खास और महत्त्वपूर्ण होती हैं। बच्चों के नामकरण के तीन आधार हैं –

(क) पिता के नाम के आधार पर (यह मुख्य आधार है)

(ख) बुआ के नाम के आधार पर

(ग) चाचा के नाम के आधार पर

(क) पिता के नाम के आधार पर नामकरण:-

जैसा कि, हर समाज में होता है कि पिता का नाम बच्चों के लिए काफी अहमियत रखता है। गालो समाज की भी यही मान्यता है। पिता के नाम के आधार पर बच्चों का नामकरण खास बातों को ध्यान में रखकर किया जाता है। इसे दो भागों में बाँटकर हम देख सकते हैं :

(1) अंतिम अक्षर से

(2) अंतिम दो अक्षरों से

अंतिम अक्षर से :

इसमें पिता के नाम के अंतिम अक्षर को ध्यान में रखकर बच्चे का नामकरण किया जाता है। जैसे-

तुमतो (TUMTO)	तोली (TOLI)
(पिता का नाम)	(बेटे का नाम)

अंतिम दो अक्षरों से:

पिता के नाम के अंतिम दो अक्षरों को आधार बनाकर बच्चे का नामकरण होता है, जैसे –

पोजुम (POJUM)	जुमपी (JUMPI)
(पिता का नाम)	(बेटी का नाम)

पिता के नाम के आधार पर जो नामकरण होता है, इसे अधिक महत्त्वपूर्ण माना जाता है। इस आधार को अपनाकर बच्चों के पिता से लेकर उसकी पूरी वंशावली का पता चल जाता है। गालो में वंशावली की गिनती धरती माँ (आनअ हिसी) के नाम से भी जोड़कर की जाती है।

(ख) बुआ के नाम के आधार पर नामकरण:

चूँकि इस समाज में लिंग भेद नहीं के बराबर है, इसलिए गालो समाज में बच्चे का नामकरण बच्चों की बुआ के नाम के आधार पर भी किया जाता है। इस प्रकार के नामकरण में एक कमी यह है कि इससे बच्चे के दादा, परदादा आदि के नामों का तो पता चल जाता है, लेकिन उसके पिता का नहीं, जैसे –

तुम्बोम (Tumbom)	बोमतुम (Bomtum)	तुम्पी (Tumpi)	पीजुम (Pijum)
(परदादा का नाम)	(दादा का नाम)	(बुआ का नाम)	(बच्चे का नाम)

बच्चे के पिता का नाम है –तुमतो। इस तरह से हम देख सकते है कि इस नामकरण से दादा, परदादा आदि के नामों का तो पता चलता है, लेकिन पिता का नाम छिप जाता है।

(ग) चाचा के नाम के आधार पर नामकरण

बुआ के नाम के आधार पर नामकरण करने में जो खामियाँ हैं, वही इस आधार के नामकरण में भी है। इस आधार के नामकरण में भी बच्चे के पिता का नाम छिप जाता है।

गालो समाज में नामकरण संबंधी अपनायी जाने वाली इस पद्धति को बहुत महत्त्वपूर्ण और सराहा जाता है। गालो जनजाति की यह एक खासियत है, क्योंकि इस पद्धति से पूरी वंशावली का पता चल जाता है।

बच्चे का नामकरण इस समाज में गंभीरता का विषय प्रतीत होता है। इसलिए इस समाज में नामकरण के संबंध में बारीकी से विचार किया जाता है और फिर नाम रखा जाता है। नामकरण के लिए एक खास किस्म के पौधे की सूखी डंठलों का इस्तेमाल किया जाता है। यह पौधा घने और सुदूर जंगलों में मिलता है। कहा गया है कि यह पौधा बांस की प्रजाति है। सामान्यत: डंठलों को पहले से ही घर में सुरक्षित स्थान पर सुखाकर रखा जाता है और आवश्यकता पड़ने पर इसे निकाला जाता है। नामकरण की रस्म के लिए इन सूखी डंठलों को पतले-पतले भागों में चीर दिया जाता है। इसकी लंबाई और चौड़ाई अगरबत्ती के समान होती है। इन्हें घर के मुख्य चूल्हे अर्थात 'पिन्टे' के पास ले जाते हैं, जहां पहले से आग जली हुई होती है। नामकरण के शुभ अवसर पर आए सभी लोग इस चूल्हे के आस-पास इकट्ठा होते हैं। इस अवसर पर आए सभी लोगों में सबसे महत्त्वपूर्ण व्यक्ति वह होता है जो नामकरण संबंधी सारी विधियों का संचालन करता है। नामकरण की प्रक्रिया आरंभ होती है। बच्चे के लिए इस प्रकार पाँच-छह नामों का विकल्प दिया जाता है। इनमें से कुछ नाम चुन लिए जाते हैं और प्रत्येक नाम का प्रतिनिधित्व करती एक छड़ी चूल्हे के पास जलाकर गाड़ दी जाती है। छड़ी जलती रहती है और उसके जलकर बुझ जाने का सभी बेसब्री से इंतजार करते हैं। इस बीच जलती छड़ी को बिल्कुल भी हिलाया-डुलाया नहीं जाता है। अन्य लकड़ी की छड़ियों की तुलना में इस छड़ी के जलने पर जो राख निकलती है वह सामान्य लकड़ी की राख से ज्यादा देर तक एक घुमावदार चक्र बनकर शेष रहती है। जिस छड़ी के जलने के पश्चात घुमावदार राख का ढेर देर तक रहता है उसी को सबसे अच्छा माना जाता है और जिस नाम के प्रतिनिधि के रूप में उसे जलाया और गाड़ा जाता है, वह नाम बच्चे के लिए सबसे शुभ माना जाता है। अत: बच्चे का वही नाम रखा जाता है। गालो समाज में बच्चे के नामकरण संबंधी बातों को काफी गंभीरता से लिया जाता है। यही कारण है कि अगर माता-पिता या संबंधियों को लगे कि बच्चे का नामकरण गलत हो गया है तो बच्चे का नाम बदला भी जाता है। गलत नामकरण और बच्चे के पुन: नामकरण संबंधी कुछ बातें इस प्रकार हैं –

गलत नामकरण संबंधी कुछ बातें:

बच्चे के नामकरण के बाद अगर बच्चे का स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता, बच्चा ठीक से खाता-पीता नहीं है या बच्चा जरूरत से ज्यादा रोता है तो ऐसा माना जाता है कि यह गलत नामकरण के कारण ही हो रहा है। घर वालों को लगता है कि बच्चे के नामकरण के वक्त उनसे कोई न कोई गलती अवश्य हो गयी होगी। यह गलती घुमावदार राख के चक्र को परखने में भी हो सकती है। ऐसे में, अपनी गलती सुधारने के लिए और बच्चे के हित के लिए फिर से बच्चे का नामकरण होता है।

गालो समाज में बच्चे के जन्म और उसकी शारीरिक बनावट के आधार पर भी कई नियमों का पालन किया जाता है। गालो समाज में जुड़वा बच्चे के जन्म होने को और मृत शिशु के जन्म होने को बहुत ही अशुभ माना जाता था। इस कारण माता-पिता और उसके घर वालों को कुछ निर्धारित नियमावधि तक कुछ पाबंदियों में रहना पड़ता है। वे पूर्ण रूप से समाज के कुछ अवसरों में भाग नहीं ले सकते थे और कुछ चीजों का सेवन भी नहीं कर सकते थे। उनके आवागमन में भी रोक-टोक रहती थी। इस संबंध में कुछ बातें इस प्रकार हैं –

जुड़वा बच्चे का जन्म होने पर-

गालो समाज में जुड़वा बच्चे के जन्म को बहुत ही अशुभ माना जाता है। लेकिन बदलते वक्त के साथ अशुभ माने जाने वाली सोच भी लगभग खत्म हो गई है। जुड़वा बच्चे के जन्म होने पर कभी-कभी अपने परिवार वाले भी साथ रहने से परहेज करते थे। ऐसी माता को इस समाज में कई पाबंदियों का सामना करना पड़ता था। ऐसी माता के घर में स्त्रियाँ कदम रखने से कतराती थी। उन्हें यह बताया जाता था कि ऐसी जगहों पर जाने पर उनको भी भविष्य में जुड़वा बच्चे हो सकते हैं। यह भी कहा जाता है कि ऐसे बच्चों का जीवन खुशहाल नहीं

होता है या जुड़वा बच्चों में से केवल एक ही बच्चा जीवित रहता है। इस पर भी अगर बच्चों का लिंग समान है तो उनके जिंदा रहने की आशा है, लेकिन अगर लिंग में अंतर है तो उनके जिंदा रहने पर शंका की जाती है।

जुड़वा बच्चों के माँ से लोग चीजों का लेन-देन नहीं करते। खास तौर से सूत और अदरक के लेन-देन से माता पर काफी पाबंदियाँ होती हैं। जैसे- माता को गाँव के नल में नहाने से मनाही होती है। वहाँ वह कपड़े भी नहीं धो सकती। इन रोक-टोक से बचने के लिए कभी-कभी घर की लड़कियाँ कुछ दिनों के लिए अपने रिश्तेदारों के यहाँ रहने के लिए चली जाती हैं। यह सारी बातें शारीरिक तौर पर अपूर्ण बच्चे के जन्म होने पर भी, बच्चे और माँ दोनों पर लागू होती हैं।

गालो में मृत शिशु के जन्म को भी बहुत अशुभ माना जाता है। ऐसे शिशुओं का अंतिम संस्कार भी बहुत ही असाधारण तरीके से किया जाता था। विशेष प्रकार के लौकी के सूखे और खोखले खोल में डालकर दूर जंगल में गुप्त तरीके से रख दिया जाता था। इस कार्य के लिए कभी-कभी बाँस के चोंगे का भी प्रयोग किया जाता था। मृत बच्चे के जन्म को पाप के रूप में देखा जाता था और शुद्धिकरण के लिए, एक पूजा जिसे गालो भाषा में 'मोदोर' कहते हैं, का आयोजन किया जाता था। इस पूजा के बाद ही बच्चे की माता और उसके घर वालों को समाज में फिर से सामान्य रूप से स्वीकारा जाता रहा है।

गालो समाज में बच्चे के जन्म, नामकरण, मृत्यु आदि विशेष स्थितियों में बच्चे और माता के साथ जो होता है, इस संदर्भ में यह एक संक्षिप्त जानकारी है। इसके अलावा भी कई मान्यताएँ हैं। जैसे- बच्चे को उपहार दिए बिना अगर उसकी मौसी उसे अपने गोद में ले लेती है तो बच्चे का पेट खराब हो जाता है। बच्चे के जन्म संबंधी यह सारी बातें हालांकि खोखली और हास्यास्पद लगती हैं, लेकिन गालो समाज में इन बातों को काफी मान्यता दी जाती थी। बदलते समाज के साथ-साथ इन नियमों और परंपराओं में कुछ बदलाव तो आ गए हैं, लेकिन इन्हें पूर्णत: त्यागा नहीं गया है। और चाहे परंपराएँ कितनी भी खोखली क्यों न लगे, यही हमारी सांस्कृतिक धरोहर हैं, हमारी पहचान हैं। इनमें कतिपय सुधार कर स्वीकार करने में कोई असुविधा नहीं है।

*(**लेखकीय परिचय :** डॉ. दोगे डमदिर दोञ्यी-पोलो शासकीय महाविद्यालय,कामकी, वेस्ट सियाङ, अरुणाचल प्रदेश के हिंदी विभाग में सहायक प्रोफेसर हैं। मोबा: 8794163810/9436238700, ई-मेल : dogengomdir66842@gmail.com)*

सच्ची कविता ही अच्छी कविता होती है...

अभिषेक कुमार यादव

चेहरे पर चमक बनाए वह रखते हैं...

कविता कैसी होनी चाहिए, यह वैसा ही प्रश्न है, जैसे यह पूछा जाए कि जीवन कैसा होना चाहिए? ऐसा नहीं है कि इस प्रश्न का जवाब नहीं है, बल्कि यह यूं है कि इसके बहुतेरे जवाब हैं। दुनिया का हर इंसान इसका जवाब अपने अनुसार दे सकता है। सबके अपने दृष्टिकोण हो सकते हैं। इसके बावजूद इससे कोई भी इनकार नहीं करेगा कि कुछ आधारभूत चीजें ऐसी हैं, जिनके शामिल होने से ही जीवन औचित्यपूर्ण बनता है। ऐसे में कोई निहिलिस्ट यह प्रश्न भी उठा सकता है, जीवन को औचित्यपूर्ण क्यों होना चाहिए? अब इस प्रश्न से जूझना दार्शनिकों का काम है। यहाँ तो मूल बात यही समझ में आती है कि जीवन का कोई औचित्य होना चाहिए। अब इस औचित्य का स्वरूप कैसा होना चाहिए? यह मनुष्यता के हित में होना चाहिए। इसे सत्याग्रही होना चाहिए। इसे करुणा और प्रेम से भरा होना चाहिए। इसी से कोई जीवन औचित्यपूर्ण बनता है और यह औचित्य ही अच्छे जीवन की कसौटी है।

कविता हमारे जीवन, सभ्यता और संस्कृति का अभिन्न हिस्सा है। जीवन के इन्हीं पैमानों पर देखें तो कविता को सत्य के पक्ष में खड़ा होना चाहिए। इसे भी सत्याग्रही होना चाहिए। कम से कम इसके निर्माण की और अभिव्यक्ति की स्थितियां और प्रक्रिया सत्याग्रही होनी चाहिए। यदि कविता अपने निर्माण की प्रक्रिया में सत्य के साथ निर्मित नहीं हुई है तो वह कभी भी अच्छी कविता नहीं होगी। उसके शब्दाडंबर, भाषा का लोच, शैली की नाटकीयता और यहाँ तक कि अंतर्वस्तु भी उसकी रक्षा नहीं कर सकते। अंतर्वस्तु का महत्त्व इस बात पर टिका हुआ है कि वह 'सत्य' के साथ ही निर्मित और अभिव्यक्त हुआ है। सभी महान रचनाएँ और उनके रचनाकार इसके प्रमाण हैं। यदि कोई कवि इस 'सत्य' को निभाने की कोशिश करता है तो वह सुंदर दिखने लगता है। आईनाम की कविताओं में यह 'सत्य' अपने होने का आभास कराता है। उनकी एक कविता है,'पापा मेरे'। वे लिखती हैं, "पापा मेरे/ मेहनत में तपकर/ कोयला होते जाते हैं/ फिर भी जाने कैसे-कैसे/ चेहरे पर चमक बनाए वह रखते हैं।"[1] यह चमक पिता की मेहनत और ईमानदारी ने उन्हें दी है। यही चमक कविता में भी होती है, यदि उसे 'सत्य' के भावबोध में अभिव्यक्त किया जाय। आईनाम इसकी कोशिश करती हैं और यही उनकी कविताओं को महत्त्वपूर्ण बनाता है।

'मीत' आईनाम का पहला कविता-संग्रह है। इसमें सौ पृष्ठों में कुल 92 कविताएँ प्रकाशित हैं। लगभग सभी कविताएँ छोटी कविताएँ हैं। जीवन के अनुभवों से लेकर सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन दृष्टि तक ये कविताएँ व्यापती हैं। एक और कविता का जिक्र करना जरूरी है। आईनाम की 'माँ' कविता भी भावों की सघनता लिए हुए है। 'माँ' के बारे में दुनिया भर में लिखा गया है और बहुत अच्छा लिखा गया है, लेकिन अक्सर वह मात्र भावों से भरा हुआ ही है। जब तक उन भावों की कोई ठोस जमीन न हो तब तक बात दूर तलक नहीं पहुँचती है। यह कविता भी सघन भावों से भरी होने के बावजूद 'भाववाद' की शिकार हो जाती है। पिता के बारे में लिखते समय उनके परिश्रम और दुनिया में उनके योगदान को चिन्हित करते समय कवि अक्सर माँ के मामले में घर, भाव और समर्पण से आगे नहीं बढ़ पाते। यह बात खटकती है।

मीत न मिला रे मन का...

कविता-संग्रह की शीर्षक कविता 'मीत' कठिन समय के साथ को समर्पित है। कठिन समय के साथ के बारे में दुनिया में न जाने कितनी कविताएँ, कहानियाँ और वाक़ये कहे गए हैं। हजारों मिथक गढ़े गए हैं। कठिन समय का

साथ ही मानव-सभ्यता को आगे बढ़ाता है। मनुष्य की मानवीय संस्कृति का मूलाधार है, गाढ़े वक़्त का साथ। आईनाम अपने 'मीत' से इसी साथ की उम्मीद करती हैं। अगर यह साथ मिले तो 'दुनिया बदल सकता हूँ मैं'। "मैं खेजड़ी के नए पौधों से/ रेतीली जमीन को दूर तलक/ धीरे-धीरे हरा-भरा करती जाऊँ।"[2] यह मीत कैसा है, कौन है? आईनाम लिखती हैं, मेरे मीत 'तुम आसमान हो।' मीतपन की बुनियादी शर्त मैत्री है। प्रेम एक गहन बंधुत्व के भाव की मांग करता है। बिना सच्चे बंधुत्व के प्रेम की भावना सदा ही अधूरी है। 'प्रेम पंछी' कविता में यह भाव प्रकट हुआ है। गहन बंधुत्व का यह भाव यदि प्रेम में उपस्थित है तो वह सदा के लिए रहता है। "मैं चाहती हूँ कि तन के सूख जाने के बाद भी/ मेरा मन भीगा रहे।"[3] यह चाहना तभी पूरी होगी जब प्रेम में मैत्री का भाव हो, त्याग करने का साहस हो।

ऐसे 'मीत' को पा लेना सहज नहीं है। यदि मिल भी गए किसी मोड़ पर तो उसे संभाल कर, संवार कर रख पाना एक अजब दुनियावी चुनौती है। ऐसे में मिलता है एक निर्जन अकेलापन। 'धूप' और 'टालमटोल' कविता में यह दिखता है। 'ओ मीत!' कविता में लेखिका लिखती हैं, "ओ मीत! जाते वक़्त बता के जाना/ दिल ढूँढ़ता है वहाँ/ जहां तुम अभी-अभी थे।"[4] 'उसका आखिरी खत' इस अकेलेपन और उसके दु:ख के गाढ़ेपन से भरी हुई कविता है। मीत की चाह में मीत जैसा कोई नहीं चाहिए क्योंकि कोई भी किसी के जैसा होता नहीं है, और हो नहीं सकता है। यहाँ तक कि चाहने वाला खुद जिसको चाहता है, उसके जैसा नहीं बनना चाहता है। क्यों बने...? यदि बन गया तो जिसको चाहता है, उसकी कसक कहाँ जाएगी? और अगर वह कसक ही नहीं रही तो प्रेम कहाँ समाएगा...?

ऐसे में 'स्वयं को अपना मीत बना लेना जीने का एकमात्र विकल्प है' सो 'कविताओं को अपना मीत बना लिया है।'... 'कविताएँ उन सायों को समेटती हैं, उसे खूबसूरत आकार देती हैं और मुझे प्रेम से सहलाती हैं।'... 'अंत में सब को अकेले ही जीवन का सामना करना होता है। हमारे हमदर्द मन के एक मोड़ तक ही साथ चल पाते हैं उससे आगे का सफर सबको अपने साथ ही तय करना होता है।' सच तो यह है कि आईनाम की ये कविताएँ मन को एक गहन उदासी से भर देती हैं और एक तीव्र जीवनानुभव से गुजारती हैं, इसीलिए बेचैन भी करती हैं।

बस निपट अकेलापन...

अकेलापन आईनाम की कविताओं के केंद्र में है। वह जम कर बैठ गया है। अब उसे बयान किया जा सकता है, हिलाया नहीं जा सकता। उसके साथ जिया जा सकता है। 'यह कौन सी ऋतु है?','मैं सूरज नहीं हूँ मीत' जैसी कविताएँ इसकी गवाही देती हैं। 'टूटन' कविता में यह अकेलापन बहुत तीव्रता से प्रकट होता है, "छोटी-छोटी मनोकामनाओं को/ जिंदा दफ़ना देने की टीस/ एक लड़की से पूछना चाहिए/ जो चाँदनी रातों में भीगी/ खूबसूरत सड़कों को/ बस मोड़ तक ही देखती रहती है/ फिर धीरे-धीरे देखना भी भूल जाती है।"[5] आलोकधन्वा की कविता 'भागी हुई लड़कियां' याद आती है। लड़कियां लाचार हैं, लेकिन सपने देखना बंद नहीं करती हैं।

अकेलापन मनुष्यों को अधूरा कर देता है। इस अधूरेपन के साथ जीना, जीने को मरने जैसा बना देता है। 'मौत आती है पर नहीं आती।' निर्मल वर्मा की कहानी 'परिंदे' अधूरी आत्माओं की कहानी है। लतिका यही सोचती है कि अगले बरस यह करेगी, वह करेगी। वह अगला बरस कभी नहीं आता क्योंकि उसके जीवन की खाली जगह को भरने वाला बरस बीत चुका है। इस अधूरेपन की बस एक आकांक्षा रह जाती है वह बरस आ जाय लेकिन बीता हुआ कब लौटा है? अगर वह बरस लौटा तो, "मैं तुम्हें वह तस्वीर दिखाऊँगी/ जिसे मैं दीवारों पर टांग नहीं पाती/ और तुम मुझे अपने वे किस्से सुनाना/ जिन्हें तुम डायरी में भी साझा नहीं करते।""[6] वह कभी नहीं लौटता, रह जाता है बस एक खालीपन.... अकेलापन...

यही अकेलापन 'एक छोटा सा सफर', 'खटखटाहट','सब ठीक है', 'रात भर', प्रेम-पत्र, 'डर का एक टुकड़ा', 'भूल जाती हूँ', 'पार कर लो', 'मन का हिस्सा', 'एक उदास लड़की' में दिखता है। एक उदास लड़की कविता 'तीसरी कसम' के हीरामन और हीराबाई की याद दिलाती है। 'कोसी के घटवार' के गुसाई की याद दिलाती है। निपट अकेलापन है इन कविताओं में। निर्जन एकाकीपन। अकेले-अकेले 'बीत' जाने के दुख और असहायता को 'भूस्खलन' कविता के माध्यम से कवयित्री अभिव्यक्त करती हैं। 'यादों के धागे' 'बीच का जंगल', 'तुम्हारा एक टुकड़ा', 'बिछुड़न', 'अप्रैल का महीना', 'जमना-पिघलना' इन सभी कविताओं में यह अकेलापन पसरा हुआ है।

'डर' कविता में भी अकेलापन है। उसका एहसास और भय है। रिश्तों में डर घुला हुआ है लेकिन जंगल में डर नहीं है। जंगल सुरक्षित है, यह भाव आईनाम की 'जंगल' कविता में भी व्यक्त होता है। प्रकृति ने अपने दायरे में प्राकृतिक किस्म के डर बनाए हुए हैं। उसमें कोई भेद-भाव नहीं है लेकिन मनुष्यों के बनाए भय में भेद-भाव है। एक किस्म का अन्याय है। इसलिए कवयित्री इस 'डर' से डरने की बात करती है। इस डर का प्रतिरोध भी आईनाम की कविताओं में दिखता है। 'मशाल' कविता में लेखिका प्रतिरोध की मशाल के माध्यम से अन्याय का प्रतिकार करने का साहस जुटाती है और साथ ही वह अपने भीतर जड़ जमाये बैठे 'डर' से भी लड़ती है।

यशोदा की हमजिंस, राधा की बेटी[7]

'कब्जा' कविता में लेखिका पितृसत्ता और उससे लड़ने को प्रकृति के विभिन्न उपमानों के माध्यम से अभिव्यक्त करती है। "सुनने में यह आता है कि/ हक़ के आगे बनी दीवारों की/ उम्र नहीं होती।"[8] 'रुचि' कविता भी इसी मिजाज की कविता है। 'बातें' कविता भी स्त्री जीवन के एक अलग पक्ष को रूपायित करती है। इस कविता की संरचना और भावाभिव्यक्ति पर अनामिका और आलोकधन्वा का प्रभाव दिखता है। नए-नए प्रतीकों के माध्यम से लेखिका ने स्त्री मुक्ति के सपने को रूपायित किया है। 'नेल पोलिश के नए रंग' कविता में नेल पोलिश के माध्यम से लेखिका ने स्त्रियों की पीढ़ियों को आत्मविश्वास से लबरेज होते हुए दिखाया है। 'कीट' और 'मैं एक पौधा' कविता में भी स्त्री जीवन, उसके अकेलेपन और उसके बंधनों को लेखिका ने अभिव्यक्त किया है।

आईनाम की कविताओं में स्त्रियों के जीवन की सामान्य समस्याओं के बारे में अभिव्यक्ति तो मिलती ही है, इसके साथ ही विशिष्ट तौर पर अरुणाचल प्रदेश के जनजातीय समाज में स्त्रियों के जीवन, उनकी समस्याओं और उनकी रोज़मर्रा की चुनौतियों को उन्होंने बहुत मर्मपूर्ण तरीके से अभिव्यक्त किया है। 'स्त्री का रक्त', और 'आज़ाद लड़की' ऐसी ही कविताएं हैं। जनजातीय समाजों की स्त्रियों के जीवन के बारे में बहुत सरलीकरण किया जाता है। आईनाम इस सरलीकरण के घेरे को तोड़ती हैं। पुरुष और स्त्री को लेकर जो आधारभूत मान्यताएँ हैं, उनमें ही बुनियादी तौर पर भेद-भाव है। लेखिका लिखती हैं, "पुरुष का रक्त शुद्ध होता है/ देशी घी की तरह/वह पोखर का पानी है/ जिसे झरनों ने कभी छेड़ा नहीं है..... स्त्री के रक्त का क्या है/ उनके रगों में तो आधा खून आधा पानी है/ जो पूरी तरह से लाल भी नहीं है/ जो अपूर्ण है, अशुद्ध है/ इसलिए स्त्री के हक़ में/ परायेपन का तमगा मल दिया जाता है/ ऐसा मुझे समझाया जा रहा है।"[9]

सामूहिक दुख की अभिव्यक्ति में भी लेखिका का निजत्व झलक उठता है। स्त्री के दुख की अभिव्यक्ति 'बेटी' कविता में मिलती है। इस कविता में आत्मनिर्भरता, आत्मीयता, पीड़ा और अकेलापन एक साथ प्रकट होता है। "मैं चाहती हूँ कि वह रक्त बह जाए/ जिनमें हज़ारों-सालों के दर्द घुले हैं/ मैं चाहती हूँ कि वह रक्त बह कर/ मुझे मेरे रक्त का गहरा लाल रंग दिखाए।"[10] इस निजत्व का एक रूप 'गुलदान' कविता में दिखाई देता है। "पर तुम यह न भूलना/ कि तुम भी एक गुलदान हो/ इन्हें भी सँवारो, महकने दो।"[11] लेखिका को इस अकेलेपन से, इस अनकहे बंधन से मुक्ति भी चाहिए। लेखिका लिखती हैं, "मैं अपने दाव के धार खुद तेज करूंगी/ और सदियों के अपने बंधन काट डालूँगी।"[12]

अरुणाचल प्रदेश के हिंदी कवियों की कविताओं में 'शास्त्र' को लेकर बहस की जा सकती है। आईनाम की कविताएँ इस मोर्चे पर भी अपनी कोमलता से मन को छू लेती हैं। बहुत ही नाजुक और मार्मिक उपमाओं का प्रयोग इन कविताओं में देखने को मिलता है। ये उपमाएँ इतने सहज भाव से कविता में प्रकट होती हैं जितनी सहजता से किसी कैशोर्य मन में प्रेम। "और एक अधजली मोमबत्ती जैसी मन की पीर/ जो जलती है, पिघलती है, जम जाती है/ और फिर जलने लगती है।"[13]

आईनाम की कविताओं में स्त्री-जीवन अलग-अलग रंगों में अभिव्यक्त हुआ है। इसमें रंग भी है और बदरंग भी। उदासी और अकेलापन है तो गिर-गिर कर संभलने की उम्मीद भी है। लगातार हारने के बीच में 'जब तक हैं, तब तक डटे रहेंगे/ और अगर किनारे कर दिये जाएँ/ तो हौसलों और उम्मीदों के बीज/ हम अगली पीढ़ी को दे आएंगे/ हम फिर-फिर खेलेंगे/ स्त्री-जीवन का यह खेल।"[14] कविता का यह भाव हमें निर्मला पुतुल की याद दिलाता है।

पाश की कविता 'मैं घास हूँ' की तर्ज पर आईनाम की एक कविता है,'मैं पेड़ हूँ'। इस कविता में कवयित्री उसी भाव को व्यक्त करती है, जिसे पाश अपनी कविता में करते हैं। आईनाम की इस कविता में उम्मीद है। एक पराजय का भाव है लेकिन पलायन की दैन्यता नहीं है। 'मैं समुद्र से मिलने जाऊँगी' कविता पर आलोक धन्वा की कविता 'भागी हुई लड़कियां' का प्रभाव दिखता है। आईनाम की कविताओं के बारे में एक और बात कही जानी चाहिए कि उनकी कई कविताओं पर हिंदी तथा अन्य भाषाओं के कवियों की कविताओं का प्रभाव दिखता है। यहाँ तक कि उनके यहाँ अनामिका, आलोक धन्वा, निर्मला पुतुल और पाश का भी प्रभाव देखा जा सकता है। इस प्रभाव को यूं ग्रहण किया जाना चाहिए कि साहित्य रचना में एक अमूर्त निरंतरता रहती ही है। समय की नदी के समान ही साहित्य की नदी में भी एक प्रवाह और प्रभाव रहता है।

स्त्री जीवन में आत्मनिर्भरता का बहुत महत्त्व है। मनुष्य के जीवन में भी इसका बड़ा महत्त्व है। बच्चे और बूढ़े प्राकृतिक कारणों से निर्भर होते हैं किंतु स्त्री के जीवन को तो व्यवस्था के द्वारा पराधीन बनाया गया है। उसकी यह पराधीनता ही उसके मानसिक और शारीरिक शोषण का आधार है। 'ओ नन्हीं चिड़िया' कविता यह ताकीद करती है कि स्त्रियों को अपना जीवन आत्मसम्मान और आत्मनिर्भरता के साथ जीना चाहिए। 'संतान' कविता में भी स्त्री जीवन और पितृसत्ता से एक उदास सी मुठभेड़ दिखती है। एक लड़की के सपने परदों की तरह हो जाते हैं। उड़ना उनकी फितरत में होता है लेकिन टंगना उनकी नियति बन जाती है। उनके जिम्मे यही काम रह जाता है कि वे परिवार की 'मर्यादा' की रक्षा करें। वही 'मरजाद' जिसकी मार खाया हुआ होरी कभी संभल न सका। वही 'मरजाद' जिसकी मार खाई हुई लड़कियां या तो खुद को खत्म कर लेती हैं या 'भाग' जाती हैं। लेखिका लिखती हैं, "वह भाग नहीं रही है/ वह आजाद हो रही है।"[15]

स्त्री-पुरुष संबंधों में आईनाम की दृष्टि आधुनिक और समतावादी है। वे लिखती हैं, "एक सवाल पूछूँ- क्या तुम्हें साथ चलना आता है/ साइकिल के पहिये जैसा साथ चलना नहीं/ एक जोड़ी चप्पल जैसा/ साथ चलना/ कभी तुम आगे/ कभी मैं आगे।"[16] मुक्ति का रास्ता कभी अकेले न तो बनता है और न ही तय होता है। इस साझेदारी की बात दुनिया के सभी रचनाकारों ने की है। आईनाम की कविता 'टाँके लगा लेती हूँ' इसी साझेदारी की बात करती है।

'अलसाई सी' एक भिन्न तरह की कविता है। एक स्त्री के जीवन में यह समय बमुश्किल ही आता है कि वह अलसाई सी रहे। वह देखती है कि प्रकृति की चीजें वक्त की पाबंद हैं। जिम्मेदारियाँ स्त्री को भी प्रकृति जैसा ही बना देती हैं। ऐसे में 'अपना कमरा' और 'अपना समय' उसे मिलता ही नहीं है। इस दृष्टि से देखें तो यह कविता स्त्री जीवन की मुक्ति के फलसफे को बहुत ही सरल अंदाज में बयान करती है।

ये दुनिया...

सामाजिक जीवन की विडंबनाओं पर भी आईनाम ने कुछ कविताएँ लिखी हैं। 'अटका हुआ' कविता एक ऐसी पीढ़ी के बारे में है जो शहर और गाँव के द्वंद्व में उलझी हुई है। वह कुछ छोड़ नहीं पा रही और कुछ स्वीकार नहीं कर पा रही है। यह समस्या हर उस पीढ़ी की होती है, जो कालांतरण के दौर में जवान होती है। ऐसी ही कविता है,'मेरा गाँव जवान हो रहा है।' सामाजिक सरोकारों से भरी एक कविता 'पहाड़' है। पहाड़ों की विशालता, अकेलापन और उदारता पर लिखते हुए लेखिका चाहती है कि पहाड़ थोड़ा फौलादी भी होने चाहिए ताकि उनको उजाड़ने वालों के मन में खौफ रहे। हालांकि 'खौफ' किसी सभ्यता-संस्कृति को बचाने का सर्वोत्तम तरीका नहीं है, क्योंकि खौफ का असर प्रभावी हो सकता है लेकिन दूरगामी नहीं होता। समाज का नैतिक विकास ही वह सर्वोत्तम तरीका है जिससे मनुष्यता और प्रकृति दोनों की रक्षा हो सकेगी। 'सर्द रातें' कविता की चिंता भी हमसे नैतिक जागृति की मांग करती है। आईनाम की कुछ कविताओं में यह सामाजिक सरोकार, एक वैश्विक चिंता में बदल जाता है। यह चिंता बहुत ही मर्मपूर्ण तरीके से 'हम शर्मिंदा हैं' कविता में अभिव्यक्त होती है। वे लिखती हैं, "मैंने सुना है कि पृथ्वी घूमती है/ और हमें भनक तक लगने नहीं देती है/ मैं शर्मिंदा हूँ/ पृथ्वी के इस स्नेह को/ हम-तुम जिस रूप में लौटा रहे हैं।"[17] इस क्रम में आईनाम की एक बहुत अच्छी कविता 'युद्ध' है। हम उस दौर में हैं जिसमें युद्धों को रोमांच की तरह देखने की प्रवृत्ति बढ़ रही है और शासक वर्ग अपने स्वार्थों के कारण उसे बढ़ावा देता है। सच्चाई यह है कि मानव जाति ने महामारियों या प्राकृतिक आपदाओं से कहीं ज्यादा मौतें और नुकसान युद्धों के कारण देखा है। युद्ध मानवता के क्षरण की महागाथा है। आईनाम लिखती हैं, "जिसने कल ही कटहल का पौधा लगाया है/ जिसे अभी-अभी किसी से प्रेम हो गया हो/ उन्हें युद्ध के परिणामों से क्या/ युद्ध के दौरान ही वे तो हार चुके होते हैं/ युद्ध का परिणाम तो बस अखबारों/ और इतिहास के लिए होता है।"[18] यह कविता आलोक धन्वा की कविता 'सफ़ेद रात' की याद दिलाती है। सामाजिक अन्याय और असुरक्षा किसी जादू या प्रार्थना से ठीक नहीं होता। कोई जादू ऐसा नहीं बन सका और न ही ऐसी कोई प्रार्थना गाई गई है जो दुख और अन्याय से पीड़ित समाज को एक बेहतर दुनिया दे सके। 'सड़क और बच्चे' कविता अव्यक्त तरीके से इस बात को व्यक्त करती है।

और अंत में, आने वाले दिनों के सफीरों के नाम[19]...

आईनाम की कविताएँ अकेलेपन की कविताएँ हैं, अकेलेपन से लड़ने की कविताएँ हैं। क्योंकि कोई तब तक अकेला नहीं होता है 'जब तक कि दूर पहाड़ी के उस पार/ कोई तुम्हें भी याद करता हो/ सुबह, दोपहर और शाम।"[20]

संदर्भ ग्रंथ सूची-

[1]पापा मेरे, मीत, आईनाम इरिंग, पुस्तकनामा, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश, 2023, पृष्ठ- 48

[2]मीत, मीत, आईनाम इरिंग, पुस्तकनामा, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश, 2023, पृष्ठ- 13

[3]शहर न बन जाऊँ, मीत, आईनाम इरिंग, पुस्तकनामा, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश, 2023, पृष्ठ- 102

[4]ओ मीत!, मीत, आईनाम इरिंग, पुस्तकनामा, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश, 2023, पृष्ठ- 100

[5]टूटन, मीत, आईनाम इरिंग, पुस्तकनामा, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश, 2023, पृष्ठ- 18

[6]शाम की चाय, मीत, आईनाम इरिंग, पुस्तकनामा, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश, 2023, पृष्ठ- 51

[7] 'प्यासा' फिल्म के एक गीत की पंक्तियाँ, साहिर लुधियानवी।

[8]कब्जा, मीत, आईनाम इरिंग, पुस्तकनामा, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश, 2023, पृष्ठ-36

[9]स्त्री का रक्त, मीत, आईनाम इरिंग, पुस्तकनामा, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश, 2023, पृष्ठ- 35
[10]बेटी, मीत, आईनाम इरिंग, पुस्तकनामा, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश, 2023, पृष्ठ- 16
[11]गुलदान, मीत, आईनाम इरिंग, पुस्तकनामा, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश, 2023, पृष्ठ- 21
[12]बेटी, मीत, आईनाम इरिंग, पुस्तकनामा, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश, 2023, पृष्ठ- 17
[13]दादी की पोटली, मीत, आईनाम इरिंग, पुस्तकनामा, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश, 2023, पृष्ठ- 22
[14]हम फिर खेलेंगे, मीत, आईनाम इरिंग, पुस्तकनामा, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश, 2023, पृष्ठ- 24
[15]दाह दो, मीत, आईनाम इरिंग, पुस्तकनामा, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश, 2023, पृष्ठ- 29
[16]साथ चलना आता है?, मीत, आईनाम इरिंग, पुस्तकनामा, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश, 2023, पृष्ठ- 28
[17]हम शर्मिंदा हैं, मीत, आईनाम इरिंग, पुस्तकनामा, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश, 2023, पृष्ठ- 69
[18]युद्ध, मीत, आईनाम इरिंग, पुस्तकनामा, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश, 2023, पृष्ठ- 77
[19]इंतिसाब, फ़ैज़ अहमद फ़ैज़, सारे सुख़न हमारे, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006
[20]अकेला होना, मीत, आईनाम इरिंग, पुस्तकनामा, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश, 2023, पृष्ठ- 112

*(**लेखकीय परिचय :** डॉ. अभिषेक कुमार यादव राजीव गाँधी विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में सहायक प्रोफेसर हैं। इससे पूर्व आप भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला में फेलो रह चुके हैं। आपकी प्रकाशित पुस्तक 'झारखण्ड : अँधेरे से साक्षात्कार' काफी चर्चित रही है। मोबा:9436682837, ई-मेल : ykabhishek@gmail.com)*

आदी आदिवासी समाज में 'नबीङ' की भूमिका

ईङ परमे

अरुणाचल प्रदेश के आदिवासी समुदायों में से एक महत्त्वपूर्ण समुदाय है आदी आदिवासी। 'आदी' संयुक्त रूप से एक आदिवासी समूह का द्योतक है, जो चौदह उपसमुदायों- आसिङ, कोमकार, कारको, ताङगाम, पादाम, पाङगी, पासी, पाईलिबो बोरी, बोकार, मिन्योङ, मिलाङ, रामो, सिमोङ को मिलाकर बनता है। आदी समुदाय का विस्तार मुख्यतः अपर सियाङ, ईस्ट सियाङ, वेस्ट सियाङ, लोअर दिवाङ वैली, लोहित और नामसाई जनपद है। आदी समुदाय में 'नबीङ' की संस्कृति है। नबीङ बच्चे को देखभाल करने वाली सामान्यतः छोटे लड़के/ लड़की को कहा जाता है। इसका मतलब है कि लड़के और लड़कियाँ दोनों को नबीङ कहा जा सकता है। यहाँ यह भी बात रखना आवश्यक है कि कुछ परिवारों में बालिग का नबीङ बनना भी देखा गया है। 'नबीङ' को देखभालकर्ता या केयरगिवर कह सकते हैं। परिवार का कोई भी सदस्य बच्चे की देखभाल करता है, परंतु बच्चे को देखने के लिए किसी बाहरी लड़की/लड़का को रखना प्रथागत है। यदि दंपत्ति की पहले से संतान है तो वह भी नबीङ बन सकता है। इस समाज में नबीङ रखना बाल श्रम में नहीं आता है। नबीङ बनना बच्चे के ऊपर निर्भर होता है। कोई जबरदस्ती नहीं की जाती। अपने सगे संबंधी या गाँव वालों के किसी भी बच्चे को नबीङ के लिए चुना जाता है। आदी समाज में 'नबीङ' का सामाजिक और सांस्कृतिक महत्त्व है। आदी समाज में नबीङ की सेहत का भी विशेष ध्यान दिया जाता है।

आदी लोक साहित्य में भी 'नबीङ' का प्रसंग देखने को मिलता है। एक आदी लोककथा के अनुसार तानी (आदि पुरुष) जन्म के पश्चात् रोने लगा था, वह चुप नहीं हो रहा था। ऐसे में कई नबीङ ने तानी को शांत कराने का अथक प्रयास किया। प्रथम नबीङ को लेकर आदी समाज में मतभेद है। कोई कहता है कि प्रथम नबीङ 'हिरण' था। वह नोमगु नोमनाङ देश (जंगल) का वासी था -

"नोमगू दूमपीङ अ यायी म
नोमनाङ दूमपीङ अ यायी म
दोनी आने आजी म
आजी नबीङ अम बीमो कीदोपे"[1]

इस लोक गीत में हिरण को 'दूमपीङ अ यायी' कहा गया है। हिरण ने 'रीपूम अप्पोन' (रिपुम नामक बेल से बना बच्चे को पीठ में बांधने का पारंपरिक बेल्ट) से तानी को पीठ पर लादकर शांत रखने का अथक प्रयास किया, जिससे उसके घुटने भीतर की तरफ मुड़ गये। आदी में यह मान्यता है कि आज भी इसीलिए हिरण के घुटने भीतर की ओर मुड़े होते हैं। असफल होकर वह नोमगू नोमनाङ (जंगल) भाग जाता है। उस दिन से यदि हिरण कभी गाँव या गाँव के आस-पास दिख जाये तो आदी लोग अशुभ मानते हैं, क्योंकि हिरण को देखने से गाँव में किसी की आकस्मिक मौत हो सकती है, ऐसी मान्यता आदी जनों में है। प्रस्तुत आदी लोकगाथा में इसी भाव की अभिव्यक्ति हुई है -

"अङो कोङकुअ गीदूम अम

ताकार योमसी अ दीदूम अम
लेको दुमपी मागरू अ दकुकायेकू"[2]

कुछ आदी लोक कथाओं के अनुसार कबूतर भी तानी का नबीङ कहा जाता है। वहीं कुछ लोक कथाकारों के अनुसार प्रथम नबीङ अङो कारसी अ योयी था। ये अङो ताकार वासी था जबकि हिरण नोमगू नोमनाङ (जंगल) वासी थे। कुछ कथाओं के अनुसार 'दोयीङ दुदङअ मोने' और दोयीङ पारी बीङू ने भी तानी के नबीङ की भूमिका निभाई थी। दोयीङ पारी बीङू जैसे नबीङ के चलते ही आदी समाज बच्चे के जन्म पर नबीङ रखना प्रारंभ कर दिए, जो इस लोक गाथा में उल्लिखित है -

"देलू अ पेदोङ नाने के,
पेदोङ दोनी आजी म दीरीअ
दीयीदुअम नबी अ
बीगेनाम अ म
दोयीङ यीदुआ,ददूङला
दोयीङ पारी अ मीमी ला
आजी नबी अ गागातो
दलोक माई, दोनी आजी
आजी मीबादो बातमङ ला
दोनाङ ओलो, ओलो मीबादो बातमङला
दोनी नबी अ बीमङ दुङ"[3]

नबीङ पीठ पर बच्चे को बांधकर लोरी गीत भी गाते हैं। जिसमें 'योयो गागा' गीत आदी आदिवासी समाज में बहुत प्रचलित है। इस गीत को नबीङ पीठ पर बंधे शिशु को सुलाने के लिए गाती है। वह अपने शरीर को हिलाती रहती है। लोरी गीत इतनी मधुमय होती है, जिसका बच्चे पर बहुत प्रभाव पड़ता है। एक रोता हुआ बच्चा कुछ ही मिनटों में शांत होकर सो जाता है। ऐसे गीत में बच्चे के प्रति स्नेह का संचार होता है। आदी समाज लोक साहित्य के अनुसार कोमाङ नाने (जीवन को रूप देने वाली) ने तानी (मनुष्य) को सुलाते हुए सर्वप्रथम लोरी गीत गाया था। लोरी गीत दृष्टव्य है-

"ओ योयो लो ओ पयो लो ओई ओयो लो
ओ गागा लो ओई।
ओ योयो गागे ओ पयो गागे ओई
ओ डोक्के सी ओ आनी सी ओ तोनी सी ओई
ओ इङको कोई ओ आपूक मीजीर अ
ओ गयीर दुने ओ
ओ डोक्के सो ओ मीमी को ओ लाम्कू सो
ओ कलू सो ओ आसोपे ओ दाकलाङका ओई
ओ डोक्केसीम ओ आनी सीम ओ तोनी सीम

ओ इङको मीबो अ पादाङ अ ओ लुतुन अ ओई
ओ इङको मीबो अ पादाङ अ
ओ योयो लो ओ पयो लो गागा लो ओई
ओ मीलो कोमीलो ओ यायी क ओ रालीङ सी त
ओ ततुङ लो ओ तमीन गमोपे ओई
ओ मीमे कोमीलो ओ मामी क ओ रीकबी लो
ओ बीतुङ लो ओ बीमीन गमोपे ओई
ओ मीमी बुलके अ ओ मोङको ताओ द
ओ कोत्तुलो ओ कोतमीन गमो लापे ओई"[4]

भावानुवादः

बच्चे को पीठ पर लेते हुए गाती है- ओ मेरे नन्हें भाई तुम रोओ मत। हमारी पीठ पर चुपचाप पड़े रहो तुम अपनी बड़ी दादी के पीठ पर सो जाओ। किसने तुम्हें डाँटा है, कौन तुझे डरा रहा है ? डराने वालों को मैं पिता, चाचा, मामा, सबको कह दूँगी। लड़के के संदर्भ में गायिका कहती है कि तू एक लड़का हो बेटा हो, वीर रहो। तुम्हें अपने पिता के कामों में हाथ बँटाना है, रालीङ वृक्ष की कटाई कर तुम्हें बड़ा होकर जुताई के लिए तैयार करना, अपने पिता के कामों में हाथ बँटाना है। लड़की के प्रसंग में गायिका कहती है कि ओ मेरी बहन तुम्हें बड़ी होकर अपनी-माँ के कामों में हाथ बँटाना है साथ ही अपनी बड़ी बहन को खेती में उग आए जंगली घास को साफ करने में तुम्हें सहायता भी करनी है। उक्त गीत एकल शैली में गाया जाता है। इसे नबीङ के अलावा, बच्चे की माता पिता या घर का कोई भी सदस्य भी गाते हैं। इसे समूह में भी गाया जाता है और अर्थ वही रहता है। जैसे-

गायक/ गायिका	**गायकदल**
"ओ माङकार अ	ओई
ओ कारपुङ अ	ओई
ओ मीमूम अ	ओई
ओ बूलू क	ओई
ओ मलो योयो अ	ओई
ओ गोग ग नाम अ	ओई
ओ अङो योयो अ	ओई
ओ गोग ग नाम अ	ओई
ओ अङो योयो अ	ओई
ओ ङाङा नो	ओई
ओ आपो नो	ओई
ओ सीलो नो	ओई"[5]

आदी समाज में नबीङ द्वारा लोरी गीत गाने की प्रथा रही है, जो अब माँ-पिता या परिवार के कोई भी सदस्य बच्चे को पीठ में लेते हुए गाते हैं। योयो गागा नामक लोरी गीत के अतिरिक्त नूनू पीपी, कुमबाङ पाक्को आदि लोरी गीत भी गाये जाते हैं।

आदी महिलाएं गृहस्थी के कामों के साथ-साथ कृषि कार्यों, पारंपरिक हस्तशिल्प, समुदाय के आयोजनों और उत्सवों में सक्रिय रूप से संलग्न होती हैं, इसीलिए नबीङ का विशेष महत्त्व रहता था। उनका होना बहुत आवश्यक रहता था। परंतु नबीङ का कार्य न केवल बच्चों की देखभाल करना है, बल्कि यह पारिवारिक और सामाजिक संरचना का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। नबीङ सामाजिक और नैतिक मूल्यों को आगे बढ़ाने में मदद करती है। परिवार और समुदाय के बीच सहयोग, एकजुटता की भावना भी प्रबल होती है, जो आदी संस्कृति की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है। आदी समाज में नबीङ की भूमिका न केवल बच्चों की देखभाल तक सीमित है, बल्कि आदी समुदाय के समग्र विकास में भी योगदान देती है। समाज में अपनेपन की भावना को बढ़ावा देती है। यह भावना सामाजिक एकता को बनाए रखने और सांस्कृतिक मूल्यों और परंपराओं को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचाने के लिए महत्त्वपूर्ण है। आधुनिकता और शिक्षा ने जीवन के विभिन्न पहलुओं में बदलाव लाया है, जिससे आदी आदिवासी के पारंपरिक सामाजिक संरचनाओं और भूमिकाओं में भी परिवर्तन देखने को मिलता है। नबीङ प्रथा वर्तमान में आदी गाँवों के कुछ एक परिवारों में देखने को मिलती है। आदी समुदाय में नबीङ की भूमिका में बदलाव आया है और यह परंपरा उतनी प्रमुख नहीं रहीं है। अब बच्चों को बाहरी घरेलू सहायक यानी मेड्स देखने लगे हैं। आदी समाज में नबीङ के स्थान पर देखभालकर्ता या केयरगिवर के रूप में मेड्स बच्चों की देखभाल में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। उनकी उपस्थिति ने आदी समाज की संरचना में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन ला दिया है।

संदर्भ सूची:

1. श्री कामीन योमसो और श्री नाकमीन परमे से किए गए साक्षात्कार पर आधारित
2. श्री कामीन योमसो और श्री नाकमीन परमे से किए गए साक्षात्कार पर आधारित
3. श्री कामीन योमसो और श्री नाकमीन परमे से किए गए साक्षात्कार पर आधारित
4. श्रीमती तातीर लेगो और गायकदल प्रसार भारती पासीघाट से प्राप्त
5. एन. एन ओसीक फोक सॉग्स एण्ड डांसज ऑफ अरुणाचल प्रदेश अंक-1 पृ. संख्या 64-65

***

*(**लेखकीय परिचय :** डॉ. ईङ परमे* जवाहरलाल नेहरू महाविद्यालय, पासीघाट, ईस्ट सियाङ, अरुणाचल प्रदेश के हिंदी विभाग में सहायक प्रोफेसर हैं। *मोबा: 8730992057, ई-मेल :* permeing@gmail.com *)*

मिश्मी लोकगीतों में अभिव्यक्त श्रम सौंदर्य की राग-रागनियाँ

मो. जोहुरूल इस्लाम

श्रम मानव जीवन के विकास का आधार है। मानव सभ्यता के विकास का इतिहास उसके श्रम का इतिहास है। भारत देश कृषि प्रधान देश है। किसान हमारे देश के प्राण हैं। श्रम के साथ-साथ इनके गीतों में भी श्रम सौंदर्य की अभिव्यक्ति दिखाई पड़ती है। वे अपने श्रम में इस तरह से डूब जाते हैं कि उनके गीतों में भी उसी प्रकार के भावों की अभिव्यक्ति दिखाई पड़ती है। वे गीत, जिन्हें किसान वर्षा में, धूप में, आंधी में खून-पसीना एक करते हुए या मधुमय आकाश में आनंदोत्सव मनाते हुए गाते हैं। वह सूक्तियाँ, जो दैनिक जीवन में किसानों का मन बहलाती रहती हैं, वे सुख-दु:ख की कथाएँ, जो समय-समय पर उन्हें हँसाती और रुलाती हैं। किसान जीवन के कितने ही मनोवैज्ञानिक तथ्य, विचार, दृष्टिकोण और आदर्श अत्यंत सरस एवं सजीव रूप में दृष्टिगोचर होते हैं। मिश्मी जनजाति का मुख्य पेशा कृषि है, वे अपने गाँव या पहाड़ों को काटकर खेती करते हैं। इनके खेतों का आकार इतना बड़ा नहीं होता जैसा कि हमें मैदानी इलाकों में दिखाई देता है। मिश्मी अधिकतर पहाड़ों पर खेती करते हैं। मैदानी इलाकों में नाम मात्र की खेती की जाती है। झूम खेती में पहाड़ों पर चढ़कर खेती करना बहुत ही कष्टदायक होता है। सामान्य परिवार के लोग एक बीघा या दो बीघा ही खेती कर पाते हैं। उससे अधिक धान बोना उनके लिए अत्यंत कठिन होता है। बड़े-बड़े वृक्षों को काटकर साफ करना, फिर उन टहनियों को काट कर साफ करके जलाना बहुत ही कठिन कार्य होता है, इतनी सारी कठिनाइयाँ मैदानी कृषि में नहीं करनी होती है। जंगल काटने का कार्य पुरुष वर्ग दाव से करता है। कार्य करते समय सभी गाँव वाले एक दूसरे की सहायता करते हैं। महिलाएँ घर के कार्यों के साथ- साथ भोजन और मदिरा की व्यवस्था करके खेतों में लाती हैं, सभी कार्य समाप्त होने के पश्चात् बीज को रोपा जाता है। एक लाठी के जरिये जिसे 'तालांग' कहा जाता है, रोपनी का कार्य अधिकतर महिलाएँ करती हैं। इस समाज में श्रम से संबंधित कार्य जैसे रोपनी, कटनी आदि महिलाएँ ही करती हैं तथा कभी-कभी अपने सुख-दु:ख संबंधी गीतों के माध्यम से अभिव्यक्त करती हैं, उनका श्रम-सौंदर्य गीतों में झलकता है।

खेती के अलावा मिश्मी लोग शिकार करने का भी शौक रखते हैं। शिकारी घने जंगलों में जाकर शिकार करते हैं और शिकार यदि अधिक मिल जाए तो उसे बेच दिया जाता है। शिकार करने का भी मौसम होता है। सामान्य तौर पर शिकारी, शिकार करने लिए अक्टूबर से जनवरी के महीने में शिकार पर जाते हैं, इस मौसम में यदि खेत में काम नहीं रहता है तो वह सीधे शिकार के लिए घर से निकल पड़ते हैं।

व्यापार के तौर पर देखा जाए तो मिश्मी समाज में मिथुन सबसे महत्त्वपूर्ण जानवर है। यह उनके सामाजिक, धार्मिक क्रिया-कलापों का केंद्र बिंदु है। समाज में वही धनी है, जो किसी पूजा के अवसर पर सौ से भी अधिक मिथुनों की बलि देता है। पुराने समय में यह लोग व्यापार के लिए तिब्बत जाते थे। वे अपने साथ भालू तथा हिरण आदि का चमड़ा लेकर जाते थे और वहाँ से पीतल के बरतन तथा नमक लेकर आते थे। मिश्मी समाज की महिलाएँ कपड़े बुनने में भी कुशल हैं। श्रम का विभाजन यहाँ भी देखने को मिलता है। मिश्मी लोकगीतों में समाज के प्रति एक नया सौंदर्यबोध देखा जा सकता है। वे लोग दिन भर परिश्रम करते हैं। चाहे

खेत में काम करना हो, चक्की पीसना हो, या फिर शिकार करना हो उनकी संवेदना को वे गीतों के माध्यम से समाज तक लाने का प्रयास करते हैं। श्रम से समाज की एक नई छवि सामने आती है। वे इन गीतों में जीवन के संघर्षों और अन्य विषमताओं तथा बाधाओं को सहन करते हुए भी कार्य करना नहीं छोड़ते हैं। जाड़े के दिनों में देहाती, गरीब किसान की दशा का चित्रण इस गीत में अत्यंत सजीव है। मिश्मी का एक धान कूटने संबंधी गीत यहाँ प्रस्तुत है–

"दायूसों आन्ने वे
सिकमपे गासानाम ..... गू न्यू ....
पे ..... डू वा ..... गासा याम
ब्रूया नोदी ..... दाम ..... इ सिंग गो
सिकम को गासानम ..... लेह ना दे
सि ..... कम सा इजू ने
इहलंग बचाई .... या ... हाँ .... कव .... रव दे कन्मगू
ब्रूमू कुइतंग तू ..... दी वू मू कुइजातू
सिकमत्यु गुपएना गू न्यू हूँ
बियापिंग दापूनियम"[1]

(अर्थात् सूरज निकलने से पहले सभी काम करने पड़ते हैं। धान, कोदो, मक्का सुबह ही पीसकर तैयार करना पड़ता है। पानी भी बहुत दूर से लाना पड़ता है। खेत में धान लगाना, सफाई करना, कटाई करना भी गाँव वाले मिलकर करते हैं। बरसात के मौसम में हमें प्राय: चिंता रहती है कि कब खेत का काम समाप्त होगा और कब बारिश रुकेगी और हम वापस खेत में जाकर काम कर सकेंगे।)

इस प्रकार हम देखते हैं कि लोकगीतों में श्रम की महत्ता को दिखाया गया है। किसान किस तरह से अपना कष्टदायक जीवन बिताते हैं, उसका मार्मिक चित्रण इन दोनों गीतों में देखा जा सकता है। मिश्मी गीत में बूढ़ी औरत अपनी वेदना को प्रकट कर रही है कि सुबह उठकर ही धान कूटना, कोदो पीसना पड़ता है। इसके बाद खेत में जाकर काम करना पड़ता है। इसके साथ-साथ बारिश की चिंता भी लगी रहती है। अत्यधिक वर्षा भी फसलों के लिए हानिकारक है। इसकी भी चिंता हमेशा लगी रहती है कि यदि ऐसे ही वर्षा होती रही तो क्या खाएँगे। इस प्रकार गीतों में श्रम सौंदर्य की अभिव्यक्ति देखने को मिलती है। मिश्मी का एक और रोपनी गीत जहाँ श्रम सौंदर्य का सुंदर चित्रण हुआ है, प्रस्तुत है-

"दापई ये रसींग पे .....
ए ..... दा पो ..... बढ़ो ला ..... गा ..... लो ओ ने इथा दी
जाबा ने अलिइ न्यू दायू आ .... मलिइ .... दा औ औ तिलंग सई रदियूया
रपम म अ ..... कुईसानम ..... पो दांग
मलइतो नवा का .... सीतेया ..... आबामों गासानम लिगो मो लिगो मो
बा ... बे ... या गेहेतेह दसमदबेह ....
दे त्यो तो पलव न ..... हन ने त्यो ओ ओ इथा क्यों ....."[2]

(अर्थात् सुबह उठकर ओखली में धान पीसते हैं, एक दिन का चावल सुबह ही कूट कर निकालते हैं। जंगल जाकर जंगली पत्ते ढूँढ़कर लाया करते हैं। उसे ही उबाल कर खाते हैं फिर इसके बाद ही खेत में जाते हैं। पक्षियों के साथ-साथ हम भी गीत गाया करते हैं। इससे खेत में काम करने में आसानी होती है। मेहनत भी आसान लगने लगती है।

इस प्रकार मिश्मी के रोपनी संबंधी गीत में गाँव की औरतें सुबह उठकर किस तरह से भोजन तैयार करती हैं, उसका सुंदर चित्रण इस गीत में हुआ है। यह लोग श्रम के प्रति अपने आपको किस तरह ढाल चुके हैं, इसे इन गीतों में देखा गया है। चाहे कितनी भी तकलीफ क्यों न हो अपने कार्य के प्रति जो उत्साह है, गीतों में द्रष्टव्य है। श्रम करने की प्रेरणा यहाँ हम देख सकते हैं। पक्षियों की आवाज़ सुनकर एवं मस्त होकर खेतों में काम करना प्रस्तुत गीत के माध्यम से दर्शाया गया है।

मिश्मी गीत में विवाह न होने के कारण उनकी पीड़ा लोकगीतों के माध्यम से व्यक्त हुई है। विवाह न होने का कारण यह है कि इदु मिश्मी परिवारों में विवाह पूर्व सात वंशावलियों को देखा जाता है। यदि इन वंशालियों से संबंधित कोई रक्त संबंधी संबंध लड़के के परिवार के साथ पाया जाता है तो वैवाहिक संबंधों का निषेध माना जाता है। इसी कारण प्रेम होने के पश्चात् वैवाहिक संबंध स्थापित न होने के कारण कई स्त्रियाँ आत्महत्या कर लेती हैं या अविवाहित रहना ही स्वीकार कर लेती हैं। इस प्रकार प्रस्तुत गीत में युवती ने अपने आप को रुई एवं मछली आदि से तुलना करते हुए यह बताने का प्रयास किया है कि पूरी तरह से पूर्ण होते हुए भी मेरी शादी नहीं हो पा रही है। मिश्मी का एक परिधान संबंधी गीत यहाँ दृष्टव्य है –

"आब्रिलों गादा द्रोथु हाकेना ई ..... ई
आ आ रो गादा होला हाकेना ई .....ई
बूनची कोवेया पू .... पू ..... गामा हो ....ई .....ई
ऊंची कोवेया डांड्रा गामा हो ई ..... ई
आब्रिलों गादा द्रोथु हाकेना ई ..... ई
आ आ रो गादा होला हाकेना ई ..... ई
सोंजम्बो वूची बुपी आपूठों ई बी व ई ..... ई
नाऊ तो उ जी ..... चीली ऐबाको ई बी व ई .... ई
आब्रिलों गादा द्रोथु हाकेना ई ..... ई
आ आ रो गादा होला हाकेना ई .....ई
आब्रीपों ऊँ जी मूलिकों ई बी व ई ..... ई
ऐलोपो उंजी मुशाकों ई बी व ई .... ई
आब्रिलों गादा द्रोथु हाकेना ई ..... ई
आ आ रो गादा होला हाकेना ई .....ई।"[3]

(अर्थात् घर में शादी का माहौल चल रहा है। इसीलिए घर में तैयारी भी चल रही है। बड़ी बहन जंगल से पत्ते लेने गयी है। उसी समय अपने दु:ख की व्यथा, गीत के माध्यम से वह व्यक्त कर रही है और उम्र हो जाने पर विवाह न होने के कारण वह बहुत दु:खी है। अपनी इसी पीड़ा को पत्ते काटते समय वह व्यक्त कर रही है कि

मैं मेखला बहुत सुंदर बुनती हूँ और सभी काम कर लेती हूँ यह बात सभी को बता देना। इस समय मुझसे छोटे बच्चों का विवाह हो रहा है किंतु मेरा विवाह अभी तक नहीं हुआ है। मुझमें तो सभी गुण हैं फिर भी मेरा विवाह नहीं हो रहा है। कोई मेरी शादी का निवेदन लेकर आए। मैं शायद इस गाँव की देखभाल करने के लिए ही बनी हुई हूँ। मैं तो उस रुई के पेड़ की तरह हो गयी हूँ जिसका बीज़ पूरी दुनिया में घूमता फिरता है, फिर भी पेड़ एक ही स्थान पर रहता है। मैं उस मछली की तरह हूँ जो केवल झील का देख-भाल करती है। मैं घर के बेटों की तरह हो गयी हूँ जो घर के सभी कार्य करते हैं और घर को चलाते हैं। मैं जंगली अरवी की तरह हो गयी हूँ, जिसकी लताएँ चारो ओर फैल जाती हैं, किंतु अरवी एक ही स्थान पर रहती है। घर का सारा काम मुझे ही करना पड़ता है। खेत के अलावा भी मैं सभी काम कर लेती हूँ।)

इस प्रकार मिश्मी लोकगीतों में हमें श्रमिक वर्ग के जीवन की स्थिति का चित्रण श्रम सौंदर्य के द्वारा दिखाई पड़ता है। मिश्मी के लोकगीतों में सामान्य जनता के जीवन के विविध पक्षों का चित्रण गीतों के माध्यम से अभिव्यक्त हुआ है। इसके साथ ही मिश्मी समाज में आम जनता के जीवन का परिचय भी हमें मिलता है। मिश्मी लोकगीतों में श्रमिक वर्ग के व्यक्तियों एवं उनके कार्य व्यापारों के चित्रण के माध्यम से श्रम के महत्त्व संबंधी गीतों के सौंदर्य को उद्घाटित किया गया है। मिश्मी क्षेत्र में कृषि के अलावा अनेक व्यवसाय भी करते हुए देखा जा सकता है। यहाँ के लोग अपने श्रम में संलग्न रहते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. स्वयं संकलित (17/07/2020), स्थान- भेकुलियांग, जिला- लोहित, अरुणाचल प्रदेश
2. स्वयं संकलित (17/07/2020), स्थान- भेकुलियांग, जिला- लोहित, अरुणाचल प्रदेश
3. स्वयं संकलित (1/07/2020), स्थान- इदुली , जिला- रोइंग, अरुणाचल प्रदेश
4. ताना, अनिया जोराम, अरुणाचल प्रदेश की निशी लोकगीत: सांस्कृतिक अध्ययन,गौतम बुक सेंटर, 2009 ई.
5. Baruah, Tapan kumar, The Idu Mishmi, Directorate of Research, Government of Arunachal Pradesh, Itanagar, 2017
6. Bhattacharjee, Tarun Kumar, The Idu Mishmi of Mathun and Dri valley, shillong,Directorate of Research, Government of Arunachal Pradesh, 1983.
7. Deka, Bidyut. C, Agricultural folk song of Arunachal Pradesh, Meghalaya, Indian council for Agricultural Research, Umiam, 2016.
8. Dutta, D.K, The Miju Mishmi of Arunachal Pradesh, Directorate of Research Arunachal Pradesh, 2012.

*(**लेखकीय परिचय :** मो. जोहुरूल इस्लाम पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग, मेघालय के हिंदी विभाग में शोधार्थी हैं। आपकी अभिरुचि प्रसारण सेवा में है और आप आकाशवाणी, शिलांग में उद्घोषक के रूप में कार्यरत हैं। मोबा:7005951832, ई-मेल : mdzohurul141996@gmail.com)*

जोराम यालाम की 'तानी कथाएँ' में अभिव्यक्त अरुणाचली लोकवृत्त

विक्रम कुमार

अरुणाचल प्रदेश भारत के पूर्वोत्तर में बसा प्राकृतिक-सांस्कृतिक संसाधनों से समृद्ध एक बेहद खूबसूरत राज्य है। अरुणाचल प्रदेश के लोकवृत्त और इसकी बुनावट को समझने के लिए यहां के लोकजीवन और लोककथाओं को समझने और जानने की आवश्यकता है। इस प्रदेश में जगह-जगह लोककथाओं की मौजूदगी व्यापक रूप में देखने को मिलती है। अरुणाचल प्रदेश आदिवासी बहुल क्षेत्र है, जहाँ आदिम समाज में लिखित सामग्री का प्रचलन बहुत ही कम रहा है, यहाँ की आदिम परंपरा मौखिक ज्ञान की परंपरा रही है। मौखिक ज्ञान का प्रभुत्व होने के कारण लोककथाओं का महत्त्व और अधिक बढ़ जाता है। एक समय लोककथाएँ सामाजिकता, नैतिकता और बौद्धिकता का प्रमुख स्रोत रही हैं। लोकथाएँ मनुष्य की आदिम आवाज हैं, जहाँ से मनुष्य और समाज को देखने की एक नई दृष्टि मिलती है। लोककथाएँ समाज में नीतिगत मान्यताएँ स्थापित करने में एक समय शास्त्र का भी काम करती थीं। जहाँ से समाज आचार-विचार के लिए प्रेरणा ग्रहण करता था। अरुणाचल प्रदेश का आरंभिक साहित्य मौखिक भाषिकी के साथ विकसित हुआ है। अरुणाचल प्रदेश के वर्तमान को अगर समझना हो, तो यहाँ की लोककथाओं और लोकजीवन को भी समझना होगा। प्राकृतिक संसाधनों से परिपूर्ण यह प्रदेश अपने सांस्कृतिक, साहित्यिक और सामाजिक ताने-बाने से जिस तरह से जुड़ा हुआ है, वह सहज ही आकर्षित करता है। सांस्कृतिक जुड़ाव किसी समाज और मनुष्य के लिए आवश्यक है।

अरुणाचल प्रदेश में तीस से अधिक जनजातियां निवास करती हैं, जहाँ सभी जनजातियों की अपनी एक स्वतंत्र बोली है। सभी जनजातियों की अपनी लोकथाएँ हैं, अपनी मान्यताएं हैं। 'सांस्कृतिक विविधता' का जो अर्थ संदर्भ है, वह यहां के विभिन्न आदिवासी समुदाय की लोकथाओं में देखा जा सकता है। अरुणाचल प्रदेश के भाषाई स्वरूप को देखें, तब यहाँ सभी जनजातियों की अपनी बोली है, अपनी भाषा है। वही अगर भाषाई स्वरूप को अरुणाचल प्रदेश की संपूर्णता में देखें तब भाषाई एकात्मकता के रूप में जो भाषा यहाँ हमें मुख्य भूमिका में दिखाई देती है, वह हिंदी ही है। अरुणाचल प्रदेश में हिंदी आपसी संवाद की भाषा है। हिंदी की इस भूमिका को इस रूप में रेखांकित करने योग्य है कि यहाँ यह भाषा प्रचार-प्रसार के माध्यम से विस्तृत और समृद्ध नहीं हुई है और न ही किसी दबाव के तहत हिंदी को यहाँ के लोगों ने अपनाया है, बल्कि अरुणाचल प्रदेश के निवासियों ने इसे सहज ही स्वीकार किया है, इसे ग्रहण किया है। मेरा तो यह भी मानना है कि किसी भी भाषा का विस्तार प्रचार- प्रसार और दबाव के साथ कभी नहीं हो सकता है, जब तक जन-मन किसी भी भाषा को सहज स्वीकार्य नहीं करता है तब तक वह उसे आत्मसात भी नहीं कर सकता है। इसे ग्रहण करने में किसी को भी हिचकिचाहट होगी। हिचकिचाहट की स्थिति में कोई भी भाषा कभी भी एक बड़े हिस्से का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकती है । अगर भाषा में सहजता नहीं है तो इसे अपनाने में भी अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

स्वतंत्रता के बाद अरुणाचल प्रदेश में कई ऐसे लेखक हुए, जो हिंदी में लेखन कार्य कर रहे हैं। हिंदी साहित्य की समृद्धता में अरुणाचल प्रदेश के लेखकों का भी मुख्य योगदान है। इन लेखकों ने अपनी रचनाओं

के माध्यम से हमें अरुणाचल प्रदेश की सांस्कृतिक अवस्थिति, सामाजिक रूपरेखा और आदिवासी समाज की दुनिया से अखिल भारत का परिचय कराया है। किसी भी समाज को जानने और समझने में वहां के दर्शन और साहित्य की विशेष भूमिका होती है। निश्चित रूप से यहाँ के लेखकों को पढ़कर हम अरुणाचल प्रदेश के लोकवृत्त, बुनावट-बनावट से परिचित हो सकते हैं। ऐसे ही एक लेखिका हैं जोराम यालाम, जिनकी रचनाओं में अरुणाचल प्रदेश का लोकवृत्त दिखाई देता है। यहाँ हम जोराम यालाम की रचनाओं के साथ इस प्रदेश से रू-ब-रू होंगे, लेखिका राजीव गांधी विश्विद्यालय में हिंदी की प्रोफेसर हैं और अरुणाचल प्रदेश का प्रतिनिधित्व अखिल भारत में करती रही हैं। हिंदी में इनकी कई रचनाएँ हमारे सामने हैं, लेकिन यहाँ हम तानी कथाओं के विशेष संदर्भ में लेखिका के पक्ष और अरूणाचल प्रदेश का जो लोकवृत्त है, उसे देखेंगे। तानी कथाएँ, जिसके माध्यम से लेखिका ने आदिवासी समाज, अरुणाचल प्रदेश की संस्कृति और इसकी अवस्थिति का चित्रण और यहाँ की चुनौतियों को बेहतरीन तरीके से रेखांकित किया है। इस पुस्तक को लेखिका एक सुंदरतम यात्रा मानती हैं, वे इस पुस्तक को आदिवासी जीवन की गाथा कहती हैं, लेखिका इस पुस्तक के माध्यम से प्रकृति और मनुष्य के अंतर्निहित संवाद को रेखांकित करती हैं। आज मनुष्य का संवाद प्रकृति के साथ नहीं रह गया है, हम सभी इस बात से परिचित हैं कि कुछ दिन पहले ही अमेजन के हजारों एकड़ जंगल आग के हवाले हो गए, अमेज़न के जंगलों में लगी आग मनुष्य की गलतियों की ही एक जीती जागती तस्वीर है। यह एक उदाहरण है, मनुष्य और प्रकृति के साथ क्षीण होते संबंधों की, ऐसी तस्वीरें जब भी हमारे सामने होती हैं, तब-तब तानी कथाएँ और जंगली फूल जैसी पुस्तकों का महत्त्व बढ़ जाता है।

साहित्य में समाज की अभिव्यक्ति होती है। विचारों की दुनिया बहुत ही गहन होती है। व्यक्ति, समाज औऱ राष्ट्र को समझने के लिए समाज की विचार संस्कृति को समझना महत्त्वपूर्ण है। आदिवासी समाज के जल जंगल पर जिस तरह के खतरे मंडरा रहे हैं, वह चिंतनीय है। जगह-जगह पहाड़ों को नष्ट किया जा रहा है। पेड़-पौधे काटे जा रहे हैं। बाजार और पूंजीवाद ने मनुष्य के साथ प्रकृति को एक कमोडिटी में तब्दील कर दिया है। ऐसी स्थितियों के बीच आदिवासी समाज की लोककथाएँ हमारी मदद कर सकती हैं। लोक कथाओं का संयोजन और संपादन दुरूह कार्यों में से एक है। एक लोककथाएँ समाज में अलग-अलग रूपों में मौजूद होती हैं, जिनमें सत्यता की पहचान करना भी एक महत्त्वपूर्ण कार्य है, जिसमें काफ़ी समय और ऊर्जा लगती है। लेखिका के लिए तानी कथाओं का संकलन आसान कार्य नहीं था। तमाम मुश्किलों और चुनौतियों के बीच इसे संकलित किया गया है। आज आदिवासी समाज बाह्य और आंतरिक कई चुनौतियों से संघर्ष कर रहा है। उन तमाम चुनौतियों के बीच एक चुनौती आदिवासी समाज के सामने धर्मांतरण की है। आदिवासी दुनिया में धर्मांतरण की शिकायतें बढ़ रही हैं। हम सभी इस बात से परिचित हैं कि धर्म फौरी तौर पर सिर्फ व्यक्ति को ही नहीं बदलता, बल्कि वह आपकी संस्कृति और सभ्यता को भी गहराई से प्रभावित करता है। यह बात सभी को समझने की आवश्यकता है। इस बात को भी समझने की जरूरत है कि आदिवासी समाज की भी एक खुद की निजी अस्तित्वगत दुनिया है, जहाँ उनका धर्म,संस्कृति और निजी अस्तित्वगत संबंध सांस लेता है। आज आदिवासी समाज को कोई हिंदू कह रहा है तो कोई ईसाई, तो कोई कुछ और! जबकि इन्हें किसी धर्म के खाँचे से अलग एक निजी दुनिया के मनुष्यत्व के तहत देखने की आवश्यकता है। अपनी संस्कृति, सभ्यता खुद की इनकी

मूल्यवत्ता है। इस पर लेखिका जोराम यालाम ठीक कहती हैं कि मैं मानती हूँ कि जिस तरह हिंदू, ईसाई अथवा किसी अन्य धर्म वाले लोग धर्मांतरण का काम करते हैं, वे इस अस्तित्वगत संतुलन के विरोध में हैं। जोराम यालाम लिखती हैं कि "आदिवासियत भी एक संस्कृति है जो अपनी विशिष्टताओं के कारण अन्य संस्कृतियों से अलग पहचान रखती है लेकिन वह किसी की विरोधी नहीं है। वह विभिन्न संस्कृतियों के अस्तित्त्वगत संतुलन के खिलाफ नहीं है। मैं मानती हूँ कि जिस तरह हिंदू, ईसाई अथवा किसी अन्य धर्म वाले लोग धर्मांतरण का काम करते हैं, वे इस अस्तित्वगत संतुलन के विरोध में हैं। यही मूल कारण था कि मैंने तानी कथाओं के साथ-साथ तानी दर्शन पर काम करना अति आवश्यक समझा।"[1]

आज हम लोग जिस दौर में हैं, वह दौर सांस्कृतिक विस्थापन का है। पौराणिक प्रतिमानों को भूलने का समय है। मनुष्यता के नाते अपनी संस्कृति-सभ्यता की खोज एक मानवीय गुण है, जिसकी आवश्यकता आजीवन बनी रहेगी। जोराम यालाम ऐसी लेखिका हैं, जो अपने सांस्कृतिक प्रतिमानों पर पड़े धूल को साफ़ करना चाहती हैं। जिस युग में धीरे-धीरे सब कुछ समाप्तप्राय है, उस युग में अपने प्रतिमानों को नूतन मापदंडों के साथ देखना महत्त्वपूर्ण हो जाता है। आदिवासी समुदाय में ऐसा ही एक प्रचलित शब्द है 'जंगली' जिसका सीधा अर्थ होता है, जंगल में निवास करने वाले लोग। आज के दौर में इस शब्द पर कई परतें चढ़ चुकी हैं। देखते-देखते यह शब्द असभ्यता की निशानी हो गया। इस नए प्रतिमान से लेखिका जोराम यालाम मुठभेड़ करती हैं और एक नए संदर्भों के साथ इसे हमारे सामने रखती हैं। जहाँ वह जोर देकर कहती हैं कि जंगली होने से सीधा सा अर्थ प्रकृति से जुड़ना है। प्रकृति और मनुष्य का संवाद जिस युग में छूटता जा रहा हो, उस दौर में जंगली होने का सीधा अर्थ अगर असभ्य हो गया है, तो इसमें कुछ भी आश्चर्यजनक नहीं है। यह युग प्रतिमानों के छीजने का युग है। जंगली होने के जो मायने जोराम यालाम ने रेखांकित किए हैं, वे किसी सुंदर संगीत से कम नहीं हैं। जोराम यालाम लिखती हैं कि " "जंगली" होने का अर्थ मेरे लिए इस प्रकार है- प्रकृति से जुड़ना। उनके साथ स्वयं को अभिन्न अंग जानकर चलना। फूलों के साथ जो मुस्कुरा सके। नदी की बहती लहरों का गान सुन सके। हृदय के अंतरतम समुद्र से जो सूक्ष्म पुकार आती है- उसे सुन सके। सूरज की स्वर्णिम किरणों-सा बिखर सके। एक हाथ तारों को छूए और दूसरा जमीन को। पथरीले शिखरों पर बिखरी चुटकी-भर मिट्टी में भी उग-उग आना। क्षण भर खिलकर मर जाना। चाँद न छिटकाए चाँदनी, सूरज काली चादर ओढ़े सो जाए, जंगली फूल फिर भी खिलता और महकता रहता है। उन स्थानों पर भी खिलता है, जिसकी कल्पना तक हम नहीं कर सकते। यह एक सतत यात्रा होती है। बिल्कुल नदी की तरह। नवीनतम चाल से चलने का साहस। भय का सामना करने का साहस। यही जंगलीपन है।"[2]

अक्सर बड़ी संस्कृतियाँ छोटी संस्कृतियों को प्रभावित करती हैं, उसे मिटाना चाहती हैं, अगर वह अपने इस उपक्रम में असफल रहती हैं, तो थोड़े फेरबदल के साथ उसे बदल देने को आतुर रहती हैं। हम अपने धर्म, संस्कृति , समाज के प्रति अगर सजग नहीं हैं, तब वह आपको बदल देगा। दुनिया में तमाम ऐसी संस्कृतियां हैं, जो बदल चुकी हैं। कई ऐसी भाषाएँ हैं, जो विलुप्त हो चुकी हैं या खत्म होने की कगार पर हैं। इसमें तमाम विसंगतियों को दोष दिया जा सकता है, आधुनिकता और उत्तर आधुनिकता को जिम्मेदार ठहराया जा सकता है लेकिन यह वक्त किसी को जिम्मेदार ठहराने का नहीं बल्कि सजग होने का है, ठहरकर सोचने का है।

आदिवासी समाज पर तमाम खतरों के बीच एक खतरा धार्मिक बंदरवाट का है, जहाँ सभी बड़े धर्म उसे अपनी ओर, अपने में समाहित करने को आतुर हैं। ऐसा नहीं है कि यह हाल सिर्फ भारत में है, कमोबेश यही स्थिति पूरी दुनिया में कायम है। लेखिका इन परिस्थितियों से वाकिफ़ और सजग हैं। आदिवासी समाज को इस तरह के संगठित संगठनों से सजग करती हैं, जो इनकी संस्कृति और प्रतिमानों को बदल देना चाहते हैं। इन बदलते प्रतिमानों और धार्मिक उथल-पुथल को लेखिका इस तरह रेखांकित करती हैं- "इसी बीच किसी ने उनके कंधे पर हाथ रखते हुए कहा, 'तुम शैतान को पूजने वाले नहीं हो। तुम तो हिंदू हो! मैं हिंदू हूँ! तुम भी सूरज को पूजते हो, मैं भी सूरज को पूजता हूँ। देखो, हम एक ही तो है।' इस अपनेपन ने उनको बड़ा सहारा दिया। इससे एक तरह का आंदोलन शुरू हो गया। ..... यदि हम हिंदू हैं तो इसका अर्थ है कि संसार के प्रत्येक देश के आदिवासी भी हिंदू हैं, क्योंकि आदिवासी मात्र भारत में ही तो नहीं रहते।"[3] इन धार्मिक स्थितियों के दबाव में जिन्होंने अपना धर्म बदल लिया, जिन्होंने दूसरी संस्कृति और सभ्यता को अपनाया वह तमाम समस्याओं में जी रहे होंगे। अपनी संस्कृति और भाषा से विछोह मनुष्य के लिए एक अभिशाप है। डर, भय, लोभ के बीच अपनी संस्कृति और प्रकृति से नाता तोड़ना एक सांस्कृतिक क्षरण है। "जिन समुदायों ने अपनी पहचान मिटाकर दूसरों के नाम को अपना लिया; उनको प्रारंभ में भले ही खुशफहमी हुई हो, लेकिन अंतत: उन्हें अपने इतिहास, भाषा, दर्शन आदि सबसे वंचित होना पड़ा। अब उनकी नई पीढ़ी एक भिन्न तरह की समस्या से जूझ रही है; और एक नया परंतु दुखद इतिहास बनने लगा है। पूर्वजों का किया धरा कोई ओर क्यों भुगते? ईश्वरों के नाम पर पीढ़ी-दर-पीढ़ी के लिए संताप पैदा करने का अर्थ क्या है?"[4]

इस पुस्तक को जो सबसे अधिक विशेष बनाती है, वह है तानी दर्शन! मेरे जानने में यह पहली बार है, जब तानी दर्शन को लिखित रूप में दर्ज किया जा रहा है। किसी भी सभ्यता, समाज और संस्कृति को अगर जानना और समझना हो तो सबसे पहले उस समाज के मूल यानी दर्शन को समझना महत्त्वपूर्ण होता है। समाज किस तरह सोचता है, क्या ग्रहण करता है, क्या छोड़ता है, पहनावा-ओढ़वा, आचार-विचार सब कुछ संस्कृति का एक हिस्सा होता है। तानी दर्शन में भी अरुणाचल प्रदेश का जो तानी समुदाय है, उसकी विस्तृत रूपरेखा और संरचना हमारे सामने आती है। लेखिका तानी दर्शन के मूल में 'जिमी-जामा' को मानती हैं, यहीं से तानी दर्शन का विकास माना जाता है, इसे किसी भी शब्द, भाषा, वाक्य से व्यक्त करना मुश्किल भरा है। तानी समुदाय में यह मान्यता है कि जब जिमी-जामा ने अपनी आँखें खोली तभी रोशनी का जन्म हुआ, समय, काल, दिन, रात सभी का अस्तित्व जिमी-जामा के सिद्धांत से जुड़ा है। सूर्य, चंद्र और धरती के मिलन से अनेक जीव पैदा हुए, इन अनेक जीवों की उत्पत्ति में मानव सबसे बाद में अस्तित्व आता है। अमूमन हम मानव जीवन को सर्वश्रेष्ठ और ताकतवर मानते हैं लेकिन जिमी-जामा का यह सिद्धांत बताता है कि मनुष्य सबसे छोटा था। कमजोर था। चर-अचर सभी जीव मानव को आगे बढ़ाते थे क्योंकि अनेक चर-अचर जीव छोटा भाई मानते हैं। मनुष्य और प्रकृति के सामंजस्य के लिए ये नियम निर्मित किए गए होंगे ताकि मनुष्य अपने को सर्व शक्तिमान मानकर प्रकृति से छेड़छाड़ न करे। लेखिका मानव जीवन के अस्तित्व पर दर्ज करती हैं कि "मनुष्य सबसे बाद में उत्पन्न हुआ। इसलिए वह सबसे छोटा है। सबसे कमजोर भी है। अस्तित्व में दिखने वाले, न दिखने वाले सभी चर-अचर मिलकर उसको देते हैं क्योंकि वह उनका अपना छोटा भाई है। मनुष्य उन सभी पर आश्रित है। एक

छोटा-सा कंकड़ भी उससे अधिक शक्तिशाली माना गया है। यही कारण है कि उसे बुद्धि का उपहार मिला। मनुष्य शारीरिक तौर पर दूसरों के मुकाबले कम शक्तिशाली था, लेकिन अपनी बुद्धि का उपयोग कर उसने हथियारों का आविष्कार किया। इसी से उसका अहंकार बढ़ा।"[5]

यह पुस्तक तानी समुदाय की मान्यताओं और संस्कृति को हमारे सामने रखती है। जीवन के शास्त्र और धर्म को मनुष्यता की कसौटी पर कसकर हमारे सामने लाती है। यह दर्शन मनुष्य और प्रकृति के बीच प्राकृतिक नियमों की गाथा कहती है। जिसकी डोर स्वाभाविक सहजता से बंधी हुई है। लेखिका प्रकृति को एक परम् अनुशासन मानती हैं। मेरा मानना है कि इस पुस्तक में जो तानी कथाएँ संकलित की गई हैं, वे भी किसी अनुशासन से कम नहीं हैं। नैतिकता औऱ आदर्श परक कहानियों का यह एक समूह है, इन कहानियों के माध्यम से ही समाज में अनुशासन, नैतिकता और आदर्श गढ़े जाते होंगे। इन कथाओं के माध्यम से मनुष्य की प्रकृति और समाज से गहरे रिश्ते बनते होंगे। पशु-पक्षी, जीव, जंतु, पेड़, ऋतु सभी को बेहतर तरीके से समझ पाते थे। ये कथाएँ सामाजिक इतिहास की गाथा कहती हैं, समाज के बनने और बिगड़ने की गाथा कहती हैं। यह मिथक संसार की अनेक प्रवृत्तियों पर केंद्रित है, जिसमें माया, मनुष्य, पशु, पक्षी सभी के बनने और बिगड़ने पर मिलते हैं। ये कथाएँ मनुष्य की दार्शनिक जिज्ञासाओं को सुलझाती हैं जो गाहे-बगाहे मनुष्य को परेशान करती हैं। ये कथाएँ आदिवासी समाज के उद्गम और विस्तार की कथाएँ कहती हैं। वैसे तो लेखिका ने कई कहानियों का संकलन किया है, लेकिन कुछ कहानियां ऐसी हैं जो मनुष्य की आदिम जिज्ञासाओं और आदर्शों को हमारे सामने रखती हैं। ऐसी ही एक तानी कथा पूंग चुब्नाम है। इस कहानी के एक हिस्से में मृत्यु का वर्णन मिलता है, जिसका अपना महत्त्व है, खुद की एक जीवन शैली है और एक अपना विधि-विधान और नियम है। यह नियम आदिम समाज कैसा होगा, उसके बिंब हमारे सामने रखता है। इसका एक स्वरूप देखें जो इस तरह है कि "यह रिवाज नहीं है, तरीके हैं, जिन्हें यह प्रकृति सिखाती है। ताई-रुंगरी को देखो, वे कैसे मिट्टी के अंदर अपना छत्ता बनाती हैं। गुफा इस तरह बनाती हैं कि बारिशों में पानी उनमें ठहरता नहीं। आत्तुम-चारुम को देखो, वह अपने शरीर को कैसे मोड़कर रखती है। दोनों घुटनों से सिर मिल जाता है। जन्म से पूर्व गर्भ में हमारा शरीर ऐसा ही था। जिमी-जमा के गर्भ में हम इसी तरह लौटते हैं। इसके बाद श्वेत वस्त्र से शरीर को ढक देना।"[6] ऐसे ही एक तानी कथा 'दोर्यंग शब्द' है। दोर्यंग शब्द से अर्थ, दस मिथुन का है। मिथुन का आबोतानी समाज में पवित्र स्थान है, वैसे ही जैसे हिंदू धर्म में गाय का स्थान है। यह कहानी मनुष्यता को हमारे सामने रखती है। यह कहानी बलि प्रथा जैसी कुप्रथाओं के ख़िलाफ़ है।

इस कहानी में अबोतानी का विलाप है, जो मिथुन को बचाना चाहते हैं। वह कहते हैं कि "सुनो ताज ताकार, एक साथ इतने सारे मिथुन को काट गिराना खतरनाक है। यह अच्छी बात नहीं है। इसके लिए कुछ नियमों का पालन करना चाहिए, नहीं तो इन पशुओं की आत्माएँ तुम्हें परेशान करेंगी। तुम्हारी होने वाली पत्नी और भावी संतानों पर मुसीबतें आएँगी।"[7]

इस तरह की अनेक कथाएँ इस समाज में व्याप्त थी, जो सत्य के निकट और विश्वसनीय है। ताम मेनाम सूर्य ग्रहण की कथा कहती है, तो कई कहानियां सांप और चाँद से जुड़ी हैं जो बहुत ही रोचक है। इन कहानियों में रोचकता तो है ही, लेकिन इन कहानियों को इस दृष्टि से भी पढ़ा जाना चाहिए कि ये कहानियां एक समय

सामाजिक सत्ताओं में आदर्श और नैतिकता गढ़ती थी। मनुष्यों के रीति रिवाज और परिश्रम की गाथा कहती थी। मैथिलीशरण गुप्त की प्रसिद्ध रचना भारत-भारती की एक पंक्ति याद आ रही है जो कुछ इस तरह है कि 'हम कौन थे, क्या हो गये हैं, और क्या होंगे अभी आओ विचारें आज मिल कर, यह समस्याएं सभी' यह पुस्तक वाद-संवाद की ओर ले जाती है जो यह कहती है कि आओ बैठकर विचारें की हम क्या थे। आज यह भी विचार करने की जरूरत है कि आगे की दिशा-दशा क्या होगी? आज भूमण्डलीकरण की आग में संस्कृति और सभ्यताओं पर सबसे अधिक खतरा है। जिस दौर में हम जी रहे हैं, वहाँ प्रकृति और मनुष्य का संबंध छीज रहा है, व्यक्ति का भौतिकवाद प्रकृति, समाज, जंगल सभी को नष्ट कर देने के आतुर है। आज संवादी और सामूहिकता के साथ सचेत होने की आवश्यकता है। जोराम यालाम एक ऐसी लेखिका हैं, जो अपनी सभ्यता, संस्कृति, जल, जमीन को लेकर सजग हैं। यह बिल्कुल सत्य है कि जोराम अपनी पुस्तक के माध्यम से संकटग्रस्त मानव सभ्यता के दौर में एक विकल्प प्रस्तुत करती हैं।

संदर्भ ग्रंथ-

[1] जोराम यालाम नाबाम, तानी कथाएं, राधाकृष्ण प्रकाशन, पहला संस्करण- 2022, पृष्ठ-25
[2] वही, पृष्ठ-21
[3] वही, पृष्ठ-22
[4] वही, पृष्ठ-23
[5] वही, पृष्ठ-34
[6] वही, पृष्ठ- 82
[7] वही, पृष्ठ-98

*(**लेखकीय परिचय :** विक्रम कुमार वर्तमान में राजीव गाँधी विश्वविद्यालय, अरुणाचल प्रदेश के हिंदी विभाग में शोधार्थी हैं। मोबा:6201761772, ई-मेल : vkbrb025@gmail.com)*

गालो और हिंदी लोक-सुभाषितों में नीति और उपदेशात्मक चेतना

रबोम बेलो

कभी-कभी सीधी और सपाट भाषा से अधिक टेढ़े कथन लोगों को ज़्यादा समझ आते हैं। जैसे, "सीधी ऊँगली से घी नहीं निकलता, तो ऊँगली टेढ़ी करनी पड़ती है।" लोकोक्तियाँ, मुहावरे, पहेलियों से भाषा को केवल निखारा नहीं जाता, अपितु इससे समाज में रहने वाले व्यक्ति को उपदेश और नीति भी दी जाती है। गालो और हिंदी भाषा में भी अनेक ऐसे लोक-सुभाषित हैं जो नीति और उपदेशात्मक चेतना को लेकर पीढ़ी-दर-पीढ़ी चले आ रहे हैं। डॉ. कृष्ण उपाध्याय कहते हैं "ग्रामीण जनता अपने दैनिक व्यवहार जगत में अनेक लोकोक्तियों, मुहावरों, पहेलियों, सूक्तियों आदि का प्रयोग करती है। इससे उसकी वचन-चातुरी का पता चलता है। लोकोतियों के प्रयोग से किसी उक्ति या कथन में शक्ति आ जाती है और श्रोताओं पर उसका बड़ा प्रभाव पड़ता है। मुहावरों के द्वारा भाषा में चुस्ती आती है और उसका स्वरूप सुंदर बन जाता है। बालकगण समुदाय में बैठकर एक दूसरे से पहेलियों को पूछकर बुद्धि की परीक्षा करते हैं।"[1] लोक-सुभाषित का महत्त्व को स्पष्ट करते हुए डॉ. राजेश्वर कहते हैं कि "किसी भी भाषा में सुंदरता लाने के लिए जिस प्रकार अलंकारों का प्रयोग किया जाता है, उसी प्रकार लोकोक्तियाँ और मुहावरों का प्रयोग अपेक्षित है। लोकोक्तियों और मुहावरों का प्रयोग इसलिए भी अपेक्षित है, क्योंकि इनके प्रयोग से भाषा में सजीवता, सरसता और स्वाभाविकता का समावेश हो जाता है। इसके प्रयोग से भाषा के भाव एवं अर्थ का स्पष्टीकरण तो हो जाता ही है, साथ ही हृदय में उठे हुए भावों का भी पूर्ण बोध हो जाता है।"[2]

गालो जनजाति अरुणाचल प्रदेश की प्रमुख जनजातियों में से एक है। गालो जनजाति अरुणाचल प्रदेश के जिले वेस्ट सिआंग, ईस्ट सिआंग, अपर सुबनसिरी, लोअर सिआंग, लअप्पारादा आदि क्षेत्रों में निवास करती है। गालो जनजाति की भाषा सीखने और बोलने में सरल मानी जाती है। गालो आबोतानी के वंशज हैं। गालो जनजाति का प्रमुख त्योहार मोपिन है। मोपिन अच्छी फसल और समृद्धि के लिए माँ दोन्यी (सूर्य) और पिता पोलो (चंद्रमा) की उपासना करते हैं। गालो जनजाति में व्यक्ति का नाम उसके पिता के नाम के अंतिम दो अक्षरों से रखा जाता है, जैसे तानी के बेटे नीतुम। इसके कारण गालो जनजाति को अपने वंश की शुरुआत जानने में कोई समस्या नहीं होती। आज की पीढ़ी को भी अपने पूर्वजों के नाम याद रखने में समस्या नहीं होती है। गालो समाज में लोक-सुभाषित प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है और उनका प्रयोग किया जाता है। पर्व-त्योहारों, अनुष्ठानों और विभिन्न उत्सवों में लोक-सुभाषितों का प्रयोग किया जाता है।

गालो और हिंदी लोक-सुभाषितों में अंतरसंबंध

गालो भाषा और हिंदी भाषा दोनों ही एक भाषा परिवार के नहीं हैं। लिपि, प्रयोग, उच्चारण, क्षेत्र आदि दृष्टि से दोनों में भिन्नताएँ हैं। फिर भी भावनात्मक रूप से दोनों के बीच संबंध है। हिंदी और गालो लोक-सुभाषितों में नीति और उपदेशात्मक अंतरसंबंध को इनके लोक-सुभाषितों के भाव में उपलब्ध कहावतों, लोकोक्तियों, मुहावरों के आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है। जैसे लोक-सुभाषितों के आधार पर यह इस प्रकार है –

'कोजो अनामअ रोजुमला, कोरो अनामे रोडांमला।'

शब्दार्थः कोजो- बाद में, अनामअ- कहना, रोजुमला-व्यर्थ में बीत जाना, कोरो-बाद में, रोङांमला-समय बीत जाना।

इस लोकोक्ति का निहितार्थ यह है कि समय का मानवीय जीवन में अत्यंत महत्त्व है; अतः समय को व्यर्थ व्यय नहीं करना चाहिए, अपितु समयोचित कार्य-संपादन पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए तथा किसी भी कार्य को स्थगित नहीं करना चाहिए।

'कल करे सो आज कर, आज करे सो अब।' अर्थात इस लोकोक्ति में भी समय के महत्त्व को बताते हुए यह उपदेश दिया है कि मनुष्य को वक्त पर कार्य कर लेना चाहिए।

उपर्युक्त दोनों लोक-सुभाषितों में अंतरसंबंध यह है कि दोनों में एक ही भाव है: जो कार्य है उसे कल के लिए न छोड़कर आज ही कर लेना चाहिए। समय मनुष्य के लिए कितना महत्त्वपूर्ण है! समय को यूँ ही बरबाद नहीं करना चाहिए। वक्त के साथ-साथ मनुष्य को अपना काम भी पूरा कर लेना चाहिए। किसी भी कार्य को कल के लिए नहीं छोड़ना चाहिए।

'ञिबो अ ञितो ब इमा, मेरे अ कोदे ब इमा।'

शब्दार्थः ञिबो- पराया या मेहमान या बाहरी व्यक्ति, अ-जो, ञितो- अपना या परिवार, ब-में, इमा-नहीं होता, मेरे-कोयला, कोदे-मिट्टी।

भावार्थः पराया कभी अपना नहीं हो सकता, जैसे कोयला को मिट्टी में मिलाने पर भी वह मिट्टी नहीं बनता, उसी प्रकार पराया को अपना परिवार का हिस्सा कहने से परिवार नहीं बनता।

'अपना अपना है, पराया पराया है।' अर्थात् खून का रिश्ता अंत तक अपना ही होता है; परायों को अपना कहने से कभी अपना नहीं बनते। इन दोनों लोक-सुभाषितों का भाव यह है कि पराया कभी अपना नहीं होता और अपना अपना ही रहता है।

'किबो दोरकेन अ योरलो पिपोमा, रोकपो दोरकेन अ दोलु कोगुमा।'

शब्दार्थ: किबो- कुत्ता, दोरकेन- एक, अ- जो, योरलो-पहाड़ की चोटी, पिपो-भोंकना, मा-नहीं, रोकपो-मुर्गा, दोलु-गाँव, कोगु-जगाना या बांग से जगाना, मा-नहीं।

भावार्थः जिस प्रकार एक कुत्ते से शिकार नहीं किया जा सकता और एक मुर्गे की बाँग से पूरा गाँव नहीं जगाया जा सकता, उसी प्रकार एक व्यक्ति से समाज में सुधार नहीं लाया जा सकता। जिस प्रकार शिकार के लिए अनेक कुत्तों की आवश्यकता होती है और पूरे गाँव को जगाने के लिए एक मुर्गे की बाँग पर्याप्त नहीं होती, उसी प्रकार समाज की बुराइयों के विरुद्ध एक व्यक्ति का विरोध उन बुराइयों को मिटा नहीं सकता।

'अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता' अर्थात् अकेला व्यक्ति बिना दूसरों के सहयोग से बड़ा काम नहीं कर सकता, जैसे अकेला चना से भाड़ नहीं फोड़ा जा सकता।

दोनों लोक-सुभाषितों में नैतिक उपदेश यह है कि संगठन में शक्ति होती है। ऐसे लोक-सुभाषितों के माध्यम से समाज की बुराइयों के विरुद्ध विद्रोह के लिए एक-दूसरे में यह उत्साह जगाते हैं कि संगठन से बुराई के खिलाफ़ लड़ा जा सकता है। इससे समाज में लोगों की एकता बनी रह सकती है। सामाजिक बुराइयों को मिटाने के लिए संगठन की आवश्यकता है।

'सोनह रगर नम रबु तिअरदाम लामा, ञामनअ मियअ नम आपुक पाकदाम लामा।'

शब्दार्थः सोनह- मादा मिथुन, रगर-टेढ़ा, नम-को, रबु-सिंग, तिअरदाम-मोड़ना या सीधी करना, लामा- नहीं कर पाना, ञामनअ-बहु, मियअ-मन से बुरा, आपुक-दिल या मन, पाकदाम-सही से बांधना या बदलना।

भावार्थः जिस प्रकार मिथुन या गाय की सींग कभी सीधी नहीं हो सकती, उसी प्रकार कुचरित्र स्त्री या बहू के मन को बदला नहीं जा सकता। जिस प्रकार टेढ़े सींग वाले मिथुन या गाय की सींग कभी सीधी नहीं हो सकती, उसी प्रकार बुरी व्यक्ति का मन भी अच्छा नहीं किया जा सकता। जितना भी प्रयास करने पर भी बुरे लोगों के मन को नहीं बदला जा सकता, क्योंकि उनका स्वभाव ही ऐसा होता है, जैसे टेढ़े सींग को सीधा नहीं मोड़ा जा सकता।

'कुत्ते की दुम बारह वर्ष नली में रखो तो भी टेढ़ी ही रहती है।' अर्थात् जिस प्रकार कुत्ते की दुम बारह वर्ष नली में रखने पर भी कभी सीधी नहीं होती, उसी प्रकार बुरे व्यक्ति का मन भी कभी नहीं बदलता।

दोनों उक्तियों में अपरिवर्तित बुरे मनुष्य के स्वभाव को बताया गया है।

'निक-निक न तातिक गो,
नाक-नाक न कोजग गो,
यू-यू न ताकु गो।'

शब्दार्थ: निक-निक– धीरे या जल्दबाजी न करना, तातिक–मेंदक, नाक-नाक– बहुत ही धीरे से या सावधानीपूर्वक, कोजग-जंगली चूहा, यू-यू- धीरे या धीमी गति या सावधानीपूर्वक अपने मन में लक्ष्य के प्रति धीरज धरते हुए, ताकु- जंगली पक्षी।

भावार्थ: यह लोक-सुभाषित अंग्रेजी के 'स्लो एंड स्टेडी विन्स द रेस' (Slow and steady wins the race) के समानार्थी है। जिस प्रकार एक शिकारी को शिकार करते समय सावधानी बरतनी पड़ती है, उसी प्रकार मनुष्य को अपने लक्ष्य के प्रति सावधानी बरतनी चाहिए। शिकारी जल्दबाजी में शिकार करे तो उसे कम मिलेगा, और अगर वह शिकार करते समय लापरवाही बरते तो उसे कुछ भी नहीं मिलेगा; परंतु उसे बेहतर फल की प्राप्ति तब होगी जब वह अत्यंत सतर्कता से शिकार करेगा।

'फूंक-फूंक कर कदम रखना'

भावार्थ: अत्यंत सावधानी बरतना। दोनों उक्तियों में मनुष्य को अपना कार्य करते समय सावधानीपूर्वक धीरे-धीरे करना चाहिए। इससे बेहतर फल की प्राप्ति होती है।

अतः हम यह कह सकते हैं कि गालो और हिंदी लोक-सुभाषितों में भावार्थ रूप से कई समानताएं हैं। हिंदी और गालो सुभाषितों में विभिन्न उपदेशात्मक लोक-सुभाषित हैं- समय के महत्त्व पर उपदेश, परिवार और खून के रिश्ते का महत्त्व, संगठन में शक्ति का उपदेश, लक्ष्य के प्रति सावधानी और धैर्य रखने की नीतिपरक सीख आदि उपदेशात्मक चेतना है।

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. उपाध्याय, कृष्ण. (2011) *लोक साहित्य की भूमिका*. नई दिल्ली: लोकभारती प्रकाशन. पृ. सं. 150
2. चतुर्वेदी, राजेश्वर. (2021). *लोक साहित्य*. आगरा: हरीश प्रकाशन मंदिर. पृ. सं. 201

*(**लेखकीय परिचय :** डॉ. रबोम बेलो राजीव गाँधी विश्वविद्यालय, अरुणाचल प्रदेश के हिंदी विभाग से पीएच.डी. कर चुकी हैं। वर्तमान में आप इंदिरा गाँधी शासकीय महाविद्यालय, तेजू, अरुणाचल प्रदेश के हिंदी विभाग में अतिथि सहायक प्रोफेसर हैं। मोबा: 8416053354, ई-मेल : omeote27@gmail.com)*

तांग्सा जनजाति के मुहावरों में प्रयुक्त गालियों का विश्लेषणात्मक अध्ययन

रेमोन लोंग्कु

तांग्सा जनजाति अरुणाचल प्रदेश के छब्बीस जनजातियों में से एक प्रमुख जनजाति है। यह जनजाति अपनी एक मौलिक पहचान रखती हैं। तांग्सा के अंतर्गत तीस से अधिक उपजनजातियाँ हैं, जैसे लोंग्चांग, मुक्लोम, तिखाक, हावी, पोंथाई, मोसांग, मोरांग, किम्सिंग, रोंरंग, जुगली, लुन्गरी, सांके, लुन्फी, शांग्वल, शांग्री, डाइमोंग, मुंगरे, लांचिंग, हाखुन, हाचेंग, चुलिम, जोंगी आदि। 'तांग' का अर्थ होता है 'पहाड़' तथा 'सा' का अर्थ है 'निवासी या लोग' अर्थात पहाड़ के निवासी या लोग। आदिम युगों से तांग्सा जनजाति की अपनी स्वतंत्र संस्कृति, इतिहास व समाज रहा है। तांग्सा समाज के लोग प्रकृति में आस्था रखते हैं तथा प्रकृति को पुरखा मानते हुए पूजते आ रहे हैं। उनका आर्थिक लोक जीवन कृषि पर निर्भर रहता है। कृषि द्वारा ही उनका घर चलता है। कृषि जीवन में फसल बोने से लेकर कटाई तक में प्रकृति का एक विशेष योगदान रहता है। हो सकता है कि, यही कारण है जो तांग्सा लोग 'तांग' अर्थात 'पहाड़' के निवासी कहलाते हैं। उदाहरण के लिए 'तांग' शब्द से आशय पहाड़ होता है और 'सा' से लोग या वासी। पहाड़ अथवा तांग में तांग्सा लोग आदिम युगों से रहते आ रहे हैं। वे खेती पहाड़ों में करते हैं, पहाड़ों से उन्हें आहार प्राप्त हुआ, रहने के लिए स्थान मिला, समुदाय बने, ऐसे में स्वाभाविक है कि, पहाड़ के निकट रहने के कारण उनकी मातृभाषा में उन्हें तांग्सा कहा गया। तांग्सा शब्द के विषय में विद्वानों में कुछ मतभेद भी हैं। इस संदर्भ में इंदिरा बरुआ और दीपंजना दी. दास कहते हैं - "The Scholars refer or analyse the word 'Tangsa' is the amalgams of two local words, i.e. Tang (hills) and Sa (people). Thus, the literal meaning of the word 'Tangsa' is hill people. It has also been mentioned that the word 'Tang' means up-stair posterity and 'Sa' means son of Tang or children of Tang, called Tangsa. Similarly, the word Tang refers three conjugative meanings: (i) Tang means up-stairs, (ii) Tang means conqueror, and (iii) Tang means hill people. Thus, the word carriers a significant Interpretation."[1] अर्थात विद्वान 'तांग्सा' शब्द का विभिन्न कोणों से उल्लेख या विश्लेषण करते हैं। आम व्याख्या यह है कि 'तांग्सा' शब्द दो स्थानीय शब्दों का मिश्रण है, यानी तांग (पहाड़ियाँ) और सा (लोग)। इस प्रकार तांग्सा का शाब्दिक अर्थ है पहाड़ी लोग। कुछ विद्वानों का यह भी मानना है कि 'तांग' शब्द का अर्थ है ऊपर की ओर जाने वाली सीढ़ी और 'सा' का अर्थ है 'तांग' का बेटा या 'तांग' के बच्चे, जिसे तांग्सा कहा जाता है। इसी प्रकार 'तांग' शब्द तीन संयुग्मी अर्थों को संदर्भित करता है: (i) तांग का अर्थ है ऊपर की सीढ़ी, (ii) तांग का अर्थ है विजेता, (iii) तांग का अर्थ है पहाड़ी लोग। इस प्रकार यह शब्द एक महत्त्वपूर्ण व्याख्या रखता है।

तांग्सा लोक साहित्य का संक्षिप्त परिचय

लोक साहित्य समाज का ज्ञान है। इस लोक साहित्य में मानव समाज के इतिहास, समुदाय, संस्कृति, दर्शन आदि मौजूद रहते हैं। इसके रचनाकार अज्ञात होते हैं। साथ ही यह लोक साहित्य किसी एक व्यक्ति के द्वारा नहीं, अनेक लोक के द्वारा रचा जाता है। लोक साहित्य को अंग्रेजी में 'फोक लिटरेचर' या 'फोकलोर' भी

कहते हैं। यह कृत्रिम नहीं, अकृत्रिम होता है जो पीढ़ी दर पीढ़ी समाज में विराजमान रहता है। लोक साहित्य के विद्वान कृष्णदेव उपाध्याय के शब्दों में -"किसी देश का लोक साहित्य उस देश की जनता के हृदय का उदगार है। वह उनकी हार्दिक भावनाओं का सच्चा प्रतीक है। यदि किसी देश की सभ्यता का अध्ययन करना हो तो सर्वप्रथम उसके लोक साहित्य का अध्ययन आवश्यक होगा। लोक साहित्य जन-समाज की वस्तु है अत: उसमें जनता का हृदय लिप्त रहता है। यह साहित्य कृत्रिमता से कोशों दूर रहता है।"[2] अर्थात लोक साहित्य मौखिक परंपरा के रूप में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को प्रदान करते रहने की प्रक्रिया है। लोक साहित्य में अलौकिक चीज़ों का समावेश भी ज़रूर रहता है, किंतु इसमें लौकिक और यथार्थ से संबंधित चेतना का भी अस्तित्व मौजूद है। इसमें भाषा, मानव, प्रकृति, पशु-पक्षी, समाज, अस्तित्व और अस्मिता के रूप में दिखाई देती हैं। इसी प्रकार तांग्सा समाज में भी लोक साहित्य आदिम युगों से मौखिक संस्कृति के रूप में प्रचलित है। तांग्सा लोक साहित्य या तांग्सा मौखिक साहित्य में पाँच प्रकार के स्वरूप शामिल हैं जैसे लोककथा, लोकगीत, लोकगाथा, लोकनृत्य और लोक सुभाषित। इस लोक साहित्य में लोकनाट्य नहीं है, क्योंकि यह उनकी संस्कृति में नहीं है। उनका लोक साहित्य मौखिक परंपरा की दृष्टि से बहुत ही प्राचीन है। इसकी उत्पत्ति कब, क्यों और कैसे हुई ? इस पर चर्चा करना बहुत ही जटिल है।

डॉ. शरतेंदु के शब्दों में- "लोक साहित्य किसी एक की रचना नहीं। वरन् संपूर्ण लोक ने इसे मिलकर रचा है। युग के अनुसार लोक इनके गीतों में परिवर्तन और परिवर्धन करता रहता है। अत: लोक साहित्य में लोक का प्राण होता है ।"[3] इस प्रकार, किसी भी समाज या समुदाय को जानने और समझने के लिए लोक साहित्य का अध्ययन महत्त्वपूर्ण है। तांग्सा लोक साहित्य में राजा-प्रजा, राजा-रानी, हीरे या धन के प्रति आकर्षक, सांप्रदायिकता, जाति या वर्ग व्यवस्था, ईश्वर या धर्म, माँ-बहन की अश्लील गालियाँ, बलात्कार जैसी विषय-वस्तु मौजूद नहीं है।

तांग्सा जनजाति के मुहावरों में गालियाँ

प्रत्येक समाज में भिन्न-भिन्न रूपों में मुहावरों का प्रयोग किया जाता है। यह मुहावरे, कुछ गालियों के रूप में अथवा कुछ प्रशंसा के रूप प्रयोग होता हुआ दिखाई देता है। तांग्सा मुहावरों में माँ-बहन की अश्लील गालियाँ नहीं हैं, और न ही संभोग से संबंधित कोई गालियाँ हैं किंतु इनके मुहावरों में अंगों से संबंधित, प्रकृति से संबंधित, पशु-पक्षियों से संबंधित तथा भूत-प्रेतों से संबंधित गालियाँ प्रचुर मात्राओं में मौजूद हैं। गाली भी मनुष्य द्वारा बनाई गयी भाषा का एक अंग है। यह गाली क्यों, कैसे और किसलिए बनाई गयी है? इसका अध्ययन करना भी शोध का एक मौलिक एवं नवीन दायित्व है। गाहे-बगाहे मनुष्य हंसी-मज़ाक, क्रोध, तनाव और घुटन में सामान्य रूप से गाली का प्रयोग करते हैं। यह गालियां कुछ मनुष्य के लिए हैं तो कुछ पशु-पक्षियों के लिए भी, कुछ भूत-प्रेतों से संबंधित तो कुछ प्रकृति के लिए भी। जब मनुष्य एक मनुष्य को गाली देता है तो यह गाली विभिन्न शैलियों में एक प्रतीक के रूप में अभिव्यक्त होते हैं। इस अभिव्यक्ति को सपाट एवं व्यंग्य दोनों शैलियों में देखा-परखा जा सकता है। गालियों का अध्ययन करने के लिए इसके प्रयोग से संबंधी सामाजिक आधारों का विश्लेषण आवश्यक है, क्योंकि इसके द्वारा हम गालियों के पीछे के छुपे तथ्य या हेतु को विस्तार से जान एवं

समझ सकते हैं। तांग्सा जनजाति के मुहावरों में गालियों का विश्लेषणात्मक अध्ययन करने के लिए इन बिंदुओं के माध्यम से समझा जा सकता है-

अंगों से संबंधित गालियाँ

मनुष्य का अंग प्राकृतिक है। शरीर का प्रत्येक अंग मनुष्य के लिए महत्त्वपूर्ण है। हर व्यक्ति अपने व्यक्तिगत अंगों को लेकर गंभीर एवं सजग रहते हैं। जब किसी व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति पर उसके अंगों को लेकर गाली दी जाती है तो उस व्यक्ति पर एक गहरा प्रभाव पड़ता है। हो सकता है, इससे उस व्यक्ति को अत्यधिक क्रोध आये अथवा बदले में वो हाथापाई पर भी उतर आये। गाली एक प्रकार से हथियार ही है जो किसी व्यक्ति को नीचा दिखाने के लिए प्रयोग की जाती है। तांग्सा मुहावरों में अंगों से संबंधित एक प्रसिद्ध गाली है जो पुरुषों में अधिक प्रचलित है -"बा वोपुक, बा चंगती था बात उ" अर्थात 'पुरुष के लिंग/शिश्न संबंधी बात, यह मुहावरा अधिकतर पुरुषों में प्रचलित है। जब एक पुरुष दूसरे पुरुष की किसी बात से असहमत होता है तो इस मुहावरे का प्रयोग किया जाता है। दरअसल, यह मुहावरा मंदबुद्धि का प्रतीक है कि उसका ज्ञान मस्तिष्क पर नहीं, उसके लिंग पर है, इसलिए वो व्यक्ति तर्कहीन बातें कर रहा है। इसी प्रकार एक और गाली प्रचलित है -"बा वोअ् जे बियाग फनांग" अर्थात 'तुम्हारे लिंग की ऊपरी चमरी निकाल दूँगा', यह मुहावरा तब प्रयोग किया जाता है, जब कोई व्यक्ति बच्चों जैसी बातें या नाबालिक जैसा व्यवहार करता है। इस मुहावरे का प्रतीक ऐसे नाबालिक या बच्चों से संबंधित है, जिसकी मानसिकता और वार्तालाप की शैली परिपक्व नहीं है अथवा नाबालिक है। हालांकि, यह मुहावरा केवल पुरुषों में ही प्रचलित है, हो सकता है कि स्त्रियों द्वारा प्रयोग गाली इसके विपरीत हो।

प्रकृति से संबंधित गालियाँ

तांग्सा समाज में प्रकृति के प्रति आस्था एवं सम्मान अवश्य है, किंतु वे यह भी जानते हैं कि प्रकृति एक सीमित वस्तु भी है। वे मनुष्य को प्रकृति की भांति अजीव होने का प्रतीक भी देते हैं तथा प्रकृति द्वारा नुकसान होने पर प्रकृति को गाली भी देते हैं। उदाहरण के लिए अधिक वर्षा होने पर वर्षा के लिए गाली के रूप में एक प्रसिद्ध मुहावरा है -"इरा सुक्करांग रंग रअ् थो" अर्थात 'शव को आग में जलाने वाली वर्षा, यह मुहावरा तब प्रयोग किया जाता है, जब अत्यधिक वर्षा होने के कारण किसान खेत में नहीं जा पाते या काम पर जाने के लिए घर से बाहर नहीं निकल पाते। ऐसी स्थति में मनुष्य समय व्यर्थ तथा नुकसान को ध्यान में रखते हुए क्रोध में इस मुहावरे का प्रयोग करने लगता है, जैसे तांग्सा समाज में मनुष्य की मृत्यु के दिन अथवा शव जलाने के दिन, गाँव का कोई भी मनुष्य खेत नहीं जाता और कोई भी भारी-भरकम काम नहीं करते हैं। इसी प्रतीक के रूप में इस मुहावरे का भाव प्रस्तुत हुआ है। इसी प्रकार प्रकृति से संबंधित एक और मुहावरा गाली के रूप में प्रचलित है - "रंग इ रोपता, रंग इ साअ् फुतु ?" अर्थात 'क्या आसमान ने तुम्हें पागल कर दिया है, क्या तुम पर बिजली गिर गयी है ?', यह मुहावरा आमतौर पर एक ऐसे मनुष्य के लिए प्रयोग किया जाता है, जब कोई मनुष्य तर्कहीन बातें तथा किसी पागलों की भांति व्यवहार करता है। ऐसे में उसके इस व्यवहार से तंग आकर क्रोध में, इस मुहावरे को गाली के रूप प्रयोग करते हैं, ताकि इस गाली से उसके अव्यवहार में परिवर्तन आये तथा उसकी सूझ-बूझ अकल ठिकाने आये।

पशु-पक्षियाँ एवं अन्य जीवों से संबंधित गालियाँ

तांग्सा मुहावरों में पशु-पक्षियों से संबंधित गालियाँ भी प्रचुर मात्रा में मौजूद है। इन गालियों में रेंगने वाले जीव, पालतू जानवर, जंगली जानवर तथा उड़ने वाले जीवों से लेकर, जल में तैरने वाले जीवों तक प्रचलित है। एक मुहावरा है-" हीइ हुन्न हुन्न इजी नक्क्चक फन्न वन्न" अर्थात 'कुत्ते की तरह मेरा पीछा मत करो', इस प्रकार की गाली का प्रयोग तब होता है, जब कोई व्यक्ति किसी व्यक्ति के मना करने पर भी उसका पीछा करता रहता है और जब वो व्यक्ति उसके इस व्यवहार से परेशान हो जाता है, तब इस मुहावरे को गाली के रूप में उस पर प्रहार करते हैं। घर का पालतू कुत्ता अक्सर अपने मालिक का पीछा करता है। मालिक जहाँ जाता है वो भी उसके पीछे-पीछे जाता है। तांग्सा समाज में कुत्ता पालने की परंपरा अति प्राचीन है। प्रत्येक घर में एक या दो से अधिक पालतू कुत्ते का रहना वहाँ सामान्य बात है। कुत्ता वफादार होता है, जो अपने मालिक को शत्रुओं से बचाने के लिए सचेत भी करता है। यही कारण है कि, वो मालिक के इर्द-गिर्द घूमता रहता है या पीछा करता रहता है। अत: मनुष्य का भी, जो मना करने पर भी पीछा करता रहता है, उसे कुत्ते का प्रतीक दे दिया जाता है। एक और गाली से संबंधित मुहावरा है- "एरि जूंगबान री ले" अर्थात 'तुम चिम्पांजी कहीं के', यह एक जंगली जानवर से संबंधित गाली है, जो मुहावरे के रूप में प्रचलित है। इसमें व्यक्ति को चिम्पांजी का प्रतीक दिया जाता है, जब वो व्यक्ति सामान्य मनुष्य के विपरीत जंगली जानवर की भांति व्यवहार करने लगता है। कहने का अभिप्राय है, जानवरों की भांति पेड़ों पर चढ़ना तथा पेड़ की डालियों से लटकना आदि ऐसा व्यवहार, जो मनुष्य कम, जानवर अधिक करते हैं। चिम्पांजी द्वारा पेड़ों पर चढ़ना या डालियों में झूलना, यह उसका प्राकृतिक स्वभाव है, इसमें उसके लिए कोई खतरा या डर नहीं रहता। किंतु जब वही व्यवहार एक व्यक्ति या मनुष्य करता है, तो उसकी जान को खतरा भी रहता है। उसका यही व्यवहार या निडरता कुछ लोगों को बहादुरी के विपरीत मंदबुद्धि या जानवरों जैसा व्यवहार लगने लगता है, और उसे सचेत करने के लिए इस मुहावरे का प्रयोग करता है।

भूत-प्रेतों से संबंधित गालियाँ

तांग्सा जनजाति में भूत-प्रेतों से संबंधित गालियाँ भी विद्यमान हैं। हालांकि, इस प्रकार की गाली या मुहावरे किसी व्यक्ति को कम प्रभावित करती हैं। तात्पर्य यह है कि, अन्य गालियों के मुकाबले ऐसी गालियाँ अधिक सपाट नहीं होती, क्योंकि इस प्रकार की गालियाँ अधिकतर हँसी-मज़ाक में प्रयोग होती हैं। यही कारण है कि, जब कोई व्यक्ति गंभीर स्थिति में भी भूत-प्रेतों का प्रतीक दे कर गालियाँ देते हैं, तो भी किसी पर इसका अधिक प्रभाव नहीं होता। उदाहरण के लिए एक मुहावरा प्रस्तुत है -"इरा सोंगफिन रअ् ले !" अर्थात 'तुम बौना भूत कहीं के', यह गाली ऐसे व्यक्ति को दी जाती है, जिस व्यक्ति की ऊँचाई कम हो अर्थात जो नाटे कद का हो। इसके अतिरिक्त उस व्यक्ति का व्यवहार बहुत ही चुलबुल या बदमाश किस्म का हो। दरअसल बौने भूत तांग्सा समाज के लोक विश्वास से संबंधित हैं, इसका जिक्र लोक कथाओं में भी खूब प्रचलित है। इसके विषय में विस्तार से जानने के लिए एक लोककथा 'मीइ नि आ सोंगफिन' अर्थात 'आदमी और बौना भूत', की व्याख्या करना महत्त्वपूर्ण है। कहा जाता है कि युगों पहले एक आदमी और एक बौने भूत की बहुत अच्छी दोस्ती थी। एक दिन दोनों दोस्त जंगल काट रहे थे। बौने ने उस आदमी को एक चुनौती दी, कि वह बोंग्तोंग्कान

(गोंग वाद्ययंत्र बजाने के लिए प्रयुक्त पौधे की तना) को खाकर दिखाये। आदमी ने उस चुनौती को स्वीकार कर लिया, और वो उस तना को चबाकर खा गया। फिर आदमी ने भी उस बौने को एक चुनौती दी, कि वो अदरक खाकर दिखाये। बौना तुरंत चुनौती के लिए हामी भर लेता है। जब आदमी ने उस बौने को अदरक दिया, तो वो बौना उस अदरक को देखकर खूब हँसने लगता है, और कहना लगा 'तुम मुझे इतनी छोटी सी चीज़ खाने के लिए दे रहे हो, ये तो मेरे लिए कुछ भी नहीं है...' फिर वो जैसे ही अदरक को अपने मुँह में लेकर चबाने लगता है तो वो बौना अदरक के तीखापन को सह नहीं सका, और वह वहाँ से चीखे-चिल्लाये भाग जाता है। कहा जाता है कि, तब से लेकर आज तक आदमी और बौने भूत की दुश्मनी जारी है। यह कथा पूरी तरह से मिथक है, किंतु इसी मिथक से बौने भूत की चर्चा गाली के रूप में मुहावरों में खूब प्रचलित है, और वही प्रतीक बनकर उसके व्यवहार को मनुष्य के साथ भी तुलना के रूप प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार तांग्सा मुहावरों में अनेक गालियाँ प्राप्त होती हैं, जो भूत-प्रेतों से भी संबंधित हैं।

तांग्सा मुहावरों में उपलब्ध गालियाँ अन्य जातियों से थोड़ी भिन्न हैं, क्योंकि गालियाँ इनके लिए परंपरा नहीं हैं, अपितु बोलचाल या भाषा का ही एक अंग है। इनके समाज में गालियों के लिए कोई रस्म-रिवाज़ नहीं होते, और न ही किसी उत्सव या महोत्सव पर गालियाँ प्रचलित है। मुहावरे के रूप में गाली की उपस्थिति किसी परिस्थिति पर निर्भर करती है या यह कहा जा सकता है कि, सामूहिक न होकर व्यक्तिगत घटना पर निर्भर होती है। इनके गालियों की सबसे बड़ी विशेषताएँ यह है कि, पुरुष हो या स्त्री दोनों इसका प्रयोग कर सकते हैं, ऐसा नहीं है कि गालियाँ देना केवल पुरुषों के लिए अर्जित है, और स्त्रियों के लिए वर्जित। तांग्सा मुहावरों की गालियों की एक और प्रवृत्ति यह भी है कि, इनकी गालियाँ सीमित होती हैं जैसे स्त्री के लिए दी जाने वाली गाली, पुरुष के लिए दी जाने वाली गाली, बच्चों के लिए दी जाने वाली गालियों के शब्द पृथक होते हैं। मनुष्य या किसी वस्तु के लिंग, रूप, आयु को ध्यान में रखते हुए गालियों के शब्द का प्रयोग भी निर्णय होता है कि, किस शब्द को किसके लिए प्रतीक दिया जाये।

सहायक ग्रंथ सूची

1. Barua, Indira, D.Das, Deepanjana. (2021). *The Tangsa's of Arunachal Pradesh*. New Delhi: Concept Publishing Company Pvt. Ltd. Pg-17
2. उपाध्याय, कृष्णदेव. (2008). *भोजपुरी लोक साहित्य*. वाराणसी: विश्वविद्यालय प्रकाशन. पृ.-9
3. शरतेंदु, सत्यनारायण दुबे. (2001). *भोजपुरी लोक साहित्य*. प्रयागराज: आधुनिक प्रकाशन गृह, पृ. -19
4. Dhaar, Bibhash, Coomar, Palash Chandra. (2016). *Tribes of Arunachal Pradesh.* New Delhi: Abhijit publications.
5. Dutta, Parul. (2010). *The Tangsa's'*. Itanagar: G.M.Printers and Publishers.
6. GRIERSON, G.A. (1919). *'LINGUISTIC SURVEY OF INDIA - VOLUMN III*. West Bengal: Calcutta Superintendent Government Printing India.

*(**लेखकीय परिचय :** रेमोन लोंग्कु उत्तर-पूर्व पर्वत्तीय विश्वविद्यालय, शिलॉंग, मेघालय के हिंदी विभाग में शोधार्थी हैं। मोबा:7086433304, ई-मेल : remonlongku1@gmail.com)*

तानी समुदाय की कृषि-संबंधी लोक कथाओं में अभिव्यक्त आदिवासी जीवन-दर्शन

यागे काबाक

प्रत्येक समाज का अपना जीवन-दर्शन होता है, जिसके आधार पर इनका लोक-जीवन संचालित और अनुप्रेरित होता है। पूर्वोत्तर के राज्यों में अरुणाचल प्रदेश का आदिवासी जीवन-दर्शन दृष्टांतपरक है। यहाँ के रहवासी तानी समुदाय अपने लोक-जीवन में विशिष्ट जीवन-दर्शन को आज भी पूरी निष्ठा और विश्वास के साथ अपनाए हुए हैं। इनके दर्शन को प्रकृतिवादी दर्शन भी कहा गया है। प्रकृतिवादी दर्शन से तात्पर्य है कि यहाँ के समस्त कार्यकलाप प्रकृति के नियमों द्वारा संचालित होता है। प्रकृति के तमाम नियमों को यह समुदाय अपनी आदिम ज्ञान परंपरा द्वारा संरक्षित रखे हुए है। इससे जुड़ी कई लोककथाएं इस समुदाय में उपलब्ध हैं, जिसके माध्यम से उनके जीवन-दर्शन को समझने का प्रयास किया जा सकता है। ये कथाएँ पूर्वजों से प्राप्त धरोहर हैं जो आने वाली पीढ़ी द्वारा अर्जित और बाद की पीढ़ी को हस्तांतरित की जाती हैं।

तानी समुदाय भारत के पूर्वोत्तर राज्य अरुणाचल प्रदेश में निवास करने वाले पाँच आदिवासी समूहों को कहा जाता है। इन समूहों के नाम हैं- आदी, आपातानी, गालो, न्यीशी और तागिन। यह प्रदेश के भिन्न-भिन्न जिलों में निवास करते हैं। इस समूह को तानी आदिवासी समूह कहने के पीछे का मुख्य कारण यह माना जाता है कि ये सभी स्वयं को 'आबोतानी' के वंशज मानते है। 'आबोतानी' को धरती पर जन्म देने वाले प्रथम पुरुष के रूप में जाना जाता है। आबोतानी ने ही मनुष्य समाज का विस्तार किया, जिसके लिए उन्होंने कई मुश्किलों का भी सामना किया। उनकी जीवन यात्रा से संबंधित कई लोक कथाएं इस समुदाय में मिलती हैं इसके इतर भी कई प्रकार की लोक कथाएं यहाँ मिलती हैं जिनमें यहाँ के जनजीवन की आजीविका का प्रमुख आधार माने जाने वाले कृषि और उससे संबंधित लोककथाएं भी शामिल हैं। कथाएं सुनने और सुनाने की परंपरा लोक-जीवन का अभिन्न हिस्सा रहा है। अरुणाचल प्रदेश के तानी आदिवासी समुदाय भी इस परंपरा से अछूता नहीं है। इस समुदाय में मौजूद लोककथाओं में आदिवासी जीवन-दर्शन के सूत्र अंतर्निहित हैं। लोक-जीवन के कई ज्ञात-अज्ञात प्रश्न उनके जीवन-दर्शन में शामिल हैं। यहाँ के लोक-जीवन में कृषि का ख़ास महत्त्व देखने को मिलता है। ऐसा माना जाता है कि पूर्व में इस समुदाय के लोग कृषि-कला से अनभिज्ञ थे। यह कला उन्हें परंपरागत रूप से प्राप्त नहीं हुई थी। तानी समुदाय के पूर्वज को यह किसी और माध्यम से प्राप्त हुई थी। इससे संबंधित अनेकों लोककथाएं तानी समूह के पाँचों समुदायों में मिलती हैं। उनमें से एक प्रचलित लोककथा न्यीशी समुदाय में मिलती है जो 'धान की उत्पत्ति' से संबंधित है। न्यीशी समाज में प्रचलित इस लोककथा में कई विविधताएँ देखने को मिलती है। इस समुदाय के लोग अरुणाचल प्रदेश के सात जिलों में फैले हुए हैं। इन जिलों के नाम हैं- पापुमपारे, ईस्ट कमेंङ, कुरुंङ कुमे, करा दादी, पाक्के केस्साङ, लोअर सुबनसिरी, कमलअ और अपर सुबनसिरी। इन जिलों में एक कथा के कई रूपांतर मिल जाते हैं। यहाँ तक कि एक गांव के लोग कुछ अलग ढंग से इसका विवरण देते हैं तो दूसरे गांव के लोग इसे दूसरी तरह से वर्णित करते हैं।

न्यीशी समाज में प्रचलित 'धान की उत्पत्ति' की लोककथा का संक्षिप्त रूप इस प्रकार है- आदिम युग में मानव समाज खेतीबारी की कला से परिचित नहीं हुए थे। तब वे अपनी भूख मिटाने के लिए हिन्च (जंगली बेर), ईङीन (कंदमूल), कुल्लू (जंगली केला) आदि पर ही निर्भर रहते थे। एक दिन आबोतानी (न्यीशी समाज के आदि-पूर्वज) और उनका प्रिय पशु किपुंङ (किपुंङ नामक कुत्ता) जंगलों में भूखे प्यासे भटक रहे थे। चलते-चलते वे एक 'तुकुक' (अंजीर का फल) के पेड़ के नीचे पहुँच जाते हैं। उन्होंने सोचा कि अब वे पेट भर तुकुक खायेंगे। लेकिन वहां उन्होंने देखा कि सारा फल 'सुदुम'(हिरन) ने चट कर लिया है। यह देख आबोतानी को गुस्सा आ जाता है और वह किपुंङ को आदेश देता है कि सुदुम को पकड़कर उनके पास लाये। इस तरह किपुंङ सुदुम का पीछा करने लग जाता है। पीछा करते-करते वह 'रिन्त पअर्थ-आन' (अन्न की देवी) के पास पहुँच जाता है। रिन्त पअर्थ-आन द्वारा पूछने पर किपुंङ आबोतानी और मनुष्य समाज की दयनीय अवस्था के बारे में सब कुछ स्पष्ट रूप से बता देता है। यह सब सुनने के बाद रिन्त पअर्थ-आन को आबोतानी और मनुष्य समाज पर दया आती है और वह किपुंङ के कान में अन्न के कुछ बीज डाल देती है। इस प्रकार तानी समाज को अन्न की प्राप्ति होती है। अन्न के बीज देने के उपरांत रिन्थ पअर्थ-आन उन्हें धान के बीज बोने की विधि भी बताती हैं। इस प्रकार कृषि-कला से इस समाज का परिचय होता है। न्यीशी समाज कुत्ते के इस उपकार के प्रति आज भी अपनी कृतज्ञता जताता है। इस समाज में साल के पहले धान की कटाई के दौरान एक विशेष प्रकार का सामूहिक भोज तैयार किया जाता है जिसे न्यीशी में 'आमजी दोलाम' कहा जाता है। 'आमजी' यानी पहला चावल या नया चावल 'दोलाम' का अर्थ होता है- खाना या खाने की क्रिया। इसके लिए नए धान के फसलों की कटाई की जाती है जो अभी पूरी तरह से पके नहीं होते हैं। पूरी तरह पके हुए धान के चावल से भिन्न यह थोड़ा नरम और मुलायम होता है। महिलाएँ प्रातःकाल सूरज निकलने से पहले खेत जाकर धान की कटाई करती हैं। कटे हुए धान को घर पर लाया जाता है। फिर उसे साबूत भूसी के साथ एक बड़े से बर्तन में सादा पानी डालकर कुछ समय तक उबाला जाता है। उबले हुए धान को अंगीठी के राइक्की/रापकी (अंगीठी के ऊपर बने छत जो चारो कोने पर लगी लंबी रस्सी के सहारे झुला हुआ होता है) में सुखाया जाता है। सूखने के बाद धान को चअप्पर (ओखली) में कूटा जाता है। कूटे हुए धान से भूसा और चावल को अलग किया जाता है। अंत में अलग हुए चावल को धीमी आंच में पकाकर एक भोज तैयार किया जाता है। भोज तैयार होने के पश्चात आस-पड़ोस के लोग और रिश्तेदारों को निमंत्रण देते हैं। मेजबान की क्षमतानुसार ज्यादा या कम मेहमानों को आमंत्रित करते हैं। कई-कई बार पूरे गांव को न्योता दिया जाता है। ऐसे में यह एक त्यौहार जैसा प्रतीत होता है। आमजी को कुम्पू ओक (कुम्पू नामक जंगली पत्ता) में परोसकर खाने का रिवाज है। तैयार हुए भोजन में से सबसे पहला निवाला कुत्ते को दिया जाता है। यह परंपरा से चला आ रहा रिवाज है। उपर्युक्त लोककथा के आधार पर लोग आज भी यह मानकर चलते हैं कि कुत्ते के माध्यम से धान की प्राप्ति हुई है। इस कारण खेत के धान से प्राप्त चावल पर पहला हक कुत्ते का माना जाता है। कुत्ते को चावल खिलाकर लोग एक प्रकार से उन पर कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं।

न्यीशी समाज की उपर्युक्त लोककथा में मनुष्य और जानवर के मध्य अटूट संबंध दृष्टिगोचर होता है। एक जानवर मनुष्य जीवन में कितना महत्त्व रखता है, इसे यह लोककथा दर्शाने में सफल सिद्ध होती है। न्यीशी समाज के लोग आज कृषि-कार्य के माध्यम से अपने और अपने परिजनों का भरण-पोषण करने में सक्षम हैं तो

इसमें प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कुत्ते का योगदान दिखाई देता है। आदिवासी समाज में इस प्रकार की लोक कथाओं की भरमार है। प्रत्येक जीव-जंतुओं का मानव जीवन में महत्त्व है, को यह कथाएं व्याख्यायित करती हैं। सृष्टि के प्रत्येक जीव का अस्तित्व उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना कि एक मनुष्य का। आदिवासी समाज और उसके जीवन-दर्शन का यह बुनियादी ढांचा है जिसे तानी समुदाय की यह लोककथा विश्लेषित करती है। आदिवासी समाज में सहभागिता और समानता का जो जीवन-दर्शन है वह प्रस्तुत लोककथा में द्रष्टव्य है। कुत्ते द्वारा श्रमपूर्वक मनुष्य समाज तक धान का बीज पहुँचाया जाना महत्त्वपूर्ण है, जिसके लिए वे आज भी इनका आभार प्रकट करते हैं। आदिवासी जीवन-दर्शन श्रम की बराबरी के सिद्धांत को मानता है। खेत से प्राप्त धान के फसल से बने भोजन का पहला निवाला कुत्ते को खिलाकर उसे उसका प्रतिसाद प्रदान करते हैं। यह परंपरा चिरकाल से चली आ रही है जिसे आज भी न्यीशी समाज और उसके लोक-जीवन में देखा जा सकता है।

तानी समुदाय में उपर्युक्त लोककथा के कई रूपांतर देखने को मिलते हैं। एक ही लोककथा का इन पाँचों समाज में पृथक रूप में वर्णन मिलना आम है। मूल कथा वही होती है पर प्रसंग में भिन्नता मिलती है और पात्रों के नाम अलग होतें हैं। उदाहरण के लिए आदी समाज में भी प्रस्तुत लोककथा पायी जाती है। इस समाज के अनुसार उन्हें धान का बीज 'दोनी कीने यातुङ' नामक कुतिया के माध्यम से 'मिती-मिताङ' यानी समतल इलाके के लोगों से प्राप्त हुआ था। इस लोककथा का एक अंश प्रस्तुत है- "भागती हुई दोनी कीने यातुङ मिती-मिताङ लोगों द्वारा बांस की चटाई पर सूखने के लिए फैलाये गए धान के ऊपर से निकल जाती है। इससे धान के दाने बिखर जाते हैं। परंतु मिती-मिताङ के लोग इतने विनम्र थे कि उन्होंने उस कुतिया को दण्डित नहीं किया, बल्कि उसे थका-हारा देखकर उसकी सहायता करते हैं। कुतिया बातचीत के दौरान उनको पूरी कहानी सुनाती है। पूरी कहानी सुनने के बाद उन लोगों को 'दोनी डोङगर' के प्रति दया आयी। वे दोनी डोङगर लोगों में अन्न की कमी की पूर्ति करने का निश्चय करते हैं। इसीलिए 'निकङ बोदोङ' कुतिया के कानों के छेद में धान के कुछ दाने भर देते हैं।"[1]

इस प्रकार तानी समुदाय के पाँचो समाज में प्रस्तुत लोककथा के कई रूपांतर देखने को मिलते हैं। परंतु इनमें कुत्ते द्वारा धान का बीज लाने के प्रसंग में एकरूपता दिखाई देती है। कुत्ते के इस महान कार्य के लिए अन्य तानी समुदाय की तरह ही आदी समाज के लोग भी इन्हें सम्मान देते हैं। इस संबंध में डॉ. ओकेन लेगो लिखते हैं- "यह भी एक कारण है कि आदी समाज में आज भी कुत्ते का बहुत सम्मान किया जाता है। आदी समाज में कुत्ते की अकारण हत्या न के बराबर है। आज भी बुजुर्ग लोग कुत्ते के कान में बने छोटे से गड्ढे को देखकर इस कथा की चर्चा करते हैं।"[2] अतएव, उपर्युक्त लोककथा गालो समाज में भी उपलब्ध है।[3] गालो समाज के लोग यह मानते हैं कि उन्हें धान के बीज की प्राप्ति 'मोपिन आने' से हुई थी। मोपिन आने ने ही इस समाज के पूर्वज 'आबोतानी' को कृषि-कला का ज्ञान प्रदत्त किया था। इस समाज में प्रचलित लोककथा के अनुसार आबोतानी यानी पिता तानी मोपिन आने के 'आम्पिर-दोलू' लोक में अपनी किन्हीं गलती की सजा काट रहे होते हैं। अपनी सजा पूरा करने बाद जब वह तानी-लोक में जाने लगते हैं। जाने से पहले वह मोपिन आने से 'यिली-आम्ली' यानी धान के बीज की मांग करते हैं। पहले तो वे अनिच्छुक दिखती है पर आबोतानी के अत्यधिक बल देने पर वह मान जाती है और उसे धान का बीज सौंप देती है। बीज लेकर आबोतानी अपने लोक वापस जाने लगते हैं पर रास्ते में एक नदी पार करते वक़्त सारा का सारा बीज नदी की धार में बह जाता है। फिर आबोतानी मोपिन

आने के पास जाता है और उनसे धान का बीज देने की विनती करता है। आबोतानी की याचना सुनकर मोपिन आने फिर से धान के कुछ बीज आबोतानी के फालतू कुत्ते के कान के छोटे से छिद्र में डाल देती है। बीज लेकर वह तानी लोक पहुँच जाता है और उसे किसी बंजर जमीन पर बो देता है जिसके कारण बीज अंकुरित नहीं हो पाता। निराश होकर आबोतानी पुनः मोपिन आने के द्वार पर विनती लेकर पहुँच जाता है। आबोतानी का अनुरोध सुनकर मोपिन आने उसे कृषि-कला का ज्ञान देती है और उसे बीज उगाने की संपूर्ण विधि भी बता देती है। मोपिन आने द्वारा बताई गई विधि अनुसार आबोतानी उपजाऊ जमीन तैयार करने के लिए जंगल के पेड़ काटने लगते हैं, तभी वहां जंगल के निरक्षक यापुम आ जाते हैं और आबोतानी के काम में बाधा उत्पन्न करते हैं। खूब परिश्रम के बाद यह परेशानी भी अंततः मोपिन आने की मध्यस्थता से सुलझ जाती है। अंत में तैयार की गई ज़मीन पर धान का बीज बो दिया जाता है। इस तरह धान का खेत तैयार होता है और जिसमें शीघ्र ही लहलहाती फसल आ जाती है।

गालो समाज में मोपिन आने के इस अमूल्य उपकार को आज भी याद करते हैं और प्रतिवर्ष उनको कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए उनके नाम पर मोपिन त्योहार मनाते हैं। उनका मानना है कि अगर मोपिन आने ने आबोतानी पर यह कृपा नहीं बरसाई होती तो आज समस्त तानी समुदाय को भुखमरी का शिकार होना पड़ता। अतः उनका यह उपकार वह आज भी मानते हैं और उन्हें आभार व्यक्त करते हुए मोपिन त्योहार के दिन खेत से उपजे कई प्रकार की फसल उनको अर्पित करते हैं।

सृष्टि का नियम है संतुलन, और आदिवासी समुदाय इस संतुलन को कायम रखने का पक्षधर रहा है। सृष्टि की प्रत्येक वस्तुओं और जीवों के बीच संतुलन निर्धारित करना आदिवासी जीवन-दर्शन का मूल सिद्धांत रहा है जिसका अनुपालन वे आज भी पूरी निष्ठा से कर रहे हैं। गालो समाज की उपर्युक्त लोककथा में आदिवासी जीवन-दर्शन का यह पहलू स्पष्टतः उजागर हुआ है। यह मान्यता है कि आबोतानी द्वारा जंगल का अतिक्रमण करने पर जंगल का रखवाला यापुम उनसे नाराज़ होते हैं। तानी समुदाय की यह मान्यता आबोतानी और 'ऊई' (विभिन्न प्रकार की आत्माएं जिसमें से यापुम भी एक है) दोनों के बीच संतुलन बनाने के लिए सृष्टि के निर्माताओं ने एक अदृश्य सीमा रेखा निर्धारित की थी। इस सीमा रेखा का अतिक्रमण करना दोनों ओर वर्जित मानी जाता है। किसी पक्ष द्वारा इसका अतिक्रमण करने पर, कई तरह की विपदा उत्पन्न हो सकती है क्योंकि यह सृष्टि के बनाये गए संतुलन के नियमों के विरुद्ध जाना और उसका उलंघन करना है।

तानी समुदाय के तागिन आदिवासी समाज में तानी और मअजी यापम (जंगल की आत्मा या रखवाला) की लोककथा प्रचलित है जिसमें प्रकृति के संतुलन, मनुष्य और आत्मा लोक में सहअस्तित्व आदि को दर्शाया गया है। इस लोककथा के अनुसार सृष्टि की शुरुआत में आबोतानी और यापोम/यापम एक साथ रहा करते थे। एक साथ रहते हुए भी दोनों मूलतः भिन्न लोक से संबंध रखते थे। आबोतानी का संबंध मनुष्य समाज से था तो वहीं यापम का संबंध घने जंगलों में रहने वाले जंगली जानवर और पेड़ों-पोधों आदि से थे। इस लोककथा के अनुसार आबोतानी और यापम के बीच विवाह का संबंध स्थापित हो जाता है और यापम आबोतानी के साथ रहने लगते हैं। यापम के साथ रहते हुए भी आबोतानी उसकी मूल पहचान से अनभिज्ञ थे। आबोतानी के रहते हुए भी यापम अपने सगे-संबंधी के प्रति आसक्त थीं। एक दिन आबोतानी धान आदि उगाने के लिए खेत तैयार करने लगते हैं जिसमें वह घने जंगल के पेड़ आदि को काट कर गिराते है। अपने प्रिय जनों की यह दशा देख

यापम के मन में तीव्र वेदना उत्पन्न होने लगती है। वे अपने दिव्य शक्ति से उन्हें पुनः जीवित करते हैं। यह देख आबोतानी को क्रोध आता है और दोनों में संघर्ष होने लगता है। यह संघर्ष अतिशय रूप से बढ़ने लगता है जिसे रोकने के लिए स्वयं दोरी चिजी (तागिन समाज के अनुसार यह कई समस्याओं के निवारक हैं, इनका विवरण कई बार सृष्टिकर्ता के रूप में भी किया जाता है) को आना पड़ता है। दोरी चिजी दोनों को अलग-अलग रहने का फरमान सुनाते हैं और उनकी संपत्ति का विभाजन भी कर दिया जाता है-"दोरी चिजी ने फरमान सुनाया कि जंगलों का ऊबड़-खाबड़ और वीरान इलाका जो अतिशय घना हो, असामान्य बाँस, असामान्य बेंत, असामान्य पेड़ तथा असामान्य रस्सियाँ सब मअजी-यापम के हिस्से में जाएंगी और वह सारा इलाका आबोतानी के नाम होंगे जहाँ इंसान अपना आशियाना (घर) बसा सकें। आबो तानी के हिस्से में सारे पेड़-पौधे होंगे जो दिखने में बिल्कुल सामान्य होंगे, जिसे उपयोग में भी लाए जा सके।"[4]

आज भी यहाँ के लोगों का यह विश्वास है कि यापुम घने जंगलों में वास करते हैं और उसकी रक्षा करते हैं। मनुष्यों को घने जंगलों में विचरण करना, बड़े-बड़े असामान्य पेड़ों को काटना, जंगली जानवरों का अतिरिक्त शिकार करना आदि वर्जित माना जाता है। प्रकृति के इस नियम का पालन न करने वाले व्यक्ति पर कई प्रकार की विपदा आ जाती है। घने जंगल यापम की संपत्ति मानी जाती है, इसीलिए बड़े-बड़े पेड़ो को काटने से पहले यहाँ के लोक-जीवन में कई प्रकार के अनुष्ठान किये जाते हैं। अकारण ही यहाँ के लोग पेड़ों को नहीं काटते और प्रकृति का दोहन नहीं करते हैं। प्रकृति और मनुष्य के मध्य यह संतुलन आदिवासी जीवन-दर्शन के सबसे अनुपम पहलुओं में से एक है।

इस प्रकार तानी समुदाय में कृषि संबंधी ढेरों लोककथाएं हैं जिनमें आदिवासी जीवन-दर्शन के कई सूत्र प्राप्त होते हैं। आदिवासी जीवन-दर्शन हमेशा से सवालों के कटघरे में बना रहा है क्योंकि इनकी वाचिकता में आदिवासी जीवन-दर्शन के अनगिनत रहस्य छुपे हुए हैं जिनको बिना स्थूल-सूक्ष्म दृष्टि के जान पाना कठिन है। आदिवासी जीवन-दर्शन कई तरह के पूर्वाग्रहों के शिकार भी हुए हैं। अतः इनके जीवन-दर्शन के स्वरूप और सिद्धांतों से कई समाज आज भी अपरिचित है। साहित्य में आदिवासी जीवन-दर्शन की चर्चा कुछ दशक पहले ही प्रारंभ हुई है, पर इनके लोक-साहित्य में यह चिरकाल से व्याप्त रही है। अर्थात् इनके लोक-साहित्य का गहन अध्ययन करने पर इनके जीवन-दर्शन से संबंधित कई प्रश्नों के उत्तर प्राप्त होते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. लेगो, ओकेन. (2019). *आदी जनजाति:समाज और लोक साहित्य*. नई दिल्ली: यश पब्लिकेशंस. पृ. सं. 63
2. वही, पृ. सं. 64
3. रीबा, तुम्बोम एवं शर्मा, हरीश कुमार. *अरुण प्रभा पत्रिका*. अरुणाचल प्रदेश. पृ. सं. 97-98.
4. शर्मा, बीना शर्मा एवं पाण्डेय, नंद किशोर. (2022). *तागिन लोक साहित्य*. आगरा: केंद्रीय हिंदी संस्थान. पृ. सं. 5.

*(**लेखकीय परिचय :** यागे काबाक राजीव गाँधी विश्वविद्यालय, अरुणाचल प्रदेश के हिंदी विभाग में शोधार्थी हैं।*
मोबा: 8415821609, ई-मेल : myagekabak@gmail.com)

बार्दो लोक-नाटक में दार्शनिकता के अभिव्यंजक तत्त्व और लोक-दृष्टि

मिसुङः मदो

अरुणाचल प्रदेश नैसर्गिक सौंदर्य के साथ ही साथ बहुरंगी संस्कृतियों से भी परिपूर्ण है। विभिन्नता में एकता यहाँ की अनूठी विशिष्टता है। विभिन्न भाषा एवं बोलियाँ, रीति-रिवाज, वेश-भूषा और भिन्न प्रकार के पर्व एवं त्योहार इत्यादि यहाँ की पहचान का हिस्सा है। अरुणाचल प्रदेश के प्रमुख त्योहार हैं- सोलुंग, मोपिन, लोसर, द्री, सी-दोन्यी, बुरी-बूत, पोदी बार्बी, मोल, सांगकेन, खान, रेह, आरान, तोरज्ञा और तम्लादु आदि। इन्हीं सब विशेषताओं में बार्दो लोक-नाटक भी एक सांस्कृतिक कला का रूप है, जो अरुणाचल प्रदेश के खाम्बा जनजाति का एक महत्त्वपूर्ण लोकनाटक है। खाम्बा या खाम्पा जनजाति अरुणाचल प्रदेश के प्रमुख जनजातियों में से एक है। यह जनजाति बौद्ध धर्म के महायान शाखा की अनुयायी है। खाम्बा जनजाति की आबादी बहुत कम है। वर्ष 1991 जनगणना के अनुसार इनकी कुल जनसंख्या 1,333 मात्र थी। खाम्बा जनजाति मूल रूप से अपर सियांग जिला के उत्तरी क्षेत्र के टूटिंग, ताशीगाँव, मंकोता, योर्तो, न्येरेंग आदि स्थानों में निवास करते हैं। इनके रहन-सहन, खान-पान, वेश-भूषा और मान्यता, पर्व त्योहार और लोकविश्वास इत्यादि मेम्बा जनजाति से काफी मिलते-जुलते हैं। इस जनजाति में एक प्रख्यात लोक नाटक खेला जाता है, जिससे 'बार्दो' कहा जाता है। बार्दो लोकनाटक का मंचन 'दूबा' त्योहार के अवसर पर किया जाता है। दूबा त्योहार सात दिनों तक चलता है। पहले पांच दिनों तक धार्मिक अनुष्ठान और पूजा-पाठ किये जाते हैं और अंतिम दो दिनों में बार्दो नाटक का मंचन होता है। इस लोकनाट्य का मंचन बौद्ध मठ के आँगन में होता है और इसे खुले मंच पर खेला जाता है। इस नाटक में अधिक तामझाम की कोई गुंजाइश नहीं होती है। यह एक धार्मिक लोकनाटक है जिसका मूल कथ्य कर्मफल, पुनर्जन्म, नैतिक आस्थाओं इत्यादि पर केंद्रित होता है। यह नाटक पात्र-बहुल होता है जिसमें पांच मुख्य पात्र और बीस से अधिक गौण पात्र होते हैं।

खाम्बा जनजाति के अतिरिक्त अन्य बौद्ध समुदायों में भी बार्दो लोकनाटक का मंचन होता है जैसे मेम्बा जनजाति और भूटान देश के बौद्ध समुदायों में। बौद्ध धर्म के महायान संप्रदाय में बार्दो परंपरा प्रचलित है। बार्दो धार्मिक लोक नाटक है और इस लोक नाटक में दार्शनिक तत्त्वों की प्रचुरता है। दरअसल, 'बार्दो' एक तिब्बती शब्द है, जिसका अर्थ पारगमन अथवा एक चक्र से दूसरे चक्र की ओर अग्रसर होने की अवधि। दूसरे शब्दों में कहा जाय तो किसी व्यक्ति के जीवन अवधि की समाप्ति के पश्चात दूसरी अवधि के आरंभ यानी मृत्यु के बाद का जीवन। 'बार्दो' शब्द दो शब्दों के मेल से बना है-'बार' और 'दो'। 'बार' का अर्थ है, के बीच और 'दो' का अर्थ है, छोड़ा गया। नींद और जागृत अवस्था भी एक प्रकार का बार्दो है। उसी तरह मृत्यु और पुनर्जन्म का अंतराल भी बार्दो है। यह संसार क्षण-क्षण में परिवर्तित होता है। यहाँ सभी वस्तु अस्थायी हैं। अर्थात् कोई भी सदा के लिए एक ही रूप अथवा अवस्था में स्थायी नहीं है। बार्दो के अनुसार किसी भी वस्तु का न जन्म होता है और न नष्ट होता है, बल्कि एक रूप से दूसरे रूप में परिवर्तन होता रहता है। अतः बार्दो दो अवधि के अंतराल को कहा जाता है। सामान्य शब्दों में बार्दो एक अवधि की समाप्ति के पश्चात दूसरी अवधि का आरंभ होना है। सामान्यतः खाम्पा और मेम्बा यह मानते हैं कि मनुष्य जीवन के कई चरण होते हैं- चाम बार्दो (जन्म से

मृत्यु तक), मेलम बार्दो (स्वप्न लोक), साम्तेन बार्दो (ध्यानालोक) तथा चिने बार्दो (मृत्यु के बाद की यात्रा)। अर्थात् जब किसी व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है तब वह मृत्यु के पश्चात 49 दिनों तक बार्दो में रहता है। बार्दो यानी जीवन और मृत्यु के अंतराल में रहना है। इस दौरान आत्मा को सांसारिक रूप को छोड़कर दूसरे अवतार में परिवर्तित होने की प्रक्रिया से गुज़रना पड़ता है। उस स्थिति में मनुष्य खुद को मरा हुआ नहीं पाता, उसे लगता है कि वह अब भी जिंदा है और सांसारिक दुनिया में है। उनका हाव-भाव सब कुछ वैसे होते है जैसे सांसारिक लोक में हुआ करता था। बार्दो के दौरान उसका परिचय विभिन्न प्रकार के पशु पक्षियों से होता है, जिसकी हत्या उन्होंने जीवित रहते समय की थी। बार्दो के अंतिम दिन में उसे 'देनाग्पो' और उनके अंगरक्षकों के द्वारा देवता के दरबार में पेश किया जाता है। यह ज्ञात होने के लिए कि यह व्यक्ति पापी है या पुण्यधर्मी, उसने अपने जीवन में क्या-क्या शुभ कर्म किया है और तो और उन्हें स्वर्ग की प्राप्ति होगी या नर्क की प्राप्ति होगी। ऐसी मान्यता है कि जो व्यक्ति पुण्य कार्य करता है, उसको नये जीवन और काया की प्राप्ति निश्चित ही होगी। पापी मनुष्य की आत्मा को नये रूप की प्राप्ति नहीं होगी, मतलब उसकी आत्मा सदा के लिए नष्ट हो जाएगी। पुण्यात्मा को बार्दो से मुक्ति मिलेगी और उनका पुनर्जन्म अवश्य होगा। यानी सबको अपने कर्म का फल भुगतना होगा या जैसा कर्म वैसा परिणाम का भागी बनना पड़ेगा। अगर किसी व्यक्ति ने अच्छे कर्म किये हैं तो उसे स्वर्ग प्राप्त होगा और अगर उसने कुकृत्य अधिक किया हो तो नर्क ही मिलेगा। नाटक के प्रमुख पात्र दिक्चुंग और गोम्चेन के द्वारा सत्कर्म और कुकृत्य के परिणामों को दर्शाया जाता है। अतः इस लोक नाटक का दार्शनिक पक्ष यह दर्शाता है कि मनुष्य के लिए कर्म ही धर्म होता है। अर्थात् जैसे कर्म वैसे फल मिलना निश्चित है। मनुष्य अपने किए हुए कर्मफल को ही भुगतता है। क्योंकि सत्कर्म का फल सदा के लिए अच्छा होता है और कुकृत्य करने वाले को बुरे फल की प्राप्ति होती है।

बार्दो लोकनाटक में मोक्ष और पुनर्जन्म की आस्था को मंचीय कौशल और भंगिमा के साथ अभिनीत किया जाता है। यह समझना महत्त्वपूर्ण है कि बौद्ध धर्म के अनुसार मनुष्य का जीवन सभी प्राणियों में से सर्वश्रेष्ठ और बहुमूल्य होता है। उनकी दृष्टि में चौरासी लाख योनियों में सबसे श्रेष्ठ योनि मनुष्य योनि मानी जाती है। इसी योनि में जीव मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं और किसी दूसरी योनि में मुक्ति संभव नहीं है। इसलिए इस जीवन को व्यर्थ में नष्ट नहीं करना चाहिए। बौद्ध दर्शन इसीलिए एक आदर्श जीवन जीने का उपदेश देता है। परस्पर प्रेम, सद्भावना और अहिंसा इत्यादि जीवन का उद्देश्य होना चाहिए। बार्दो नाटक में अभिव्यक्त दर्शन के अनुसार इस सांसारिक जीवन की यात्रा मृत्यु के पश्चात भी रूकती नहीं है, अपितु मृत्यु के बाद की यात्रा महत्त्वपूर्ण होती है। कहा जाता है कि मनुष्य को बार्दो से पार ले जाने का मार्ग कर्म मात्र ही हो सकता है। बार्दो में मनुष्य के कर्म को आंका जाता है और उस आधार पर पुनर्जन्म की व्याख्या होती है। यदि मनुष्य की बार्दो से मुक्ति नहीं होगी तो उसका नष्ट हो जाना तय है।

इस तरह पाप और पुण्य बार्दो लोक नाटक की महत्त्वपूर्ण विशेषता है। पाप और पुण्य की विचारधारा पूर्व-परंपरा से चली आ रही है। यह तो युगादि सत्य है कि जीवन बहुत बहुमूल्य है और इस जीवन को अनुशासित और आदर्शपूर्ण तरीके से जीने पर बल सदैव दिया गया है। बार्दो लोक नाटक में भी यही विचार प्रमुखता से दर्शाए जाते हैं। इस नाटक में दिक्चुंग और गोम्चन द्वारा पाप और पुण्य विचार को बहुत ही सुंदर से बताया जाता है। कैसे पापी मनुष्य का जीवन नष्ट होता है और एक पुण्य मनुष्य को पुनर्जन्म मिल जाता है। बार्दो लोक नाटक

में अहिंसावादी दर्शन प्रमुख है। अहिंसा बौद्ध धर्म के मुख्य सिद्धांतों में से एक है। बौद्ध धर्म में हिंसा का विरोध है, संसार के जीव जंतु और कीड़े-मकौड़े तक के प्रति हिंसा प्रकट नहीं करने का आदर्श रखा गया है। यह अहिंसावादी दर्शन बार्दो लोकनाटक में भी झलकती है। मुखौटा इस नाटक का प्रमुख तत्त्व है जिसे प्रतीकात्मक रूप में प्रयोग किया जाता है। बार्दो लोक नाटक में पशु-पक्षियों का भिन्न-भिन्न मुखौटा प्रयोग किया जाता है। इसका कारण यह है कि मनुष्य सांसारिक लोक में जीवित रहते समय पशु-पक्षियों या अन्य जीव-जंतुओं की हत्या करते हैं, तो मृत्यु के बाद के उनचास दिन बार्दो में रहते हुए उन सभी मृत आत्माओं से मिलते हैं। इसलिए यह नाटक एक नैतिक संदेश भी देता है तथा पक्षी या जानवरों के साथ हिंसा न करने के लिए प्रेरित करता है। नाटक मंचन के दौरान नाटक के मुख्य पात्र देनाक्फो (खलनायक) घुंघरू लिये मैदान में नृत्य करते हैं। इस नाटक में घुंघरू का प्रयोग इसलिए किया जाता है, जमीन के नीचे जीवन यापन करने वाले कीड़े-मकोड़े वहां से हट जाएं ताकि उनका जीवन नष्ट होने से बच जाये। अतः बार्दो लोक नाटक में अहिंसावादी दर्शन का सुंदर चित्रण देखने को मिलता है। यह नाटक दिखाता है कि हिंसा एक प्रकार से मोक्ष प्राप्ति के लिए बाधक तत्त्व है। बार्दो मनुष्य जीवन के क्रियाकलापों की दार्शनिक व्याख्या भी प्रस्तुत करते हैं। उदाहरण के लिए देखें, तो बार्दो के अनुसार नींद लेना भी मृत्यु के समान ही है। जहाँ सभी तत्त्व तथा विचार प्रक्रिया विलीन हो जाती है और एक महान दीप्ति का अनुभव सामने आता है। एक प्रकार से स्वप्न की अवस्था मृत्यु की अवस्था से बहुत मेल खाती है। जिस प्रकार मृत्यु के दौरान मनुष्य निस्पंद, निश्चेष्ट हो जाता है और उसका समस्त क्रियाकलाप, चेतना सुसुप्त अवस्था में गुम हो जाती है। इसी प्रकार की अवस्था नींद में भी होती है। अतः बार्दो के अनुसार निद्रावस्था भी एक प्रकार की मृत्यु है।

निष्कर्षतः बार्दो एक पारंपरिक धार्मिक नाटक है, जिसका मंचन खुले मंच में होता है। सरल तरीके और सहज भाव से प्रस्तुतीकरण के कारण यह नाटक बेहद लोकप्रिय है। इसकी प्रस्तुति में अधिक तामझाम नहीं होने के कारण दर्शकों से सीधा तादात्म्य बिठा पाना संभव होता है। विशेषताओं को देखें, तो बार्दो नाटक संगीत एवं नृत्य प्रधान नाटक है। इस नाटक का उद्देश्य मुख्य रूप से दर्शकों का मनोरंजन करना ही नहीं होता है, बल्कि इसके माध्यम से नैतिक संदेश देना भी मुख्य है। यह हास्य प्रधान नाटक न होकर गहरे दार्शनिकता से जुड़ा और उनको अभिव्यंजित करने वाला एक सांस्कृतिक कला-रूप है। बार्दो लोक नाटक का मुख्य कथ्य है- खाम्बा लोगों का अनोखा जीवन दर्शन, नैतिक मान्यताएँ, लोक-परलोक, कर्म-फल और पुनर्जन्म संबंधी आस्था आदि। यह नाटक मनुष्य को सत्कर्म करने की प्रेरणा देता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. धर्मराज. (1994). *अरुणाचल की जानजातियां और ऐतिहासिक स्थान अनुसंधान.*अरुणाचल प्रदेश: अरुणाचल प्रदेश सरकार.
2. विलय, गौतम. (2000). *हिंदी नाटक रंग शिल्प दर्शन*. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन. नई दिल्ली.
3. त्रिपाठी, वशिष्ठ नारायण. (2000). *भारतीय लोकनाट्य*. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन. नई दिल्ली.

*(**लेखकीय परिचय :** मिसुङ मदो *राजीव गाँधी विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग* में शोधार्थी हैं।*

मोबा: 7629827618, *ई-मेल :* medosungme@gmail.com *)*

ईदु मिश्मी लोक साहित्य में जीवन-मूल्य

रीना कुमारी राय
आशा मिमी

समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए व्यक्ति के जीवन में मूल्यों का होना अनिवार्य हैं। जीवन मूल्य एक ऐसा तत्त्व है जो हर व्यक्ति के जीवन में आवश्यक होता है। इन मूल्यों के आधार पर मनुष्य जीवनयापन करना सीखता है। ईदु मिश्मी अरुणाचल प्रदेश की मिश्मी जनजाति की एक उप जनजाति है। इनकी अपनी कोई लिपि न होने के कारण इनका साहित्य मौखिक रूप में उपलब्ध है। हिंदी लोक साहित्य की तरह ईदु मिश्मी लोक साहित्य में लोक कथा, लोक गीत, लोक गाथा, लोक-नाट्य, लोक सुभाषित उपलब्ध है। इनके लोक साहित्य में जीवन संबंधी मूल्य देखे जा सकते हैं। "जीवन मूल्य ही ऐसे तत्त्व हैं जो मनुष्य को उचित-अनुचित संबंधी निर्णय शक्ति-प्रदान कर उसके जीवन को संतुलित बनाते हैं। संतुलन की अवस्था में ही मनुष्य अपने विकास के मार्ग का अन्वेषण कर पाता है।"[1] अर्थात मनुष्य का जीवन विसंगतियों और संघर्षों से भरा हुआ है, उसे नित्य प्रतिदिन उन संघर्षों से सामना करना पड़ता है जिनमें उसे कभी सफलता प्राप्त होती है तो कभी असफलता, लेकिन इन्हीं संघर्षों से वह जीवन के असल मूल्य को समझता है। इन सब पद्धतियों से मनुष्य को किस प्रकार जीवनयापन करना है, वह सीखता है। मनुष्य अपने अनुभव से ही अपनी पीढ़ी को इन सब जीवन आधारित मूल्यों से अवगत कराता है ताकि उसे किस तरह जीवन जीना चाहिए और क्या उसके हित में हैं और क्या अहित में; को भली-भांति जान सके। वस्तुतः जीवन का अनुभव ही मनुष्य को जीवन जीने की प्रेरणा देता है।

लोक (सामान्य जनसमूह) समाज का वह हिस्सा है, जो आभिजात्य और शास्त्रीयता के घेरे से मुक्त होता है। यह खास वर्ग को सहज प्राप्त सुख-सुविधाओं से वंचित होता है। डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने लोक साहित्य के संबंध में कहा है कि "लोक साहित्य का विस्तार अत्यंत व्यापक है। साधारण जनता जिन शब्दों में गाती है, रोती है, हँसती है, खेलती है उन सब को लोक साहित्य के अंतर्गत रखा जा सकता है।"[2] डॉ. सत्येन्द्र ने लोक साहित्य को परिभाषित करते हुए उसे तीन भागों में विभाजित किया है- "लोक साहित्य के अंतर्गत वह समस्त बोली या भाषागत अभिव्यक्ति आती है जिसमें-

1. आदिम मानस के अवशेष उपलब्ध हों।
2. परंपरागत मौखिक क्रम से उपलब्ध बोली या भाषागत अभिव्यक्ति हो जिसे किसी की कृति न कहा जा सके, जिसे श्रुति ही माना जाता हो, और जो लोक मानस की प्रवृत्ति में समायी हुई हो।
3. कृतित्व हो किंतु वह लोक-मानस के सामान्य तत्त्वों से युक्त हो कि उसके किसी व्यक्तित्व के साथ संबद्ध रहते हुए भी, लोक उसे अपने ही व्यक्तित्व की कृति स्वीकार करे।"[3]

उपर्युक्त परिभाषा से यह समझा जा सकता है कि लोक साहित्य लोक द्वारा निर्मित वह साहित्य है, जिसमें लोक अपनी भावनाओं और अनुभूतियों को मौखिक रूप में एक-दूसरे के समक्ष अभिव्यक्त करता आ रहा है। यह मूलतः श्रुति पर आधारित होता है जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक श्रुति के माध्यम से आगे बढ़ता या वाचिक रूप में हस्तांतरित होता है।

अरुणाचल प्रदेश भारत के उत्तर-पूर्व में बसा है, जो उत्तर पूर्व के अन्य राज्यों से क्षेत्रफल की तुलना में सबसे बड़ा राज्य है। अरुणाचल में कुल 28 जिले हैं, जिसमें पापुमपारे, ईस्ट सियांग, दिबांग वैली, लोअर दिबांग वैली, सुबंसीरी, ईस्ट कमेंग, वेस्ट कमेंग, लोहित, नामसाई, चांगलांग, लॉगदिङ, तवांग इत्यादि हैं। प्राकृतिक सौंदर्य के साथ इसे विविधताओं का राज्य भी कहा जाता है, क्योंकि यहाँ कई जनजाति और उप जनजातियाँ एक साथ निवास करती हैं। इस प्रदेश में कुल 26 प्रमुख जनजातियों के साथ सौ से भी अधिक उपजनजातियाँ हैं। प्रमुख जनजातियों में मिश्मी, तांगसा, नोक्टे, न्यीशी, आदी, तागिन, मोनपा, मिजी, खामबा इत्यादि हैं। इन सभी जनजातियों की अपनी अलग-अलग विशेषताएँ हैं, जो इनकी पहचान हैं। प्रत्येक जनजातियों में सामाजिक और सांस्कृतिक भिन्नताओं के बावजूद भी उनमें कहीं न कहीं समानता नजर आती है जो उनको एक साथ जोड़ने का काम करती है। वर्तमान समय में अधिकतर जनजातियाँ बौद्ध, ईसाई और हिंदू धर्म से जुड़े हुए हैं। अलग-अलग धर्मों से जुड़े होने के बावजूद भी वे अपने पूर्वज और प्रकृति की उपासना करते हैं। अरुणाचल प्रदेश की जनजातियाँ प्राचीन काल से प्रकृति की उपासना करती आ रही हैं। प्रकृति के साथ उनका संबंध अधिक गहरा है।

मिश्मी जनजाति अरुणाचल प्रदेश की प्रमुख जनजातियों में से एक है। यह जनजाति मुख्यतः तीन वर्गों में विभाजित है–ईदु मिश्मी, दिगारु मिश्मी और मिजु मिश्मी। एक ही जनजाति होने के बावजूद भी इनमें भिन्नताएँ नजर आती हैं। सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से ईदु मिश्मी, दिगारु और मिजु मिश्मी से भिन्न है, किंतु ईदु मिश्मी और दिगारु मिश्मी की बोलियों में समानता देखने को मिलती है, जबकि मिजु मिश्मी की बोली उपर्युक्त जनजातियों से भिन्न है। सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से दिगारु और मिजु मिश्मी में समानता है। यह दोनों जनजातियाँ लोहित और अंजाव जिले में निवास करती हैं। ईदु मिश्मी मिश्मी जनजाति की एक उपजनजाति है, जो दिबांग वैली, लोअर दिबांग वैली, लोहित और सियांग के कुछ क्षेत्रों में निवास करती हैं। मिजू और दिगारु दोनों जनजातियों से ईदु मिश्मी जनजाति भिन्न है। यह जनजाति चीन और भारत में अरुणाचल प्रदेश में निवास करती हैं। अरुणाचल में यह जनजाति मूलतः दिबांग वैली, लोअर दिबांग वैली, लोहित और पूर्वी सियांग के कुछ गाँव में निवास करती हैं। ईदु मिश्मी जनजाति की अपनी कोई लिपि न होने के कारण उनका जीवन और इतिहास रहस्यों में उलझा हुआ है। इस संबंध में जो भी जानकारी आज तक उपलब्ध है, वह सब लोक साहित्य के माध्यम से ही जाना जा सकता है। ईदु मिश्मी का मूल उद्गम कहाँ से हुआ, इस पर लोगों में एकमत नहीं हैं। कोई उनको तिब्बत (चीन) से विस्थापित होकर आए मानते हैं तो कोई बर्मा या अबोर हिल्स से विस्थापित मानते हैं। मनुष्य के जीवन में समाज का होना अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। समाज के बिना व्यक्ति का जीवन अधूरा होता है। व्यक्ति से परिवार बनता है और परिवारों के समूह से समाज निर्मित होता है इसलिए परिवार समाज की सबसे छोटी इकाई मानी जाती है। समाज और संस्कृति एक दूसरे के पूरक हैं। मनुष्य के लिए संस्कृति वह साधन है जिसके द्वारा वह अपनी पहचान और अस्तित्व को बनाए रखता है। संस्कृति के जरिए ही किसी भी समाज को जाना जा सकता है। संस्कृति ही मनुष्य की पहचान होती है। त्यौहार, नृत्य, अनुष्ठान, रीति-रिवाज, विश्वास यह सभी संस्कृति के अंग हैं। संस्कृति ही मनुष्य को एक साथ जोड़कर रखने का काम करती है। ईदु मिश्मी समाज भी अपनी संस्कृति को सुरक्षित करते आ रहे हैं। ईदु मिश्मी लोक साहित्य जीवन मूल्यों से भरपूर है,

जिसमें पारिवारिक, सामाजिक और आर्थिक जीवन के महत्त्व को देखा जा सकता है। इन मूल्यों के आधार पर ही इस जनजाति के जीवन दर्शन को देखा जाता है।

सामाजिक मूल्य

ईदु मिश्मी समाज मिलकर जीवनयापन करते हैं। हर अनुष्ठान, त्यौहार, विभिन्न क्रिया-कलाप वे एक साथ मिल-जुलकर करते हैं। इस जनजाति की लोक कथाओं में सामाजिक मूल्यों से संबंधित कई कथाएँ प्रचलित हैं, जिसमें समाज के महत्त्व को दिखाया गया है। इन मूल्यों के आधार पर ही मनुष्य अपना जीवन यापन करता है और इसके द्वारा ही मनुष्य सही और गलत का निर्णय लेने में सक्षम होता है। परिवार के बिना व्यक्ति का जीवन निरर्थक है। मनुष्य के जीवन में कई गतिविधियाँ बदलती रहती हैं। मनुष्य को कभी सुख तो कभी दुख को धारण कर जीवनयापन करना पड़ता है। उस समय परिवार ही मात्र उनके पास रह जाते हैं जो हर परिस्थिति में उनका साथ देता है। ईदु मिश्मी समाज में परिवार का अत्यधिक महत्त्व होता है। परिवार ही मनुष्य को एक साथ बांध कर रखने का काम करता है।

1. मातृ-प्रेम-

परिवार में एक बच्चे का सबसे पहला रिश्ता माँ के साथ ही होता है। माँ और बच्चे का संबंध जब वह पेट में होता है, तभी से जुड़ जाता है। जन्म के पश्चात जब उसे भूख लगती है तब माँ ही उसे दूध पिलाकर उसकी भूख को शांत करती है। इस तरह बच्चा धीरे-धीरे समझ जाता है कि माँ ही उसकी हर जरूरत को पूर्ण कर सकती है। इसलिए ईदु मिश्मी समाज में बच्चे का स्नेह सबसे अधिक माँ के साथ ही देखा जा सकता है। यह उनके लोक कथाओं में भी दिखाई पड़ता है। जैसे सिनेरु से संबंधित लोक कथा ईदु मिश्मी जनजाति में प्रचलित है। इस कथा में सिनेरु का उसकी माँ के प्रति जो प्रेम था वह दिखाई देता है। जब उसकी माँ की मृत्यु हो जाती है तब वह विचलित हो उठता है और विलाप करने लगता है। अनुष्ठान द्वारा वह अपनी माँ को जीवित करने का पूरा प्रयास करता है। प्रस्तुत कथा में मातृत्व प्रेम के मूल्य को दर्शाया गया है।

2. बहन-बहन का प्रेम

अन्य पितृसत्तात्मक समाज की तरह ईदु मिश्मी समाज में भी स्त्रियों को हमेशा पुरुष से नीचे दर्जे का माना जाता है, जिस कारण स्त्रियों को अनेक समस्याओं से जूझना पड़ता है। जिस स्त्री के साथ पुरुष का साया न हो उसे समाज में कोई हक नहीं दिया जाता है। उसे हीन दृष्टि से देखा जाता है। इससे संबंधित जोमबा नामक लोक कथा ईदु मिश्मी जनजाति में प्रचलित है। जब जोमब को उसके ससुराल द्वारा त्याग दिया जाता है, उस समय उसके अपने घर वाले भी उसका साथ नहीं देते हैं। वह जीवन से हार मान जाती है तब उसकी अपनी बहन उस समय उसका साथ देने के लिए आगे आती है। उसकी बहन जीवन के अंतिम समय तक उसके साथ रहती है। इस कथा में बहन के मूल्य को देखा जा सकता है।

सांस्कृतिक मूल्य-

जिस तरह समाज मनुष्य जाति के जीवन का अभिन्न अंग है, वैसे ही संस्कृति भी मनुष्य के जीवन का अभिन्न अंग है। संस्कृति ही एक समाज को दूसरे समाज से अलग करती है। सांस्कृतिक मूल्यों द्वारा एक बेहतर समाज की स्थापना की जा सकती है। ईदु मिश्मी लोक कथाओं में सांस्कृतिक मूल्यों से संबंधित कथाएँ प्रचलित हैं। जहाँ संस्कृति के महत्त्व को पहचाना जा सकता है।

त्यौहार संबंधी मूल्य-

त्यौहार मनुष्य जाति की पहचान है। त्यौहार के माध्यम से लोग एक एक दूसरे से जुडते हैं और एक साथ खुशियाँ मनाते हैं, जिसमें कई जीवन मूल्य उभरकर सामने आते हैं। 'रेह' ईदु मिश्मी का मुख्य त्यौहार है जिसमें इस त्यौहार के महत्त्व को देखा जा सकता है। इससे संबंधित लोक कथा इस जनजाति में प्रचलित है, जहाँ यह पता चलता है कि इस त्यौहार का आरंभ सर्वप्रथम 'अपिजु मेंगा' द्वारा किया गया था। यह त्यौहार मनुष्य को स्वार्थ और लालच से दूर रहने की प्रेरणा देता है। इस त्यौहार के द्वारा यह सीख भी मिलती है कि हमें हमेशा एक दूसरे की मदद करनी चाहिए और मिल जुलकर रहना चाहिए। इस त्यौहार के कई उद्देश्य हैं, जैसे-

- मनुष्य को निस्वार्थ होकर लोगों की मदद करनी चाहिए।
- मनुष्य को लालच नहीं रखना चाहिए।
- हमेशा दूसरों की सहायता करनी चाहिए।

विवाह संबंधी मूल्य

विवाह स्त्री और पुरुष दोनों के लिए महत्त्वपूर्ण है। यह समाज के निर्माण के लिए आवश्यक है, जो समाज की सबसे छोटी इकाई के रूप में शुरू होती है। यह जीवन में सातत्य को बनाए रखने के लिए जरूरी है। एक दांपत्य जीवन समाज को यह प्रेरित करता है कि किसी भी परिस्थिति में हमें एक दूसरे का साथ नहीं छोड़ना चाहिए। जीवन के पड़ाव में एक ऐसा समय आता है जब हमें किसी ऐसे व्यक्ति की जरूरत पड़ती है जो हर समय हमारा साथ दे। अपने जीवन से जुड़ी हर बात को एक-दूसरे के समक्ष व्यक्त कर सके। ईदु मिश्मी समाज में भी विवाह का अत्यंत महत्त्व है। विवाह न होने पर व्यक्ति का जीवन अधूरा होता है। यह अधूरापन 'नारू तो वूजी' नामक लोक गीत के माध्यम से अभिव्यक्त होता है। इस गीत में एक युवती अपने अकेलेपन को अभिव्यक्त करती नजर आती है :-

आबी यू गादा दो थ्रू हाना ऊ ऊ ऊ,
आंगो प्रागदा होला हाना ऊ ऊ ऊ,
आ आ गा दा होजा गादा ऊ ऊ ऊ,
यिन्दो प्राबिदो एयांपा लेबा होला हाना ऊ ऊ ऊ,
नारू तो ऊजी ऊ ऊ ऊ,
सोनजोमबो ऊजी ऊ ऊ ऊ,
आपुथ्रो यिबेवे ऊ ऊ ऊ,
एबाको यिबेवे ऊ ऊ ऊ,
सोनजोमबो ऊजी ऊ ऊ ऊ।

भावार्थ :-

इस गीत में कुँवारी युवती अपनी दशा का वर्णन करती हुई कहती है कि मैं सभी कार्य में निपुण हूँ। मैं अभी कपड़े बुन रही हूँ। इस बात को पूरे गाँव में फैला दो ताकि मेरे लिए कोई विवाह का प्रस्ताव लेकर आए, अन्यथा मेरा जीवन व्यर्थ हो जाएगा। मुझे डर है कि कहीं मेरा जीवन खेत-खलिहानों की रखवाली तक ही सीमित न रह जाए। प्रस्तुत गीत में युवती अपनी अकेलेपन को दर्शाती है।

मनुष्य विकास की ओर जैसे-जैसे अग्रसर होता है, वैसे-वैसे वह अपनी पुरानी परंपराओं को पीछे छोड़ता चला जाता है किंतु प्रगति ही मनुष्य का आधार है। ऐसे में व्यक्ति को रूढ़िवादी परंपराओं को छोड़कर मनुष्य हित के लिए जो आवश्यक है, उनको ग्रहण कर आगे बढ़ना चाहिए। मनुष्य के जीवन में मूल्यों का होना आवश्यक है, क्योंकि इन्हीं से वह जीने की प्रेरणा लेता है। जीवन मूल्य मनुष्य को सफलता की ओर ले जाने का पथ प्रदर्शित करता है। व्यक्ति की प्रतिष्ठा उसके जीवन मूल्यों के आधार पर निर्धारित की जाती है। जीवन मूल्य ही व्यक्ति को सकारात्मक बनाता है। मूल्यहीन व्यक्ति का जीवन निरर्थक है। वह जीवन के किसी भी पड़ाव के लिए सक्षम नहीं होता है। ईदु मिश्मी लोक साहित्य में जीवन मूल्य संबंधी विशेषताओं को देखा जा सकता है। मातृत्व प्रेम के महत्त्व को सिनेरु की कथा के द्वारा देखा जा सकता है। माँ का होना जीवन में कितना महत्त्वपूर्ण है, यह इस कथा के द्वारा पता चलता है। समाज में हर एक रिश्ता अटूट होता है। यह हम जोमबा के गीत में देख सकते हैं, जहाँ दो बहनों के प्रेम को दर्शाया गया है। ईदु मिश्मी लोक साहित्य में त्यौहारों के महत्त्व को दर्शाया गया है और जिसमें त्यौहारों के द्वारा मनुष्य को स्वार्थहीन जीवन जीने की प्रेरणा दी गई है। विवाह प्रणाली मनुष्य जीवन के लिए क्यों आवश्यक है, इसका वर्णन भी ईदु मिश्मी लोक गीतों में प्राप्त होता है।

सहायक ग्रंथ सूची

1. कृष्णदेव उपाध्याय, लोक साहित्य की भूमिका, साहित्य भवन प्रा. लि. के. पी. कक्कर रोड, इलाहाबाद
2. कृष्णदेव उपाध्याय, लोक संस्कृति की रूपरेखा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण: 2014
3. गणपतिचंद्र गुप्त, साहित्यिक निबंध, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण :2015
4. धर्मपाल मैनी, मानव मूल्य व्याख्या कोश: भाग 5 (आधुनिक मूल्य), किताब घर, नई दिल्ली, संस्करण 2009
5. धर्मराज सिंह, अरुणाचल की गालो जनजाति और उसकी सामाजिक व्यवस्था, अरुणाचल नागरी संस्थान, ईटानगर, अरुणाचल प्रदेश, संस्करण : 2001
6. धर्मराज सिंह, अरुणाचल की जनजातियाँ और ऐतिहासिक स्थान, डायरेक्टर ऑफ रिसर्च, अरुणाचल प्रदेश, ईटानगर, प्रकाशन: 1994
7. माजिद मेवाती, मेवाती लोक गीतों में समाज और संस्कृति, नेहा प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण : 2010
8. सत्येन्द्र, लोक साहित्य विज्ञान, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर (राज.), संस्करण: 2006
9. हरीशकुमार शर्मा, फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यासों में लोक-संस्कृति, जासमिन पब्लिकेशन, दिल्ली, संस्करण : 2013
10. Mishimbu Miri, Revelations from Idu Mishmi hymns, RIWATCH (Research Institute of Worlds Ancient Traditions Cultures and Heritage). Arunachal Pradesh. 2018.
11. Dr. Razzeko Dele, Idu Mishmi Shamanic Funeral Ritual Ya, Bookwell, Delhi, Published in 2018.

*(**लेखकीय परिचय** : रीना कुमारी राय नागालैंड विश्वविद्यालय, नागालैंड के हिंदी विभाग में शोधार्थी हैं। इससे पूर्व आप अरुणाचल यूनिवर्सिटी ऑफ स्टडीज़, नामसाई, अरुणाचल प्रदेश के हिंदी विभाग में अतिथि सहायक प्रोफेसर के रूप में अध्यापन कार्य कर चुकी हैं। मोबा: 9954416737, ई-मेल: rinarai945@gmail.com/ आशा मिमी, सिद्धार्थ विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में शोधार्थी हैं। इससे पूर्व आप अरुणाचल यूनिवर्सिटी ऑफ स्टडीज़, नामसाई, अरुणाचल प्रदेश के हिंदी विभाग में अतिथि सहायक प्रोफेसर के रूप में अध्यापन कार्य कर चुकी हैं।*

मोबा: 8119826580, ई-मेल : mimiasha1994@gmail.com)

तागिन लोक-गीत: ञ्मअ कबनम

चाचू दाई

अरुणाचल प्रदेश के नामकरण का उल्लेख प्रदेश के पूर्व राज्यपाल श्री माता प्रसाद जी की पुस्तक 'मनोरम भूमि अरुणाचल' में हुआ है। इस किताब में बताया गया है कि अरुणाचल प्रदेश का प्राचीन नाम 'उदयाद्रि' था। अरुणाचल प्रदेश की प्राकृतिक और सांस्कृतिक विविधता को साहित्य अकादेमी से पुरस्कृत हिंदी के कवि एवं गीतकार डॉ. तारो सिन्दिक अपने कविता संग्रह 'फिर आना तुम' में बखूबी अंकित करते हैं- "हिमालय की गोद से बहती हजारों नदियां हैं/हर मौसम में खिलते यहां कई फूल और कलियां हैं/सियाङ सुबनसिरी के संग बहती जीवन की धारा है/कामेङ लोहित तिराप से, मिलता सबको सहारा है/ईश्वर से हमको मिला ऐसा अनमोल खजाना है/कोई लूट नहीं पाये इसको, वचन ये हमको देना है।" अरुणाचल प्रदेश की जनजातियां अपनी कई सारी उप-जनजातियों से जुड़ी हुई हैं। इनमें आपसी भिन्नता है, तो विविधता भी ढेरों हैं। सांस्कृतिक दृष्टि से सबकी अपनी अलग बोली-वाणी, खान-पान, रीति-रिवाज, पोशाक-परिधान, आभूषण और लोक-मान्यताएं आदि हैं। यह भी सच है कि भिन्नताएं होने के बावजूद सब एक-दूसरे से सद्भावना और भाईचारा बनाए रखते हैं। तानी समुदाय 'आबो-तानी' के वंशज कहे गए हैं जिनमें न्यीशी, आदी, गालो, आपातानी, तागिन पांच जनजातियाँ शामिल हैं। साहित्य, कला, संस्कृति और दर्शन के नज़रिए से तागिन जनजाति की अपनी लोक-समृद्ध परंपरा और लोक-जीवन है। तागिन जनजाति अप्पर सुबनसिरी जिले में बसी हुई है। 'मौखिक लोक-साहित्य' की दृष्टि से यह जनजाति बेहद समृद्ध है। प्रकृति के विविध रंग-रूप तागिन जनजाति की लोक-मान्यताओं और लोक-विश्वासों में देखे जा सकते हैं। तागिन जनजाति के संपूर्ण जीवन दर्शन में सामुदायिक उद्भव और विकास, संघर्ष और निरंतरता की गाथा विद्यमान है। अनादिकाल से मौखिक परंपरा में चली आ रही तागिन-लोक कथाएं, लोक-मिथक, लोक-सुभाषित तथा लोक-गीत वर्तमान तागिन लोक-साहित्य का अभिन्न हिस्सा बनी हुई हैं। उदाहरण के रूप में तागिन लोक-गीत की ही चर्चा की जाये तो उनमें उत्पत्तिमूलक, हर्षोल्लास, स्वप्न, वात्सल्य तथा ञ्मअ कबनम आदि अनेक प्रकार के गीत होते हैं। इन लोक-गीतों में जीवन के विविध प्रसंगों को प्रसंगानुकूल व्यक्त करने का पारंपरिक तरीका बेजोड़ है।

'ञ्मअ कबनम' तागिन समाज में एक विशेष लोक-गीत है जिसे अधिकांशतः महिलाओं के कंठ से सुना जाता है। 'ञ्मअ कबनम' लोक-गीत का परंपरा से अनुसरित अथवा स्वनिर्मित सुर-ताल, धुन-लय आदि से संबंध होता है। यह लोक-गीत हर्ष, व्यक्तिगत कुंठा-निराशा, विदाई समारोह, मृत व्यक्ति की स्मृति आदि में महिलाओं के द्वारा गाया जाता है। पारंपरिक ञ्येदा (विवाह) समारोह के दौरान या समापन के दौरान माँ अपनी अंतरआत्मा से निकली भावनाओं को व्यक्त करती हुई कुछ व्यावहारिक जीवन से संबद्ध नैतिक बातें गाकर बताती है जिसे 'ञ्मअ कबनम' के संबंध में कहा जाता है यथा :

"कू नो ञेबू लो सेकू बोलो
नो अल ब दोबअ ग लेमी डा
रियू ग लेमी डा,अतु-आयु ग लेमी डा सेबियुम लाकअ

मातु ग हबू ब दोकर मबअ क
मरी ग लअमी ब पोकर मबअ क
कु नो असर ब नासु-राङो ङा यारसु ला
चिदे-मोदा सो इरिक सोला पोरोक सोला
ञ्येलू-कु हा असर सेगे लकअ।"

भावार्थ यह है कि प्रिय बेटी, तुम पराएघर की बहू बन गई हो इसलिए तुम्हारी जिम्मेदारी है, अपने सास-ससुर और साला या सालियों को अपने सगे भाई और माता-पिता समझकर प्रेम से रहना सम्मान करना। इस संसार में तुम खेतों का काम करने के साथ-साथ सूअर, मुर्गी आदि पालकर अपने पति और बच्चों के साथ एक बेहतर जीवन जीने की कोशिश करना। पति और सास-ससुर की नजरों से गिरकर अपने जीवन में भटक मत जाना, माँ का आशीर्वाद हमेशा तुम्हारे साथ रहेगा।

ञ्मअ कबनम केवल एकपक्षीय नहीं होता है, उसमें मकतअ (दामाद) के लिए भी गाया जाता है। माँ 'ञ्मअ कबनम' लोक-गीत के मध्याम से अपनी बेटी की अच्छाईयों-बुराइयों, उनके चरित्र में निहित कुशलता आदि स्पष्ट रूप से मकतअ (दामाद) को बताती है। मकतअ से बेटी की माँ कहती है कि 'दोञ्यी-पोलो' के आशीर्वाद से तुम दोनों की जोड़ी बनी है इसलिए मेरी बेटी में कुछ बुराइयों भी होगी तो तुम उसे तरासने का कार्य करना, वैवाहिक जीवन जीने के आरंभिक क्रम में उसे कुछ कठिनाइयों का सामना करना पड़े तो तुम सदा उसके साथ रहना आदि गीतों के माध्यम से माँ अपने जीवन अनुभव को आधार बनाकर बेटी और मकतअ को व्यावहारिक जीवन के संबंध में नैतिक बातें व्यक्त करती है।

विवाह समारोह के अलावा 'ञ्मअ कबनम' गीत शोक एवं स्वप्न के संबंध में भी सुनने को मिलता है। प्रकृति का नियम है जिसने जन्म लिया है, उसकी मृत्यु होना भी निश्चित है। तागी समाज के लोगों विशेषकर जब किसी प्रिय व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है तब महिला 'ञ्मअ कबनम' गीत को शोक गीत के रूप में गाती है और वह शोक गीत की शुरुआत होने पश्चात् तब तक गाती है जब तक उसका मन शांत नहीं होता है इसलिए इस गीत का कोई समापन अवधि तय नहीं होता है यथा:

"हाजी लो कई लो तङा मई लो तङा,
आयु लो तङा नुनू द तङा काजी लो तङा
अनअ ग गिदा लो अबू गे गिदा गीतअ लो
ङो आयु ननअ ग गिदा ङा दोगअ ला
अबू ग तरु हा दोगअ ला नो दरते ने दरू न
अबू न मियर कुमा ब ना।"

अर्थात मृतक के साथ भू-लोक में बिताई अपनी स्मृतियों को व्यक्त करने के पश्चात् कहता है कि तुम अब अपने पूर्वजों यानी माता-पिता, मामा-मामी आदि के लोक में चली गयी हो, इसलिए धरती लोक में बिताई स्मृतियों को भूलकर उई मियोक (स्वर्ग) में शांतिपूर्वक रहना यही 'आनअ दोञ्यी' से प्रार्थना है हमारी। गायिका ऐसा इसलिए कह रही है, क्योंकि मृतक की मृत्यु उम्र ढलने के कारण हुई होती है।

स्वप्न देखना एक आम बात है, सामान्यतः स्वप्न दो प्रकार के आते हैं- सकारात्मक एवं नकारात्मक। इसे लेकर भिन्न-भिन्न जनजातियों की अपनी-अपनी मान्यताएं एवं धारणाएं है। तागिन समाज में यह माना जाता है कि अगर निद्रा की अवस्था में एक ही प्रकार के स्वप्न को देखना किसी अभिशाप से कम नहीं माना जाता है, जिसे नकारात्मक स्वप्न कहा जाता है। जब किसी व्यक्ति को बार-बार स्वप्न में स्वर्गीय माता-पिता या दादा-दादी आदि को दिखने लगती हैं, तब गाँव के बुजुर्ग महिलाओं या पुरुष को यह अनुभव होने लगता है कि उनकी आत्मा अब देह त्यागने वाली है। ऐसे स्वप्न को बड़े बुजुर्ग या महिलाएँ किसी से साझा नहीं करती हैं, बल्कि प्रात:काल मुर्गों के बाग देने से पूर्व वह जागती है और अपने भावों को गाकर व्यक्त करती है, यथा:

"आनअ दोञ्यी नो ग सेङदुंग –सेङनअ ङ
लङदू ङा लङनअ ब दोकुम अ पनअ यु अ
सचीङ तोलो ञेदो सोबो ङा लिमरी बू अ
सतअ समीर, पकचीङ पकरो ङा रुचा मोजी ला अ
तुरीय पुकचीङ ङा पुकचा मुजी ला अ
सी- दोञ्यी नो दनअ पुनुङ क्यारु-रारु ङा तोरिया
रियारा तो अ
अबू ङो दअ सिपु ताओ, तारक ब लिमा दअ अ
अनअ ङो दअ दकोर गु मिम्कोर मा दकरप गु
मोमोर मा"

अर्थात् व्यक्ति अपने ईष्ट देव 'दोञ्यी-पोलो' से विनती करते हुए कह रहा है कि आपके द्वारा निर्मित धरती, आकाश, नदियां, पत्थर आदि युगों तक रहेगा और अपने जीवनकाल में मैंने कभी भी आपके बनाए शेर, हाथी, हिरण आदि को अकारण नुकसान नहीं पहुँचाया है, बल्कि मैंने तो आपके बनाए प्रकृति के सभी जीव और निर्जीव वस्तुओं के साथ प्रेमपूर्वक व्यवहार किया है। आपसे मेरी विनती है कि मेरी आत्मा को जहाँ मेरे पूर्वजों की आत्मा है, वहाँ न बुलाएं। दूसरी बात यह है कि व्यक्ति का धरती लोक में अपना कुछ उद्देश्य है, उसे पूरा होते देखना चाहता है ताकि जब उसकी आत्मा देह त्याग दे तब मन में कोई कलेश न हो।

तागिन समाज में 'मौखिक, लोक-गीतों की संख्या पर्याप्त मात्रा में आज भी मिलती है। तागिन समाज प्रकृति की उपासना करते हैं, इसलिए उनकी सभी पूजा-पद्धति प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग से संपन्न होती है, जिसमें अहम भूमिका पुरोहित की होती है। तागिन समाज की स्थानीय पूजा पद्धति आयोजन के दौरान पुरोहित के मुख से उच्चारित मंत्रों को पूर्ण 'लोक-गीत' की संज्ञा तो नहीं दे सकते फिर भी उसमें लयात्मकता एवं छंदबद्धता होती है, उदाहरण:

चेतु आनअ नो साकअ आनअ नो
हिली कम्पू, हिन्जू कम्पू अलअ दारचा जिला का
हिन्जू आई ग पुपुआ पुरचा जिला का, ञ्येदर जिला कुका
हिली-मोरी लो आई कुनअ ला,

बुम्पी-बुमरो ग हाबू लो आई कुनअ ला सु बतु लो तुलअ सी कुनअ ला,
दोगी-दोगबअ ग डगलअ हिकू नअला
हन्यी नो,तजर नो डुनअ ज्येदर जिला कुका
बोबी नो, जोर नो डुनअ ज्येदर जिला कुका

इस मंत्रोच्चारण में पुरोहित मृतक की आत्मा को कह रहा है कि तुम्हारी मृत्यु चेतु आने आबो-तानी को दिया हुआ श्राप के कारण हुई है, इसलिए तुम्हें आने-चेतु के दिखाए रास्ते से 'उयु-मियोक' चले जाना है। उयु-मियोक से तुम तानी-मोको (धरती लोक) में आत्मा के रूप में लौटकर मत आना क्योंकि अब हमारी और तुम्हारी दुनिया अलग हो चुकी है और तुम उई-मियोक से प्रार्थना करना कि धरती लोक में बसे तुम्हारे परिवार वालों के साथ फिर कभी अप्राकृतिक मृत्यु न हो तथा परिवार के लोगों की सुख-समृद्धि की कामना करना। हम भी 'चेतु-आनअ' से यही कामना करते हैं कि उयु-मियोक में तुम्हारे रहने के लिए अच्छी व्यवस्था करेंगे, इसी उम्मीद के साथ हम तुमसे विदा लेते हैं। लयात्मकता एवं छंदबद्धता के आधार पर कहा जा सकता है कि भारतीय काव्यशास्त्र में आचार्य दंडी, भामह आदि ने जो काव्य के लक्षण दिए हैं, वह सभी विशेषताएं तागिन पुरोहित द्वारा उच्चारित मंत्रों में देखने को मिलती है क्योंकि मंत्रोच्चारण की शैली लोक-गीत की शैलियों की तरह होता है। श्रोता मंत्रोच्चारण की धुन, लय और प्रवाह से वही भाव अनुभव करते हैं, जैसे सामान्य लोक-गीत को सुनकर होता है।

अतः तागिन समाज के 'ज्मअ कबनम' तथा पुरोहित के लयात्मक रूप से मंत्रोच्चारण में तागिन लोगों के जीवन के विविध प्रसंगों को व्यक्त करने का एक पारंपरिक तरीका देखा जा सकता है, जो सामान्य लोक-गीत नहीं है क्योंकि इन गीतों में उनके जीवन कल में आने वाले सुख-दुःख, संत्रास, संघर्ष, उत्साह, आकांक्षा, कल्पना, स्वप्न इत्यादि की जीवंत अभिव्यक्ति जुड़ी होती है।

सहायक ग्रंथ सूची-

तागिन लोक-साहित्य: लोक-विश्वास एवं मिथकों का विश्लेषणात्मक अध्ययन; एम.फिल, 2022, शोधार्थी: चाचू दाई, राजीव गाँधी विश्वविद्यालय, अरुणाचल प्रदेश.

तागिन लोक-साहित्य का विश्लेषणात्मक अध्ययन; पीएच. डी. 2018, शोधार्थी: तारो सिन्दिक, राजीव गाँधी विश्वविद्यालय, अरुणाचल प्रदेश.

*(**लेखकीय परिचय :** चाचू दाई वर्तमान में शासकीय महाविद्यालय, दापोरिजो, अरुणाचल प्रदेश के हिंदी विभाग में अतिथि सहायक प्रोफेसर हैं। मोबा: 6033869177, ई-मेल : daichachu@gmail.com)*

उन्यिङ-आरान : दक्षता एवं कौशल प्रदर्शन का आदी पर्व

नानू ताली

आदी जनजाति का सियांग से गहरा लगाव और जुड़ाव है। सियाङ नदी कई जिलों में फैली हुई है और इसमें शामिल सहोदर नदियों की अपनी अलग ही कहानी है जो सियांग में मिलती हैं और सियांग की ही हो जाती हैं। आदी जिलों में ईस्ट सियाङ, अपर सियाङ, सियाङ, लोवर दिबाङ वैली, सियोमी आदि जिले प्रमुख हैं। आदी समुदाय पारंपरिक जीवन जीते हुए अपने पुरखा साहित्य को आज भी जीवित रखे हुए हैं। इस जनजाति की असल खासियत इनकी सांस्कृतिक मान्यताएँ, रूढ़िगत परंपरा, लोक-विश्वास, पर्व-त्यौहार इत्यादि है। यह आदी जनजाति की पहचान का परिचायक हैं, जिसे आदी लोगों ने ज़मीनी तौर पर जीते हुए अपनी स्मृति में संजोए रखा है। यह सच है कि समय तेजी से करवट बदल चुका है। शिक्षा की पहुँच और उसके माध्यम से आए सोच और जीवन-स्तर में बदलाव के कारण सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों तरह की चीजें बेशुमार बढ़ चुकी हैं। आधुनिकीकरण ने बहुत कुछ सिखाया है तो बेशक कई अनपेक्षित चीजों को भी पैदा किया है, जिसके नुकसान दीर्घकालिक हैं। आज आदी जनजाति की किशोरवय पीढ़ी अपनी मूल संस्कृति से लगभग कट चुकी है, या उनमें अपनी मातृभाषा को लेकर लगाववृत्ति बेहद कम हो चली है। ऐसे में भाषा के संकटग्रस्त होने की चुनौती सामने है जिससे बच पाने का उपाय नहीं दिख रहा है। अरुणाचल प्रदेश में आदी जनजाति की संख्या यहाँ के अन्य जनजातियों की तुलना में कम नहीं है, लेकिन नई पीढ़ी की जीवन शैली में होता तीव्र बदलाव, रहवास के बदल रहे तौर-तरीके, अत्यधिक सुविधाओं से घिरा जीवन इत्यादि सांस्कृतिक पहचान के लिए खतरे पैदा करते जा रहे हैं। आधुनिक शिक्षा में मातृभाषा के लिए जगह लगातार कम हो रही है या कि उनका व्यावहारिक उपयोग इतना घट चुका है कि वे कुल सरकारी प्रोत्साहन के बाद भी अपनी भाषा से ठीक-ठीक नहीं जुड़ पा रहे हैं। अरुणाचल प्रदेश में आदी जनजाति की कुल 14 उप-जनजातियाँ हैं। कुछ तो तादाद में दो सौ या ढाई सौ के करीब ही बची हुई हैं। ऐसी स्थिति में आधुनिक बदलाव डराते अधिक हैं। इन बदलावों ने उन्हें ऐसे दोराहे पर ला खड़ा किया है, जिसमें एकदम से पीछे लौट सकना मुश्किल काम है। इस कठिन घड़ी में आदी जनजाति अपनी वाचिक भाषा और उसमें शामिल आख्यानों अथवा लोक साहित्य के विविध रूपों को बचाने में जुटी है।

आख्यान की परंपरा और उन्यिङ-आरान की आनुष्ठानिक विधि :

आख्यानात्मक शैली आदी जनजाति की ज्ञान-परंपरा का वाचिक कोठार है, जिसमें ज्ञान की उपस्थिति किताबी कम, अनुभवजन्य अधिक है। यह ज्ञान मौलिक चिंतन और लोकमान्य रूपों का अभिलेखागार है जो प्रमुखता से कही और सुनी जाती हैं। गौरतलब है कि अरुणाचल प्रदेश में सभी जनजातियों की अपनी लिपि नहीं होने के कारण बहुसंख्य जनजातियाँ लोकस्मृति में जीतीं हैं या फिर पुरखों के अनुदेशित आचरणों, मान्यताओं, विधि-विधानों, अनुष्ठानों आदि के अनुरूप सामाजिक व्यवहार करती हैं। समग्रता में देखें, तो भारतीय इतिहास में आख्यान की इतिवृत्तात्मकता को भाषा में विशिष्ट महत्त्व प्राप्त है। उन्यिङ-आरान में भी ये तत्त्व प्रमुखता से विद्यमान दिखाई देते हैं। इस त्यौहार के माध्यम से आदी जनजाति अपने आदिवासी और

प्रकृतिजीवी होने का प्रमाण देता है। आदी जनजाति इस ओर उम्मीद की आँख से देखती है और नई पीढ़ी को इन त्योहारों से जोड़ने में जुटी है।

'उन्यिङ-आरान' आदी जनजाति में मनाया जाने वाला वर्ष का शुरुआती त्यौहार है। आदी लोग यश और प्रतिष्ठा प्राप्त करने की लालसा में इसे मनाते हैं। साथ ही उन्यिङ-आरान को आदी लोग नव वर्ष के आगमन तथा ऋतुओं के स्वागत-अभिनंदन के लिहाज से भी मनाते हैं। उन्यिङ-आरान को प्रतिष्ठा का त्यौहार इसलिए भी कहा जाता है कि इन अवसरों पर गाँव में केवल वे लोग ही मिथुन त्यागते हैं जिनके पास गाँव वालों को खिलाने-पिलाने का सामर्थ्य होता है। त्यौहार के अवसर पर मिथुन त्यागने तथा प्रधान घर होने की पुष्टि अपने इच्छानुसार होता है। इसी दौरान त्यौहार की सभी प्रक्रियाओं को गाँव वाले मिलकर निभाते हैं। इस तरह व्यक्तिगत प्रतिष्ठा, सामर्थ्य तथा यश स्थापना वाला त्यौहार एक सार्वजनिक उत्सव में बदल जाता है। पारंपरिक महत्त्व की दृष्टि से देखें तो, उन्यिङ आरान त्यौहार आदी जनजाति के कला, स्थापत्य, साहित्य, शिल्प, कौशल, अनुभव, जानकारी, कल्पना, स्वप्न इत्यादि को प्रदर्शित करने का सुअवसर प्रदान करता है। वास्तव में आदी जनजाति के सभी त्यौहार इस जनजाति के सांस्कृतिक पहचान के स्तंभ हैं तथा इनकी आनुष्ठानिक विधि-विधान एवं गतिविधियाँ विशेष महत्त्व रखती हैं। आदी जनजाति वर्ष भर में कई त्यौहार मनाते हैं। इन छोटे-बड़े त्योहारों के लिए खास समय या ऋतु निर्धारित है। आदी जनजाति के त्यौहार कृषि प्रधान यानी कृषि आधारित अधिक हैं, जो मुख्यतः ऋतु-चक्र के हिसाब से मनाए जाते हैं। साल के शुरुआत में उन्यिङ-आरान का क्रम सबसे पहले आता है, फिर एतोर, सोलुङ, यागेङ,पिनेङ, दोरूङ आदि मनाए जाते हैं। यद्यपि, वर्तमान समय में सोलुङ सबसे बड़े त्यौहार के रूप में आदी जनजाति द्वारा मनाया जाता है, जिसे आदी जनजाति महोत्सव की तरह आयोजित करते हैं तथा अपने आप को इसमें स्वतः स्फूर्त सहभागी बनाते हैं। परंतु आदी-मिन्योङ द्वारा सबसे लोक मान्य त्यौहार उन्यिङ-आरान है।

उन्यिङ-आरान के आरंभ होने के दिनों में जंगलों से मिथुनों को ढूंढ़कर लाया जाता है, जिसमें लगभग 15-16 या फिर इससे ज्यादा दिन लग सकते हैं। मिथुनों को जंगल से लाकर 'होइत्त' पर बाँधा जाता है। मिथुनों को कर्मकाण्डी तौर से होटकाङ पर लटका कर बलि दिए जाने तक उनका विशेष खयाल रखा जाता है। 'होइःत्त/सोतिःत्त' गाँव वालों द्वारा बनाया गया एक प्रकार से पैरों का समूह है जिसे केवल मिथुनों को बांधने तथा 'एःतौर/लूतौर' गीःदीः यानी त्यौहार के दौरान इस पर क्रिया-अनुष्ठानों का पालन करने के लिए बनाया जाता है। इन मिथुनों को जंगल से प्राप्त करना आसान नहीं होता है। मिथुनों को जंगलो से एक ही 'कुमादङ' के लोग साथ मिलकर ढूँढ़कर लाते हैं। 'कुमादङ' उसे कहते हैं जिसमें एक तरह के उपनाम के लोग या एक ही जाति के लोग मिलकर रहते हैं। उन लोगों का मामला है कि वे एक ही खून से जन्में होते हैं। ये आपसी रिश्तों में भाई-बहन, चाचा-बुआ, तथा भांजा-भांजी होते हैं, जिनके बीच पीढ़ी दर पीढ़ी कभी भी शादी के बंधन नहीं होते। वे इस रिश्ते पर पूरी तरह विश्वास करते हैं। इसी तरह 'उन्यिङ'-आरान त्यौहार में अगर कोई 'सिराम' उपनाम या जाति के एक घर में मिथुन त्यागने लगे तो इस घर को 'जामोह गाओ' और सिराम' उपनाम के लोगों द्वारा ही सामूहिक ढंग से सहायता दी जाती है। मगर ये सहायता केवल शारीरिक रूप से होती है। इन सारी व्यवस्थाओं का प्रबंध 'आगाम' घर द्वारा ही किया जाता है। इसी तरह एक ही उपनाम के लोगों को 'कुमदाङ' भी कहते हैं। यद्यपि 'सोसायटी' अंग्रेजी शब्द है, लेकिन लोगों के बीच इसका प्रचलन देखने को मिलता है।

मिथुनों को जंगल से एकत्रित करने के बाद उन्यिङ-आरान के सर्वप्रथम महत्त्वपूर्ण शुरुआती पर्व उन्यि:ङ-आरान-गे:ता (community-hunting) का होता है, जो दो दिनों तक चलता है। इसी बीच यह भी तय होता है कि कुमदाङ के अन्य पुरुष सदस्यों द्वारा जंगलों से सुंदर और सुडौल लकड़ियों को होत्काङ के लिए एकत्रित किया जाए। उन्यि:ङ-आरान-गे:ता के आखिरी दो दिन की शाम सभी पुरूषों को दोगिन-युमा (eve of the night) तक गाँव लौटना होता है, जिसमें उन्हें अपने बच्चों के गले में अपने शिकार के दौरान मिली चीजों को माला बनाकर पहनाना होता है। सभी बच्चे उन मालाओं को अपने दोस्तों के साथ पहनकर बड़ा गर्वानुभव करते हैं। दोगिन-युमा की रात को दे:रै:-गेहाङ (community-feast at community hall) का सर्वप्रथम शुरुआती पर्व किया जाता है, जिसमें आगाम-ए:कुम द्वारा लोगों के लिए आमा-आपोङ (rice-wine) ले जाया जाता है। इस रात के अगले ही दिन मिथुन त्यागने के लिए कुमदाङ द्वारा होत्काङ बनाया जाता। है। इसी दिन ए-बोर-बोरने-युमा के लिए तैयारियाँ शुरू करना होता है। रात भर जागकर ए:बोर-आपोङ बनाने के बाद अगले ही दिन मिथुन त्यागने के प्रात:काल, आगाम-ए:कुम द्वारा गाँव के प्रत्येक घर पर जाकर माहेप: और आपोङ (rice-wine) लेने के लिए बुला लिया जाता है। इसी तरह उन्यि:ङ-आरान के मुख्य दिन का आरंभ मिल बांटकर खाने-पीने से होता है।

न्यिङ-आरान की लोक-प्रसिद्ध कथा

उन्यिङ-आरान 'कीनेः देने' यानी पाताल लोक की देवी द्वारा प्रदान किया गया त्यौहार है। 'पोदी बार्बी/पोदी पितओ' यानी उन्यिङ-आरान की देवी सर्वप्रथम इःयां-इःगाम लोक में रहने के लिए जाती हैं। वहाँ एक व्यक्ति जो तातू ताली नाम का था उन्होंने 'पोदी बार्बी' के खान-पान के लिए फलों की व्यवस्था की; क्योंकि वहाँ केवल फलों से ही उन्यिङ-आरान मनाया जाता था। वहां न धान थे, न ही मिथुन थे। इस कारण 'पोदी बार्बी' इःयी इःगाम लोक को छोड़ मानव-लोक लौट आती हैं। यहाँ वह 'पादाम' लोगों के यहाँ जाती हैं। वहाँ जाने के बाद उन्होंने देखा कि पादाम लोगों में एक ही उपनाम के लोगों के बीच शादियाँ होती हैं। यह 'पोदी बार्बी' के लिए स्वीकार्य नहीं था। इसी कारण वह वहाँ से भी निराश और खिन्न होकर चली गयीं। वह न्यीशी- तागिन क्षेत्र में चली जाती हैं। वहाँ जाने पर उन्हें शकरकंद खाने के लिए दिया जाता है। इस प्रस्ताव से भी 'पोदी बार्बी' को निराशा हुई और वह वहाँ से असंतुष्ट होकर 'गालो' लोगों के यहाँ चली गयीं। वहाँ उन्हें मिथुनों के स्थान पर गाय और बकरियाँ खाने में भेंट की गईं। आखिर वह यहाँ से भी क्षुब्ध होकर 'आदी-मिन्योङ' लोगों के यहाँ लौट आती हैं। यहाँ मिथुन और धान से उन्यि:ङ मनाया जाने लगा। यहाँ आकर 'पोदी बार्बी' को किसी भी प्रकार की कमी महसूस नहीं हुई। वे यहाँ सभी तरह से संतुष्ट होती हैं और वे यहीं पर हमेशा रहने का निर्णय ले लेती हैं। इस प्रकार वह हमेशा के लिए आदी-मिन्योङ भूमि पर बस गईं और बाद में आदी लोगों के लिए आराध्य हो गईं।

ए:बोर यानी बोरन

ए:बोर को सामान्य अर्थों में समझा जाए तो यह एक टोकरी जैसी आकार की सामग्री होती है, जो आकार में बहुत ही बड़ी होती है। इसे केवल बड़े-बड़े त्योहारों के अवसरों के लिए खासतौर पर बनाया जाता है। इसे पुरुषों द्वारा बांस से बनाया जाता है। आदी जनजाति में ए:बोर से छोटे आकार जिसमें आपोङ यानी स्थानीय शराब को ठोस पदार्थ से तरल पदार्थ में परिवर्तित किया जाता है, उसे 'ओलाक' कहते है। ये 'ए:बोर-

बोरनः' से छोटे आकार का होता है। यह भी बाँस से बना होता है। ओलाक से छोटे आकार को तोनसुक/तोनहुक कहा जाता है। यह भी बड़े किस्म के आकार वाले बाँस से बना होता है जिसे 'ए:पो' कहते हैं। इसका इस्तेमाल किसी भी समय आपोङ बनाने के लिए किया जाता है। उसी तरह उन्यिःङ-आरान की शुरुआती रात, जिसमें ये सब प्रक्रियाएँ होती हैं, उसे 'ए:बोर' तथा 'बोरनेः युमा' कहा जाता है। इससे बने आपोङ यानी स्थानीय वाइन को 'ए:बोर आपोङ' या 'बोरनेः आपोङ' कहा जाता है। इसे बनाने की रात तथा अवसर पर औरतें समूहों में रहकर बनाती हैं। इसको बनाने में लगभग 11-12 घंटे का समय लग जाता है। पुरूष लोग केवल रात को माहौल बनाने के लिए आते हैं। औरतें सबसे पहले ए:बोर में आपोङ यानी ठोस आपोङ को डालकर भर देती हैं, जिसके चारो ओर एक्काम पत्ता ढका होता है। उसके बाद पानी को उबाल कर ए:बोर के ऊपरी हिस्से से उबले पानी को बड़ी सावधानी के साथ संभाल कर डाला जाता है।

यह जानना रोचक होगा कि जिस प्रकार एक गर्भवती स्त्री का शिशु जन्म के समय विशेष ख़याल रखा जाता है, उसी प्रकार ए:बोर बनाते समय भी ए:बोर का विशेष ध्यान रखना होता है। यह माना जाता है कि ए:बोर बनने के अवसर पर सभी उन्यिःङ-आरान के देवी-देवतागण मौजूद रहते हैं। वे सभी ए:बोर आपोङ के बनने की प्रतीक्षा कर रहे होते हैं।

यह भी माना जाता है कि उन्यिःङ-आराङ की सफलता 'एबोर रात' के सुखद होने पर अधिक निर्भर करती है। इसीलिए ए:बोर बनने के बाद इसे लोकल तरापोलिन से चारो ओर से लपेट कर ढक दिया जाता है। इस स्थान पर घर के किसी एक सदस्य को ही अंदर जाने या इसके आस-पास रहने की इजाजत होती है। कोई पुरूष वहां अगर जाए तो भी उसे चूहा या गिलहरी लेकर जाना होता है। इसी तरह ए:बोर आपोङ के मान-सम्मान का पूरा ख्याल रखा जाता है। लोगों का कहना है कि ढँके हुए ए:बोर को अगले पाँच दिन बाद जब खोलने जाया जाता है, तब ए:बोर के ऊपरी भाग में सामूहिक शिकार के दौरान मारे जाने वाले जानवरों के पैरों के निशान आ गए होते हैं। पैरों के निशान यह संकेत करते हैं कि कौन से जानवर किन-किन शिकारी द्वारा मारे जाने वाले हैं। ए:बोर के पाँच दिन बाद जब गाँव के पुरूष शिकार के लिए जा रहे होते हैं, तब ए:बोर में बंधे गिलहरियों को आगाम ए:कुम यानी आगाम अमुक के पिता द्वारा शिकारी साथियों को खिलाने के लिए साथ ले लिया जाता है। इस सामुहिक शिकार की शैली को 'कीरूक' कहा जाता है। इस तरह ए:बोर-बोरनेः केवल ऊन्यिङ-आरान त्यौहार में ही नहीं बल्कि आदी जनजाति के प्रत्येक पर्व-त्योहारों में या बड़े-बड़े अवसरों, सामूहिक प्रयोजनों, घर बनाने के मौकों आदि पर विशेष रूप से मनाया जाता है। मान्य है कि बुमहोङ-पेत्त:उम पर्व की तैयारी खास तौर पर आने वाले ए:तौर/लूतौर गी:दी: (Etor festival) को ध्यान में रखकर की जाती है। इसी तरह उन्यि:ङ-आरान त्यौहार केवल एक-दो दिन में मनाए जाने वाला त्यौहार नहीं, बल्कि इसे मनाने के लिए दो महीने से अधिक समय लगते हैं। यह एक ऐसा त्यौहार है, जिसे संपूर्ण और सफल बनाने के लिए कई सारे महत्त्वपूर्ण चरणों में पूर्ण कर सभी गाँव वालों को पूरा करना होता है।

निष्कर्षतः 'उन्यिःङ आरान' को आदी इलाके में हर साल बड़े धूमधाम से मनाया जाता है। हालाँकि आदी के अन्य क्षेत्रों में भी उन्यिःङ आरान को मनाते हैं मगर वहां इस तरह से सार्वजनिक आयोजन या व्यवस्थाएँ देखने को नहीं मिलती हैं। आदी, पादाम तथा पासीघाट वाले क्षेत्रों में 'उन्यिङ-आरान' के अवसरों पर केवल शिकार किया जाता है और प्रत्येक घरों में जाकर 'याकजोङ सोदुङ' यानी 'याकजोङ पोनुङ' का नृत्य स्थानीय

युवक-युवतियों के समूह द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। फिर भी इस त्यौहार को मनाने का उद्देश्य एवं विश्वास प्रत्येक क्षेत्रों में एक-सा होता है। इस त्यौहार के दौरान ढेर सारी वस्तुओं का प्रयोग दस्तकारी और हस्तशिल्प के रूप में किया जाता है, जो पारंपरिक जीवन शैली और सांस्कृतिक मूल्य का दर्पण और पुरखाई प्रतीक भी मालूम होता है। 'उन्यिङ-आरान' को आदी जनसमाज जिस विधि-विधान और पारंपरिक अनुष्ठान द्वारा मानते हैं, वह असल में एक लंबी अवधि की गहन अनुभूति और पावन उद्गार से जुड़ी सांस्कृतिक प्रक्रिया है, जिसमें हम जितना गहरा उतरेंगे, उतनी ही नई-नई मान्यताओं और लोक-विश्वासों से दो-चार होंगे।

*(**लेखकीय परिचय :** नानू ताली राजीव गाँधी विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग से परास्नातक पाठ्यक्रम पूरी कर चुकी हैं।*
मोबा: 8413997673, ई-मेल : talinanu921@gmail.com)

तवांग: मनोरमता और लोकजीविता की पावन भूमि

लाम छोटन

अरुणाचल प्रदेश में कुल 26 जनजातियाँ एवं सौ से भी अधिक उप जनजातियाँ निवास करती हैं। इन्हीं जनजातियों में से एक है 'मोनपा जनजाति'। मोनपा जनजाति के लोग अरुणाचल प्रदेश के सबसे पश्चिमी इलाके में स्थित तवांग जिले के मूल निवासी हैं। 'तवांग' जिला अपनी खूबसूरती के लिए जाना जाता है। ऐसा माना जाता है कि 'तवांग' शब्द का निर्माण तवांग 'टाउन' में स्थित प्रसिद्ध 'तवांग मठ' के आधार पर हुआ है। 'ता' का अर्थ होता है 'घोड़ा' और 'वांग' का अर्थ होता है- 'आशीर्वाद या चुना हुआ'। तवांग और पश्चिम कामेंग जिले के मोनपा और शेरदुक्पेन महायान बौद्ध मत के लामा परंपराओं का अनुसरण करते हैं। मेम्बा और खाम्बा जनजाति भी सांस्कृतिक रूप से इनके समान होती हैं, जो उत्तरी सीमा के साथ ऊंचे पहाड़ों में रहते हैं। राज्य के पूर्वी भाग में निवास करने वाले खाम्प्ती और सिंग्फो हीनयान बौद्ध मत/संप्रदाय के अनुयायी हैं। अन्य जनजातियों की ही तरह बौद्ध जनजातियों की भी अपनी बोली, संस्कृति, पहचान, वेश-भूषा, जीवन-दर्शन, विश्वास एवं मान्यताएं आदि हैं। तवांग एक महत्त्वपूर्ण केंद्र है, जिनसे मोनपा जनजाति की पहचान जुड़ी हुई है। मोनपा जनजाति के लोग महायान बौद्ध मत के लामा परंपराओं का अनुसरण करते हैं। मोनपा समाज के बारे में जानने के लिए इनके लोक-साहित्य, लोक-गीतों, लोक-संस्कृति आदि का ज्ञान होना आवश्यक है। मोनपा जनजाति का इतिहास एवं परंपरा इनके लोक-साहित्य में मौजूद है। विशेषकर लोक-गीतों, लोक-संस्कृति आदि में इसकी जीवंत उपस्थिति लिखित एवं वाचिक परंपरा के रूप में देखी जा सकती है। मोनपा जनजाति की परंपराओं को संरक्षित रखने में भोटी लिपि का बहुत योगदान है, लेकिन केवल लामा (भिक्षु) और कुछ चुने हुए लोग ही भोटी लिपि को पढ़ पाते हैं इसलिए इसे मौखिक रूप से भी लोगों तक पहुंचा रहे हैं जबकि यह लिखित रूप में भी संरक्षित हैं।

तवांग: एक रहस्यमय भूमि

लोक कथाओं और बुजुर्गों के अनुसार इस स्थान का चुनाव 'मेरा लामा लोड्रे ग्यात्सों', जो कि एक बौद्ध भिक्षु थे, के घोड़े द्वारा हुआ। किस्सा कुछ यूँ है कि, 'मेरा लामा लोड्रे ग्यात्सों' मठ बनाने के लिए एक उपयुक्त जगह की तलाश कर रहे थे। जगह-जगह घूमने के बावजूद उन्हें ऐसी कोई उपयुक्त जगह नहीं मिली जहाँ वह मठ बना सके। तब उन्होंने मार्गदर्शन प्राप्त करने के लिए प्रार्थना/तपस्या करने का निर्णय लिया। वह अपनी आँखें बंद कर तपस्या करने लगे और जब उन्होंने तपस्या समाप्त कर अपनी आँखें खोली तो उन्होंने देखा कि उनका घोड़ा वहाँ पर नहीं है। वह काफी परेशान होकर घोड़े को ढूँढ़ने लगे। कुछ देर बाद उन्हें अपना घोड़ा एक पहाड़ की चोटी पर मिला। तब वह समझ गए कि उन्हें अपने घोड़े के रूप में मार्गदर्शक मिल गया है। अतः उसी चोटी पर उन्होंने मठ का निर्माण किया और नाम रखा 'गांदेन नामग्यल ल्हात्से' जिसे ज्यादातर लोग 'तवांग' मठ के नाम से जानते हैं। इसी मठ के नाम से इस जिले का नाम भी 'तवांग' पड़ा। प्राकृतिक सुंदरता के मामले में तवांग बेहद समृद्ध और प्राकृतिक रूप से अनुपम है। इसकी खूबसूरती किसी को भी मंत्रमुग्ध कर देती है। यहाँ सूरज की पहली किरण सबसे पहले बर्फ से ढकी चोटियों पर पड़ती है और यह नज़ारा देखने लायक होता है।

वहीं सूरज की आखिरी किरण जब यहाँ से गुजरती है तो पूरा आसमान अनगिनत तारों से भर जाता है। यह नज़ारा देखकर मन करता है कि सारी रात इन्हीं तारों को देखकर गुजारें।

तवांग एक रहस्मय भूमि है। यहाँ पर देखने या घूमने के लिए कई सारे मठ, बर्फ से ढँकी सुनहरी पहाड़ों की चोटी एवं अनगिनत झरने जैसी कई चीजें हैं, जहाँ बड़ी संख्या में पर्यटक आते हैं। तवांग के प्रमुख आकर्षण में तवांग मठ, सेला पास, बांगाजांग तीर्थस्थल, सांगेत्सर झील, बुमला पास आदि आते हैं। इस सान्गेत्सर झील को लोग आज 'माधुरी झील' के नाम से अधिक जानते हैं, इसका कारण यह है कि कई सालों पहले बॉलीवुड के जाने-माने अभिनेता शाहरूख खान और अभिनेत्री माधुरी दीक्षित ने अपनी 'कोयला' नामक फिल्म की शूटिंग इस झील के सामने की थी, जिससे इस झील का नाम 'माधुरी झील' पड़ा। यहाँ कई सारे अन्य झरने भी हैं। ऐसा ही एक प्रसिद्ध झरना है 'जांग झरना' जिसका पानी तिब्बत से निकलकर आई हुई सान्पो नदी में जाकर मिल जाता है। इस झरने की सुंदरता अविश्वसनीय है। दूरदराज एवं दूर देश के अनेकानेक शहरों से पर्यटक इस सुंदरता का आनंद लेने के लिए आते हैं। पर्यटक इस खूबसूरती को अपने कैमरे में कैद करने के लिए मजबूर हो जाते हैं। तवांग जिले के बारे में बात करते हुए, इस जगह का ज़िक्र किए बिना तवांग अधूरा है और यह जगह है 'चाग़्ज़म' पुल। 'चाग़्ज़म' का अर्थ है- 'लोहे का पुल'। प्रथम दलाई लामा के शिष्य 'थान्तोंग ग्यालपो', जिन्हें लामा 'चग-ज़म वांगपो' के नाम से जाना जाता है, एक वास्तुकार, दार्शनिक और लौह श्रृंखला पुल निर्माता थे। उन्हें पूरे हिमालय क्षेत्र में 100 से अधिक लोहे के पुल बनाने का श्रेय दिया जाता है। 1420-1430 के दौरान उन्होंने 'कित्पी' और 'मुक्तो' (तवांग में स्थित गाँव) से होकर गुजरने के लिए तवांग-छू नदी पर पुल बनवाया। बेहतरीन धातु विज्ञान का नमूना पेश करने वाला यह पुल शहर से लगभग 25 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। तवांग में आज मोनपाओं के 20,000 से भी अधिक घर हैं। इस आबादी के सभी लोग महायान बौद्ध मत के अनुयायी हैं। प्रत्येक घर में पूजा-पाठ के लिए एक अलग कमरा होता है जिसे 'छोइषम/छोस्षम' कहा जाता है। अगर आप इनके घरों में जाएँगे तो इस कमरे में आपको गौतम बुद्ध, गुरु पद्मसंभव जैसे आदि देवताओं की मूर्तियाँ एवं तस्वीरें देखने को मिलेंगी। इस पवित्र कमरे में रोज़ सुबह भगवान को पानी चढ़ाकर, अगरबत्ती जलाकर और भगवान से प्रार्थना कर मोनपा लोगों की दिन की शुरुआत होती है। वे बौद्ध-धर्म पर विश्वास तो करते ही हैं, लेकिन इसके विपरीत पशु बलि का भी पालन करते हैं।

तवांग : लोक जीवन

अरुणाचल प्रदेश के अन्य जनजातियों की ही तरह मोनपा जनजाति के लोग भी अपना पोशाक स्वयं बनाते हैं। उनका पोशाक अधिकतम लाल, काले और सफ़ेद रंग के मिश्रित होते हैं। पुरुषों द्वारा पहने जाने वाले पोशाक को 'अलिफुदुंग' या 'खंजर' कहा जाता है जो कि भेड़ के ऊन से तैयार किया जाता है। पुरुषों के लिए एक दूसरा पोशाक भी हैं, जिसे जानवर के चमड़े से बनाते हैं, उसे 'पक्चा' कहा जाता है। पतलून वह अपनी मर्ज़ी के पहन सकते हैं। महिलाओं के पोशाक कई हिस्सों में बंटे हुए होते हैं- एक लंबा गाउन जिसे 'शिन्का' कहते हैं। इसे असम के एंडी सिल्क (रेशम) से बनाते हैं। यह पोशाक कंधों से घुटने तक ढंका हुआ होता है। इसे कमर पर 'खेचिन' नामक लाल रंग की पट्टी से बाँधा जाता है। कमर के पिछले भाग पर लाल या काले रंग का चौकोर ऊनी कपड़ा बाँधा जाता है जिसे 'तेंकिमा'/'तेंगाकिमा' कहा जाता है। शिन्क्गा के ऊपर एक एंडी सिल्क शर्ट पहनी जाती है, जिसे 'एलेन तोदुंग' के नाम से जाना जाता है। एलेन तोदुंग के ऊपर और एक शर्ट पहनते हैं,

जिसे 'क्यंचन' कहा जाता है। महिलाएँ ठण्ड के समय एक अलग कोट भी पहनती हैं जिसे 'बई तोदुंग' कहते हैं यानी ऊन से बना हुआ कोट। मोनपा पारंपरिक जूतों को 'मोन ल्हम' के नाम से जाना जाता है जो जानवरों के चमड़े से बने हुए होते हैं। यह महिला और पुरुष दोनों के लिए समान होता है।

आभूषण में महिलाओं के लिए कान के छल्ले, हार और चूड़ियाँ होती हैं। अँगुलियों के छल्ले आमतौर पर चांदी और तांबे के बने होते हैं जो कीमती पत्थरों से सजी होती हैं। महिलाओं द्वारा ग्रहण की जाने वाली चूड़ियों को 'न्यन-दुप' कहते हैं, कान की बाली को 'आलोंग' जो सोने और चांदी की बनी हुई होती है, बालों को सजाने के लिए रंगीन धागों का इस्तेमाल करते हैं जिसे 'ख़्रसींग' कहते हैं। उनके द्वारा पहने जाने वाले हार को 'कायकोर' कहते हैं, साथ ही एम्बर मोतियों के माला भी पहनते हैं जिसे 'पॉश फ्रेंगा' कहा जाता है। मोनपा लोग कलाकार और हुनरमंद होते हैं। कई जगह ऐसे हैं जिन्हें कलात्मक कृतियों के लिए जाना जाता है, जिसमें गाँव के पुरुष द्वारा सुंदर थांगका पेंटिंग बनाना, बुनाई करना एवं लकड़ी की नक्काशी करना शामिल है। गाँव की महिलाएँ भी कलाबाजी में कम नहीं हैं। पारंपरिक पोशाक बनाना, पारंपरिक बैग बनाना, गाले बनाना, स्वेटर बुनना आदि चीज़ें महिलाओं द्वारा की जाती हैं। इन सबके अलावा इस गाँव के लोग झूम खेती भी करते हैं। उनकी प्रमुख फसलों में मड़ुवा (रागी), धान, जौ, चावल, मक्का, गेहूं, बाजरा जैसी नकदी फसलों का नाम लिया जा सकता है। इनके अलावा मिर्च, कद्दू, टमाटर, मूली, आलू, अदरक, लहसुन, हल्दी, प्याज़, पत्ता गोभी, करेला, सोयाबीन, सेब, कीवी, अखरोट, संतरे, प्लम इत्यादि भी उपजाते हैं जिन्हें बेचकर वे अपना घर-परिवार चलाते हैं। याक, गाय, सूअर, भेड़ एवं मुर्गी जैसे पशुओं को घरेलू पशुओं के रूप में रखा जाता है। यहाँ के लोगों के घर सामान्य रूप से पत्थर के बने हुए होते हैं। घरों की छतें और फर्श लकड़ी के तख्तों से बने होते हैं। मोनपा समुदाय में यह रिवाज है कि किसी भी नए काम को आरंभ करने से पहले लामाओं (भिक्षु) से परामर्श करना होता है। उनके द्वारा दी गई शुभ तिथि में ही कार्य आरंभ करते हैं। जैसे- घर बनाना, एक शहर से दूसरे शहर स्थानांतरण होना, नया व्यापार शुरू करना इत्यादि। मोनपा बस्तियों में यह सामान्य रिवाज है। यहाँ घर की नीव भी लामाओं द्वारा दी गई शुभ तिथि में ही रखी जाती है।

मोनपा लोगों की जीवन शैली बहुत ही सरल एवं सहज है। वे सादा जीवन, उच्च विचार (Simple Living, High Thinking) में विश्वास रखते हैं अर्थात आज के आधुनिक युग में लोगों की ज़रूरतें एवं इच्छाएँ हद से ज्यादा बढ़ गई हैं मगर आज भी बस्ती के लोग काफी हद तक अतीत के जीवन का पालन करने की कोशिश करते हैं। उनका मानना है कि, अपनी ज़रूरतों और इच्छाओं को सीमित रखना चाहिए क्योंकि इनका कोई अंत नहीं है। यदि वह अपनी हर इच्छा को पूरा करते जाएँगे तो वे कभी भी संतुष्ट नहीं होंगे क्योंकि इनका कोई अंत नहीं है इसलिए वे अपने बच्चों को भी बचपन से यही सीख देते आ रहे हैं। मगर इच्छाओं की तरह उनकी सोच या दृष्टि सीमित नहीं है। वे केवल अपने रोजाना के कामों तक ही नहीं सोचते हैं, बल्कि उनके आस-पास के सकारात्मक बदलावों के बारे में भी सोचते हैं। वे केवल अपने और अपने परिवार के विकास के बारे में नहीं बल्कि एक-दूसरे का सहारा बन अपने आस-पास के लोगों का विकास, अपनी बस्ती के विकास के बारे में भी सोचते हैं।

तवांग: कृषि व्यवस्था

मैं 'बघर' बस्ती में पैदा हुई हूँ। यहाँ के लोग पानी खेती और झूम खेती दोनों करते हैं मगर झूम खेती अधिक मात्रा में करते हैं। झूम खेती में ज़्यादातर रागी/मड़ुवा तथा धान लगाते हैं। 'लोसर' उत्सव के ख़त्म होते ही, यानी कि मार्च महीने के अंत में खेती-बारी शुरू हो जाती है। सबसे पहले पिछले वर्ष के फसलों को काटने

के बाद खेतों में जो अनावश्यक चीज़ें बच गई होती हैं उन्हें साफ़ किया जाता है। उन सारी अनावश्यक चीज़ों को एक जगह इकट्ठा कर, जंगल से सूखे पत्ते लाकर उस पर डालते हैं और जलाते हैं। लोगों का मानना है कि वह जले हुए पत्तों के राख खेतों में खाद (Fertilizer) का काम करती है और साथ ही खेतों की साफ़-सफाई में लोगों का काम आसान भी कर देती है। खेतों की साफ़-सफाई हो जाने के बाद, बीज बोने के लिए लोग जंगल में एक ऐसी जगह का चुनाव करते हैं जहाँ पहले किसी ने खेती नहीं की हों क्योंकि ऐसी जगहों पर मिट्टी की उर्वरता अधिक होती है। उपयुक्त जगह का चुनाव करने के बाद उस जगह की साफ़-सफाई करते हैं और 2-3 बार उसकी खुदाई कर उसे बीज बोने लायक बनाकर बीज बो देते हैं।

पुराने समय में खेतों को जोतने के लिए हल और बैलों का इस्तेमाल किया करते थे, लेकिन आज के दिनों में सारे लोगों ने ट्रैक्टर वगैरह इस्तेमाल करना शुरू कर दिया है। ट्रैक्टर का उपयोग करने की एक अच्छी बात यह है कि वह बैलों की तुलना में कम समय में अधिक कार्य करेगा, लेकिन इसकी एक बुरी बात यह है कि वह मिट्टी को सख्त बनाता है जिससे मिट्टी की उर्वरता कम हो जाती है। खेतों की जुताई करके, उसे फसल उपजाने लायक बनाने के बाद, अस्थायी रूप से बनाए गए खेतों से अनाज के पौधों को लाया जाता है और उसे अपने खेत में लगाते हैं। लगाने के 3-4 दिन के पश्चात पौधों को अनेक प्रकार के कीड़ों-मकोड़ों से सुरक्षित रखने के लिए उसमें यूरिया जैसे रासायनिक तत्त्व डाले जाते हैं। फिर पंद्रह-से-बीस दिनों के बाद फसलों के बीच जो अनावश्यक पौधे निकल आते हैं, उसे साफ़ किया जाता है।

देखते-ही-देखते यह छोटे-छोटे पौधे लहलहाते हुए खेतों में बदल जाते हैं। फसल (रागी) के पकने से पहले की अवस्था (stage) में जब रागी अधपका होता है तो लोग उसे पकाकर 'आरा' (रागी से बनने वाला पारंपरिक पेय पदार्थ) के साथ या चटनी के साथ खाते हैं, जिसे 'कोंप न्गोछा' कहते हैं। धीरे-धीरे अनाज पकने लगता है। फसल के पकने के साथ ही लोगों की चिंताएं समाप्त नहीं होती बल्कि और भी बढ़ जाती है क्योंकि कटाई के समय फसल झरने, पक्षियों द्वारा नुकसान पहुँचाने तथा काटने के बाद फसल में नमी होने के कारण घरों में रखने के बाद उसमें फूफूंद लगने की समस्या रहती है इसलिए कटाई के बाद उसे 5 से 6 दिन तक सुखाया जाता है। सूखने के बाद अनाज के खाद्य भाग को भूसी और पुआल से अलग किया जाता है और फिर अच्छे से साफ़-सफाई हो जाने के बाद उसे भंडारण में रख देते हैं। फिर नए अनाज का स्वाद चखने के लिए लोग मड़ुवा/रागी को पीसकर आटा बनाते हैं और इसी आटे से मोनपा लोगों का एक पारंपरिक खाद्य पदार्थ होता है जिसे 'ज़न' कहा जाता है, को बनाकर खाते हैं और साथ में मड़ुवा से बने पेय पदार्थ 'आरा' को पीते हैं। खेतों का काम समाप्त होने के बाद भी गाँव के लोग आराम नहीं करते हैं। चूंकि खेतों का काम समाप्त होते-होते सर्दियाँ आ जाती हैं, इसलिए गाँव वाले झुंड बनाकर सर्दियों में जलाने के लिए लकड़ी इकट्ठा करने जाते हैं। उनके जीवन में इतनी व्यस्तता के कारण ही वे खुशहाल भरी जिंदगी व्यतीत करते हैं।

तवांग: लोक समुदाय

मोनपा जनजाति में गाँव के मुखियाँ को 'चोर्गन' कहते हैं, जिसका दायित्व गाँव के प्रशासनिक व्यवस्था बनाए रखना है। मेरे गाँव 'बघर' में भी यही परंपरा प्रचलित है। व्यक्ति से संबंधित कोई भी निर्णय गाँव के भीतर विवाद और सभी प्रकार के विवाद जैसे-चोरी, झगड़े, तलाक, आपराधिक और छोटे-मोटे मामले ग्राम परिषद द्वारा सदस्यों की सहमति से निपटाए जाते हैं। ग्राम परिषद द्वारा जो भी निर्णय दिया जाता है, वह अंतिम और

बाध्यकारी होता है लेकिन दूसरी ओर यदि पक्ष ग्राम परिषद के फैसले से सहमत नहीं है तो वे न्यायिक अदालत में अपील कर सकता है। दो गाँवों के बीच कोई बड़ा मुद्दा हो जाए तो 'मंगमा'(ग्राम समुदाय) शामिल हो सकता है। 'मंगमा' संयुक्त रूप से प्रतिनिधित्व करता है आम संपत्ति जैसे, जमीन की सीमा विवाद आदि मामलों का सामना करने के लिए नकद या वस्तु के रूप में समान रूप से योगदान देता है। स्थानीय स्वशासन में गाँव के चोर्गन को गाँव का सबसे ऊँचा और शक्तिशाली माना जाता है। गाँव के सभी प्रमुख मुद्दों को चोर्गन के सामने लाया जाता है और वह आगे की कार्रवाई के लिए ग्राम समुदाय का राय लेता है। अंततः 'मंगमा' (ग्राम समुदाय) सर्वोच्च निकाय है जो सभी मामलों को सर्वसम्मति से तय करता है और इस तरह की स्थिति से उबरने के लिए उचित निर्णय लेता है। इसके अलावा यदि कोई गाँव के नियमों और विनियमों (Rules and Regulations) का उल्लंघन करता है तो उस पर जुर्माना लगाया जाता है और ग्राम कानून के तहत दंडित किया जाता है, जो लिखित दस्तावेजों में नहीं है। ग्राम प्रशासन चलाने के अलावा चोर्गन विभिन्न बौद्ध मंदिरों के रखरखाव तथा गोंपाओं की मरम्मत करने और साल में होने वाले बौद्ध समारोहों के उचित प्रदर्शन को सुनिश्चित करने के लिए भी ज़िम्मेदार है।

अरुणाचल प्रदेश में मोनपा जनजाति बहुसंख्यक जनजातियों में से एक है। अतएव, बदलते समय और युग में आधुनिकता का प्रभाव इनके ऊपर पड़ना स्वाभाविक है। आज जनजातीय समाज में पहले से कई गुना अधिक बदलाव देखे जा सकते हैं। स्वतंत्र रूप से भाषा और बोली का साहित्यिक स्वरूप आज भी लिखित न होकर वाचिक- मौखिक मात्रा में प्रचलन में है। मोनपा जनजाति के जो भी थोड़े-बहुत दस्तावेज या साहित्य मिलते हैं, तो वे अंग्रेजी, हिंदी, भोटी आदि में है। मोनपा जनजाति अरुणाचल की मुख्य जनजातियों में से एक है और इसकी सामाजिक-सांस्कृतिक भूमिका इतिहास-बोध एवं वाचिक स्मृतियों से गहरे रूप में जुड़ी हुई हैं। मोनपा जनजाति की सामाजिक-सांस्कृतिक मान्यताओं, मिथकों, रीति-रिवाजों, त्योहार, लोक-साहित्य आदि के गहन छानबीन और अध्ययन-विश्लेषण द्वारा आधुनिकता को नए रूपों में चिन्हित तथा परिभाषित करना महज बौद्धिक कवायद नहीं कहा जा सकता है। यह मोनपा लोक-साहित्य की ज्ञान-परंपरा को 'री-लोकेट' और 'री-जेनरेट' करने का प्रयास है। यह सच है कि लोक-साहित्य मुख्यतः परंपरागत मान्यताओं एवं मिथक आधारित सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्य-दर्शन पर टिके होते हैं। आधुनिक शिक्षा, लोक-साहित्य को महत्त्व दे रही है, क्योंकि जन आस्था, लोक विश्वास, सामूहिक उल्लास, आकांक्षा, गर्व, गौरव-बोध आदि जगाने में इनकी भूमिका अन्यतम है। यह जानना दिलचस्प होगा कि मोनपा जनजाति के लोग अपनी लोक-आस्था को किस तरह संजोते तथा परंपरा व मिथक आदि को किस प्रकार महत्त्व देते थे। आज के आधुनिक समय में इस संदर्भ व परिप्रेक्ष्य में क्या कुछ वांछित-अवांछित, ज़रूरी-गैर-ज़रूरी, वास्तविक-अवास्तविक बदलाव आदि हुए हैं या कि आधुनिकता ने मोनपा जनसमाज को किस हद तक प्रभावित करते हुए कितना बदल दिया है, इन तमाम बिंदुओं को जानना भी जरूरी है। मोनपा जनजाति पर आधुनिकता के पड़ रहे प्रभाव और आधुनिकीकरण की प्रक्रिया ने तवांग की भू-स्थितिकी और लोक-बसाव पर गहरा असर छोड़ा है जिस ओर विवेकी ढंग से सोचे जाने की जरूरत है।

*(**लेखकीय परिचय :** लाम छोटन राजीव गाँधी विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के पीजीडीएफएच पाठ्यक्रम की विद्यार्थी रह चुकी हैं। मोबा: 8798866512, ई-मेल : lamchotton143@gmail.com)*

(पहाड़ी कोठार से)

आबोतानी, मअजी यापम और किसिङ तामिङ की कहानी

(तागिन लोक-कथाएँ)

तारो सिन्दिक

(चयन- यापी बायोर)

आबोतानी और मअजी यापम की कहानी

ऐसा माना जाता है कि आबोतानी ने सृष्टि के सभी जीव-जंतुओं, कीड़े-मकोड़ों, पेड़-पौधों और देवी-देवताओं की प्रजातियों से वैवाहिक संबंध बनाया। उनकी कई पत्नियों में से एक का नाम था- मअजी यापम। मअजी यापम जंगलों की देवी थीं। जंगलों की सभी संपत्तियों पर उनका अधिकार था। इसलिए जब कभी आबोतानी जंगली पशुओं का शिकार करके घर लाते तो मअजी यापम को बहुत आघात पहुँचता और वे छुप-छुपकर रोया करती थीं। जंगली पशुओं के साथ उनका संबंध खून का था। इसलिए जब कभी जंगली पशुओं को आबोतानी मारते तो उन्हें भी बराबर दर्द होता था। उनकी इस स्थिति से अनजान आबोतानी ने कभी शिकार करना नहीं छोड़ा। उनको लगता था कि उनके इस शिकार-कौशल को देखकर मअजी यापम खुश होती होंगी, परंतु वस्तुस्थिति कुछ और ही थी। इसके अतिरिक्त एक और सच्चाई थी, जिससे आबोतानी अनजान थे। वह यह कि कभी-कभी जंगली पशु भी आबोतानी के घर आकर उनके पालतू पशुओं को खा जाता था। ऐसे में मअजी यापम बहुत खुश होती थीं, क्योंकि तब उनका भी पेट भरता था। लेकिन आबोतानी को पता चलता कि उनके पालतू पशुओं को जंगली पशु खा गया है, तो वह बहुत रोते थे। इस प्रकार दोनों के बीच यह आँख-मिचौली का खेल जारी था। हालाँकि आबोतानी अब भी सच्चाई से दूर थे।

बात इतने में समाप्त नहीं हुई थी। आबोतानी के इंसानी कृत्यों पर मअजी यापम का हस्तक्षेप जारी रहा। हुआ यों कि आबोतानी ने खेतों में काम करना आरंभ किया। वे खेतों में फसल उगाने के लिए अनावश्यक पौधों और पेड़ों को साफ करके जाते। अगली सुबह जब देखते तो उस जगह फिर से वही पौधा और पेड़ उग आता। वे फिर साफ करके जाते; अगली सुबह उन पेड़-पौधों को फिर वहीं पर यथावत पाते। आबोतानी को समझ में नहीं आया कि आखिर ऐसा हो क्यों रहा है। उन्होंने निश्चय किया कि वे इसका पता लगाकर ही रहेंगे। उस शाम वे खेतों से वापस घर नहीं लौटे, बल्कि खेतों के किनारे झाड़ियों की ओट में छिप गए। उन्होंने देखा कि कुछ देर बाद मअजी यापम खेत में आईं और उन्होंने जो कुछ भी किया, उसे देखकर आबोतानी के आश्चर्य की कोई सीमा नहीं रही। वह हर कटे हुए पेड़-पौधे को छूकर कहतीं कि 'यह मेरा है', तो वह फिर से उग आता। इस तरह आबोतानी द्वारा काटे गए सभी अनावश्यक पेड़-पौधे पुनः जीवित हो उठते और कटा हुआ खेत फिर से जंगल में तब्दील हो जाता।

आबो ने गुस्से और आश्चर्य के मिश्रित भाव से झाड़ियों से अचानक निकलकर मअजी यापम को दबोच लिया। मअजी यापम ने स्वयं को आबोतानी के चंगुल से आजाद कराने की बहुत कोशिश की। दोनों में

मल्ल-युद्ध जैसा चलने लगा। मअजी को बाँधे रखने के लिए आबोतानी ने कई जंगली रस्सियों का प्रयोग किया, परंतु जैसे ही मअजी यापम कहतीं कि 'ये मेरा है' तो सारी रस्सियाँ अपने आप टूट जातीं। इस तरह दोनों का मल्लयुद्ध पहाड़ों में स्थित खेत से लेकर समतल भूमि तक आ पहुँचा। पहाड़ से लेकर समतल भूमि तक के इस मल्लयुद्ध में दस दिन बीत गए। अंत में आबोतानी को बड्ञ्यी ग्या नामक रस्सी मिली, जिससे बँधने पर आखिरकार मअजी यापम ने कहा कि 'हाँ, यह तुम्हारा है।'

अंततः इस तरह आबोतानी ने मअजी यापम को बाँधने में सफलता हासिल की। इस मल्लयुद्ध का परिणाम यह हुआ कि अब दोनों का एक साथ रहना असंभव हो गया। इसलिए यह तय किया गया कि दोनों को हमेशा के लिए अलग हो जाना चाहिए। दोनों की विधिवत विदाई के लिए दोरी चिजी को बुलाया गया। दोरी चिजी ने कहा कि आज के बाद तुम दोनों एक साथ नहीं रह सकते हो, इसलिए तुम दोनों के कार्य-क्षेत्र भी अलग हो जाएँगे और जंगल की संपत्ति का विभाजन हो जाएगा। दोरी चिजी ने फरमान सुनाया कि जंगलों का ऊबड़-खाबड़ और वीरान इलाका, जो अतिशय घना है तथा असामान्य बाँस, असामान्य बेंत, असामान्य पेड़ तथा असामान्य रस्सियाँ- सब मअजी-यापम के हिस्से में जाएँगे और वह सारा इलाका आबोतानी के नाम होगा, जहाँ इंसान अपना आशियाना बना सकें। आबोतानी के हिस्से में वे सारे पेड़-पौधे होंगे, जो दिखने में बिल्कुल सामान्य हों और जिन्हें उपयोग में भी लाया जा सके।

इस प्रकार आबोतानी और मअजी यापम का स्थायी बिछुड़न हो गया। आबोतानी इंसानों के गाँव बसाने लगे और मअजी यापम घने जंगलों में, ऊँचे पहाड़ों में विचरण करने चली गईं। तब से लेकर आज तक दोनों के बीच विभाजन-रेखा कायम है। आबोतानी और उनके वंशज, यानी हम मनुष्य जाति मअजी यापम के कार्यक्षेत्र में घुसपैठ नहीं करते। हम उनके जंगलों को बिना उनसे पूछे काटने की गुस्ताखी नहीं करते। जब कभी किसी विराट वृक्ष को काटना हो, या फसल उगाने हेतु जंगल साफ करना हो, तो पहले हम किसी धर्मगुरु के सहारे अनुष्ठान का आयोजन करते हैं और किन्हीं पशुओं की बलि के माध्यम से मअजी यापम से सौदा तय करते हैं कि वे हमारे इस कार्य में बाधा न डालें। यदि कोई बिना पूछे मअजी यापम की संपत्ति पर हाथ डाले तो वे उसे भयानक सजा देती हैं।

तागिन जनजाति में यह लोक-आस्था विकसित हुई कि जंगलों के भी अपने रक्षक होते हैं, जिसके साथ छेड़खानी अत्यंत हानिकारक हो सकती है। ऐसा कई बार देखा भी गया है कि किसी असामान्य पेड़, रस्सी, लकड़ी या बाँस को काटने के तुरंत बाद वह व्यक्ति या तो मर जाता है या फिर भयानक रोग का शिकार हो जाता है; जिसका निवारण कभी होता है, तो कभी नहीं होता है। केवल इतना ही नहीं, जंगलों में अतिरिक्त शिकार करना भी अच्छा नहीं माना जाता, क्योंकि लोग मानते हैं, इससे मअजी यापम नाराज हो सकती हैं और उन्हें दंड भी दे सकती हैं।

आबोतानी और किसिङ तामिङ की कहानी

किसिङ तामिङ आबोतानी की एक और पत्नी का नाम था, जो रिश्ते में मअजी यापम की बहन लगती थी। किसिङ तामिङ से विवाह करने से पहले आबोतानी और मअजी यापम के बीच बहुत अनबन चल रही

थी। हुआ यह था कि आबोतानी जब अपने मिथुनों की घेराबंदी के लिए बाड़े का निर्माण कर रहे थे तो मअजी यापम अदरक का रूप धारण करके आबोतानी के समक्ष प्रकट हुई। आबोतानी ने उसे सामान्य अदरक समझकर मुँह में डाला और चबाने का प्रयत्न किया। लेकिन उनके दाँतों से खुद को बचाते हुए वह सीधे आबोतानी के शरीर के अंदर समा गई। आबोतानी जब-जब अपने मिथुनों के पास जाते तो मअजी यापम बाहर आकर सारे मिथुनों को खा जाती थी। इस तरह एक-एक करके मअजी यापम आबोतानी के सारे मिथुनों को अपना आहार बना रही थी। अंत में आबोतानी ने सोचा कि यदि ऐसे ही चलता रहा तो अपने सारे मिथुनों से वह हाथ धो बैठेंगे। इसलिए उन्होंने तय किया कि उसकी बहन किसिङ तामिङ से विवाह करके उसे अपना रिश्तेदार बनाया जाए। इस प्रकार आबोतानी ने किसिङ तामिङ से विवाह कर लिया।

विवाह के पश्चात् किसिङ तामिङ की शारीरिक अवस्था बिगड़ती गई। उसका शरीर दिन-प्रति-दिन ढलता जा रहा था। आबोतानी रोज उसे पौष्टिक आहार खिलाते, पर उसकी शारीरिक अवस्था में कोई सुधार नहीं आ रहा था। एक दिन किसिङ तामिङ ने आबोतानी से कहा कि तुम्हारे इस भोजन से मैं कभी स्वस्थ नहीं हो सकती। मुझे मेरे मायके से लाए गए खाद्य-पदार्थ ही ठीक कर सकते हैं। इसलिए तुम मेरे मायके जाओ और वहाँ से मेरे लिए भोजन लेकर आओ। पत्नी के कहे अनुसार आबोतानी किसिङ तामिङ के घर गए, वहाँ उनके परिजनों से मिले और किसिङ तामिङ की शारीरिक अवस्था के विषय में विस्तार से बताया। मअजी यापम सहित सबने कहा कि किसिङ तामिङ के लिए विशेष भोजन की आवश्यकता है। उस विशेष भोजन के लिए उन्हें जंगल जाना था, शिकार के लिए। आबोतानी भी साथ चल दिए।

आबोतानी एक कोने में छिप गए- शिकार के लिए। थोड़ी देर बाद उन्होंने देखा कि एक इंसान उनके सामने से निकल गया। आबोतानी ने उसका कुछ नहीं किया और न ही उससे कुछ पूछा। वह निकल गया। थोड़ी देर बाद मअजी यापम और उसके सभी भाई-बंधु भी आ गए। सबने आबोतानी से पूछा कि उन्होंने किसी प्राणी को यहाँ से गुजरते हुए तो नहीं देखा। आबोतानी ने उत्तर दिया कि 'मैंने कुछ नहीं देखा। यहाँ से तो केवल एक आदमी गया है, अभी-अभी। तब मअजी ने कहा कि 'अरे! उसी को तो मारने के लिए हम उसका पीछा कर रहे हैं। तुमने उसे जाने क्यों दिया?' यह सुनकर आबोतानी के आश्चर्य की कोई सीमा नहीं रही। उनके मन में शंका जगी, 'ये लोग इंसान का शिकार करते हैं? कहीं ऐसा तो नहीं कि ये लोग किसिङ तामिङ को इंसानी मांस खिलाने वाले हैं।' परंतु अपनी सारी शंकाओं और प्रश्नों को उन्होंने अपने मन के भीतर दबाकर रखा। मअजी अपने भाइयों सहित उस आदमी को पकड़ने के लिए तेजी से आगे निकल गई और आबोतानी को वहीं रुकने को कहा।

अगली सुबह आबोतानी के लौटने का वक्त आ गया। लौटने से पहले किसिङ तामिङ के परिजनों ने ताकु (एक स्थानीय वृक्ष, जिसके लंबे-पतले पत्तों से स्थानीय दरी बनाई जाती है) से बनी दो-तीन पोटलियाँ आबोतानी को सौंप दीं और कहा कि इन्हें किसिङ तामिङ के नासू अर्थात् धान्यागार में रख देना। आबोतानी ने वैसा ही किया, जैसा उन लोगों ने कहा। वह उन पोटलियों को लेकर अपने घर लौट आए और उन्हें धान्यागार में रख दिया। आबोतानी ने बहुत प्रयास किया- यह देखने के लिए कि उन पोटलियों के अंदर क्या है, परंतु वह उन्हें खोल नहीं पाए। किसिङ तामिङ प्रतिदिन अपने धान्यागार जाती और उस पोटली में से कुछ निकाल-

निकाल कर खाती। देखते-ही-देखते उसके स्वास्थ्य में एकदम से सुधार आने लगा और वह फिर से पहले जैसी तंदुरुस्त होने लगी। आबोतानी इस रहस्य को बिल्कुल भी नहीं समझ पाए। एक दिन वह धान्यागार की ओर गए। वहाँ जाकर उन्होंने देखा- उस पोटली को चूहों ने कुतर-कुतर कर उसमें सुराख बना दिया है। उसी सुराख में से एक चूहा इंसानी उँगली लेकर बाहर आया। उस उँगली को देखकर आबोतानी को समझने में देर नहीं लगी कि यह उसी आदमी की उँगली है, जिसे वह जंगल में शिकार करने के दौरान देख चुके हैं। आबोतानी ने यह भी समझ लिया कि उनकी पत्नी किसिङ तामिङ उसी इंसान का मांस खाकर फिर से सेहतमंद हो गई है। अब उन्हें चिंता सताने लगी कि क्या किया जाए। जिस स्त्री से उनका विवाह हुआ, वह तो इंसान का मांस खाती है। सत्य जानने के बावजूद वह अपने पत्नी के साथ रहने के लिए विवश थे।

आबोतानी ने मन बना लिया था कि किसी भी परिस्थिति में उन्हें अपनी पत्नी के साथ रहना है। लेकिन पिछले कुछ दिनों से किसिङ तामिङ के परिजनों की तरफ से लगातार आबोतानी के लिए बुलावा आ रहा था। आबोतानी को समझ में नहीं आ रहा था कि उन्हें क्यों बार-बार बुलाया जा रहा है? लेकिन किसिङ तामिङ समझ चुकी थी कि वह बुलावा वास्तव में उनके परिजनों द्वारा रची गई एक साजिश है, जिससे कि वे आबोतानी को मारकर अपना आहार बना सकें। ससुराल से आए न्योते को वह ठुकरा नहीं सकते थे, इसलिए आबोतानी जाने को तैयार हुए। जाने से पहले किसिङ तामिङ ने आबोतानी को समझाया कि मेरे भाई-बंधु तुम्हें जंगल में काम करने के लिए ले जाएँगे। वहाँ घर बनाने हेतु जब बड़े-बड़े पेड़ों की टहनियाँ इकट्ठी कर रहे होंगे, तब तुम्हें मारने का प्रयत्न किया जाएगा। वे जब ढलान के ऊपरी हिस्से में खड़े रहकर तुम्हारा नाम पुकारेंगे और टहनी को तुम्हारी ओर ढकेलेंगे तो तुम 'हाँ' कहकर उस टहनी को पकड़ लेना। दूसरी बार जब तुम्हारा नाम फिर से पुकारेंगे तो तुम 'हाँ' कहकर ढलान में बनी गुफा में छिप जाना, क्योंकि इस बार वे सारी टहनियों को एक साथ तुम्हारे ऊपर फेंककर तुम्हें मारने की कोशिश करेंगे।

पत्नी की बात मानकर आबोतानी ससुराल गए। वहाँ ठीक वैसा ही हुआ, जैसा किसिङ तामिङ ने आबोतानी को बताया था और आबोतानी ने भी वैसा ही किया, जैसा उन्हें समझाया गया था। आबो ने गुफा में घुसकर उनकी चाल को विफल कर दिया। सारी टहनियों को आबोतानी की ओर ढकेलने के बाद सबने समझ लिया कि आबोतानी अब नहीं रहे। वे सब ढलान से नीचे उतरे और टहनियों को उठा-उठाकर आबोतानी की लाश को तलाशने लगे। इतने में आबोतानी गुफा से बाहर आए और कहा, "मेरे प्रिय सालों, मैं तो यहाँ हूँ और जिंदा हूँ!" आबोतानी को जिंदा पाकर सबने समझ लिया कि किसिङ तामिङ ने ही आबोतानी को सारी बातें बताई होगी। अपनी बहन पर सभी को बहुत गुस्सा आया।

अगली बार फिर से आबोतानी के लिए लगातार बुलावा आने लगा। जीजा जी का कर्तव्य निभाने के लिए आबोतानी को फिर से जाना था। जाने से पहले किसिङ तामिङ ने फिर से आबोतानी को समझाया कि इस बार मेरे भाइयों की टोली तुम्हें खेत में काम कराने ले जाएगी। वहाँ खेतों में आग लगाने के बहाने तुम्हें जलाकर मारने का प्रयत्न किया जाएगा। (झूम खेती का दूसरा चरण होता है- कटे हुए पेड़-पौधों के सूख जाने के पश्चात् उन्हें जलाकर मिट्टी को धान बोने लायक उपजाऊ बनाना) तुम जब खेत के बीचो-बीच काम रहे होगे,

तब वे लोग निचले हिस्से में रहकर तुम्हारा नाम दो बार पुकारेंगे। तुम दूसरी बार 'हाँ' कहकर खेत के बीच एक बड़ा सा गड्ढा है, उसमें घुस जाना, ताकि मेरे भाइयों द्वारा लगाई गई आग से बच सको।

आबोतानी एक बार फिर ससुराल आ पहुँचे। किसिङ तामिङ के परिजनों के साथ वे उनके खेत में गए। वहाँ सब कुछ ठीक वैसा ही हुआ, जैसा किसिङ तामिङ ने आबोतानी को बताया था। इस बार भी आबोतानी के ससुराल वालों ने सोच लिया कि आग की इतनी प्रचंड लपटों से आबोतानी का बचना नामुमकिन है। अतः वे सब मिलकर राख के ढेर में आबोतानी की लाश तलाशने लगे। इतने में गड्ढे में छिपे आबोतानी बाहर आए और कहा कि 'मैं तो अब भी जिंदा हूँ।' सब लोग फिर से अपनी बहन को कोसने लगे, जिसके कारण उनके द्वारा रची गई साजिश मिट्टी में मिल गई। इस बार भी आबोतानी उनके हाथों से बचकर निकल गए, सिर्फ किसिङ तामिङ के कारण।

आबोतानी के ससुराल वालों ने भी हार नहीं मानी। उन लोगों ने आबोतानी को फिर न्योता दिया। हमेशा की तरह किसिङ तामिङ ने आबोतानी को बताया कि इस बार उन्होंने एक प्रतियोगिता में भाग लेने के लिए तुम्हें बुलाया है, जिसका नाम है- 'बोबो चानम'। बोबो चानम झूला झूलने की एक प्रक्रिया है, जिसके तहत एक रस्सी में झूलते हुए बड़े-बड़े पेड़ों के ऊपर चढ़ा जाता है। तुम उस प्रतियोगिता में जरूर हिस्सा लेना, लेकिन एक बात का ध्यान रखना। मेरे भाइयों के झूला झूलते हुए चार-पाँच चरण ऊपर चढ़ने के बाद तुम केवल एक ही चरण चढ़ना, नहीं तो तुम्हारे ऊपर चढ़ने के बाद वे लोग तुम्हारी रस्सी काट देंगे और तुम गिरकर मर जाओगे। आबोतानी सारी बातें सुनने के बाद ससुराल की ओर चल पड़े। वहाँ पहुँचकर उन्होंने उस प्रतियोगिता में भाग लिया; लेकिन उनको अपनी शारीरिक शक्ति पर इतना घमंड हो गया कि उन्होंने किसिङ तामिङ की बातों को भुला दिया। अपने घमंड में वे इस कदर अंधे हो गए कि किसिङ तामिङ के भाइयों द्वारा केवल एक चरण चढ़ने पर वह पाँच-दस चरण चढ़ गए। बहुत ही कम समय में वह जमीन से बहुत ऊपर आ गए। इधर किसिंग तामिङ के भाइयों को अवसर मिल गया- आबोतानी को मारने का। पहले से ही वृक्ष के ऊपर तैनात कुछ भाइयों ने टहनी से बँधी एक रस्सी को काट दिया, जिस पर आबोतानी लटके हुए थे। एक रस्सी के कट जाने से दूसरे सिरे के सहारे आबोतानी का शरीर हवा में दूर-दूर तक झूलने लगा। हवा में झूलते हुए आबोतानी का अपने शरीर पर कोई नियंत्रण नहीं रहा। इस मौके का फायदा उठाते हुए किसिङ तामिङ के भाइयों ने आबोतानी के यिङ्गो पी और जारगो पी अर्थात् दिव्य दृष्टि और दिव्य वाणी को छीन लिया। इन दोनों के कारण आबोतानी के पास असाधारण शक्ति थी, जो आम इंसान के पास नहीं होती।

दोनों शक्तियों के छिन जाने के कारण आबोतानी हवा में और देर झूल न सके और गहरी खाई में गिर गए। जब उनका अर्धमृत शरीर नदी की धार में बह रहा था तो आई आगम, गुङचि रियाचि आदि देवताओं ने उन्हें बचा लिया। ऐसी मान्यता है कि ये दोनों देवता मनुष्य की आत्मा के रक्षक हैं। इन दोनों के द्वारा आबोतानी को फिर से जीवनदान प्राप्त हुआ, परंतु वह अब एक साधारण इंसान बनकर रह गए थे। अपनी खोई हुई दिव्य दृष्टि और दिव्य वाणी के विषय में सलाह माँगने के लिए आबोतानी दोरी चिजि के पास गए। दोरी चिजि ने कहा कि तुम जिन शक्तियों से वंचित हो चुके हो, उन्हें दोबारा प्राप्त करना तो नामुमकिन है। आज के बाद तुम मनुष्य जाति की इसी साधारण शक्ति के साथ जिओगे और मरोगे। हाँ, एक विशेष व्यक्ति के पास ही यह शक्ति रहेगी,

जो तुम जैसे साधारण मनुष्यों को मुसीबत के पलों में सहायता प्रदान करेगा। उस विशेष शक्ति-धारक व्यक्ति के सहायक होंगे- मुर्गी के अंडे और चूजों की अँतड़ियाँ।

उसी दिन से तागिन समाज में मुर्गी के अंडे और चूजों की अँतड़ियाँ के द्वारा भविष्यवाणी करने की विधि आरंभ हुई। इस विधि को संपन्न करने वाला व्यक्ति 'विशेष शक्तिधारक' होता है, जिसे तागिन में ञ्युबु और ञ्येक्योक कहा जाता है; जिसका हिंदी अर्थ है- 'धर्मगुरु'। ञ्युबु और ञ्येक्योक ये दोनों ऐसे व्यक्ति हैं, जिनके पास दिव्य दृष्टि और दिव्य वाणी है। इनमें से ञ्युबु का दर्जा ञ्येक्योक से थोड़ा ऊपर होता है, क्योंकि वह अपनी दिव्य शक्ति से सभी प्रकार के धार्मिक कर्मकांडों को संपन्न कराता है। भूत-प्रेत की चपेट से आजाद कराने, होनी-अनहोनी को पहले से देखने, किसी रोग का निवारण करने तथा सभी प्रकार के अनुष्ठानों को संपन्न कराने में इन्हीं धर्मगुरुओं का हाथ होता है। अतः ये विशेष शक्ति के मालिक होने के कारण साधारण मनुष्य के हितैषी बन गए और साधारण मनुष्य उन पर आश्रित होने लगे। तागिन समाज मानता है कि यदि आबोतानी ने अपनी पत्नी की बात मानी होती, तो आज हर मनुष्य उतना ही शक्तिशाली होता, जितने आज के धर्मगुरु हैं। उनके चंचल मन ने मनुष्य जाति को एक विशेष प्रकार की शक्ति से हमेशा के लिए वंचित कर दिया।

*(**लेखकीय परिचय :** अरुणाचल प्रदेश के सुपरिचित युवा कवि और कहानीकार तारो सिन्दिक देरा नातुङ शासकीय महाविद्यालय, ईटानगर, अरुणाचल प्रदेश के हिंदी विभाग में सहायक प्रोफेसर हैं। आपको साहित्य अकादमी का 'युवा सम्मान' मिला है और आपकी प्रकाशित कृतियाँ हैं- 'अक्षरों की विनती', 'फिर आना तुम', 'तागिन लोक-साहित्य' आदि।*

मोबा: 9402963147, ई-मेल : tarosindik@gmail.com)

(पहाड़ी कोठार से)

जाईबोने

(गालो लोक-कथा)

गुमजुम लोई

अरुणाचल प्रदेश पूर्वोत्तर भारत का एक छोटा-सा राज्य है। यहाँ लगभग छब्बीस जनजातियाँ और सौ से भी अधिक उप-जनजातियाँ निवास करती हैं। इन छब्बीस जनजातियों में 'गालो' एक प्रमुख जनजाति है। प्रत्येक जनजाति और उप-जनजातियों की अपनी-अपनी लोक मान्यताएँ तथा दिलचस्प लोक कथाएँ होती हैं। 'जाइबोने' भी गालो जनजाति की एक बहुत ही प्रसिद्ध और दिलचस्प लोक कथा है। दादा-दादी, नाना-नानी की कहानियों में यह आज भी जीवित है। 'जाईबोने' की कथा मूलत: जाईबोने, दिदुकुब और बिरतापू पर आधारित कथा है।

न्यीदो गे दोदि, दोदि गे दिदुकुब अर्थात न्यीदो का बेटा दोदि और दोदि का बेटा दिदुकुब है। (गालो जनजाति में बच्चों का नाम पिता के नाम के आखिरी अक्षर से रखे जाने का रिवाज़ है।) इसी तरह हिजा गे जाईबोने अर्थात हिजा की बेटी जाईबोने। दिदुकुब के मन में जाईबोने से विवाह करने की इच्छा पनप उठी और उसने एक दिन जाईबोने के सामने विवाह का प्रस्ताव रखा। विवाह प्रस्ताव की स्वीकृति के पश्चात नियमानुसार दिदुकुब की तरफ से आसीन-ओपो अर्थात तरह-तरह के व्यंजन और चावल की शराब, आदिन-मेन अर्थात मीट-मच्छली आदि जाईबोने के घर पहुंचा दिया जाता है। दूसरी ओर बिरतापू है जो जल में रहने वाला एक जीव है, जिसका शरीर जलहस्ती की तरह होता है। वह भी मन-ही-मन जाईबोने से विवाह करना चाहता है। जब दिदुकुब के साथ जाईबोने की रिश्ते की बात सुनता है तो वह (बिरतापू) विचलित हो जाता और सोचने लगता है कि किस प्रकार इन दोनों के रिश्ते को तोड़ा जाए? और जाईबोने को कैसे हासिल किया जाए? जाईबोने को पाने के लिए वह कुछ भी करने को तैयार था, इसके लिए बिरतापू कई तरकीबे सोचने लगता है। मौका पाते ही एक दिन बिरतापू जाईबोने से कहता है- जाईबोने! दिदुकुब ने जो मीट तुम्हारे घर पहुंचाया है वह जंगली जानवरों का मीट है। जो पुराना हो चुका है, जिसे चबाते-चबाते तुम्हारे जबड़ों में दर्द होने लगेगा। तुम मुझसे विवाह कर लो मैं तुम्हें रोज़ नरम-नरम और स्वादिष्ट मछलियां खिलाता रहूँगा। इस प्रकार बिरतापू दिदुकुब की छोटी-छोटी बातों में कई बुराइयां निकालता है और उसे नीचा दिखाने की कोशिश करता है। इस षडयंत्र के फलस्वरूप बिरतापू जाईबोन को अपना बनाने में कामयाब हो जाता है और उसे लेकर वापस अपने घर (नदी की गहराइयों में) लौट जाता है। (जाईबोने हिजा की बेटी है, इसलिए वह पानी में भी जीवित रह सकती है।) यहाँ दिदुकुब परेशान होकर जाईबोने को खोजने लगता है और जब दिदुकुब को इस बात का पता चलता है कि वह उसे हमेशा के लिए छोड़ कर चली गयी है, तब दिदुकुब बहुत दु:खी हो जाता हैं। सोचता है कि मैं चाह कर भी नदी की गहराइयों में जाकर जाईबोने को वापस नहीं ला सकता (दिदुकुब एक साधारण जीव है जो जल में नहीं रह सकता है।) और न ही अपने इस अपमान को भूल सकता हूँ। अब दिदुकुब भी मन ही मन जाईबोने और बिरतापू से बदला लेने के बारे में सोचने लगता है और उन दोनों को मारने के लिये तरह-तरह की तरकीबें अपनाता है।

वह जंगल जाकर ताम (एक प्रकार का जहरीला फल और पेड़ की छाल) लेकर आता है और उसे पीस-पीस कर नदी में डालता है ताकि उसकी जलन एवं जहर से दोनों (जाईबोने और बिरतापू) मर जाएँ, कभी-कभी आम्प-मिपो अर्थात भूसी या चावल के छिलकों को जलाकर तो कभी यालुक-बाक अर्थात मिर्ची और कड़वा बैगन को पीस कर नदी मे बहा देता है, पर दिदुकुब की ये सारी कोशिशें बेकार पड़ जाती हैं। इन जहरीली चीज़ों से मरने के बजाय उल्टा मछलियाँ इन्हें खा जाया करती जिसे देख दिदुकुब बदले की आग में और अधिक जलने लगा और सोचने लगा– अब क्या किया जाए? किस प्रकार इन दोनों को सबक सिखाया जाए? अंतत: दिदुकुब फैसला करता है कि अब की बार घने जंगलों में जाकर इससे भी जहरीले फल की तलाश करेगा और वह निकल पड़ता है।

इस तरह वह कई दिनों की यात्रा के बाद बहुत दूर आने-मोऊ-मोमेन, अर्थात पहाड़ी खेतों के मार्ग से होते हुए गित कोन-दिर मोरो (यानी ऐसा घना वन जहां बहुत मुश्किलों के बाद ही कोई पहुँच पाता है) पहुँच जाता है। यहाँ पहुँच कर दिदुकुब को एक होइन या इंबलरो (जंगली जानवर) मिलता है। वह होइन बहुत ही दुबला-पतला होता है जिसे देख दिदुकुब हैरान रह जाता है और उससे पूछता है- अरे! होइन तुम इतने दुबले-पतले क्यों हो? इसका क्या कारण है? इसे सुन होइन कहता है- हीदिक गे कोसे, दोदिक गे कोसे (ऐसे स्थल जहां ताम मिलता है) नामक स्थल पर दोका गासे-मुर गासे (ताम अर्थात एक जंगली फल) के गुच्छों से लदा हुआ एक पेड़ है जो बहुत जहरीला होने के साथ-साथ बहुत स्वादिष्ट दिखता है जिसका मैंने एक ही फल चखा और मेरा यह हाल हो गया। (इस फल के बारे में ऐसा कहा जाता है कि एक फल चखने पर एक साल, दो फल चखने पर दो साल इस तरह जितना फल चखोगे उसके जहर का असर उतने सालों तक रहेगा और इसका अत्यधिक उपयोग जानलेवा होता है।) इसे सुनते ही दिदुकुब खुशी के मारे उछल पड़ा और कहने लगा- आहा! मैं कई दिनों से ऐसे ही जहरीले फल की तलाश में भटक रहा हूँ। अब मैं तुम्हारे बताए जगह पर जा करके उन फलों को तोड़ लेता हूँ परंतु जाने से पहले मैं तुम्हारे (होइन) लिए कुछ खाने की चीज़ों का नाम बताता हूँ जिसे खाकर तुम तंदुरुस्त हो जाओगे। फिर दिदुकुब होइन को कोलु-कोदुम (जंगली केले), बेब-बेलाक (जंगली मीठे फल) के नाम बताता है। (ऐसा माना जाता है कि दिदुकुब के बताने के बाद से लेकर आज तक होइन इन्हीं चीज़ों को खाता है और तंदुरुस्त रहता है।) फिर दिदुकुब खुशी-खुशी ताम तोड़ने के लिए निकल पड़ता है। कुछ दिनों के पश्चात वह हीदिक गे कोसे, दोदिक गे कोसे (ऐसा स्थल जहां ताम मिलता है) पहुँच जाता है और फिर एक्केन अर्थात बाँस से निर्मित एक प्रकार की टोकड़ी में भर-भर कर दोका गासे-मुर गासे (ताम) के फलों को भर लेता है और झूमते हुए वापस अपने घर को लौट जाता है।

कई दिनों के बाद दिदुकुब घर पहुँच जाता है और अगले ही दिन वह नदी के किनारे बैठकर बड़े-बड़े पत्थरों के बीच ताम को पीसता है और उस नदी में डालता जाता है जहां जाईबोने और बिरतापू दोनों रहते हैं। कुछ क्षणों के बाद आहिस्ता-आहिस्ता ताम का जहर रंग लाने लगता है और देखते-ही-देखते नदी में रहने वाली छोटी-बड़ी मछलियाँ छतपटाते हुये, धीरे-धीरे मरकर नदी के ऊपरी सतह पर तैरने लगती हैं। इसे देख दिदुकुब और अधिक उत्साह के साथ ताम को पिसते हुये मंत्रोच्चारण भी करने लगता है- जिस प्रकार रीब-तापो, हुदो-पेरो (छोटी मछलियाँ), पीप-कादा (बड़ी मछलियाँ) नदी के दोनों किनारों से छटपटाते-मरते हुए निकल रही हैं उसी तरह जाईबोने और बिरतापू भी तड़पे-छटपटाते और नदी की गहरी सतह के लेको यानी निचले भाग से

जाईबोने और लेदुम यानी ऊपरी सतह से बिरतापू दम तोड़ते हुए निकाल आए। कुछ घंटों के इंतज़ार के फलस्वरूप अचानक दिदुकुब खुशी से उछल पड़ा और चिल्ला उठा- आहा! अब आया न मज़ा। फिर वह समीप जा कर तसल्ली कर लेता है और जाईबोने एवं बिरतापू के मरे हुए शरीर को नदी के ऊपर तैरता देख खुशी से फूले नहीं समाता।

इस प्रकार आज भी गालो जनजाति या यों कहे कि गालो समाज में अगर कोई पुरुष किसी अन्य पुरुष की न्यीम अर्थात पत्नी या भावी पत्नी को भगा ले जाता है या उससे विवाह कर लेता है तो उसे अच्छा नहीं माना जाता है। भले ही जाईबोने और बिरतापू की तरह उसे ताम से नहीं मारा जा सकता है पर ऐसे लोगों को कोसा जाता है, बद्दुआ दी जाती है। इसलिए आज भी गाँव के बुजुर्ग एवं अनुभवी लोग हमें ऐसे कुकर्म करने से और ऐसे बद्दुवाओं से बचने की शिक्षा देते हैं।

(**संदर्भ:** स्थानीय न्यीबो (पुजारी) से वाद-संवाद के द्वारा)

(***लेखकीय परिचय:*** *गुमजुम लोई* शासकीय महाविद्यालय, बासार, अरुणाचल प्रदेश के हिंदी विभाग में सहायक प्रोफेसर हैं।
मोबा: 9402047172, ई-मेल : gumjumloyi@gmail.com)

(पहाड़ी कोठार से)

रिजुम हाअ्-रिमा हाअ्

(तांग्सा लोक-कथा)

रेमोन लोंग्कु

युगों पहले की बात है। अरुणाचल प्रदेश के चांग्लांग जिला और बर्मा सीमा के आस-पास रिजुम हाअ्-रिमा हाअ् दो पर्वत थे। इसका प्राकृतिक सौंदर्य दूर-दूर तक प्रसिद्ध था। इन दोनों पर्वतों के बीच एक गाँव हुआ करता था। उस गाँव के लोग बहुत ही खुशहाल जीवन व्यतीत कर रहे थे। सिवाय ! एक दादी और पोती के। वे बहुत ही गरीब थीं। पोती विकलांग और दादी बहुत ही वृद्ध थीं। गाँव के लोग उन दोनों को ख़ूब चिढ़ाते थे। किसी त्यौहार या उत्सव में भी लोग अपने घरों में उन्हें प्रवेश तक नहीं करने देते थे। जब दादी और पोती कहीं टहलती हुई दिख जाती, तो गाँव के बच्चे उन्हें खूब चिढ़ाते और विकलांग पोती की नक़ल करते हुए हँसी उड़ाते थे। बच्चों के चिढ़ाने से पोती रोने लगती और लाचार बूढ़ी दादी हाथ में पकड़ी डंडा उठायें उन्हें भगाती थी। एक दिन गाँव के लोगों ने एक विशाल मछली का शिकार किया। कहा जाता है कि, वो मछली कोई साधारण नहीं थी ! वो एक प्रकृति की रक्षक थी। उस मछली को काटकर मांस को सबके घरों में बाँटा गया, किंतु उन लोगों ने दादी और पोती को नहीं दिया। उस शाम पूरे गाँव में उस शिकार के मिलने से लोग उत्सव मना रहे थे। मनुष्य से लेकर पालतू जानवर भी उस दिन मछली के मांस को खाकर आनंदित थे। किंतु दादी और पोती भूखी-प्यासी अपने घर पर सो रही थीं। सुबह होते ही दादी और पोती गाँव से कहीं दूर चली जाती हैं। शाम को दोनों जब गाँव वापस लौटती हैं, तो उन्होंने देखा कि, जहाँ उनका गाँव हुआ करता था वहाँ अब गाँव नहीं, झील थी। यह देखकर दादी और पोती खूब रोने लगीं कि, उनका गाँव झील के अंदर समा गया है। बूढ़ी दादी के हाथ में बाँस का एक डंडा था। उन्होंने निराश होकर उस डंडे को झील के किनारे गाड़ दिया और अपने गाँव को स्मरण करती हुई कहने लगीं- "रिजुम हाअ्... रिमा हाअ्...!!!"। मान्यता है कि, वे बाँस आज भी निरंतर गति से उग रहे हैं।

कुछ लोगों का कहना है कि, गाँव की यह दुर्दशा उस विशाल मछली का शिकार करने के कारण हुई और कुछ लोगों का यह भी मानना है कि, दादी और पोती को मछली का मांस नहीं देने के कारण यह हुआ।

अत: तांग्सा आदिवासी समुदाय आज भी यह लोक विश्वास रखते हैं कि शिकार करने की भी एक सीमा और नियम होते हैं। यदि उस सीमा और नियम का उल्लंघन करते हैं तो प्रकृति जिन्हें वे पुरखा मानते हैं, वह उन्हें हानि भी पहुँचा सकती है। इसके अतिरिक्त तांग्सा समाज के शिकारी आज भी वन द्वारा प्राप्त शिकार को गाँव के सबके घरों में बाँटते हैं, वे अकेले नहीं खाते। इस परंपरा को वे 'साअ्सेंग' कहते हैं। यह झील आज भी अरुणाचल प्रदेश के चांगलांग जिला के नाम्पोंग गाँव में स्थित है जिसे आज 'लेक ऑफ़ नो रिटर्न' के नाम से जाना जाता है।

इस लोक कथा का दर्शन है कि प्रकृति द्वारा प्राप्त वस्तुएँ सबके लिए बराबर होती हैं और उसी में एकता है। दूसरी बात, हम प्रकृति से जो चाहें ले सकते हैं और प्रकृति देती भी है किंतु यदि हम प्रकृति की वस्तुओं को अनावश्यक या अत्यधिक रूप से लेने का प्रयत्न करते हैं तो प्रकृति विकराल रूप भी धर सकती है। कहने का अभिप्राय है, प्रकृति एक संतुलन बनाये चलती है और यदि हम मनुष्य उसके संगठित संतुलन पर अतिक्रमण करते हैं, तो प्रकृति उस अतिक्रमण को रोकने की चेष्टा करती है।

*(**लेखकीय परिचय :** रेमोन लोंग्कु वर्तमान में उत्तर-पूर्व पर्वतीय विश्वविद्यालय, मेघालय के हिंदी विभाग में शोधार्थी हैं।*
मोबा:7086433304, ई-मेल : remonlongku1@gmail.com)

(घाटियों का स्वर)

डेने सिटम डोनुना; पिलू जार्जु करिया लाये-कारिया लायी; आडा यी ई मादु नअ सी ई

(तागिन लोकगीत)

तारो सिन्दिक

(चयन- यापी बायोर)

(1)

"डेने सिटम डोनुना
डेने गिटम डोनुना
लेमिपोलुकार्डुकु
लेनिपोलुकार्डुकु
चिरपीरपापुकमेंदु कु
ताकम पापुकमेंदुकु
गिधि आपुपुडु कु
गेयुआपुपुडुकु
डेने सिटम डोनुना
डेने गिटम डोनुना

डेरि आने न्यी कुमलाजु
डुगुआने न्यी कुमलाजु
मिल्ली लीमा लीलाजू
अमली लीमा लीलाजू
डेने सीटम डोनुना
डेने गिटम डोनुना
यूलुपोलुकारडुकु

तेनलुपोलुकारडुकु
न्यिनजिरुवाहोलाजू
पोजिरुवा हुलाजू
डेने सिटोम डोनुना
डेने गिटोम डोनुना"

भावार्थ:

हम सब महिला समूह हैं, हम औरतें साथ रहती हैं। अप्रैल का महीना आ गया है 'चिरपीर-पापोक' पक्षी ने गाना शुरू कर दिया है। 'तकम-पापुक' पक्षी ने भी चहचहाना शुरू कर दिया है। 'गिद्धी' के फूलों ने खिलना शुरू कर दिया है और 'गेयू' के फूल भी खिलने लगे हैं। हम सब महिला समूह हैं, हम औरतें साथ रहती हैं। भरपूर फसल के लिए हम सभी को देवी 'दुगु' से प्रार्थना करनी चाहिए, आओ हम सभी मिलकर बाजरा और धान बोयें। हम सब महिला समूह हैं, हम औरतें साथ रहती हैं। जून का महीना आ गया है, जुलाई का महीना आ गया है, धान का खेत पकना शुरू हो गया है और मक्के के पौधे में भी फूल आने लगे हैं। धान और मक्के के खेत में निराई का समय आ गया है। हम सब महिला समूह हैं, हम औरतें साथ रहती हैं।

(2)

"पिलू जार्जु करिया लाये- कारिया लायी
आनअ गअ लअरुम आ रुमअ लायी- रुमअ लायी
पिलू जारजु कारिया लायी-कारिया लायी
आनअ गअ जअतअ अम गअमअ लायी-गअमअ लायी
पिलू जारजु कारिया लायी-कारिया लायी
आनअ गअ सअतअ अम होकमअ लायी होकमअ लायी
पिलू जारजु कारिया लायी
कारिया लायी आनअ गअ मोरबी आ मोरमअ लायी- मोरमअ लायी पिलू जारजु कारिया लायी- कारिया लायी आनअ अ कोतअ अम किमअ लायी''

भावार्थ

इसमें 'पिलू' नामक एक जंगली पौधे और खेतों में उगाये जाने वाले धान का ज़िक्र है। कथा यह है कि पिलू और धान का पौधा एक समय किसी रिश्तेदार के यहाँ विवाह समारोह में भाग लेने के लिए जा रहे थे। पिलू आगे और धान का पौधा पीछे-पीछे चल रहा था। पिलू की रफ़्तार कम करने के लिए धान के पौधे ने उनसे कहा कि थोड़ा रुक जाओ, मुझे मेरी माँ का कंगन पहन लेने दो। थोड़ी दूर चलने के बाद फिर कहा कि मुझे मेरी माँ के कपड़े पहन लेने दो। गीत में प्रयुक्त पुनरावृत्त वाक्य 'कारिया लायी' का अर्थ है 'मेरे लिए रुको' तथा 'गअमअ लायी' का अर्थ 'पहनने दो'। इस प्रकार कपड़े और अन्य आभूषण पहनने के बहाने पिलू को इंतजार करवा-करवा कर वह उनसे आगे निकल गया और पिलू पीछे रह गया। इसी से तागिन जनपद में यह लोक-विश्वास विकसित हुआ कि पिलू नामक पौधे में फूल खिलने से पहले खेतों में धान उग आता है। पिलू के फूल खिलते-खिलते धान की कटाई का समय समीप होने लगता है। अत: पिलू के फूल का खिलना एक प्रकार से प्रकृति का संकेत है कि फसल कटने का समय आ चुका है।

(3)

"आङा यी ई मादु नअ सी ई
हये ला आ मादु नअ सी ई

ङाने नगु बरी ई
दुने नगु बरी ई
माकते नगु बरी ई
रीकने नगु बरी ई

रिगु नगु बरी ई
कियी नगु बरी ई

मुयी नगु बरी ई
दोलू हयेरी ई
दोगुम हुये री ई
गुंगी हये री ई
बागी हये री ई''

भावार्थ-

कौन है जिसने मेरे लाडले को मारा। कहीं मेरी माँ तो नहीं, कही मेरे पिता तो नहीं जिसने मेरे लाडले को रुलाया। कहीं मेरी बहन तो नहीं, कहीं मेरे बहनोई तो नहीं। कहीं मेरा साला/देवर तो नहीं। कहीं मेरी साली/ननद तो नहीं। कहीं मेरे भईया तो नहीं, कहीं मेरी दीदी तो नहीं। जिसने मेरे लाडले की आँखों में आँसू लाया कहीं वो मेरे भतीजा-भतीजी या भांजा-भांजी तो नहीं। या फिर पड़ोस का कोई व्यक्ति तो नहीं या आस-पास के कोई गाँव का तो नहीं, जिसने मेरे लाडले को रुलाया।

(4)

"डेरिं ङोना आने ङोना -3
यारिगिनची लो गेरप्लजू
यापरगिंची लो गेरप्लजू
डेरिं ङोना आने ङोना -2
मोमा नम्तु गो रुरप्लाकुजू
मोमो रेंङो गो मरप्लाकुजू

डेरिं डोना आने डोना -2
चिरमिलिमा लोलिलिक्लाकुजू
मेलो लिमा लो लिलिक्लाकुजू।
डेरिं डोना आने डोना -2
मिजुरुमालोरंडीलाकुजू
अमजुग मालो इडीला कुजू
डेरिं डोना आने डोना –
मिजिनिमुम ए मुमरी प्रेकुन्यी
अमली निमुम ए मुमरी प्रे कुन्यी
डेरिं डोना आने डोना -2
केके पाता न कलम ला कुजू
चिरमेमचिक गो चिक्कुमलाजु
मेलोयोर गो यॉर्ककुमलाकुजु
डेरिं डोना आने डोना -
सुरिडीसी लो सिक्किुम कुजु
सुमकोदेक लो अग्कुमला कुजु"

भावार्थ

हम कृषि की देवी हैं, हमारी 'नारीगिनची' उठाओ (बीज ले जाने के लिए बैग या टोकरी) 'यापर गिनची' उठाओ (जलावन की लकड़ी ले जाने के लिए टोकरी)। हम कृषि की देवी हैं, आएं हम सभी अपने आप को निराई-गुड़ाई में व्यस्त करें, आएं अपने आप को अन्य कृषि कार्यों में व्यस्त करें। हम कृषि की देवी हैं, चलो खेत में हम धान और बाजरे उगाते हैं, हम कृषि की देवी हैं। चलो हम सब बाजरे के खेत में निराई करते हैं और फिर धान के खेत में निराई करते हैं क्योंकि हम कृषि की देवी हैं। बाजरे में फूल आने शुरू हो गए हैं, धान में भी फूल आने शुरू हो गए हैं, इसलिए चलो चिड़ियों को भगा देते हैं कि वह धान चुरा न ले जाएं। आएं, धान की फसल लें और उसे एकत्र करें, और बाजरे या ज्वार को भी इकट्ठा करें क्योंकि हम कृषि की देवी हैं, दोनों अनाजों को धान्यागार में सही ढंग से भंडारित करें।

*(**लेखकीय परिचय :** अरुणाचल प्रदेश के सुपरिचित युवा कवि और कहानीकार तारो सिन्दिक देरा नातुङ शासकीय महाविद्यालय, ईटानगर, अरुणाचल प्रदेश के हिंदी विभाग में सहायक प्रोफेसर हैं। आपको साहित्य अकादमी का 'युवा सम्मान' मिला है और आपकी प्रकाशित कृतियाँ हैं- 'अक्षरों की विनती', 'फिर आना तुम', 'तागिन लोक-साहित्य' आदि।*
मोबा: 9402963147, ई-मेल : tarosindik@gmail.com)

(घाटियों का स्वर)

इजी पेने पेबेरे

(न्यीशी लोकगीत)

यातो मूरी

इजी पेने पेबेरे, हई बीने बिबेरे
इजी पेने पेबेरे, हई बीने बिबेरे
चीजी दोजी जीलेनरे, चिया, दोंया न्यागरेन रे
बुरी-बूतेम मोला जू लाबो सिकम जोला जू
लाबो जोला जू...

इजी पेने पेबेरे, हई बीने बिबेरे
इजी पेने पेबेरे, हई बीने बिबेरे
इची डोली पेमा डोबे, डेरे यारे रमा डोबे
बुरी-बूतेम मोला जू लाबो सिकम जोला जू
लाबो जोला जू...

इजी पेने पेबेरे, हई बीने बिबेरे
इजी पेने पेबेरे, हई बीने बिबेरे
अन्यी बर्मे अकुम तो, आबी बेरे आकुम तो
चिंत पते हगला जू, न्यिर्मेन्न सोमेन मेनला जू
बुरी-बूतेम मोला जू लाबो सिकम जोला जू
लाबो जोला जू...

प्रसंग

इस लोकगीत को बचपन में सुना करती थी। इस लोकगीत के अनुसार काफी पहले एक महामारी आई। गाँव में प्रतिदिन लोगों की मृत्यु होने लगी और देखते-देखते गाँव की आबादी बहुत कम हो गई। इंसान के साथ-साथ पशु-पक्षी भी मर रहे थे तथा खेतों के फसलों का नुकसान होने लगा था। गाँव के लोगों का जीवन अशांत हो गया और सभी के लिए जीना अब पहले की तरह आसान नहीं रहा। बस्ती के लोगों ने सामूहिक रूप से पूजा और अनुष्ठान करने का निर्णय लिया। सबने मिलकर 'युल्लो उयी' पूजा को शुरू किया। इस पूजा-अनुष्ठान का परिणाम यह हुआ कि लोग मृत्यु से बच गए। फसल भी अच्छी होने लगी। पशु-पक्षियों के ऊपर से भी संकट

टल गया। लोगों का आज भी मानना है कि ऐसा 'युल्लो उयी' पूजा-अनुष्ठान करने के कारण हुआ। इस विधि को लेकर आमजन में गहरी आस्था का भाव है जिसे वे 'इजी पेने पेबेरे' गीत के माध्यम से अभिव्यक्त करते हैं।

भावार्थ

इस गीत में यह भाव बताया गया है कि सूर्य हर सुबह इस सौर-मंडल में उगेगा और पृथ्वी प्रकाशित होगी। धरती पर नालों, नदियों का पानी सतत इसी तरह बहता रहेगा। वनस्पतियों और जीवों सहित मानव जीवन को दीर्घायु प्राप्त होगा। सूर्य का प्रकाश निरंतर पृथ्वी पर पड़ता आया है। माता चंद्रमा और पिता सूर्य की उपस्थिति में सभी पिण्ड एक-दूसरे का परिभ्रमण कर रहे हैं। इन सबकी निर्बाध गति के लिए हम सभी को मिल-जुलकर बुरी-बूत मनाना चाहिए। मानव जीवन सहित सभी भौतिक और अभौतिक चीजों के इसी तरह क्रियाशील बने रहने के लिए मिलकर इस त्यौहार को मनाएं। मानव जाति और वन्य-जीव, वनस्पति आदि के लिए; अकाल, सूखा और किसी भी तरह के महामारी अथवा अन्य किसी प्राकृतिक आपदा आदि से लोगों के जीवन को मुक्त करने के लिए तथा सबके जीवन में सुख, शांति और समृद्धि को लेन के लिए इस त्यौहार को सभी मिलकर मनाएं। यह त्यौहार गाँव के लोगों को संकेत देता है कि सर्दियों के बाद बसंत का मौसम आ रहा है। इसलिए ग्रामीणों को झूम की खेती के लिए तैयार हो जाना चाहिए। इस मौके पर गाँव के सभी भाई-बहन आते हैं और सब मिलकर राइस बियर और अन्य पेय पदार्थों का सेवन करते हैं। यह दिन सभी के लिए प्रसन्नता और आनंद का अवसर है।

*(**लेखकीय परिचय**: यातो मूरी राजीव गाँधी विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग से परास्नातक पूरी कर चुकी हैं।*
मोबा: 9612481439, ई-मेल : muriyato@gmail.com)

(भीतरी पाट से)

न्यीशी लोकगाथा : स्वरूप एवं संवेदना

डूरी शांति

अरुणाचल प्रदेश अपनी प्राकृतिक सुषमा के लिए पूरे विश्व में प्रसिद्ध है। यह प्रदेश ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों, नदियों, घाटियों और घने जंगलों से युक्त है। यहाँ नदियाँ और झरने अपना राग सुनाते हुए पहाड़ों और घाटियों को गुंजायमान बना देती हैं। क्षेत्रफल की दृष्टि से यह पूर्वोत्तर का सबसे बड़ा प्रदेश है। इस प्रदेश में छोटी-बड़ी नदियाँ हैं, जो इस पावन भूमि को अपने जल से सींचती हुई इस धरती को उपजाऊ बनाती हैं। इस कारण यहाँ के अधिकांश जिलों के नाम यहाँ बहती नदियों के नाम पर आधारित है। जैसे - सियाङ, सुबनसिरी, कामेङ, कुरुङ- कुमें, पापुम-पारे, लोहित आदि। अरुणाचल प्रदेश में कुल 27 प्रमुख जनजातियाँ और 100 से अधिक उप जनजातियाँ हैं। जिसमें प्रमुख है- न्यीशी, आदी, आपातानी, तागीन, गालो, ईदु मिश्मी, मोमपा, सिगंफो आदि इस प्रदेश की विभिन्न जनजातियों की जीवन शैली और लोक विश्वास, त्योहार सामाजिक ढांचे का अपना महत्त्व है, जो इन्हें विरासत में अपने पूर्वजों से प्राप्त हुआ है। इनके रहन-सहन धार्मिक आस्थाएँ समाज-व्यवस्था और रीति-रीवाज तथा भाषाएँ और बोलियाँ भी एक- दूसरे से भिन्न हैं। इनके बोलियों के नाम इनके समुदाय के नाम पर रखे गए हैं। जैसे-न्यीशी जनजाति की बोली का नाम 'न्यीशी' और आदी जनजाति की बोली को 'आदी' से अभिहित किया जाता है। इस प्रदेश के खामती एवं मोमपा जनजाति के पास अपनी लिपि है परंतु शेष सभी जनजातियों में लिपि का अभाव है। लिपि की कमी के चलते जनजातियों के जीवन से जुड़े हुए सभी पहलुओ क संरक्षण अनादि काल से लोक ही कर रहा है। लिपि के अभाव में सभी जनजातियों के सुव्यवस्थित लोक साहित्य मौखिक रूप में ही विद्यमान हैं। इन लोक साहित्य में सृष्टि की उत्पत्ति मनुष्य की उत्पत्ति एवं विकास तथा तमाम प्रकृति की संरचना जीवन से जुड़े आचार, संहिता, समस्याएँ, नियम-कानून सारी वस्तुओं की जानकारी लोक साहित्य में मौजूद हैं। अरुणाचल प्रदेश का लोक-साहित्य बहुत समृद्ध एवं विस्तृत है।

न्यीशी जनजाति का सामान्य परिचय एवं उनका लोक साहित्य

अरुणाचल प्रदेश की प्रमुख जनजातियों में 'न्यीशी' जनजाति संख्या एवं क्षेत्रफल की दृष्टि से सबसे बड़ी है। इस जनजाति के लोग कुल पाँच जिलों में बसे हुए हैं। जिसमें ईस्ट कामेङ, पाक्के केसाङ, करा-दादी, कुरुङ कुमे, पापुम-पारे, कई पन्योर, उप्पर सुबनसिरी तथा असम के उत्तरी लखीमपुर के कुछ इलाके में बसे हुए हैं।

न्यीशी शब्द दो शब्दों के मेल से बना है, 'न्यी' और 'शी' 'न्यी' का अर्थ है 'मनुष्य' और 'शी' का अर्थ है 'संसार'। अर्थात संसार में बसे हुए मनुष्य को 'न्यीशी' कहते हैं। न्यीशी समाज में तीन तरह के मुख्य त्यौहार मनाये जाते हैं- न्योकुम-यूलो, लोड़ते-हाते और बूरी-यूलो। न्यीशी जनजाति में सबसे बड़े पैमाने पर न्योकुम युलो त्यौहार मनाया जाता है। इस अवसर पर मिथुन की बलि चढ़ाई जाती है और साथ ही अतङ अर्थात चावल का पाउडर तथा 'आपोङ, अर्थात स्थानीय पेय पदार्थ को चढ़ाया जाता है और सारे पुरुष 'बूया' नृत्य करते हैं। जिसे न्यीशी में 'बूया-ग्युमनाम' कहते हैं। न्यीशी जन स्वयं को 'आबोतानी' का वंशज मानते हैं। वे

'दोन्यी-पोलो' अर्थात सूर्य देवी एवं चंद्र देव की आराधना करते हैं। वे 'आने दोन्यी' को अपनी कुल देवी मानते हैं। इसलिए न्यीशी लोगों को 'अग्नि पुत्र' भी कहते हैं। न्यीशी लोक साहित्य का मूल रूप मौखिक साहित्य रहा है। यह पारंपरिक तौर पर लोक-जीवन का अभिन्न अंग है जो लोगों की जुबान और हृदय में रच बस गया है। इस लोक साहित्य में न्यीशी समाज के हर्ष-विषाद, सुख-दुख, प्रेम, विरह, यातनाओं और जीवन के अनुभवों की झांकी है, यह न्यीशी जनजाति के लोगों को दिशा दिखाती है। जैसे न्यीशी में यह कहावत बेहद प्रचलित है-

नो न्यीयाम काजे माब का
न्यी गे संङचा लो, भदर ऐ सले बे सले भदर बे रिदूने ॥

अर्थात किसी भी व्यक्ति को कमजोर नहीं समझना चाहिए। जैसे नदी में कहीं ठहराव रहता है और कहीं बहाव। उसी प्रकार व्यक्ति का जीवन भी उथल-पुथल से भरा हुआ रहता है।

न्यीशी लोक गाथा का स्वरूप

गाथा का अर्थ है गाकर कही जाने वाली कथाएँ। न्यीशी में लोक गाथा को सामान्य तौर पर 'न्यीतिङ बिमिन या न्यीतिङ बरनाम' कहते हैं न्यीशी लोक गाथा मुख्यतः 'कथात्मकता' गेयता तथा लोक मानवीय तत्त्वों से संबद्ध श्रुत परंपराओं पर आधारित न्यीशी लोक समाज भावाभिव्यक्ति का साधन है। इसमें लोक कथाओं का पद रूप रहता है। यह न्यीशी लोक गाथाएँ किसी एक व्यक्ति की रचना न होकर समूह की कृति है। यह चिरकाल से वेदों की भाँति मौखिक परंपरा में जीवित है। न्यीशी समाज अधिकांश लोकगाथाओं द्वारा ही अपने पूर्वजों एवं पारंपरिक रीति-रिवाजों से अवगत होते आ रहे हैं। न्यीशी लोक गाथाओं में उपदेश निहित रहते हैं जो कि मनुष्य को समाज के बंधन में बँधे रहने में सहायता करते हैं।

न्यीशी लोकगाथाओं में निहित संवेदना

न्यीशी लोकगाथाओं का वर्गीकरण करते समय यह ध्यान में रखना चाहिए कि वह क्रमिक एवं सुसंबद्ध हो। इन लोकगाथाओं को कई पक्षों में रखकर देख सकते हैं :-

ऐतिहासिक लोकगाथाएँ-

न्यीशी समाज में अनेक ऐसी लोकगाथाएँ हैं, जो यहाँ की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालती हैं। इसमें पृथ्वी की संरचना से लेकर आबोतानी के द्वारा स्थापित सामाजिक व्यवस्था के बारे में जानकारी प्राप्त होती है। इसमें आबोतानी और उनके वंशजों के ऐतिहासिक मानवीय संबंधों का वर्णन मिलता है। न्यीशी समाज की ऐतिहासिक लोकगाथाओं में निम्नलिखित गाथाएँ अधिक प्रचलित हैं :- 'आतर'

डो दोमा डो दोमा, हुगू काम दोमा
हुगू काम दोमा
ताकर तासे अ हुगू ते काम दोमा के,
डूलगे मङनाम सी आतू गे सी दोकी ते दोनो
सोगे आतर सी आने, ग दोन्यी के आतर अ।
आने गे आतर टूरकी हो,
डा के पटर चूरकी लो।

प्रस्तुत लोकगाथा में लोकगायिकाओं ने सृष्टि का सर्जन शून्य से माना है। और कहते हैं सर्वप्रथम (सूर्य

देवी) आने दोन्यी का निर्माण हुआ था आने दोन्यी ही ऊर्जा का केंद्र है। इसी से सृष्टि के प्रत्येक जीवों को ऊर्जा शक्ति प्राप्त होती है।

माँ-बेटी से संबंधित लोकगाथाएँ

माँ-बेटी के संबंधों को भी एक रुदन गाथा के रूप में गाया जाता है। जिसे 'न्यीमे काबनाम' कहते हैं। इसमें माँ बेटी के विवाह के अवसर पर परिवार से बिछड़ने पर अपने ममतामय स्वर में बेटी को विदाई देते हैं। न्यीमे काबनाम में बेटियां अपनी बेटी होने पर माँ से लाचारी एवं क्षोभ व्यक्त करती हैं। वह कहती हैं:

दुमदङ ने ङो

दुमदङ ने ङो न्योदङ ग सोरङग
ङो दोगे मङला सी मङतुला
आने दोरी गो बूता सी मातुला आबू हीला गो पाता सी मातुला।

इस गाथा के द्वारा एक लड़की अपने दर्द को करुण रुदन के रूप में व्यक्त करती है। जहाँ वह अपने ही परिवार में मेहमानों की तरह रहती है और एक दिन विवाह के समय विदा होकर चली जाती है।

न्यीशी लोक गाथाओ में व्यक्त अंह के प्रति आक्रोश

अंहकर का परिणाम हमेशा विनाशकारी ही होता है। न्यीशी जनजाति में यह मानयता है कि अंह का नाश करने के पश्चात ही व्यक्ति सुखद जीवन व्यतीत कर सकता है। यह अंहकार भाई-भाई के बीच दरार उत्पन्न कर सकते हैं। प्रस्तुत लोकगाथा में इस बात पर जोर दिया गया है-

'आबङ कोरो को माकुमा अ बुरू कोरोको मान्यूमा'
बूरु कोरोको मान्यूम अ आने कोरोको लरिङ अ

न्यीशी लोकगाथा में व्यक्त नैतिक शिक्षा

अमूमन प्रत्येक लोकगाथाओं में कोई न कोई पाठ अवश्य निहीत रहता है। न्यीशी लोकगाथाओं में कई ऐसी गाथाएँ हैं, जिसमें से नैतिक ज्ञान प्राप्त होता है। जिंदगी में सही रास्ते पर चलने के लिए अपने माँ-बाप की सिखाई गई बातों को न मानना किस प्रकार हानिकारक होता है, यह प्रस्तुत लोकगाथा में व्यक्त किया गया है।

'लङरुम बरजीक'
नामपिङ पोरिङ गे दूगू लीनामें,
आमपोङ दूकू रे नमङ दूकू रे।

इसमें यह दर्शाया गया है कि किस प्रकार माँ-बाप की बातों का उल्लंघन करने पर वह बच्ची एक भयानक मृत्यु को प्राप्त हो जाती है। यह माना जाता है कि नदी, झरने और तालाबों में भी 'उयू' (भूत) बसते हैं, जो इंसानों को खा जाते हैं। यह कहानी है उस बच्ची को जो प्रतिदिन नदी में जाकर मछलियाँ एवं झींगा पकड़ती थी और एक दिन उसी नदी के प्रेत ने उसे पत्थरों में कैद कर लिया और धीरे-धीरे नदी की मछलियों ने उस बच्ची के शरीर को खा लिया।

न्यीशी लोक गाथाओं में न्यीशी जनजाति की उत्पत्ति से लेकर वंश परंपरा को क्रम से मुखरित किया जाता है और साथ ही जीवन के मूल्यों के बारे में भी समझाया गया है। यह पारंपरिक तौर पर लोक-जीवन का

अभिन्न अंग है। जो लोगों की जुबान और हृदय में रच-बस गया है। यह लोकगाथाएँ न्यीशी समाज के हर्ष-विषाद सुख-दुख, प्रेम, पीड़ा, यातनाओं और जीवन के अनुभवों को दर्शाती हैं। न्यीशी समाज के विकास-क्रम में अनेक परिवर्तन हुए, परंतु इनके स्वरूप में अधिक परिवर्तन नही हुआ है। आज आधुनिकीकरण अन्य चुनौतियों एवं हस्तक्षेप के कारण इनको संरक्षित एवं संवर्धित करना हमारा अनिवार्य दायित्व बन गया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

सिंह, धर्मराज. (1990). *अरुणाचल की आदी जनजाति का समाजभाषिकी अध्ययन*. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन. पृ.-30

परमार, वीरेंद्र. (2009). *अरुणाचल के आदिवासी और उनका लोकसाहित्य*. नई दिल्ली: राधा पब्लिकेशन. पृ.- 41

शर्मा, हरीश कुमार. (2012). *भाषा संस्कृति और साहित्य*. नई दिल्ली: अनंग प्रकाशन. पृ.-80

नाबाम, जोराम यालाम. (2014). न्यीशी जनजाति का समाजभाषिक अध्ययन. असम: विजय भारती प्रकाशन. पृ. 111

*(**लेखकीय परिचय :** डॉ. डूरी शांति देरा नातुङ शासकीय महाविद्यालय, ईटानगर, अरुणाचल प्रदेश के हिंदी विभाग में सहायक प्रोफेसर हैं। मोबा: 9774549899, ई-मेल : ngurishanti1@gamil.com)*

(भीतरी पाट से)

गालो लोककथा की प्रासंगिकता

गोरिक अतअ

अरुणाचल प्रदेश पूर्वोत्तर का सबसे बड़ा भूभाग वाला भारतीय संघ राज्य है। यह भारत के मानचित्र पर अंतरराष्ट्रीय सीमा से जुड़ा है। "अरुण किरण शीश भूषण कठं हिम की धारा, प्रभात सूरज चुंबित देश अरुणाचल हमारा" बहुमुखी प्रतिभा संपन्न स्वर्गीय भूपेन हजारिका का यह गीत अरुणाचल प्रदेश के परिचय के लिए पर्याप्त है। इस प्रदेश को प्रातःकाल भगवान भास्कर अपनी स्वर्ण किरणों से आलिंगन कर आशीष देते हैं। अरुणाचल प्रदेश जनजातीय प्रदेश है। इसमें कुल 26 जनजातीय समुदाय निवास करते हैं, जिनकी अपनी उपजनजातियों की संख्या गिना जाए तो 100 से भी अधिक हैं। इन आदिवासी समुदायों के रीति रिवाज, संस्कृति, परंपरा, भाषा, उत्सव में पर्याप्त भिन्नता है। इस प्रदेश में लगभग 50 से अधिक भाषाएँ बोली जाती हैं। इन जनजातियों का लोक-साहित्य वाचिक परंपरा में समृद्ध रूप से सुरक्षित है। इस राज्य की प्रमुख जनजतियाँ हैं-आदी, न्यीशी, गालो, मोनपा, वाँचो, खामटि, नोक्टे आदि।

अरुणाचल प्रदेश के विभिन्न जनजातियों में से गालो एक ऐसी जनजाति है जो 'वंशावली' परंपरा को दृढ़ रूप से अपनाए हुए है और इससे वे अपने पूरे वंश की जानकारी रखते हैं। गालो आबोतानी को अपना पूर्वज मानते हैं। गालो मुख्य रूप से पूर्वी सियांग, लपारादा, लोअर सियांग, ऊपरी सुबनसिरी, नामसाई आदि जिलों में बसे हुए हैं। वे इन जिलों के 'दोलू' यानी गांव में खेती पर निर्भर होकर, जीवन यापन करते है। अब बदलते जमाने के साथ पढ़ाई-लिखाई कर नौकरी करने के साथ-साथ खेती भी करने लगे हैं। आश्चर्य की बात यह है कि उनका अपना लिखित नीति-नियम के न होते हुए भी वे गांव में व्यवस्थित रहते हैं। अपने पूर्वजों के सिखाए नीति-नियम को वर्तमान युग में भी अपनाए हुए हैं। गालो समाज सांस्कृतिक रूप से संपन्न एवं समृद्ध समाज है और उनकी संस्कृति और परंपरा का स्रोत उनका मौखिक लोक साहित्य है। गालो जनजाति का लोक साहित्य समृद्ध है। लोक साहित्य की महत्त्वपूर्ण विशेषता उनकी वाचिकता है। वर्तमान में इनको लिपिबद्ध किया जा रहा है। गालो जनजाति के हर्ष-विलास, दु:ख-सुख, रीति-रिवाज, नीति-नियम, परंपरा, संस्कृति आदि पूर्णतया लोक साहित्य में समाहित है।

आधुनिक वैज्ञानिक सभ्यता की जीवन पद्धति जटिल, मानसिक कष्टों, ज्ञानजन्य अहंकारों, अतिवादी पांडित्य तथा वर्ग-संघर्ष की कहानियों से भरी हुई है। यह एक ऐसी सृष्टि है जिसकी सत्ता पोथियों के ज्ञान पर टिका हुआ नहीं है। इस दुनिया के लोग गीतों के लय और ताल पर झूमते हैं, कथाओं और गाथाओं के प्रभाव में बिना रूके आगे बढ़ते जाते हैं और स्वस्थ समाज की कामना करते हैं। पहेलियों और लोकोक्तियों में सृजित राह को अपनाते हुए वे अपनी वाग्मिता और प्रज्ञा से आधुनिक ज्ञान और दृष्टिकोण तक को चुनौती देते हैं। यह संस्कृति लोक देवी-देवताओं के चरणों में विभिन्न विश्वासों, भावनाओं, अनुष्ठानों, शकुन-अपशकुनों, तीज-त्योहारों इत्यादि माध्यम से ग्रहणीय बनी हुई है। यह समाज अपने सामान्य जीवन को हंसते-गाते, नाचते-झूमते,

रीझते-खीझते, खेलते-मिलते पूरा करता आया है। जंगल में खिलने वाले फूलों की तरह ये 'सृष्टि' उनके लिए सुंदर, स्वाभाविक और सहज है। यह लोक सच्चे अर्थों में जनमानस में लोकप्रिय है। यह अधूरा सत्य है कि आदिवासी लोग जिस लोककथा को मानते हैं वह उनके अशिक्षित, अर्धशिक्षित, सभ्य, अर्धसभ्य इत्यादि कहलाने का पर्याय है।

लोक साहित्य मौखिक अभिव्यक्ति है। लोक साहित्य में मानव जीवन के सभी पहलुओं का सजीव चित्रण होता है, जिसमें मानव जीवन की आशा-आकांक्षा, हर्ष-वेदना, जय-पराजय सुख-दुख आदि सम्मिलित होते हैं। मानव जाति की इन विशेषताओं को अभिव्यक्त करने का माध्यम ही लोक साहित्य है। लोक साहित्य की प्रमुख विधा है- लोकगीत, लोक कथा, लोक नृत्य, लोकनाट्य, लोकोक्ति एवं मुहावरे आदि। लोककथा शिक्षित एवं अशिक्षित दोनों ही प्रकार के समुदाय की परंपरागत मौखिक संपत्ति है। लोक कथा एक मौखिक अभिव्यक्ति है। लोक कथाओं के माध्यम से जनता अपने समाज की मान्यताओं, विश्वास एवं भावनाओं आदि को प्रकट करती है। अतः लोक कथाओं में समाज की मान्यताएं, विश्वास परंपरा आदि परिलक्षित होते हैं लोक कथाओं में जीवन के सभी पहलुओं का सजीव चित्रण होता है। लोककथा अपनी सरलता और सहजता के कारण जनमानस में लोकप्रिय है। लोककथा को अपनी वसीयत के रूप में अपनाते हुए आज भी दादी मां अपने गोद में पोते-पोतियों को बिठा कर लोककथा सुनाती है, माएं अपने बच्चों को सुलाते वक्त लोककथा कहती हैं। इस प्रकार लोक कथाएँ एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी और दूसरी पीढ़ी से तीसरी पीढ़ी हस्तांतरण होती आगे बढती हैं।

गालो लोग गांव में निवास करते हैं। गालो समाज के गांव में अधिकतर एक ही गोत्र के लोग निवास करते हैं और किसी-किसी गांव में भिन्न गोत्र के लोग निवास करते हैं। एक ही गोत्र के हों या भिन्न गोत्र के, सबकी जीवन शैली एक समान है, उनमें भिन्नता दिखाई नहीं देती। गालो जनजाति प्राचीन काल से चली आ रही परंपरा को अंगीकार किए हुए है। गालो लोक कथा- तपो और याकि और दियी तामी रोसी तामी के माध्यम से हम इनकी संस्कृति एवं सभ्यता को आसानी से समझ सकते हैं।

तपो और याकि

इस लोककथा में आबोतानी तपो (सूअर) और याकि (कुत्ता) दोनों को अपने घर का सदस्य बनाकर साथ रखता था। एक दिन आबोतानी घर में जगह की कमी महसूस करता है। वह दोनों में से एक को घर के ऊपर अपने साथ और दूसरे को घर के नीचे रखने का निर्णय लेता है। आबोतानी दोनों की परीक्षा लेने के लिए है, खेत जोतने का कार्य सौंपता है। स्वयं हिरण का शिकार करने जंगल की ओर निकल पड़ता है। तपो जब भी काम करता है मन लगाकर कार्य को पूरा करता। याकि उसका विपरीत था। आज भी तपो तपती धूप में पसीने से तर-बतर होकर खेत जोत रहे था, याकि आराम से नाकुम में सो रहा था। अपना ही परिवार समझ कर तपो अकेले ही खेत जोतता है। शाम हो गई तानी का लौटने का समय था, याकि को तानी की परछाई नज़र आती है। तुरंत उठकर थका हारा तपो को हाथ मुंह धोकर आराम करने की सलाह देता है। नादान तपो को याकि की मंशा से अनजान हाथ मुंह धोने चला गया, तभी याकि अपनी चाल चलता है। तपो द्वारा जोते गए खेत को अपने पैरों के

निशान से भर देता है, तानी उन पैरों के निशान को देखकर ही निर्णय लेता है कि उसके साथ घर में याकि रहेगा और नीचे तपो।

इस लोककथा में तपो वर्तमान युग के उसे वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है जो अपने आपको समाज का हितरक्षक है, मगर उसे मेहनत का फल नहीं मिलता और याकि समाज के उस वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है जो कामचोर है, आलस्य से घिरा है, मगर स्वार्थी और मौकापरस्त बहुत है। याकि उन लोगों में से हैं जो मेहनत किए बिना फल की आशा करता है। फल की लालसा में ऐसे लोग अपने और पराए का ख़याल नहीं रखते। वे कहीं भी किसी भी मोड़ पर धोखा दे देने से बाज नहीं आते। आज के जमाने में ऐसे अनेक लोग हैं जो अपनी चाल से दूसरे के हक को मार लेते हैं, किंतु उन्हें कोई पछतावा नहीं होता है। जैसे तपो को याकि ने धोखा दिया।

याकि के पैरों के निशान दिख गया तो उसको उसका फल मिल गया और तपो मेहनत करके भी निष्फल साबित हुआ। कहानी में तपो के माध्यम से यह दर्शाया गया है कि आपको मेहनत करने के साथ-साथ उसे उचित समय पर दिखाना और साबित करना भी होगा। तपो के जैसा चुप नहीं बैठना चाहिए, बल्कि अपने हक के लिए आवाज उठाना भी आना चाहिए। उस वक्त तपो आबोतानी को सच्चाई बता देता तो आज याकि की जगह तपो होता।

दियी तामी रोसी तामी

आबोतानी और दियी तामी की शादी के बाद उसकी माँ आने मोपिन अपनी बेटी को अलौकिक शक्ति प्रदान करती है। उस अलौकिक शक्ति से नवविवाहित यह जोड़ी खुशीपूर्वक अपना जीवनयापन करते हैं। उस अलौकिक शक्ति में ऐसा गुण था कि दियी तामी एक ही अनाज के दाने से बर्तन भर भोजन पका लेती थी। कुछ समय पश्चात तानी का दिल एक गरीब की बेटी रोसी तामी पर आ गया और वह उसे ब्याह कर घर ले आया। दियी तामी अपने ऊपर हो रहे इस अन्याय का विरोध करती है। उसे किसी भी हाल में सौतन स्वीकार नहीं थी। इसीलिए तानी को छोड़ वह अपने मायके लौट जाती है। अब घर-परिवार की जिम्मेदारी रोसी तामी के ऊपर आ जाती है। मगर रोसी तामी को घर संभालने नहीं आ रहा था। वह एक अनाज के दाने की जगह दो दाने डालकर भोजन पकाती है, जिससे आबोतानी गरीब हो जाता है। आबोतानी को अपनी पहली धर्मपत्नी दियी तामी की कमी महसूस होती है। इसीलिए वह उससे माफी मांगकर उसे इज्जत के साथ घर वापस ले आता है और रोसी तामी को त्याग देता है।

आने मोपिन को अपनी दियी तामी बेटी प्रदान करने का आशय यह है कि आज के युग में माँ-बाप अपनी बेटी को किसी भी परिस्थिति का सामना करने में सक्षम बनाते हैं- चाहे उसे शिक्षित करना हो या अन्य कला में प्रवीण बनाना। आने मोपिन अपनी बेटी को परिवार का भरण-पोषण करने की शक्ति देती है। इस कथा में दियी तामी आधुनिक युग के उन औरतों की प्रतिमूर्ति है जो अपने हक के लिए खड़ी होती है और किसी से दबकर नहीं रहती अर्थात् अपने साथ हो रहे अन्याय का हिम्मत से विरोध करती है। दियी तामी उस स्त्री का प्रतिनिधित्व करती है जो अपने घर में अपनी मौजूदगी दर्ज करती है और जिसके न होने पर घर बेघर हो जाता है। दियी तामी घर को सँभालने में प्रवीण थी। इसलिए आबोतानी उसके महत्त्व को भली-भांति समझ लेते हैं और उसे वापिस लिवा लाते हैं।

साहित्य सभी के कल्याण और हित का आग्रही होता है तथा इसमें हर युग का अक्स नज़र आता है। गालो समाज ग्रामीण जीवन जीते हुए भी हर युग के साथ अग्रसर है। बदलते युग के साथ-साथ समाज की जीवन शैली भी बदलती जाती हैं। मगर लोक साहित्य नहीं बदलता, इसमें हर युग को ग्रहण करने की क्षमता होती है। तपो और याकि एवं दियी तामी और रोसी तामी गालो लोककथा में आधुनिकता का अक्स दिखता है।

संदर्भ ग्रंथ :

डूसो, गुम्पी. (2021). *यापोम: गालो लोक कथाएँ*. नई दिल्ली: अनुज्ञा बुक्स.

लिली, तुम्बम रीबा. (2020). *कातम: अरुणाचल प्रदेश की जनजातियों की लोककथाएँ*. नई दिल्ली: अनुज्ञा बुक्स.

साक्षात्कार

न्युमतो न्योराक, ञोराक ग्राम, पूर्वी जिला आलो, अरुणाचल प्रदेश

मेमा चेरी, सहायक प्रोफेसर, शासकीय महाविद्यालय, देरा नातुङ, अरुणाचल प्रदेश

*(**लेखकीय परिचय** : गोरिक अतअ राजकीय महाविद्यालय दोईमुख, अरुणाचल प्रदेश के हिंदी विभाग में सहायक प्रोफेसर हैं। मोबा: 7005881308, ई-मेल : gorikgcs@gmail.com)*

मोनपा भाषा का हिंदी भाषा के परिप्रेक्ष्य में अध्ययन

सोनाम वाङ्गू

क्षेत्रफल की दृष्टि से पूर्वोत्तर भारत का सबसे बड़ा राज्य अरुणाचल प्रदेश है। यहां मुख्यतः 26 समुदायों का वास है। यह एक बहुभाषी राज्य है। यहां समुदायों के नाम के आधार पर भाषाओं का नामकरण हुआ है। सभी सामुदायिक भाषाओं की कोई लिपि नहीं है, सिवाय मोनपा समुदाय और खामती समुदाय के। मोनपा समुदाय जहाँ भोटी लिपि (Bhoti script) को अपना रहे हैं, वहीं खामती समुदाय ताई लिपि (Tai script) अपना रहे हैं। दोनों ही समुदाय बौद्ध धर्मी हैं। खामती समुदाय जहां हीनयान संप्रदाय से है, वहीं मोनपा समुदाय महायान संप्रदाय से। इसके अलावा अरुणाचल में मेम्बा समुदाय भी महायान संप्रदाय से हैं और सिङफो समुदाय भी हीनयान संप्रदाय से हैं। इन सभी समुदायों में प्राचीन समय से दोनों तरह की लिपियों का प्रयोग बौद्ध ग्रंथों के अध्ययन हेतु किया जाता रहा है। इस कारण खामती समुदाय में भंते ही इस ताई (Tai) लिपि का प्रयोग करते हैं। वहीं मोनपा समुदाय में भी भिक्षु और भिक्षुणी ही यानी लामा और आनी ही भोटी लिपि का प्रयोग करते हैं। प्राचीन समय में शिक्षा का आधार धर्म ही रहा है। इस कारण बौद्ध धर्म के प्रवेश के साथ ही इन लिपियों का प्रवेश भी इन समुदायों में हुआ है। धर्म से संबंधित कार्यों और ग्रंथों को वर्तमान में भी इसी भोटी लिपि एवं ताई लिपि का ही प्रयोग करके पूजा विधि संपन्न की जाती है। इस कारण भंते, भिक्षु, भिक्षुणी तक ही सीमित होकर रह गई हैं। डॉ. ग्रियर्सन ने इन भाषाओं को तिब्बती-बर्मी परिवार के वर्ग से माना है। एक भाषा परिवार की भाषाओं में भी बहुत भिन्नता है। संसार के प्रत्येक प्राणी और जीव की अपनी वाणी है, अपनी भावनाएं हैं। जब भावनाओं का ज्वार फूटता है, तो वाणी से शब्दों का प्रवाह खुद निकलता है। संसार में सभी जीवों से मानव श्रेष्ठ जीव है। उसने अपनी बुद्धि का प्रयोग करते हुए शाब्दिक भाषा का विकास किया। इस प्रकार भाषा प्रतीकात्मकता से विकसित होते हुए मौखिक, संकेत, लिखित, ब्रैल व ऑनलाइन तक आ पहुंची। संस्कृत से जन्मी भारत की सभी भाषाएं बहनें हैं, किंतु जिस भाषा को राजभाषा और राष्ट्रभाषा का पद दिया गया उसका सम्मान करना हर भारतवासी का कर्तव्य होना चाहिए। क्योंकि कोई एक भाषा अपने देश के गौरव का प्रतिनिधित्व करते हुए देश की सांस्कृतिक संवाहिका बन सकती है और यह भाषा बनी हिंदी। हिंदी मात्र दस राज्यों (उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, राजस्थान, हरियाणा, बिहार, दिल्ली, छत्तीसगढ़ और उत्तराखण्ड) की भाषा नहीं, अपितु हिंदी पूरे देश की भाषा है, जिसे संपर्क भाषा कहना अनुचित नहीं। भाषा समाज की अमूल्य वस्तु है उसका प्रारंभ भी तभी हुआ होगा जब समाज का। भाषा से मनुष्य का अंत: संबंध है। वह एक संप्रेषण का माध्यम है। भाषा का अर्थ ही बोलना या कहना होता है। अर्थात जिसे बोला जाए वह भाषा है। भाषा ही जातीय और क्षेत्रीय अस्मिता को बनाए रखती है। गांधी जी मानते थे कि किसी देश का व्यक्तित्व अपनी भाषा से ही बनता है, किसी विदेशी भाषा से नहीं। भाषा एक ऐसा सशक्त साधन या माध्यम है, जिसके द्वारा व्यक्ति और व्यक्ति तथा व्यक्ति और समुदाय में संवाद की प्रक्रिया कायम होती है।

बोली भाषा का सर्वाधिक सीमित व लघु रूप होता है, यह एक छोटे से क्षेत्र के मुख्य रूप से घरेलू बोलचाल की भाषा होती हैं। स्थान के अनुसार बोली के कई भेद हो जाते हैं, जिनमें थोड़ा बहुत अंतर होता है।

जब कोई बोली धार्मिक श्रेष्ठता अथवा भौगोलिक विस्तार के कारण किसी प्रांत या उप प्रांत में प्रचलित हो जाती है, तब उसे विभाषा या उपभाषा कहते हैं। यह एक प्रदेश के विशाल भाग में सामान्य बोलचाल, सांस्कृतिक व धार्मिक कार्यक्रमों में प्रयुक्त होती है। किसी प्रदेश में प्रयुक्त होने वाली कोई विभाषा ही उन्नति करते-करते भाषा अर्थात परिनिष्ठित या साहित्यिक भाषा का पद प्राप्त कर लेती है। जैसे हिंदी में खड़ी बोली मेरठ, बिजनौर आदि की भाषा होते हुए भी साहित्यिक पद पर प्रतिष्ठित हुई और राष्ट्रीय स्तर पर स्वीकृत होने के कारण राष्ट्र पद पर भी अधिष्ठित हुई है। एक भाषा क्षेत्र में कई विभाषाएं होती हैं या हो सकती है। जैसे उत्तर प्रदेश के हिंदी भाषी क्षेत्र में खड़ी बोली, ब्रज, अवधी, बुंदेली, भोजपुरी आदि विभाषाएं हैं। इन सभी को मिलाकर हिंदी भाषा क्षेत्र बना है।

विभाषा के लिए आवश्यक नहीं है कि उसमें उच्च स्तर के साहित्य की रचना हुई हो या होती हो। बोली और विभाषा का मूल अंतर क्षेत्र के विस्तार का होता है। बोली एक सीमित क्षेत्र में और विभाषा अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत क्षेत्र में प्रयुक्त होती है। एक विभाषा के क्षेत्र में कई ऐसी बोलियां बोली जाती है, जिनके बोलचाल के रूप में परस्पर थोड़ा-सा अंतर होता है। विभिन्न विभाषाओं में से जब कोई एक भाषा अपने गुण, गौरव, साहित्यिक अभिवृद्धि आदि के दृष्टि से काफी उन्नत और परिमार्जित हो जाती है, तब वह भाषा के पद पर प्रतिष्ठित हो जाती है, तब वह भाषा संज्ञा प्राप्त करती है।

भाषा की परिभाषाओं के आधार पर हिंदी भाषा की जो प्रक्रिया है, वही मोनपा भाषा के लिए भी प्रयुक्त होती है। मोनपा बोली भी एक घरेलू बोल चाल की भाषा के आधार पर तावांग ज़िले में ही मॉगो मोनपा, पाङचिन मोनपा और तावांग मोनपा का प्रयोग होता है। इन तीनों क्षेत्रों की मोनपा बोलियों में थोड़ा बहुत अंतर होता है, इसी के साथ मोनपा बोली को भौगोलिक विस्तार और उनकी भाषा में भिन्नता के कारण छ: उपसमूह में विभाजित किया जा सकता है। इनमें प्रमुख रूप से तावांग मोनपा के साथ, दिरांग मोनपा, लिश मोनपा, भूट मोनपा, खलाकताङ मोनपा और पाङचिन मोनपा आदि हैं। इन सभी की बोलियां मोनपा बोली के रूप में विकसित होकर एक प्रदेश के विशाल भाग में सामान्य बोलचाल, सांस्कृतिक व धार्मिक कार्यक्रमों में प्रयुक्त होकर धीरे-धीरे भाषा की श्रेणी में स्थान प्राप्त कर रही है। मोनपा बोली भी धार्मिक श्रेष्ठता और व्यापक होकर यह एक विभाषा के रूप में स्थान पा लेता है। ये विभाषा एक प्रदेश के विशाल भाग में सामान्य बोलचाल, सांस्कृतिक व धार्मिक कार्यक्रमों में प्रयुक्त होती है। यही विभाषा ही उन्नति करके आज वर्तमान अरुणाचल प्रदेश में एक भाषा के रूप में विकसित हुई है, जो संपूर्ण तावांग ज़िले के साथ पश्चिम कामेङ ज़िले के दिराङ, कलाकताङ, लिश और भूट अंचलों में बोली जाती हैं। जिस तरह उत्तर प्रदेश के हिंदी भाषी क्षेत्र में खड़ीबोली, ब्रज, अवधी, बुंदेली, भोजपुरी आदि विभाषाएं हैं। इन सभी को मिलाकर विशाल हिंदी भाषा क्षेत्र बना है, ठीक उसी तरह मोनपा भाषा में भी मागो मोनपा, पाङचिन मोनपा, तावाङ मोनपा, दिराङ मोनपा, कलाकतांग मोनपा, लिश मोनपा, भूट मोनपा आदि विभाषाएं हैं। इन सभी को मिलाकर मोनपा भाषा क्षेत्र विशाल बना है। पाङचिन मोनपा अर्थात ज़िमिथाङ वाले क्षेत्रों की मोनपा बोली में उत्तर-पूर्वी भूटान की भाषा का प्रभाव है जिसे 'दकपा नेङपा केत' कहा जाता है। तावाङ क्षेत्र के मोनपा बोली में शब्दों का प्रयोग शुद्ध रूप में है, वहीं मागो क्षेत्र के मोनपा बोली में दक्षिणी तिब्बतीयन शब्दों का प्रयोग ज़्यादा है। वह मोनपा एवं तिब्बतीयन के मिश्रित शब्दों का प्रयोग ज़्यादा करते हैं। उसी तरह दिराङ मोनपा की बोली पर बोरो और छङला /त्सङला (Tsangla) भाषा का

प्रभाव है। मोनपा भाषा पर खासकर तिब्बतीयन, भूटानी और संस्कृत शब्दों का प्रभाव ज़्यादा है। इस कारण मोनपा भाषा का शब्द भंडार अत्यंत व्यापक है।

हिंदी भाषा एवं मोनपा भाषा का अध्ययन हम निम्नलिखित बिंदुओं के आधार पर कर सकते हैं-

वर्णमाला के आधार पर :

मोनपा भाषा के स्वर-

स्वत: उच्चरित ध्वनियां स्वर हैं। स्वर उन वर्णों को कहते हैं, जिनका उच्चारण स्वतंत्रता से होता है और जो व्यंजनों के उच्चारण में सहायक होते हैं। हिंदी भाषा में मूल रूप से ग्यारह स्वर होते हैं। ग्यारह स्वर के वर्ण अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ए, ऐ, ओ, औ आदि। जबकि मोनपा समुदाय की भाषा में चार स्वर होते हैं। चार स्वर के वर्ण इ, उ, ए, ओ आदि। इनका प्रयोग ध्वनि ग्रामिक स्तर पर होता है। ये स्वर समान ध्वन्यात्मक परिवेश एवं स्वल्प अंतर युग्मों में अर्थभेदक हैं। इनमें इ, उ, ए, ओ प्रमुख हैं। इस भाषा में संयुक्त स्वर में दीर्घ रूप ऐ, औ प्रचलन में नहीं है। ह्रस्व स्वर इ, उ दीर्घ स्वर ए, ओ का प्रचलन है। मूल स्वरों का ह्रस्व एवं दीर्घ रूप प्रारंभ, मध्य एवं अंत में प्रयुक्त होता है। संयुक्त स्वरों का दीर्घ रूप ऐ, औ का अभाव है। संयुक्त स्वरों का ह्रस्व रूप प्रारंभ, मध्य एवं अंत में उपलब्ध होता है। तत्सम स्वर ऋ के ह्रस्व एवं दीर्घ दोनों रूपों का अभाव है। उपलब्ध समस्त स्वर स्वतंत्र रूप में एवं व्यंजनों के साथ प्रारंभ, मध्य एवं अंत में व्यवहृत होते हैं।

मोनपा भाषा के व्यंजन-

व्यंजन ध्वनियां स्वत: उच्चरित नहीं होती हैं। इनके उच्चारण में स्वरों का सहयोग अपेक्षित है। व्यंजन वे वर्ण हैं जो स्वर के सहायता के बिना नहीं बोले जा सकते। हिंदी भाषा में कुल 39 व्यंजन होते हैं, जिनमें 33 व्यंजन मानक हिंदी व्यंजन होते हैं, चार संयुक्त व्यंजन (क्ष, त्र, ज्ञ, श्र) होते हैं। क से ज्ञ तक 36 अक्षर होते हैं। मोनपा भाषा में इनकी संख्या 30 है। उच्चारण, प्रयत्न, स्थान के आधार पर इनका स्वरूप विवेच्य है-

क (ka) ख (kha) ग (g) ङ (Nga)
च (cha) छ (chha) ज (ja) ञ (Nya)
त (ta) थ (tha) द (da) न (na)
प (pa) फ (fa) ब (ba) म(ma)
च (cha) छ (chha) ज (dza) व (wa)
ज्ह (zha) ज़ा (za) आ (a) य (ya)
र (ra) ल (la) श (sha) स (sa)
ह (ha) आ (a)

प्रत्येक चार-चार वर्णों का समूह व्यंजन है। स्पर्श ध्वनियों के समूह में यानी क से लेकर म तक में –

'क' वर्ग में 'घ' ध्वनि का अभाव

'त' वर्ग में 'ध' ध्वनि का अभाव

'प' वर्ग में 'भ' ध्वनि का अभाव है।

च, छ, ज, व, ज्ह, की जगह अतिरिक्त ध्वनि का प्रयोग होता है, जो हिंदी व्यंजनों में नहीं हैं। मोनपा भाषा में 'ट' वर्ग में (ट, ठ, ड, ढ, ण) की ध्वनियों का अभाव है। अनुनासिक व्यंजनों में ङ एवं ञ का प्रयोग ज़्यादा होता है। अर्द्ध स्वर 'य' और 'व' दोनों का प्रयोग है। संयुक्त अक्षर क्ष, त्र, ज्ञ, का अभाव है।

वाक्य विन्यास के आधार पर :

मोनपा भाषा में संज्ञा-

भाषिक संरचना की प्रक्रिया में संज्ञा रूप तालिका एवं क्रिया रूप तालिका किसी भी भाषा का मेरुदण्ड हुआ करती है। ज्यों-ज्यों व्यक्ति का विकास होता चलता है, परस्पर संपर्क संस्थाओं के निर्माण एवं तकनीकी, ज्ञान-विज्ञान, उद्योग जैसे संदर्भों से जुड़कर संज्ञा पदों की संख्या व्यक्ति की बोली स्तर पर बढ़ती जाती है। अंग्रेजी की क्षेत्रीय प्रचलन, सरकारी कामकाज में उसका व्यवहार एवं शिक्षा संस्थाओं में अभिव्यक्ति के धरातल पर उसके प्रयोग के कारण ऐसी संज्ञा शब्दावली भी यहां परस्पर संपर्क एवं संक्रमण के कारण प्रयुक्त होती दिखाई पड़ती है। यह अनुकरणमूलक प्रवृत्ति के कारण क्षेत्रीय संदर्भों से जुड़ी हैं जैसे- टी.वी, फोन, पेंसिल, बस, अलमारी, स्टेशन आदि। इसी तरह हिंदी भाषी क्षेत्रों में प्रचलित नाम सूचक शब्दावली को लिया जा सकता है, जो प्रवासी हिंदी भाषियों के कारण यहां पहुंचती है तथा उसी रूप में आज प्रयुक्त है। कहीं ध्वन्यात्मक परिवर्तन के साथ इन संज्ञाओं का प्रयोग अपनी उच्चारणगत विशिष्टता का बोध कराता है, यथा –

हिंदी भाषा	**मोनपा भाषा**
समोसा	समोसा
छोले	छोले
करेला	करेला
भिण्डी	बिन्डी
दाल	दल
आम	अम
गाजर	गाजर
पपीता	पपीता आदि।

संज्ञा को बताने वाले स्वर के अंत एवं व्यंजन के अंत दोनों संदर्भों के अनुकूल प्रयोग होता है। संबंधसूचक शब्दावली सांस्कृतिक अवस्था पर प्रकाश डालती है। जहां बुआ, फूफी, सासू, मामी सबके लिए एक ही शब्द प्रचलित है और वह है 'अन'। इसी तरह संज्ञा का व्यवहार 'अइ' नानी, दादी दोनों के लिए होता है। 'मेम' संज्ञा पद नाना, दादा दोनों के लिए समान भाव से प्रयुक्त होकर एक विशिष्ट पारिवारिक व्यवस्था का बोध कराता है। स्वरांत संज्ञा प्रतिपादकों में अकारांत शब्द विशेष रूप से चलन में हैं।

हिंदी भाषा	मोनपा भाषा
अकेला	थिमा
दुकेला	नइमा
दोषारोपन	ङानपा
नया	सरपा
बीमारी	नात्पा आदि।

जैसे शब्द अधिक प्रयुक्त हैं, जिसमें व्यंजन संयोग की प्रवृत्ति पर्याप्त है। ह्रस्व इकारांत, एकारांत, उकारांत संज्ञाओं का व्यवहार भी मोनपा भाषा में मिलता है।

ह्रस्व इकारांत उदाहरण

हिंदी भाषा	मोनपा भाषा
भैया	अचि
भिक्षुणी	अनि
दादी	अइ

एकारांत उदाहरण :

लेकिन	शिन्तरे
कहाँ	गचे
हर तरफ	गाइ-किमे

उकारांत उदाहरण :

छोटा	प्रिउ/प्रिशो
भारी	लिउ/लिशो
खाली समय	ब्रे-नोउ
सकने वाला	काइ-नसु
गायब होना	क्लो गयु आदि।

मोनपा भाषा में महाप्राण ध्वनियों का प्रयोग सर्वथा अभाव है। इस कारण संज्ञा प्रतिपादक के अंत में केवल अल्पप्राण ध्वनियों का प्रयोग इस समुदाय के भाषा में पाया जाता है। अनुनासिक ध्वनियों में 'ङ' और 'ञ' में प्रयुक्त होने वाली संज्ञा पदावली की लंबी सूची है –

हिंदी भाषा	मोनपा भाषा
हम लोग	ङरबा/ङतङ नङ
मेरा	ङोक
मैं	ञे
लोग	मिनङ
हजार	तोङ
इस साल	दानिङ

पिछले साल	निनिङ
कल	दङ

संज्ञा रूप तालिका में मोनपा समुदाय के वक्ता 'ट' वर्गीय ध्वनियों का व्यवहार सामान्यतया कम करते हैं।

मोनपा भाषा में सर्वनाम-

सर्वनामों का व्यवहार संज्ञा पदों के प्रतिनिधि की तरह होता है। संज्ञा की तरह सर्वनाम का भी लिंग निर्णय संदर्भ में या वाक्यात्मक स्तर पर संभव होता है। रूप गठन की दृष्टि से लिंग, वचन एवं कारकीय स्थितियों में सामान्य परिवर्तन हुआ करते हैं। मोनपा समुदाय की बोलियों में लिंग के आधार पर कोई भी परिवर्तन नहीं है परंतु वचन एवं कारकीय प्रक्रिया में 'पर' प्रत्यय जुड़कर पद बन जाते हैं। मोनपा भाषा में एकवचन एवं बहुवचन का हिंदी रूप ही प्राप्त होते हैं। हिंदी की तरह द्विवचन का यहां सर्वथा अभाव है। पुरुषवाची एवं निजवाची सर्वनाम 'आप' (इनङ) प्रचलन में है।

पुरुषवाची

हिंदी भाषा	**मोनपा भाषा**
एकवचन	एकवचन
मैं	ञे

हिंदी भाषा	**मोनपा भाषा**
बहुवचन	बहुवचन
हम	ङतङ

मोनपा भाषा में हिंदी भाषा की तरह आदर अर्थ एवं निरादर अर्थ एकवचन एवं बहुवचन रूप प्राप्त नहीं होते हैं–

हिंदी भाषा	**मोनपा भाषा**
एकवचन	एकवचन
तुम	इनङ
वह	बि
यह	उच
बहुवचन	**बहुवचन**
तुम लोग	इतङ
वे	बिर
ये	उच नङ

पुरुषवाची सर्वनामों के अतिरिक्त प्रश्नवाची सर्वनामों में विविधता है। यहाँ जीवधारियों के लिए एवं अन्य वस्तुओं के लिए प्रयोगों में भिन्नता है। मोनपा भाषा में 'नाङ' का प्रयोग बहुवचन में ही होता है।

उदाहरण-

एकवचन	**बहुवचन**
जीम (बिल्ली)	जीम नाङ (बिल्लियों)

रवी (कुत्ता)	खी नाङ (कुत्ते)
मीह आदमी	मिनाङ (आदमियों)

इन समस्त ही सर्वनामों में रूपांतरण ग्रहण करती हुई यह भाषा पुरुषवाची सर्वनामों की तरह विभक्तियां ग्रहण करती हुई सर्वनाम पदों का निर्माण करती हैं।

मोनपा भाषा में विशेषण:

विशेषण रूप तालिका अपने रूप-गठन में कोई भी रूपांतर विशेष नहीं लेती। यह सर्वनाम की ही भाँति रूपांतर रहित एवं रूपांतर सहित दोनों रूपों में प्रयुक्त होती है। इन विशेषणों को अर्थ के आधार पर गुण बोधक, परिणाम बोधक एवं संख्या बोधक कोटियों में विभक्त किया जा सकता है-

गुणबोधक: संज्ञा या सर्वनाम के गुण का बोध कराने वाली विशेषताओं को गुणबोधक से अभिहित किया जाता है। ऐसे विशेषणों से विशेष्य की विशेषता, अवस्था, स्थिति आदि की सूचना मिलती है। मोनपा भाषा में इसकी अधिकता दृष्टिगत होती है। ऐसे शब्द विशेष्य की विशेषता को प्रकट करने में पूर्णतया समर्थ हैं-

काल सूचक

हिंदी रूप	**मोनपा रूप**
नया	सरपा
पुराना	ञिङपा
अगला	जुक्पाचित
पिछला	नापाचित

स्थान सूचक

हिंदी रूप	**मोनपा रूप**
चौड़ा	थोर-च्छुर
मोटा	थेन्म
गहरा	तिङ रिंक
सीधा	राङक
टेढ़ा	क्योक्प

रंग सूचक

हिंदी रूप	**मोनपा रूप**
पीला	सिर्प
काला	म्लेङप
सफेद	ख्येर
लाल	लिउ

दशा सूचक

हिंदी भाषा	**मोनपा भाषा**
दुबला	केम्पा

गाढ़ा	गार्रप
गीला	शेरपा
सूखा	केमपा

परिमाण बोधक- संज्ञा या सर्वनाम के परिमाण को बोध कराने वाले विशेषण इसी कोटि के हैं।

हिंदी रूप	**मोनपा रूप**
हल्का	यङक
पूरा	गाङ्प
कम	ञुङ्क
बहुत	यौर
इतना	उमतिन
कितना	गतिन

संख्याबोधक- विशेषण की संख्या का बोध कराने वाले विशेषण इस वर्ग में आते हैं।

गणनात्मक-

हिंदी रूप	**मोनपा रूप**
एक	थी
दो	नइ
तीन	सुम
चार	ब्ली
पाँच	लेङा
छह	ग्रो
सात	निस
आठ	गेत
नौ	दुगु
दस	ची

क्रमात्मक– एक या दो अथवा उससे आगे की पूर्णांक संख्याओं में पर प्रत्यय जोड़कर स्थितियों का बोध कराने वाले विशेषण हिंदी भाषा में प्रयुक्त होते हैं। मोनपा भाषा में भी यह प्रवृत्ति उपलब्ध है। तिथियों की गणना के लिए प्रथमा, द्वितीया आदि प्रचलन में है, जिसमें 'चित्त' प्रत्यय को जोड़कर पूर्ण किया जाता है। इस समुदाय के लोग गुणात्मक विशेषणों का भी व्यवहार नहीं करते। गणना में सामान्य संख्याओं से परिचित होने के कारण इनमें पहाड़ा गिनने की प्रवृत्ति भी नहीं मिलती। उदाहरण –

हिंदी रूप	मोनपा रूप
पहला	थिमाचित
दूसरा	नइमाचित
चौथा	ब्लीमाचित
पंद्रहवाँ	चिलेङमाचित

इसी तरह क्रिया अर्थक संज्ञा में मूल धातु में 'उ' प्रत्यय जोड़कर मोनपा भाषा में क्रियार्थक संज्ञाओं के रूप निर्मित होते हैं। उदाहरण –

हिंदी रूप	मोनपा रूप
कराना	यक थसु
जलाना	तोत थसु
पिलाना	थोङ थसु
रुलाना	ङु थसु
हँसाना	गे थसु
डराना	प्लाक्याक थसु
नचाना	ब्रोक थसु
सुनना	ञन थसु

मोनपा भाषा में कारक:-

हिंदी में आठ कारकों का प्रयोग है, उसी प्रकार मोनपा भाषा में भी कारकों का प्रयोग पुल्लिंग एवं स्त्रीलिंग बोधक मूल एवं व्युत्पन्न संज्ञाएं अपनी कारकीय रचना में व्याकरणिक प्रत्ययों के साथ व्यवहृत होती हैं।

कर्त्ता कारक : वाक्य में जो शब्द काम करने वाले अर्थ में आता है, उसे कर्त्ता कहते हैं। जैसे- मोहन खाता है। इस वाक्य में खाने का काम मोहन करता है, अत: कर्त्ता मोहन है। संस्कृत का कर्त्ता ही हिंदी का कर्त्ता कारक है। वाक्य में कर्त्ता का प्रयोग दो रूपों में होता है-

पहला वहाँ जिसमें 'ने' विभक्ति नहीं लगती अर्थात जिसमें क्रिया के लिंग, वचन और पुरुष कर्त्ता के अनुसार होते हैं। इसे अप्रत्यय कर्त्ता कारक कहते हैं। मोनपा भाषा में भी 'ने' विभक्ति नहीं लगती। उदाहरण के रूप में 'ताशी थोपचे जोउदुर अर्थात ताशी खाना खा रहा है। 'जोउदुर' यहाँ क्रिया है। दूसरा वह, जिसमें 'ने' विभक्ति लगती है। श्याम ने मिठाई खाई। इस वाक्य में क्रिया 'खाई' कर्म मिठाई के अनुसार आयी है। इसे व्याकरण में सप्रत्यय कर्त्ता-कारक कहते हैं। मोनपा भाषा में 'सी' प्रत्यय जोड़कर यहाँ 'ने' विभक्ति का प्रयोग किया जाता है। उदाहरण रूप- 'श्याम सी ञौक्पु ख्यासुम।

कर्म कारक : वाक्य में क्रिया का फल जिस शब्द पर पड़ता है, उसे कर्म कहते हैं। इसकी विभक्ति 'को' है। इसी तरह मोनपा भाषा में 'शे' विभक्ति का प्रयोग होता है।

उदाहरण रूप :-

हिंदी भाषा	**मोनपा भाषा**
मैंने हरि को बुलाया।	ञेइ हरि शे शो ञेगु।
माँ ने बच्चे को सुलाया।	अमा सी अनुशे ञेइ थासुम।
पिता ने पुत्र को पुकारा।	अपा सी जोक्पो शे ज़ारूम।
लोगों ने चोर को मारा।	मिनङ सी कुन्माशे शे तेरूम।
हरि ने बैल को मारा।	हरि सी बात शे तेरूम।

करण कारक : वाक्य में जिस शब्द से क्रिया का बोध हो उसे करण कारक कहते हैं। करण कारक के सबसे अधिक प्रत्यय चिह्न हैं। से, ने, द्वारा, के द्वारा, के जरिए, के साथ इत्यादि ही है। मोनपा भाषा में करण कारक में भी 'सी' प्रत्यय चिह्न के द्वारा ही करण कारक स्पष्ट होते हैं।

उदाहरण रूप :

हिंदी भाषा	**मोनपा भाषा**
उसने पत्र कलम से लिखा।	बि यिगा ञुगु सी ब्रियुम
शिशुपाल कृष्ण के द्वारा मारा गया।	शिशुपाल कृष्ण सी सोतुम।
वह कुल्हाड़ी से वृक्ष काटता है।	बि तेवन सी शेङ तुपतुम।
पेड़ से फल गिरा।	शेङक मर शिङतो देरूम।
मुझे अपनी कमाई से खाना मिलता है।	ञिशे ङनङक कले सी तोपचे थोपतुम।

संप्रदान कारक:

शब्द के जिस रूप से किसी के लिए कुछ देने या किसी के लिए कुछ किए जाने का बोध हो उसे संप्रदान कारक कहते हैं। इसकी विभक्ति के लिए 'को' आदि है। मोनपा भाषा में भी संप्रदान कारक का प्रयोग होता है। यहाँ 'शे' विभक्ति द्वारा संप्रदान कारक स्पष्ट होता है।

उदाहरण रूप-

हिंदी भाषा	**मोनपा भाषा**
माँ शिशु के लिए दूध ला रही है।	अमी अनुशे वोमा वोत्तुर।
यह पुस्तक अनिल को लौटा देना।	उच लोपदेप अनिल शे तउ बे।

अपादान कारक :

संज्ञा के जिस रूप से किसी वस्तु से अलग होने का भाव प्रकट होते है, उसे अपादान कारक कहते है। इसकी विभक्ति चिह्न 'से' (पृथक) है। इसी तरह मोनपा भाषा में भी 'कु' और 'उक' प्रत्यय चिह्न से अपादान कारक का बोध होते है।

उदाहरण रूप –

हिंदी भाषा	**मोनपा भाषा**
हिमालय से गंगा निकलती है।	हिमालयुक गंगा जोङदुम।
वह घर से बाहर आया।	बि खेमुक फिसो रासुम।
लड़का पेड़ से गिरा।	जोक्पो शेङ-कु देरूम।

संबंध कारक:

संज्ञा या सर्वनाम के जिस रूप से किसी अन्य शब्द के साथ संबंध या लगाव प्रतीत हो उसे संबंध कारक कहते हैं। इसकी विभक्ति चिह्न का, के, की, रा, रे, री, ना, ने, नी आदि है। मोनपा भाषा में भी संबंध कारक का बोध होता है, जिसे सी, वुक, ङ, इनङ आदि विभक्ति चिह्नों द्वारा प्रकट कराया जाता है।

उदाहरण रूप :

हिंदी भाषा	**मोनपा भाषा**
यह मेरा घर है।	उच ङोक खेम यीम।
राम ने शिव का धनुष तोड़ा।	राम सी शिवुक लीह बोतुम।
अपनी चाय लाओ।	इनाक जाह वोता।

अधिकरण कारक:

शब्द के जिस रूप से किसी के किसी अन्य में या पर आश्रित होने का बोध हो उसे अधिकरण कारक कहते हैं। इसकी विभक्ति चिह्न 'में', 'पर' है। मोनपा भाषा में भी अधिकरण कारक ज्ञात होता है, जिसे कु, मा, काङ, गा, नाप आदि विभक्तियों 6 का प्रयोग द्वारा इस अधिकरण कारक को प्रकट करते हैं।

उदाहरण रूप :

हिंदी भाषा	**मोनपा भाषा**
दुकान पर कोई नहीं था।	छोङकङ गा सुक्कङ मोने लो।
तुम्हारे घर पर चार आदमी हैं।	इतङकु खेमा मि ब्लि नी।
कमरे में लोग बैठे हैं।	खाङमी गा मिनङ ज़ुनि।
मेज पर किताबें रखी हैं।	ते चेगा लोपदेप नङ ञिनि।

संबोधन कारक:

शब्द के जिस रूप से किसी के पुकारे जाने का बोध हो उसे संबोधन कारक कहते हैं। इसकी विभक्तियां हे, रे, अरे, ओ आदि का प्रयोग किया जाता है। मोनपा भाषा में भी इस कारक का प्रयोग सर्वथा किया जाता है, जिसकी अभिव्यक्ति के लिए वें , वेइदा, खेनचा, लामा ख्येन, ओञो आदि के द्वारा प्रकट किया जाता है।

उदाहारण-

हिंदी भाषा	**मोनपा भाषा**
मोहन ! इधर आओ।	वें ! मोहन ओचो शो।
अरे ! कुर्सी उठाकर लाओ।	वेंइ कुप्क्या यिया वोता।
हे ! ईश्वर दया करो।	लामा ख्येन ! ड्रो नङ बे।

हिंदी भाषा में संधियों का प्रयोग भी किया जाता है और समास भी परंतु मोनपा भाषा में केवल समास का प्रयोग होता है।

उदाहरण-

हिंदी भाषा	**मोनपा भाषा**
राजपुत्र = राजा का पुत्र	तावाङपा = तावाङ का रहने वाला
इसी तरह	दिराङपा = दिराङ का रहने वाला।

मोनपा भाषा में लिंग सूचक शब्द तो है लेकिन वाक्य विन्यास के समय लिंग के अनुसार क्रिया परिवर्तित नहीं होती है।

उदाहरण-

हिंदी भाषा	**मोनपा भाषा**
हमने रोटी खाई। इसमे क्रिया 'खाई' है और वाक्य स्त्रीलिंग है।	ङतङ केप्तङ ज़सु। इसमें ज़सु क्रिया का प्रयोग एक ही तरह होता है चाहे वह स्त्री हो या पुरुष के लिए।
वह जा रहा है।	बि गइदुर। यहाँ 'गइदुर' क्रिया है।

हिंदी में एकवचन से बहुवचन बनाने के लिए शब्दों को इस प्रकार दिखाया जा सकता है –

एकवचन	**बहुवचन**
कुत्ता	कुत्ते
बिल्ली	बिल्लियां

ऐसे ही मोनपा भाषा में एकवचन से बहुवचन बनाने के लिए 'नङ' प्रत्यय का प्रयोग करते हुए बहुवचन बनाते हैं-

एकवचन	**बहुवचन**
खि (कुत्ता)	खिनाङ (कुत्ते)
मि (आदमी)	मिनाङ (आदमियों)
मुरि (साँप)	मुरिनाङ (साँपों)
इनङ (तुम)	इतङ (तुम लोग)

इस तरह मोनपा भाषा में बहुवचन बनाने के लिए एक 'नङ' प्रत्यय का प्रयोग होता है। इस कारण मोनपा समुदाय जब हिंदी भाषा बोलते हैं, तब हिंदी के शब्द को बहुवचन बनाने में मोनपा भाषा का नियम को अपनाते हुए शब्दों का निर्माण कर जाते हैं। उदाहरण स्वरूप- सब्जियाँ को सब्जी लोग, गायों को गाय लोग, आलुओं को आलू लोग आदि का प्रयोग करते हैं, जो कि व्यकरण की दृष्टि से अशुद्ध है लेकिन संपर्क भाषा के रूप में हिंदी में इसी रूप के साथ व्यवहार में प्रयोग करने के आदी हो गए हैं, जो कि मोनपा समुदाय में नवीन

हिंदी के रूप में प्रयोग होता है। हिंदी में पूछे प्रश्न सब्जी का भाव क्या है? इसे मोनपा समुदाय वाले बड़ी मासूमियत से पूछते है सब्जी लोग कैसा दिया?

मोनपा भाषा में क्रिया-

क्रिया वाक्य का एक ऐसा पक्ष है, जिसके बिना वाक्य अधूरा रह जाता है। ऐसे भी वाक्य होते हैं, जिनमें क्रिया का घटक नहीं होता। इस घटक से किसी के विषय में कुछ विधान किया जाता है। इसमें अनेक प्रकार की व्याकरणिक कोटियों का समाहार होता है। यथा: पुरुष, वचन और काल। इस प्रकार भाषा में क्रिया का बड़ा महत्त्व है। क्रिया के संबंध में जो-जो तथ्यात्मक स्वरूप उद्घाटित हुआ है, उनसे संबंधित प्रमुख बातों को हिंदी तथा मोनपा दोनों भाषाओं को केंद्र में रखते हुए स्पष्ट कर सकते हैं। क्रिया वह है, जो विभिन्न व्याकरणिक कोटियों से प्रभावित होता है तथा जिसका प्रयोग विधेय के रूप में होता है। हिंदी को यथा: काल, वाच्य, अर्थ, पुरुष, लिंग एवं वचन आदि क्रिया को प्रभावित करती है। मोनपा भाषा-भाषी समुदाय का हिंदी प्रेम सराहनीय है। इस समुदाय के युवाओं की विशिष्ट आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर हिंदी-मोनपा अध्येता कोश का निर्माण देवनागरी लिपि में हुआ है।

मोनपा भाषा हिंदी भाषा के निकट होने के कई रूपों को देखकर यह पता चलता है कि क्रिया के आधार पर भी हिंदी भाषा और मोनपा भाषा नजदीक है। कुछ क्रियाओं के अधिक रूप हिंदी भाषा की अपेक्षा मोनपा भाषा में विस्तृत रूप में हैं। उदाहरण स्वरूप –

हिंदी भाषा	**मोनपा भाषा**
टोपी पहनो।	ज़ोम लुमा।
जूता पहनो।	ल्हाम युना।
कपड़ा पहनो।	पे गेना।

यहाँ हिंदी भाषा में एक ही क्रिया 'पहनो' से वाक्य स्पष्ट हो जाता है, लेकिन मोनपा भाषा में तीनों संज्ञाओं में क्रिया की भिन्नता है जिसे लुमा, युना और गेना तीन क्रियाओं के प्रयोग से वाक्य स्पष्ट हो जाता है। इसी तरह की अन्य क्रियाओं की भिन्नता भी मोनपा भाषा में देखने को मिलती है। उदाहरण स्वरूप –

हिंदी भाषा	**मोनपा भाषा**
पानी डालो।	छी लोगा।
चाय डालो।	जाह लोगा।
थुकपा पीयो।	थुकपा थोङा।
भात खाओ।	तो ज़ो।
सब्जी खाओ।	पा थोङा।

मोनपा भाषा में तरल भोज्य पदार्थों को हमेशा पीने के संदर्भ में 'थोङा' क्रिया द्वारा स्पष्ट किया जाता है। इसी तरह ठोस भोज्य पदार्थों के लिए 'ज़ो' क्रिया द्वारा स्पष्ट किया जाता है। मोनपा भाषा में कई-कई जगह 'संज्ञा' के साथ ही 'कारक' शब्द जुड़े रहते हैं। उदाहरण–

हिंदी भाषा	मोनपा भाषा
बंगाल की खाड़ी।	बंगालुक लिङछेन।
खादी की टोपी।	खादीक ज़ोम/कमबइक ज़ोम।
घर की छत।	खेमुक चे।
लकड़ी का खम्भा।	शेङक कचिन।
बिजली का खम्भा।	लौ शेङक कचिन।
लोहे की खिड़की।	लेहक कोचुङ।
लकड़ी की खिड़की।	शेङक कोचुङ।

हिंदी भाषा की अपेक्षा मोनपा भाषा की क्रियाओं में बहुत सी विभिन्नता को प्रकट कर सकते हैं। इतनी विभिन्नता के होने के बावजूद मोनपा भाषा के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि हिंदी भाषा के बहुत करीब है। व्याकरण की दृष्टि से, वर्णमाला की दृष्टि से, बोलने और समझने की दृष्टि से काफी समानता दिखाई देती है। क्योंकि मोनपा भाषा भी घरेलू बोलचाल की भाषा से विभाषा के पद पर आसीन होकर आज भाषा की श्रेणी में गिनी जाती है। जिस प्रकार बोली का अपना क्षेत्र होता है और भाषा की तुलना में शब्द भंडार कम होता है ठीक यही स्थिति मोनपा भाषा की भी है। एक कहावत है- " कोस-कोस में बदले पानी, चार कोस में वाणी। "ठीक यही स्थिति मोनपा के इन-इन क्षेत्रों- पङचिन मोनपा, तावाङ मोनपा, मागो मोनपा, दिरांग मोनपा, लिश मोनपा, भूट मोनपा, खलाकताङ मोनपा आदि में लागू होता है। प्राचीन धार्मिक ग्रंथों की लिपि भोटी लिपि अर्थात महायान बौद्ध संप्रदाय की लिपि को ही अपनाया जाता रहा है।

वर्तमान में भोटी लिपि को अरुणाचल सरकार ने पाँच (05) ज़िलों में- तावाङ, पश्चिम कामेङ, ऊपरी सुबनसिरी में तक्सिंग सर्किल, ऊपरी सियांग के टूटिंग क्षेत्र और शी योमी ज़िला के मेचुका क्षेत्र में कक्षा एक से लेकर कक्षा आठ तक तीसरे भाषा के रूप में माध्यमिक स्तर तक की पढ़ाई में अनिवार्य रूप से विद्यालयों में पढ़ाने का जिम्मा शुरू किया है। आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि आने वाले समय में युवा वर्गों में इस लिपि के प्रति रूझान उत्पन्न होगा और वह इस लिपि को सीख पायेंगे। इसकी वजह यह लिपि संस्कृत से उत्पन्न हुई है और हिंदी हो चाहे अन्य भारतीय भाषाएं सभी की जननी संस्कृत भाषा है। मोनपा भाषा तो हिंदी के बहुत ज़्यादा करीब है, तो भोटी लिपि को अभी हम अपना ही रहे हैं। इस कारण वर्तमान समय अरुणाचल में अंग्रेजी, हिंदी, असमी और भोटी लिपि में लिखने वालों की संख्या भी कम नहीं है। अपने भाव जो जिस भाषा में जिस लिपि के माध्यम से अभिव्यक्त करना चाहते हैं, वह उन्हीं लिपियों का प्रयोग करते हुए अपने विचारों को प्रस्तुत करते हैं। हिंदी की लिपि देवनागरी है, जिसको सब लोग जानते हैं। इसलिए मोनपा भाषा को अगर लिपिबद्ध करना है तो देवनागरी और भोटी लिपि के द्वारा ही संभव होगा। रोमन लिपि में मोनपा भाषा का भाव या विचार प्रस्तुत करने में सक्षम अनुभव नहीं होता। अत: अंत में मैं यह आशा ही नहीं विश्वास करती हूँ कि यदि भाषाविद् लोग अच्छे ढंग से काम करें तो निश्चित ही मोनपा भाषा केवल तावाङ या पश्चिम कामेङ तक ही नहीं बल्कि महायान बौद्ध संप्रदाय की सभी क्षेत्रों की भाषा बनने की क्षमता मोनपा भाषा में है।

संदर्भ ग्रंथ :

1. तिवारी, भोलानाथ. (2012). *भाषा विज्ञान प्रवेश एवं हिंदी भाषा*. इलाहाबाद: किताबघर प्रकाशन.
2. त्रिपाठी, रामछबीला. (2018). *भाषा विज्ञान एवं हिंदी भाषा*. दिल्ली: किताब महल.
3. तिवारी, पारसनाथ. *भाषा विज्ञान*.
4. प्रसाद, वासुदेवनंदन. (1959). *आधुनिक हिंदी व्याकरण और रचना* (13वाँ संशोधित संस्करण, 1977). पटना.
5. Wangchu, Lama. (2002). *An Introduction to Tawang Monpa Language*. Itanagar: Directorate of Research, Government of Arunachal Pradesh.
6. Dondrup, Rinchin. (1993). *Brokeh Language Guide*. Itanagar: Directorate of Research, Government of Arunachal Pradesh.
7. पाण्डेय, नरेंद्र कुमार (संपा०). (2019). *हिंदी–मोनपा अध्येता कोश*. आगरा: केंद्रीय हिंदी संस्थान.

*(**लेखकीय परिचय :** डॉ. सोनाम वाङ्चू बीनी याङा शासकीय महिला महाविद्यालय, लेखी, नाहरलगुन, अरुणाचल प्रदेश के हिंदी विभाग में सह प्रोफेसर हैं। आपकी संपादित की हुई दो पुस्तकें प्रकशित हैं- पहली, 'मोनपा लोक-साहित्य' और दूसरी, 'मोनपा अध्येता कोश'। मोबा: 7641032453, ई-मेल : sonamwangmo94809@gmail.com)*

गालो जनजाति की भाषा एवं लिपि व्यवस्था

मोर्जुम लोयी

अरुणाचल प्रदेश 83,743 वर्ग किलोमीटर का क्षेत्रफल वाला एक खूबसूरत राज्य है। 'अरुणाचल' का अर्थ है 'उगते सूर्य का पर्वत'। यहां भारत में सबसे पहले सूर्योदय होता है। 20 फरवरी, 1987 में अरुणाचल प्रदेश को पूर्ण राज्य का दर्जा प्राप्त हुआ। इसके पश्चिम में भूटान, उत्तर में चीन का तिब्बती क्षेत्र, दक्षिण-पूर्वी भाग में नागालैंड और म्याँमार और दक्षिण-पश्चिमी भाग में असम की सीमा पड़ती है। यहां मुख्यतः छब्बीस जनजातियाँ और सौ से भी अधिक उपजनजातियाँ निवास करती हैं – न्यीशी , तागिन, गालो, आदी, आपातानी मोनपा, शेरदुकपेन, ईदु मिशमी, दिगारु मिशमी, मिजु मिशमी, वांचो, नोक्ते, तांग्सा, खाम्ती, मेम्बा, खाम्बा, आका, मिजी आदि। सबकी अलग-अलग बोली, संस्कृति, परंपरा, खान-पान , वेश-भूषा, पर्व-त्योहार हैं। यहां मुख्य रूप से ज़िलों के नाम नदी या पर्वत के नाम पर रखे गए हैं- सियांग, कामेङ, लोहित, सुबनसिरि आदि और समुदाय के नाम से उनकी बोलियां, जैसे - न्यीशी की बोली न्यीशी, गालो के गालो, आपातानी के आपातानी, मोनपा के मोनपा। यहां ईसाई, हिंदु, दोञी-पोलो, बौद्ध आदि धर्मों का पालन किया जाता है।

अरुणाचल प्रदेश के लोग मुख्य रूप से कृषक हैं। यहां धान, मक्का, मड़वा, साग आदि अपने खेत में उगाते हैं, प्रत्येक घर में सब्जी के बाग होते हैं। यहाँ के लोग बहुत मेहनती होते हैं। यहां प्रमुख रूप से चावल, हरी सब्जी, मछली, मांस आदि खाया जाता है। चावल यहां का प्रमुख आहार है। यहां चावल की कई प्रजातियां पायी जाती हैं – जोहा, बोरा, मालभोग, चकोआ, काला चावल, रंजीत, आहु, लाल चावल, बोका, बाओ आदि। चावल से भात, चावल के आटे से कई प्रकार के व्यंजन, मदीरा आदि बनाया जाता है। इसके अलावा यहां उत्तर भारत, दक्षिण भारत के साथ कॉन्टिनेंटल व्यंजन भी बहुत लोकप्रिय है।

अरुणाचल प्रदेश अनेक जनजातियों का निवास स्थल है, इसलिए यहां विभिन्न बोलियां बोली जाती हैं। यहां अपनी स्थानीय बोलियों के अलावा हिंदी, अंग्रेजी, असमीया, नेपाली, बांग्ला आदि भाषाएं भी बोली जाती हैं। बाज़ारों, अस्पतालों एवं अन्य सार्वजनिक स्थलों में सभी भाषा-भाषी लोग हिंदी भाषा का प्रयोग करते हैं। हिंदी यहां की जनभाषा है। साक्षर-निरक्षर सभी हिंदी बोलते और समझते हैं। यहां कार्यालयों की भाषा अंग्रेजी है। यहां की हिंदी को 'अरुणाचली हिंदी' या 'अरुण हिंदी' कहा जाता है। अरुणाचली हिंदी को हम निम्नलिखित रूपों में देख सकते हैं-

व्याकरणिक अशुद्धियाँ-

अरुणाचल प्रदेश में जनसाधराण द्वारा हिंदी सहज रूप से प्रयोग किया जा रहा है, किंतु इसमें कई प्रकार की व्याकरणिक अशुद्धियां पायी जाती हैं-

लिंग संबंधी त्रुटियाँ-

यहाँ की हिंदी में लिंग संबंधी दोष पाए जाते हैं। स्त्री, पुरुष आदि सभी मुख्य रूप से पुल्लिंग में बात करते हैं, यथा- खाना खाएगा, बाज़ार जाएगा, लड़की गाएगा आदि।

वचन संबंधी त्रुटियाँ:

अरुणाचल की बोलियों में वचन संबंधी नियम नहीं हैं। अपनी स्थानीय बोलियों में अगर एक वचन का बहुवचन का प्रयोग करना होता है तो अक्सर ये मुख्य शब्द के साथ बहुत सारे, अनेक, अधिक जैसे उपसर्ग जोड़ते हैं। उदाहरण देखिए – मुझे सोना है (हम सोएगा), तोगअ और तोरिक जंगल गए हैं (तोगअ और तोरिक जंगल गिया/ गया है)।

उच्चारण संबंधी त्रुटियाँ-

हिंदी के शब्द व वर्ण से अपरिचित होने के कारण उच्चारण संबंधी त्रुटियाँ हो जाती हैं। निरक्षर लोगों की बात अलग है, यहाँ शिक्षित वर्ग में यह त्रुटियाँ आम हैं, उदाहरण देखिए- न्यीशी जनजातियों में 'ख' का उच्चारण 'ह' में किया जाता है। खाम्ती समाज में 'र' का उच्चारण 'ल' में किया जाता है। गालो समुदाय के लोग 'च','छ', 'स', 'श', 'ष' सभी वर्णो का उच्चारण 'स' में किया जाता है। फलस्वरूप खाना– हाना, खेत–हेत, टमाटर –तमातल, चप्पल-साप्पोल में उच्चरित किए जाते हैं। यहीं नहीं यहाँ हर्स्व-दीर्घ तथा समान ध्वनि वाले शब्दों में भी सही उच्चारण नहीं किया जाता , जैसे- कल-काल, सर-सार , हम-हाम , घर-गर , गाड़ी-गारी, भिंडी- बेन्दी, पंखा- पाङका आदि।

विरोधाभासी शब्द-प्रयोग-

अरुणाचली हिंदी में परस्पर विरोधी शब्दों को साथ रखकर सकारात्मक भावों की अभिव्यक्ति होती है, अक्सर इस तरह की हिंदी का प्रयोग अतिश्योक्ति एवं अपनी बातों पर ज़ोर देने के लिए किया जाता है। उदाहरणार्थ –

वह लड़की भयानक सुंदर है

वह खतरनाक गाता है ।

बाज़ीगर में शाहरुख खान खराब एक्टिंग किया है दे ।

यही नहीं, किसी बात पर ज़ोर देने के लिए यहाँ शब्दों को खींचकर बोलते हैं, जैसे- 'वह स्थान यहाँ से काफी दूर है 'के स्थान पर 'वह जगह ब...हू...त...दूर है' या ' दू.....र ' कहेंगे।

लिपि-

अरुणाचल प्रदेश में खामती, मोनपा और गालो के अलावा अधिकांश जनजातियों की कोई लिपि नहीं हैं, इसलिए प्रमुखता से रोमन और देवनागरी लिपि का प्रयोग लेखन कार्य में हो रहे हैं। वांगचो जनजाति में डॉ. बानवांग लोसू द्वारा निर्मित लिपि वांचो लिपि में 44 अक्षर, 15 स्वर, 29 व्यंजन हैं। इन अक्षरों को मिलाकर 3000 शब्द बनाए जा सकते हैं। 2009 में इस लिपि के यूनिकोड एप्लिकेशन को मंजूरी मिल गई। खाम्ती जनजाति के लिपि को लिक-ताई कहा जाता है। ये म्याँमार की उत्तरी शान लिपि से मिलती-जुलती है, जो मोन-बर्मी लिपि का एक प्रकार है, जिसमें कुछ अक्षर अलग-अलग आकार लेते हैं। ये लिपि सैंकड़ों वर्ष पूर्व की 'लिक थो नमोक' लिपि से ली गई है। इसमें 17 व्यंजन. 14 स्वर सहित 35 अक्षर हैं। ये लिपि पारंपरिक रूप से मठों में पढ़ाई जाती है। बौद्ध धर्म ग्रंथ पालि भाषा में लिखा गया है। मोनपा समुदाय की लिपि भोटी है। किंतु आम जनता के लिए ये एक कठिन भाषा व लिपि है। वर्तमान में तृतीय भाषा के रूप में विद्यालयों में भोटी

पढ़ाया जा रहा है, ताकि यह आम जनता की भाषा व पहचान बन सके। यहीं नहीं राज्य सरकार द्वारा प्रत्येक स्कूलों में प्रथम से आठवीं कक्षा तक अपनी मातृभाषा को तृतीय भाषा के रूप में अनिवार्यत: पढ़ाया जाने का आदेश जारी किया गया है।

अरुणाचल प्रदेश के तानी समुदाय के अंतर्गत पाँच जनजाति समुदाय आते हैं – गालो, न्यीशी, आदी, तागिन और आपातानी। आपातानी के अलावा अन्य चारो जन समुदाय की बोलियों में काफी साम्यता पायी जाती है। सभी बोलियों में विशेष प्रकार की ध्वनि उच्चारण का प्रयोग होता है, जिसकी पूर्ति रोमन लिपि से नहीं हो पाती। देवनागरी लिपि बहुत हद तक इसकी जरूरतों को पूरा करती है, किंतु तानी समुदाय की बोलियों में टोनल साउंड (ध्वनि) के आधार पर अर्थ परिवर्तन हो जाता है, जिसके कारण इस समुदाय के लोगों को अपनी स्वतंत्र लिपि की आवश्यकता महसूस हुई। तानी समुदाय और अन्य कई जनजातियों की बोलियों में अ, ञ, ङ आदि के अलावा कई ऐसी ध्वनियां भी है, जिसके लिए सही स्वर या व्यंजन की आवश्यकता महसूस होती रही हैं। इसी आवश्यकता को महसूस कर समय समय पर विद्वानों ने लिपि निर्माण का प्रयास किया है।

पादाम आकोर एन्नाम-

गालो समाज के इतिहास में जब से लिखने-पढ़ने की क्रिया आरंभ हुई , वे रोमन लिपि की मदद से अपनी स्थानीय बोली को लिपिबद्ध करते आए हैं, जिसे पादाम आकोर एन्नाम कहते हैं। सिर्फ गालो नहीं बल्कि पूरे आदी समुदाय के लोग इसी में लिखते आए हैं। 'पादाम' आदी समुदाय की एक उपजनजाति का नाम है, इसी नाम से लिपि का नाम पड़ा। 'आकोर' अर्थात अक्षर तथा 'एन्नाम' अर्थात लिखावट या लिखना। इसे लिखने का तरीका इस प्रकार है –

वर्ण	उच्चारण	शब्द
A	आ	Abir (आबिर)=बहन /समधन
E	ए	Ennam (एन्नाम)= लिखावट
NG	ङ	Ngok (ङोक) = मेरा
NY	ञ	Nyaru (ञारू) = कान

गालो एन्नाम (लिपि)-

वर्ष 2001 में मानव संसाधन विकास मंत्रालय की एक योजना के तहत नॉर्थ ईस्ट इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एंड टेक्नॉलॉजी, नहारलगुन, अरुणाचल प्रदेश में जनजातीय भाषा एवं लिपि पर केंद्रित एक संगोष्ठी एवं कार्यशाला का आयोजन हुआ। इस कार्यशाला के दौरान प्रो. तोमो रिबा, डॉ. तादो कार्लो और डॉ. हैरी लोयी द्वारा रोमन लिपि में गालो बोली के उच्चारण एवं आवश्यकता तथा लैपटॉप, कंप्यूटर आदि के कीबोर्ड में

उपलब्ध चिह्नों को ध्यान में रखकर एक संरचना तैयार की गई और हैरी लोई द्वारा उसे प्रस्तुत किया गया। वहीं डॉ. तोनी कोयू ने भी 'तानी लिपि' के नाम से एक लिपि तैयार की और उसे प्रस्तुत किया। ये लिपि लेटिन और बांग्ला लिपि से कुछ मिलती जुलती है। ये सिर्फ गालो ही नहीं बल्कि सभी समुदाय के ध्वनि व उच्चारण को ध्यान में रखकर बनाया गया। श्री जुमगअ लोलेन, तोमी अतअ आदि ने भी अपनी गालो लिपि प्रस्तुत की। तानी लिपि में टंकण और मुद्रण की कठिनाई और सीखने और समझने के लिए कुछ जटिलताएं थी, इसी प्रकार श्री जुमगअ लोलेन की गालो एन्नाम, तोमी अतअ की 'गालो स्क्रिप्ट इन देवनागरी' आदि में कुछ न कुछ कमियों के चलते प्रो. तोमो रिबा के टीम द्वारा प्रस्तुत लिपि पर और काम करने की संभावना को देखते हुए उसे स्वीकृति दी गई। एक लिपि का निर्माण कोई आसान काम नहीं होता और इस पहल और प्रयास के लिए सबका योगदान महत्त्वपूर्ण है। प्रो. रिबा की टीम ने लिपि की आवशयकता एवं उसके निर्माण को लेकर गालो कल्याण समाज के सामने अपना प्रस्ताव रखा। एक प्रगतिशील समाज का नेतृत्व करने वाले गालो कल्याण समाज ने इस पर विचार-विमर्श किया और इस पर और कार्य करने की सहमति जताई।

इसी दौरान रिचर्स सेंटर फॉर लिंगुइस्टिक टाइपोलॉजी, ला ट्रोब यूनिवर्सिटी से डॉ. मार्क फ्रोस्ट उनके संपर्क में आए, जो अपने अनुसंधान कार्य के लिए गालो गाँव में कुछ सालों से रह रहे थे। मार्क को जब गालो लिपि की आवश्यकता का पता चला तो उन्होंने अपना सहयोग देने की सहमति दी। उनके साथ डॉ. बोमचाक रिबा, इली रिबा, ईगो रिबा और गालो समुदाय के कई विद्वानों ने भी इस कार्य को अंजाम देने में पूरी लगन के साथ अपना सहयोग दिया। मार्क ने व्याकरण व फोनेटिक की मदद से इस लिपि को एक वैज्ञानिक संरचना व आकार दिया। मार्क शुद्ध और सही उच्चारण के साथ गालो बोली में बात करते थे। उनके इस वैज्ञानिक गालो लिपि को गालो समुदाय के लोगों ने न सिर्फ स्वीकार किया बल्कि इसे पूरे गालो समाज के लिए एक सशक्त और सर्वमान्य लिपि के रूप में पहचान दिलाने के लिए प्रयास करने लगे। उन्हें लगा कि वही शब्द और वर्ण का प्रयोग कर हम हस्र्व-दीर्घ स्वर वाले शब्दों को भी आसानी ने लिख-पढ़ सकते हैं, जिससे अर्थ ग्रहण में भी कोई कठिनाई होगी। डॉ. ताकोप जिरदो, अध्यक्ष, `गालो लैंग्वेज डेवलपमेंट कमिटी, गालो कल्याण समाज तथा श्री यादाम लोयी, प्रशासनिक अफसर टैक्स एंड एक्साइज़, अरुणाचल प्रदेश तथा गालो कल्याण समाज (गालो वेल्फेयर सोसायटी) के `गालो लैंग्वेज डेवलपमेंट कमिटी के मेंबर सेक्रेटरी के अनुसार गालो एन्नाम जिसे गालो स्क्रिप्ट (MRS) कहते हैं अर्थात मोडिफाईड रोमन स्क्रिप्ट को अरुणाचल स्टेट असेंबली द्वारा वर्ष 2008 को तृतीय भाषा के रूप में स्वीकार किया गया। इसे नेशनल एजुकेशन पॉलिसी 2020 के तहत मातृभाषा के रूप में स्वीकृति दी गई है। वर्ष 2009 में इसे इंटरनेशनल स्टैंडर्ड ऑर्गनाइजेशन द्वारा स्वीकृति मिली तथा 2016 से गालो क्षेत्र में इसे पाठ्यक्रम में भी शामिल किया जा रहा है। इस संदर्भ में प्रत्येक वर्ष SCERT (राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद) के द्वारा सरकारी स्कूलों के शिक्षकों को प्रशिक्षण दिया जाता है।

गालो एन्नाम (GALO ENNAM) MRS- modified roman script

स्वर (Vowel) (उच्चारण के आधार पर) **:** 07 (सात)

गालो	A	I	U	E	O	V	W
पादाम	A	I	U	E	O	E	I
देवनागरी	आ	इ	उ	ए	ओ	अ	
फोनेटिक	**ɑ**	**I**	**U**	**E**	**O**	**ə**	**ɨ**

व्यंजन (Consonant) : 17 (सत्रह)

गालो	K	G	Q	C	J	X	T	D	N	P	B	M	Y	R	L	S	H
पादाम	K	G	NG	CH	J	NY	T	D	N	P	B	M	Y	R	L	S	H
देवनागरी	क	ग	ङ	च	ज	ञ	त	द	न	प	ब	म	य	र	ल	स	ह
फोनेटिक	k	g	ɴ	ʧ	ʤ	ɲ	t	d	n	p	b	m	j	r	l	ʃ	h

स्वर (हस्र्व-दीर्घ)

गालो	`
पादाम	–
देवनागरी	–
फोनेटिक	ː

उदाहरण :

१. A : Aki (उच्चारण- आकी) = पेट, Aum (उच्चारण- आउम)= तीन

२. I : Iki (उच्चारण- इकी) = कुत्ता, Iiku (उच्चारण- ईकू) = किण्वित कटा बांस

३. U : Uyo (उच्चारण- उयो) = भूत, Uun: (उच्चारण ऊन)

गालो के कुछ शब्द का उदाहरण देखिए -

- **आलो (ALO)** शब्द कई अर्थों में प्रयुक्त होते हैं- हड्डी, नमक, दिन, उधर इत्यादि। शब्द के उच्चारण में लगने वाले समय के अनुरूप अर्थ परिवर्तन होता है। कभी-कभी वाक्य के अनुसार अर्थ परिवर्तन होता है। गालो एन्नाम (MRS) में 'ALO' नमक के लिए तथा 'ALOO' हड्डी के लिए प्रयुक्त किया जाता है। कुछ शब्दों का अर्थ वाक्य संरचना पर भी निर्भर होता है।
- **आयो (AYO)** शब्द भी रात, सास, मामी, जीभ, टेढ़ा आदि के अर्थ में प्रयुक्त होता है।

विशेषताएं:

1. गालो एन्नाम रोमन लिपि तथा ध्वनि विज्ञान पर आधारित होने के कारण एक वैज्ञानिक लिपि है।
2. इसमें मूक अक्षर नहीं है, अर्थात ज़रूरी वर्णों का ही प्रयोग किया गया है, अनावश्यक वर्ण कही नहीं है, जैसे – अँग्रेजी में knife, knowledge, psychology आदि में अनावश्यक वर्ण होते हैं।
3. हस्र्व और दीर्घ स्वर की स्पष्टता है, जिससे उच्चारण में कोई समस्या उत्पन्न नहीं होती है। अँग्रेजी में 'इ, ई' दोनों ध्वनियों के लिए 'I, ee ' का प्रयोग किया जाता है।
4. यांत्रिक सुविधा भी इसकी एक विशेषता है। मुद्रण और टंकण की दृष्टि से ये सरल और सुविधाजनक है। ये आसानी से कंप्यूटर और मोबाइल फोन के की-पेड में उपलब्ध है।
5. एक ध्वनि= एक चिह्न नियम का पालन करते हुए पादाम 'NG' (ङ) के स्थान पर 'Q', 'NY' (ञ) के स्थान पर 'X', 'अ' के लिए 'V' आदि का प्रयोग किया गया है।

दोष :

कोई भी लिपि नितांत निर्दोष नहीं होती है। गालो लिपि (MRS) में भी कुछ कमियां हैं-

1. इस लिपि का अपना स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। ये रोमन लिपि पर आश्रित है।
2. गालो लोग अरुणाचल प्रदेश के सिर्फ पाँच ज़िलो में निवास करते हैं, अन्य बाईस जिले के लोगों को इसे लिखने, पढ़ने और समझने में कठिनाई होती हैं, बल्कि अभी तक गालो के कुछ वर्ग इस लिपि को नहीं समझ पाते हैं, इसके लिए उन्हें नए सिरे से इसका अध्ययन करना होगा।
3. इस लिपि में साहित्य रचना करने पर गैर गालो समाज के लोगों को समझ पाने में कठिनाई होती है, आदि।

इस तरह हम देख सकते हैं कि गालो एन्नाम गालो बोली के कई शब्दों का सही उच्चारण एवं सही अर्थ ग्रहण के लिए एक उपयुक्त लिपि है, इसका उदाहरण स्वयं मार्क पोस्ट है जो आस्ट्रेलिया के निवासी होते हुए भी गालो बोली को साफ और सही-सही उच्चारण के साथ बोल पाते हैं। श्रोता को सुनने और समझने में कठिनाई नहीं होती है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि ये एक यूज़र फ्रेंडली लिपि है, आप अपने कंप्यूटर, मोबाइल आदि पर इसे आसानी से टाईप कर सकते हैं। वर्तमान में गालो कल्याण समाज इसके प्रयोग पर ज़ोर दे रहे हैं, किंतु कुछ वर्ग अभी भी ऐसे हैं, जिन्हें लगता है कि हम रोमन और देवनागरी के इस प्रकार आदी हो चुके हैं कि अब नवीन लिपि सीखने के लिए न तो वक्त है न इच्छा। इस वर्ग के लोग ऐसा मानते हैं कि पूरे अरुणाचल में छब्बीस प्रमुख जनजातियाँ और उनकी सौ से भी अधिक उप जनजातियाँ हैं, एक जनजाति के लिपि में लिखने पर वह उसी जनजाति के भीतर ही सीमित होकर रह जाएंगे। अन्य जनजाति के लोगों के लिए इसे सीखना और पढ़ना कठिन ही नहीं नामुमकिन भी है। वर्तमान में डॉ. ताकोप जिरदों, सर रोकोम बादो जैसे कई विद्वान गालो एन्नाम (MRS) में साहित्य रचना कर रहे हैं और साथ ही युवा पीढ़ी को इसके प्रयोग के लिए सहयोग व प्रोत्साहन दे रहे हैं। गालो बोली के वैज्ञानिक अध्ययन के लिए डॉ. मार्क फ्रोस्ट की 'द फोनोलॉजी

एण्ड ग्रामर ऑफ गालो वर्ड्स " एक महत्त्वपूर्ण कृति है। वर्तमान में गालो एन्नाम (MRS) पर कई पाठ्य पुस्तक, राईम्स आदि की पुस्तकें उपलब्ध हैं। इसके द्वारा गालो संस्कृति और परंपरा की रक्षा करने का प्रयास अभी भी जारी है।

संदर्भ सूची:

1. डॉ. दोगे डम्दिर, अरुण प्रभा, जनवरी-दिसंबर- 2018, पृ.122
2. वही, पृ.123
3. वही
4. लोयी, मोर्जुम, अरुणाचल प्रदेश के गालो समुदाय की लिपि व्यवस्था (आलेख), पृ.30-35 पूर्वोत्तर: भाषाएं एवं लिपियां, सं. रघुनाथ पाण्डेय, डॉ. दिलीप कुमार अवस्थी, निखिल पब्लिशर्स एंड डिस्टीब्यूटर्स, आगरा, 2023
5. वही

सहायक ग्रंथ :

1. त्रिपाठी, राम छबीला. *भाषा विज्ञान एवं हिंदी भाषा*. इलाहाबाद: किताब महल. पृष्ठ 328
2. रिबा, इ., टी. रिबा, एम . न्योदू, एम.डब्ल्यू .पोस्ट, 'अ स्क्रिप्ट फॉर द गालो लैंगवेज़' 2007, अरुणाचल प्रदेश , गालो कल्याण समाज
3. 'देवनागरी लिपि तथा हिंदी वर्तनी का मानकीकरण', केंद्रीय हिंदी निदेशालय, मानव संसाधन विकास मंत्रालय (उच्चतर शिक्षा विभाग) भारत सरकार, नई दिल्ली
4. डॉ. लोयी, हैरी, असिस्टेंट प्रोफेसर, जवाहरलाल नेहरू कॉलेज, पासीघाट, अरुणाचल प्रदेश से दिनांक 09/03/2023 में टेलीफोनिक साक्षात्कार
5. डॉ. लोलेन, जुमया, सह प्राध्यापक, दोञी-पोलो शासकीय महाविद्यालय, काम्की, अरुणाचल प्रदेश से दिनांक 07 मार्च, 2023 में टेलीफोनिक साक्षात्कार
6. डॉ. जिर्दो, ताकोप अध्यक्ष, `गालो लैंग्वेज ऑफ़ डेवलपमेंट कमिटी, गालो कल्याण समाज के 'टीचिंग ऑन गालो स्क्रिप्ट विषय पर यू ट्यूब वीडियो
7. श्री लोयी, यादाम प्रशासनिक अफ़सर टैक्स एंड एक्साइज़, अरुणाचल प्रदेश तथा गालो कल्याण समाज (गालो वेल्फेयर सोसायटी) के `गालो लैंग्वेज डेवलपमेंट कमिटी के मेंबर सेक्रेटरी से दिनांक 04/03/2023 में ईटानगर में साक्षात्कार।
8. श्री अतअ, दूदा, प्रिंसिपल आर्किटेक्ट, DE &Associates से दिनांक 08 मार्च 2023 में साक्षात्कार।

*(**लेखकीय परिचय:** अरुणाचल प्रदेश की सुपरिचित लेखिका मोर्जुम लोयी* बीनी याङा *शासकीय महिला महाविद्यालय, लेखी, नाहरलगुन, अरुणाचल प्रदेश के हिंदी विभाग में सहायक प्रोफेसर हैं। आपकी प्रकाशित पुस्तकें हैं: 'मिनाम', 'ननम पोनू', 'काबू' इत्यादि। मोबा: 9366409976, ई-मेल : morjum2010@gmail.com)*

उत्तर-पूर्वी राज्यों में हिंदी भाषा-शिक्षण : समस्याएँ एवं समाधान
(विशेष संदर्भ : अरुणाचल प्रदेश)

अवधेश नारायण मिश्र
मीना कुमारी

भारत के उत्तर-पूर्वी सीमांत पर हिमालय की श्रेणियों की पूर्वी प्रशाखाओं में अवस्थित पूर्वोत्तर राज्यों की सुंदरता अनुपम और अप्रतिम है। हिमाच्छादित और हरीतिमामंडित पर्वतीय श्रृंखलाओं, सघन जंगलों, नदियों-झरनों के बीच बसा जीवंत पूर्वोत्तर क्षेत्र जिसे ब्रिटिशकाल में 'नेफा' (NEFA) नाम से अभिहीत किया गया है; देश के कुल भौगोलिक क्षेत्र का 7.9 प्रतिशत भाग है। इसकी उत्तरी-पूर्वी सीमा से दक्षिणी-पश्चिमी सीमा तक के भाग को नारी शरीर एवं बीच में प्रवाहित लौहित्य (लोहित / ब्रह्मपुत्र) को उसकी रीढ़ (सुषुम्ना) के रूप में प्रकल्पित किया गया है। लगभग 2 लाख 62 हजार वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैले पूर्वोत्तर राज्यों में 200 के करीब भाषाएँ/बोलियाँ बोलने वाले लगभग 400 समुदायों के 3.9 करोड़ लोग निवास करते हैं। यह जनजातीय समाज अथक परिश्रमी, जुझारु और शांतचित्त प्रवृत्ति का है। यद्यपि प्राकृतिक संसाधनों पर पूर्णतः आश्रित इन विभिन्न समुदायों में जल, जमीन और जंगल को लेकर हुए ऐतिहासिक संघर्षों की कुछ जमी हुई परतें, मनमुटाव, भावनाएँ और पूर्वग्रह भी वर्तमान में दृष्टिगोचर होते हैं जिनके कारण अंतरसामुदायिक और अंतरराज्यीय समन्वय एवं सहयोग का अभाव देखने को मिलता है, तथापि इनमें आपसी मेलजोल, घनिष्ठता और लोक- व्यवहार संबंधी स्थायी निकटता भी प्रचुर मात्रा में विद्यमान है। पूर्वोत्तर की अधिकांश जनजातियों का इतिहास लिखित नहीं है, इसीलिए इनके जीवन-दर्शन व भावों को लोक कथाओं, मिथकों और प्रतीकों में अभिव्यक्ति मिली है। विविध बोलियों के बीच किसी सर्वमान्य भाषा-लिपि के अभाव के बावजूद इनमें भाषाई दुराग्रह नहीं है। ये जनजातियाँ अपने समतामूलक समाज और निराली जीवन-शैली के कारण भी बरबस सबका ध्यान आकृष्ट करती हैं। स्वाभिमान और शौर्य-प्रदर्शन इन जनजातियों की भूख है और यही इनकी जीवन-शैली का दर्पण भी। इनकी अनूठी सांस्कृतिक विशेषताएँ तथाकथित विकसित एवं सुसभ्य समाजों के लिए भी अनुकरणीय हैं। यथा-सामूहिक कल्याण की भावना, अपनी परंपरा और संस्कृति को अक्षुण्ण बनाए रखने की प्रतिबद्धता, प्रकृति से रागात्मक संबंध, एकता और बंधुत्व की भावना, तथा आडंबरहीन स्वच्छंद जीवन। पारंपरिक संस्कारों, लोकगीतों, लोककथाओं और लोकनृत्यों द्वारा ये अपने हजारों वर्षों के सामूहिक जनजातीय अनुभवों और लोकसंस्कृति को अभिव्यक्त करते हैं। पूर्वोत्तर राज्यों में मनाये जाने वाले अधिसंख्य पर्व-त्यौहार, ऋतु परिवर्तन और फसल चक्र पर आधारित हैं। इनके रीति-रिवाजों, धार्मिक अनुष्ठानों और भाषा-बोली में भिन्नता है, लेकिन यहां की सभी जनजातियाँ प्रकृतिपूजक हैं, भले ही आज की युवा पीढ़ी पर उत्तर आधुनिक सांस्कृतिक क्षरण के स्पष्ट प्रभाव दिख रहे हैं।

भारत के विविध भाषीय समाज को हिंदी एक व्यापक संप्रेषण-प्रणाली से जोड़ती है। हिंदी भाषा की व्यापकता संबंधी विशिष्टताओं के बावजूद उत्तर-पूर्व राज्यों के जनजातीय बहुल समाज में हिंदी के प्रति लगाव क्षीण है, और फलस्वरूप अन्य हिंदीतर भाषा-भाषी प्रांतों की तरह यहाँ भी व्यावहारिक हिंदी के नाम पर कागजी हिंदी सिखाई जाती है। द्वितीय भाषा-शिक्षण के रूप में हिंदी में दी जा रही शिक्षा एवं शिक्षण पद्धति में आपसी एकरूपता का सर्वथा अभाव भी हिंदी ज्ञानार्जन की राह में बड़ा अवरोध है। प्रशिक्षित अध्यापकों और भाषाजन्य

लगाव के अभाव में भी जो विद्यार्थी कक्षा में भाषा-विशेष में पारंगत मान लिया जाता है, वह जब अपने भाषा ज्ञान को लेकर कक्षा के बाहर समाज में जाता है तो उसे अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। यही विद्यार्थी जब विश्वविद्यालय स्तर पर एक विषय के रूप में हिंदी का अध्ययन करने आता है तो उससे अपेक्षा की जाती है कि वह हिंदी की साहित्यिक रचनाओं को समझने की क्षमता विकसित करे तथा उस माध्यम से उत्पन्न अपने ज्ञान को हिंदी समीक्षा पुस्तकों की सहायता लेकर, प्रचलित शैली में परीक्षा में पूछे गए प्रश्नों के उत्तर के रूप में अभिव्यक्त कर दे। परंतु विद्यार्थी अपने विषय में उपाधि प्राप्त करने के बावजूद पाठ्य विषय को सम्यक ढंग से विवेचित-विश्लेषित करने में असमर्थ रहता है। फिर नौकरी पाने के लिए साक्षात्कार के समय यह कहने को बाध्य हो जाता है कि कबीर या फलां साहित्यकारों के विषय में उसे कुछ याद नहीं आ रहा, पढ़ा तो है किंतु कई वर्ष बीत जाने के कारण उसे कुछ स्मरण नहीं रहा। ऐसी विडंबनापूर्ण स्थिति में हिंदीतर भाषा- भाषी जनजातीय बहुल इन राज्यों में विश्वविद्यालयी स्तर पर हिंदी भाषा-शिक्षण के मार्ग में आने वाली बाधाओं और उनके समाधान संबंधी स्रोतों को खोजना और इन चुनौतियों के निराकरण की दिशा में ठोस उपाय ढूँढ़ना अत्यंत आवश्यक है।

वस्तुतः भाषा-शिक्षण एक व्यावहारिक विधा है। इसका सीधा संबंध तीन विषयों से दिखाई पड़ता है। एक शिक्षाशास्त्र, दूसरा भाषाशास्त्र और तीसरा प्रबंधशास्त्र। इन तीनों का उपयुक्त एवं कार्यकारी सामंजस्य भाषा-शिक्षण को सफल बनाता है। भाषा- शिक्षक से यह अपेक्षा की जाती है कि वह शिक्षार्थी की मातृभाषा, उसकी संस्कृति और आचार-व्यवहार से पूर्णतया परिचित हो, ऐसे में वह छात्रों से सफल संप्रेषण स्थापित करने में सफल होता है। उत्तर-पूर्व के राज्यों में विशेष रूप से दक्ष एवं प्रवीण प्रशिक्षित हिंदी अध्यापकों का न होना गंभीर चिंता का विषय है। इसलिए इन राज्यों के जनजातीय बहुल लोगों की मानसिक संरचना, मस्तिष्कगत संप्रत्यय एवं नितांत वैयक्तिक संवेदना को छू पाने में कई बार हिंदी भाषा अपने को असमर्थ पाती है। हिंदी क्षेत्रों से गए शिक्षक उनकी जनजातीय भाषाओं से परिचित तक नहीं होते। यद्यपि कतिपय ऐसे कारण एवं समस्याएँ उनके सामने उपस्थित होती हैं जिनके कारण इन राज्यों में बोली जाने वाली भाषाओं का सहज अधिगम संभव नहीं हो पाता। यथाः

- इन भाषा-बोलियों में वर्गीय विविधता बहुत अधिक है।
- प्रत्येक भाषा को बोलने वालों की संख्या बहुत कम है।
- इन भाषाओं को बोलने वालों में परस्पर भाषिक एवं रीति-रिवाज संबंधी भिन्नता भी है।
- इस क्षेत्र में अवस्थित असम राज्य में हिंदी- भाषियों के प्रति दुर्भावना एवं अरुणाचल प्रदेश में भारत के अन्य भू-भागों की भाँति निर्बाध प्रवेश न होने के कारण यहाँ की जनजातियां भारत की मुख्य एवं सांस्कृतिक जीवनधारा से अभी पूर्णतया परिचित नहीं हैं।
- शिक्षा-स्तर की दृष्टि से ये राज्य अन्यों की तुलना में पिछड़े हुए माने जा सकते हैं।
- अनेक भाषाओं में लिखित साहित्य का नितांत अभाव है, यह विरले ही प्राप्त होता है। अध्ययन भी बहुत कम हुआ है।
- सुप्रशिक्षित हिंदी अध्यापकों का अभाव, उनकी समुचित प्रशिक्षण व्यवस्था की कमी के कारण भी यहाँ हिंदी शिक्षण उतना सफल नहीं हो पाता है।
- इन प्रदेशों के छात्रों के पूर्व ज्ञान, जीवन-पद्धति तथा युगीन आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर तैयार की गई पुस्तकों के अभाव के कारण हिंदी भाषा- शिक्षण असफल हो जाता है।

- इन राज्यों में हिंदी सीखने और सिखाने वाले दोनों के ही स्तर, रुचि, लक्ष्य और परिवेश में उदासीनता परिव्याप्त है। अतः सुधार हेतु उच्च शिक्षा के मूलभूत ढाँचें में परिवर्तन लाना आवश्यक है।
- अन्य भाषा-शिक्षण के संदर्भ में व्यक्ति में भाषिक क्षमता नियंत्रित प्रक्रिया के द्वारा उत्पन्न करनी पड़ती है और उसका व्यवहार एक नियंत्रित प्रक्रिया के द्वारा सिखाया जाता है। हिंदी भाषा के प्राध्यापक प्रायः इस प्रक्रिया को समझ नहीं पाते और हिंदी पढ़ाने के नाम पर बहुधा हिंदी साहित्य, देवनागरी लिपि अथवा विधि-निषेधात्मक व्याकरण पढ़ाते हैं। इतना ही नहीं, कक्षा में हिंदी कोश रटवाने का भी यत्न चलता रहता है ताकि हिंदी विद्यार्थी कुछ आधारभूत शब्दों को जान लें और जरूरत पड़ने पर प्रयोग कर सकें। लेकिन, इन सारे प्रयासों के फलस्वरूप वे जो भाषा थोड़ी-बहुत सीख पाते हैं, वह एक गौण-उत्पादन बनकर रह जाती है।

उत्तर-पूर्वी राज्यों के वासियों को हिंदी सीखने, बोलने, समझने और लिखने में जो कठिनाइयाँ आती हैं, उनको निम्नलिखित व्याकरणिक आधारों पर वर्गीकृत कर समझ सकते हैं:

(i) ध्वनिगत समस्याएँ: प्रत्येक व्यक्ति का उच्चारण सामाजिक और भौगोलिक परिस्थितियों से प्रभावित होता है। हिंदी ध्वनियों के उच्चारण में विद्यार्थी की मातृभाषा अपना दखल देती है। तिब्बती-बर्मी या नाग परिवार के अंतर्गत आने वाली यहां की भाषाओं का सर्वेक्षण और भाषावैज्ञानिक भाषाओं में ध्वनि बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। इन भाषाओं में एक ही ध्वनि के कई स्वरूप हैं और उनके अनुसार शब्द के अर्थ भी बदल जाते हैं। हिंदी में इन ध्वनियों का सुस्पष्ट उच्चारण सहज नहीं है। हिंदी और यहाँ की जनभाषाओं के उच्चारण का सूक्ष्मता से अवलोकन कर उच्चारणगत दोषों को दूर करना हिंदी शिक्षकों के लिए बहुत बड़ी चुनौती है। इसके लिए जरूरी है कि विद्यार्थी हिंदी ध्वनियों का उच्चारण कैसे करते हैं, वे इसे पकड़ें और फिर उसे सुधारने का प्रयास करें। कतिपय शब्दों की ध्वनियां जिनका उच्चारण वे हिंदी-भाषियों की तरह न कर कुछ भिन्न ढंग से करते हैं, निम्निलिखित हैं:

1. तिब्बती-बर्मी परिवार के अंतर्गत शब्द में तालव्य ध्वनि च, छ आती है, वहाँ इसका उच्चारण अंतस्थ स की तरह होता है, यथा-चटनी-साटोनी, चन्दा-सान्दा, चादर-सादोर, चाबी-साबी, चाय-साय, चीनी-सेनी, चील-सील, चिकन चिली-सिकन सिली, छागली-सागली, माछ- मास आदि। हिंदी के लिए यह एक प्रकार की वर्तनीगत अशुद्धि है जो कि नाग परिवार की भाषाओं की प्रवृत्ति है जिसके अंतर्गत स्पर्श का लोप होकर स्पर्शहीन ध्वनि का व्यवहार होने लगता है। अध्यापक को सदैव इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि विद्यार्थी/शिक्षार्थी पाठ को ठीक-ठीक समझे। इस बात की आश्वस्ति के लिए उन्हें 'प्रयत्न और भूल' (Trial & Error) सिद्धांत को अपनाना होगा।
2. ये ऋ स्वर का उच्चारण रु की तरह करते हैं, यथा; गृह-ग्रुह, पृथक-प्रुथक, नृत्य-न्रुत्य।
3. तालव्य ज और झ ध्वनियां वर्णमाला में हैं लेकिन, उच्चारण में नहीं। इसलिए इनका उच्चारण अँग्रेजी की ऊष्म ध्वनि जेड (z) की भांति करते हैं।
4. इनकी भाषाओं में उच्चारण और लेखन में भेद होने के कारण कतिपय शब्दों का ओकाराभिमुख उच्चारण करते हैं पर लिखते अकाराभिमुख है, यथा- 'गोरू' को लिखेंगे 'गरु' और पढ़ेंगे 'गोरू'।
5. पूर्वोत्तर की भाषाओं में दीर्घ स्वर अवश्य लिखे जाते हैं किंतु, उनका उच्चारण ह्रस्व करते हैं। ईकारान्त शब्दों को इकारान्त, ऊकारान्त को उकारान्त के रूप में उच्चरित करते हैं। यथा- पाखी (पक्षी) पाखि, मोती-मोति,

बाजू-बाजु।

6. संयुक्त व्यंजन क्ष का उच्चारण क्ख करते हैं- रक्षा-रक्खा, क्षुद्र-खुड़।
7. जब क्ष ध्वनि के साथ म ध्वनि का योग होता है, तब म ध्वनि का उच्चारण नहीं होता है। साथ ही अंतिम ध्वनि को अनुनासिक बनाने के लिए चंद्रबिंदु का भी प्रयोग करते हैं, यथाः लक्ष्मी-लोक्खीं।
8. अरुणाचल प्रदेश के 'आदी' जनजाति के भाषा- भाषी कंठ्य, दन्तोष्ठ, द्वयोष्ठ महाप्राण ध्वनि घ, ध, भ का प्रयोग नहीं करते।
9. पूर्वोत्तर भाषा-भाषी दीर्घ ईकारान्त और ऊकारान्त संज्ञाओं का बहुवचन रूप बनाते समय उनमें बहुवचन प्रत्यय जोड़ने के पूर्व उन्हें ह्रस्य कर इकारान्त, उकारान्त नहीं करते, यथाः वे नदी से नदीयाँ और वधू से वधूएँ रूप गढ़ लेते हैं।
10. यहाँ क्रिया में तिङ्तीय पद्धति है, अतः क्रिया में स्त्रीलिंग का प्रयोग प्रायः नहीं करते।
11. इन भाषाओं में अंतस्थ स ध्वनि ऊष्म ध्वनि ह में परिवर्तित हो जाती है, यथाः शंकर-हंकर, सुख- हुक, शुक्रवार-हुकुरवार।
12. ये मूर्धन्य पंचम ध्वनि का उच्चारण दन्तमूलीय अनुनासिक व्यंजन न की भाँति करते हैं, यथाः मणि- मोनी।
13. मूर्धन्य ष के बाद मूर्धन्य अनुनासिक व्यंजन ण के मूल से सृजित ध्वनि ष्ण का उच्चारण ष्ट करते हैं। यथा- कृष्ण-क्रस्टो, विष्णु-विष्टु।
14. 'ने' प्रत्यय तथा षष्ठी कारक का, के, की परसर्ग का सम्यक् प्रयोग करना नहीं जानते।
15. नाग भाषा परिवार (रामविलास शर्मा के अनुसार) के व्यक्ति हिंदी ड़, ढ़ ध्वनि का उच्चारण कर सकते हैं, किंतु य, म, व के उच्चारण में कठिनाई आ सकती है। ये र का उच्चारण ड़ करते हैंः परेश- पोड़ेख।
16. तालव्य श, मूर्धन्य ष और दन्त्य स ध्वनियाँ इनकी भाषा में अपने मूल रूप में उच्चरित नहीं होती हैं। इन ध्वनियों का उच्चारण अघोष कण्ठ ध्वनि अँग्रेजी 'एक्स' (x) के अनुरूप हो गया है।
17. यहाँ की देउरी आदि भाषाओं में घोष महाप्राण ध्वनि ख का उच्चारण अघोष अल्पप्राण क हो जाती है, यथाः खेत-केत, मक्खन मक्कन, खोना-कोना, खेतान-केतान इत्यादि।

(ii) संरचनामूलक समस्याएँ: उत्तर-पूर्व राज्य अरुणाचल प्रदेश में 24 भाषाएं और शताधिक बोलियां हैं। कामेंग जिले के निवासी मोडपा लोग अपने धार्मिक ग्रंथों के लिए तिब्बती लिपि का उपयोग करते हैं। हिंदी भाषा की लिंग-संरचना और क्रिया रूप यहाँ की भाषाओं की तुलना में जटिल हैं। हिंदी में प्राप्त पदबंध तथा वाक्य-स्तर पर लिंग, वचन की अन्विति भी छात्रों के लिए कठिन समस्या साबित हो सकती है क्योंकि यहाँ की भाषाओं में पदबंध एवं वाक्य स्तर पर लिंग, वचन और पुरुष अन्विति सदैव समान रूप में रहती है। साथ ही वाक्य संरचना भी हिंदी की तुलना में कुछ भिन्न है। पूर्वोत्तर राज्यों की अधिसंख्य भाषाओं की वाक्य संरचना हिंदी की भाँति S-O-V (कर्ता-कर्म- क्रिया) है, किंतु 'खामती' में यह क्रम कुछ भिन्न अंग्रेजी वाक्य संरचना के अनुरूप S-V-O (कर्ता क्रिया-कर्म) क्रम में लिखा जाता है। क्रिया का यही रूप सभी संख्या, वचन, पुरुष और लिंग में प्रयोग किया जाता है। यहाँ की कुछ भाषाओं में प्रश्नवाचक एवं नकारात्मक वाक्यों के निर्माण हेतु क्रिया के रूप में बदलाव लाया जाता है। सामान्यतया इस रूप के लिए क्रिया के पहले अक्षर के मध्य भाग में 'मा' 'मे' प्रत्यय जोड़ा जाता है। यहाँ की कुछ भाषाओं में 'माता' 'पिता' अथवा 'भाई' आदि संबंधों के संबोधनों के लिए कोई शब्द नहीं है। 'सिंडफो' में नातेदारी

का शब्द हमेशा व्यक्ति विशेष के साथ सम्मानसूचक शब्द लगाकर अभिव्यक्त किया जाता है। यथाः (anu) अनु-मेरी माँ' / (Inu) इनु-तुम्हारी/आपकी माँ / (gnu) 'ज्ञनु-उसकी माँ'। उनकी जीवन शैली के अभिन्न अंग, टोकरी को भी वे कार्य के अनुरूप अलग-अलग नामों से पुकारते हैं। ज्वार ढोने वाली टोकरी को वे 'करन' कहते हैं तो कपड़े रखने की टोकरी को 'कुसांग'। 'खाँग' चावल रखने की टोकरी होती है और 'फेंग-पा' मछली ढोने वाली टोकरी को कहते हैं। पूर्वोत्तर के एक राज्य अरुणाचल प्रदेश की प्रायः सभी जनजातियों के सार्वजनिक शयनागार हैं जो अलग-अलग नामों से अभिहित हैं। 'नाक्ते' जनजाति में इसे 'पंग' कहते हैं तो 'वाङचू' में यह 'पाह' नाम से प्रचलित है। प्रकृति के साथ आदिवासी समाज गहरे एवं आत्मीय रूप से जुड़े हुए हैं। यहाँ लगभग पूरे वर्ष वर्षा होती है। इसलिए बादल, वर्षा, नदी, झरने आदि के विभिन्न अर्थछाया वाले अनेक शब्द इनकी भाषा में उपलब्ध हैं।

(iii) अर्थगत समस्याएँ- हिंदी की विभिन्न अभिव्यक्तियों का संस्कार इन जनजातियों को ज्ञात नहीं है। अतः इन्हें शब्दों के अर्थ समझने में कठिनाई होती है। असमी भाषा को छोड़ दें तो हिंदी की तुलना में पूर्वोत्तर राज्यों की जनजातीय भाषाएँ अधिकतर सीमित शब्द-भंडार की हैं और शब्दों के अर्थ भी सरल हैं। विभिन्न स्तरों पर आदिवासी/जनजातीय विद्यार्थियों की जो त्रुटियाँ संज्ञान में आयी हैं, उन्हें निम्नांकित सारणियों द्वारा दर्शाया जा सकता है।

ध्वनिगत शुद्धियाँ अशुद्धियाँ:

शुद्ध रूप: खेत, मक्खन, सोना, खेतान, चटनी, चंदा, चादर, चाबी, चिकन चिली, छागली, माछ, बधुएँ, नदियाँ, चाय, चीनी, चील, चूना, शंकर, सुख, शुक्रवार, ऋषि, गृह, कृपा, लक्ष्मी, कृष्ण, मणि।

अशुद्ध रूप: केत, मक्कन, होना, केतान, साटोनी, सान्दा, सादोर, साबी, सिकन-सिली, सागली, मास। वधूएँ, नदीयाँ, साय, सेनी, सील, सून, हंकर, हुक, हुकुरवार, रुसु, क्रुपा, लोक्खीं, क्रस्टो, मोनी।

'ने' के प्रयोग में अशुद्धि:

शुद्ध रूप: उसकी एक लड़के से शादी हो गयी।
चिड़ियाँ घोंसले में रहना चाहती हैं।
वह जल्दी जाना चाहती है।
उसे भूख लगी थी।
वह लंबी साँस लेने लगा।

अशुद्ध रूप: उसने एक लड़का से सादी हो गया।
चिड़िया ने घोंसले में रहना चाहती है।
उसने जल्दी जाना साहती है।
उसने भूख लगी थी।
उसने लंबी सासे लेना लगा।

वर्तनीगत अशुद्धियाँ:

शुद्ध रूप: महिला, स्थिति, वस्तु, दृश्य, अपना।

अशुद्ध रूप: महेला, स्थित, वास्तु, द्रिश्य, आपन/अप्ना।

शुद्ध रूप: साधु, सोचते, झीना, अंडा, मोटा।

अशुद्ध रूप: सादु, सचते, जीना, अंदा, माटा।

शुद्ध रूप: मिश्र, विष्णु, ले आया, खुश, जानवरों।

अशुद्ध रूप: मिक्ष, विश्नु, लेया, खुस, जानावरो।

शुद्ध रूप: नंगा, शरीर, आनंद, खुद, बहुत।

अशुद्ध रूप: नांगा, सरिर / सारिर, आंन्द, खुट, भोत ।

'का' 'के' 'की' के प्रयोग में अशुद्धि-

शुद्ध रूप: घर की तरफ, लड़की की दोस्ती, हमारी लव मैरिज हुई है। हम लोगों के शरीर में दर्द हो रहा है। मेरे मन का बोझ उतर गया।

अशुद्ध रूप: घर तरफ (की)।

लड़की का दोस्ती (की)।

हम लोगों का लव मैरिज हुई है। (की)।

हम लोगों का शरीर में दर्द हो रहा है। (के)

मेरा मन की बोज़ उत्तर गाया। (का), (बोझ)

भाषा-अधिगम के चार कौशल हैं- श्रवण, वाचन, भाषण एवं लेखन। इन चारो कौशलों में विद्यार्थी को अधिकाधिक निपुण बनाना ही भाषा-शिक्षण का उद्देश्य है। भाषा अधिगम की अवधारणा प्रत्यक्ष रूप से व्यवहार से संबंधित है। वस्तुतः सत्य यही है कि जिस भाषा का हम जितना प्रयोग करेंगे, उसमें उतनी जल्दी सिद्धहस्तता प्राप्त होगी। किंतु उत्तर-पूर्वी राज्यों में घर हो, परिवार हो, बाजार हो, मित्र/परिचितों का साथ हो, सभी जगह स्थानीय भाषा का परिवेश होने के कारण हिंदी को पूरी तरह से मुखर हो पाने का माहौल कम मिल पाता है, नतीजा वही कि शुद्ध हिंदी सीखना उनके लिए आग का दरिया को पार करने जैसा हो जाता है। किंतु, रुचि और अभ्यास के कारण हिंदी फिल्मों और फिल्मी गानों के प्रभाव से वे बम्बइया हिंदी जल्दी सीख जाते हैं। विद्यार्थियों की या भाषा सीखने वालों की वास्तविक दुनिया हिंदी भाषा के जितनी निकट आए, उतना ही भाषा-शिक्षण समृद्ध और प्रभावशाली होता है। इससे उनके मन में हिंदी के प्रति भी अपनत्व की भावना जनमती है और वे जल्दी ही हिंदी सीखने में समर्थ होते हैं। इसीलिए कक्षा में कुछ मूलभूत बातों का ध्यान रखना आवश्यक होता है, जैसे- 1. डॉ. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव ने पुनरावृत्ति अभ्यास, योजना अभ्यास, सामान्य रूपांतरण अभ्यास, रूपांतरण विस्तारण अभ्यास, रूपंतरण संकोचन अभ्यास, संदर्भपरक अभ्यास नाम से उदाहरण सहित अभ्यास दिए हैं, जो उनके अनुसार भाषा की संरचना-व्यवस्था उत्पन्न करने में समर्थ हैं। इन अभ्यासों को पाठ्यक्रम में शामिल करना उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

2. विद्यार्थी की धीमी प्रगति को जाँचने के लिए उन्हें क्रमानुसार पाठ पढ़ाए जाने की जरूरत होती है। बीस से पच्चीस पाठ क्रमानुसार उचित ढंग से पढ़ाए जाने के बाद उनकी बुनियाद ठीक-ठाक हो जाती है। इस दौरान हिंदी शिक्षक को चाहिए कि वे हिंदी और शिक्षार्थी की मातृभाषा की समानांतर ध्वनियों का पहले अध्ययन करवायें, फिर भिन्न ध्वनियों को लेकर उनका बेहतर अभ्यास कराया जाना चाहिए। इतने अभ्यास के बाद सीखी हुई ध्वनियों से शब्द एवं वाक्य का गठन करवाकर तथा उनके उच्चारण का अभ्यास करवाकर उनके अर्थभेद को समझाना चाहिए। बाद में वस्तुनिष्ठ प्रश्नों, छोटे-छोटे अभ्यास प्रश्नों, मौखिक उच्चारण आदि से समय-समय पर उनकी प्रगति का मूल्यांकन करना सम्यक हिंदी शिक्षण हेतु अनिवार्य है।

3. हिंदी शिक्षण के दौरान पाठ्यक्रम में जनजातीय मिथकीय-विश्वासों, प्रतीकों, आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक जीवन के कुछ शब्दों को हिंदी शब्दकोश में सम्मिलित कर लिया जाना चाहिए ताकि उनकी संस्कृति अनछुए रूप में

सुरक्षित रहे। सामाजिक ढाँचे के अध्ययन के लिए उनकी सामाजिक-व्यवस्था से ही विषय (subject matter) चुना जाए। स्थानीय भाषाओं से दिन, तारीख, गिनती के अंक लेकर तथा लोक कथाओं अथवा लोकगीतों का लिप्यंतरण कर उन्हें पाठ्यक्रम का हिस्सा बनाकर, हिंदी के समानांतर पढ़ाया जाना उपयोगी साबित हो सकता है।

4. द्वितीय भाषा-शिक्षण के रूप में हिंदी को पढ़ते समय स्थानीय भारतीय भाषा के साथ हिंदी की तुलना करके भेद और अभेद के बिंदुओं को पहले दृष्टिपथ में रखते हुए, पढ़ाने के क्रम में उन्हें वरीयता दी जानी चाहिए और भेदपरक अंश से अन्य पाठों को क्रमशः बाद में पढ़ाया जाना चाहिए। इससे विद्यार्थियों में तुलनात्मक अध्ययन के प्रति अभिरुचि बढ़ेगी और वे अनुवाद की ओर आकृष्ट होंगे।

5. विश्वविद्यालयी स्तर पर भाषा-शिक्षण में क्रमादेशी अधिगम, अभिरचना अभ्यास, भाषा प्रयोगशाला, शिक्षण मशीन के साथ-साथ अब कंप्यूटर, मल्टीमीडिया टेली कॉन्फ्रेन्सिंग आदि नवीन उपलब्धियों को उपयोग में लाया जाना चाहिए।

6. हिंदीतर भाषा-भाषियों को हिंदी सिखाने में अनेक समस्याएँ आती हैं, ये समस्याएँ विकट रूप धारण तब कर लेती हैं जब शिक्षार्थी आर्येतर क्षेत्र के हों। इसलिए डॉ. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव ने यह सुझाव दिया कि द्वितीय भाषा के दो उपवर्ग बनाए जाएँ- स्वजातीय और विजातीय। हिंदी भाषा शिक्षक को पहले विद्यार्थियों को उपर्युक्त आधार पर बाँटकर, इनकी मुश्किलों को समझकर उनका निदान ढूँढ़ने का प्रयत्न करना चाहिए। उदाहरण के लिए अरुणाचल प्रदेश में मैदानी इलाकों से गए आर्येतर भाषियों, (जो उच्च पदस्थ हैं), की हिंदी एवं वहाँ पले-बढ़े लोगों की हिंदी व अल्पशिक्षित एवं निम्न पदस्थ लोगों की अपनी क्षेत्रीय बोलियों से प्रभावित हिंदी और वहां के मूल बाशिंदों की हिंदी, फिल्मों एवं टी.वी. सीरियलों से प्रभावित हिंदी ये सभी रूप मिलकर एक अलग तरह की हिंदी का निर्माण करते हैं, जो न तो पिजिन है और न क्रियोल। यह हिंदी का बिगड़ा हुआ रूप है और उसे ही थोड़ा-बहुत सीखकर विद्यार्थी हिंदी कक्षा में आते हैं, बस यही जरूरत है कि इन विद्यार्थियों को मानकीकृत और परिष्कृत हिंदी-प्रयोग का प्रशिक्षण दिया जाए। इनके लिए अतिरिक्त कक्षाएँ, समूह परिचर्चा और गाष्ठियों का आयोजन किया जाए। कुल मिलाकर यह कि हिंदी शिक्षकों को हिंदीतर क्षेत्र में, विशेषतः आर्येतर भाषी क्षेत्रों में, बहुत परिश्रम करने की आवश्यकता है।

7. भाषा सीखने के लिए भाषा सम्मिलन समारोह या भाषोत्सव विश्वविद्यालय में उपादेय सिद्ध हो सकता है जिसमें कक्षा को विभिन्न समूहों में बाँटकर उनसे समाज के विभिन्न कर्मियों की भूमिका निभाने के लिए कहा जाए। इस कक्षा में संवाद का प्रारंभ अध्यापक स्वयं करे और विद्यार्थी उस संवाद को आगे बढ़ाकर एक स्वाभाविक वातावरण का निर्माण करें। इससे उन्हें भाषा सीखने का स्वाभाविक वातावरण उपलब्ध हो सकेगा और जब वास्तविक जीवन में वे इन सीखे हुए पाठों का सही-सही उपयोग करेंगे, तब उनमें आत्मविश्वास बढ़ेगा और दुगुने उत्साह से आगे की चुनौतियों का सामना करने के लिए तैयार रहेंगे।

8. हिंदी भाषा-शिक्षण द्वारा विभिन्न कौशलों का विकास करना चाहिए। जैसे-भाषा-कौशल, श्रवण- कौशल, पठन-कौशल, लेखन कौशल। विद्यार्थी में इन कौशलों के विकास के लिए छोटे-छोटे सेमिनार, विषय से संबंधित वाक्य लेखन प्रतियोगिताएँ, कार्यशालाएँ आदि का आयोजन समय-समय पर करना चाहिए। इसके अतिरिक्त हस्तलिखित पत्र-पत्रिकाओं को तैयार करने की प्रेरणा देकर उनकी सृजनात्मक क्षमता को सींचना भी इस दिशा में महत्त्वपूर्ण कदम सिद्ध हो सकता है। इसका विद्यार्थी में अच्छा लेखक बनने का भी संवर्धन होगा।

9. भाषा शिक्षक का यह व्यावसायिक और नैतिक कर्तव्य है कि वह अपने अभिव्यंजना कौशल और भाषा विषयक ज्ञान में निरंतर अभिवृद्धि करता रहे। इसके अंतर्गत उसे मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, भाषा-विज्ञान जैसे विषयों से प्रक्रिया-प्रविधि और सहायता लेनी चाहिए क्योंकि भाषा अर्जन के सिद्धांत के तार मनोविज्ञान से जुड़े हैं, भाषा समाज संदर्भित है और भाषा को समझने एवं विश्लेषण की अंतर्दृष्टि भाषा-विज्ञान देता है।

10. भाषा सीखने की लालसा विकसित करने हेतु शिक्षकों को चाहिए कि वे विद्यार्थियों को रटने-रटाने की प्रवृत्ति का परित्याग कर ग्रंथालय जाकर स्वयं भी भाषा सीखने के प्रयत्नों को प्रोत्साहन दें क्योंकि शिक्षण-कला में ग्रंथालयों का उपोग ही शिक्षा में गुणात्मक विकास ला सकता है।

11. हिंदीतर भाषी हिंदी सीखने के लिए प्रायः तभी तत्पर होते हैं जब उन्हें हिंदी भाषा से तात्कालिक लाभ और सुविधा प्राप्त होने की आशा होती है। इसलिए विश्वविद्यालय स्तर पर जो हिंदीतरभाषी विद्यार्थी हिंदी को उच्चतर शिक्षा का विषय बनाते हैं, उसके पीछे उनका भावात्मक लगाव कम और अन्य कारण (यथा अन्य रुचिकर विषयों में प्रवेश न मिल पाना, छात्रवृत्ति, निकटस्थ /आत्मीय जन का हिंदी विषय ले लेना, भविष्य में नौकरी मिलने की प्रत्याशा आदि) अधिक होते हैं। उन्हें यह विश्वास होना चाहिए कि यह भाषा उनके व्यावसायिक अभिप्रेतों को सफल बनाने तथा पूरे देश के साथ सामाजिक एवं सांस्कृतिक संपर्क साधने का सशक्त माध्यम बनेगी। विद्यार्थियों से भी अपेक्षित है कि हिंदी सीखते समय केवल भाषिक ग्रहणशीलता और निस्पृहता का भाव न रखकर आत्मीयता का भाव रखें।

12. भाषा-शिक्षण के दौरान कक्षा में स्वाभाविक वातावरण के निर्माण के निमित्त संप्रेषण विधि को अपनाना कारगर होता है, किंतु, 'उस अध्यापक को भी जो पूर्णतः संप्रेषण विधि की ओर झुकता है, समझ लेना चाहिए कि व्याकरणिक एवं स्वनिक गलतियों की अधिकता, संप्रेषण को नष्ट भी कर सकती हैं। (मॉरो, 1981)

13. इन विद्यार्थियों की ध्वनिगत समस्याओं को दूर करने के लिए इन्हें स्वन-विज्ञान की जानकारी देना आवश्यक है। इसके लिए आवश्यक है कि हिंदी भाषा शिक्षक केवल मौखिक व्याख्यान न देकर चार्ट, डायग्राम, चित्र, टेप-रिकॉर्डर एवं अन्य ध्वनि- उपकरणों आदि का भी प्रयोग करें। सम्यक श्रवण- वाचन व प्रयत्न से उच्चारणगत दोष भी दूर हो जाता है। घोष अघोष तथा अल्पप्राण एवं महाप्राण ध्वनियों का भेद समझकर शुद्ध उच्चारण करने में यह विधि बहुत उपयोगी सिद्ध होती है। भाषा-शिक्षण में ध्वनियों का विधिवत एवं वैज्ञानिक शिक्षण कारगर होता है।

14. काइमोग्राफ का प्रयोग कर घोषत्व एवं अघोषत्व की सटीक स्थिति का अंकन किया जा सकता है। हिंदीतरभाषियों के लिए यह बेहद जरूरी होता है क्योंकि अपनी मातृभाषा के व्याघात (interference) के कारण वे हिंदी की महाप्राण ध्वनि को अल्पप्राण और घोष ध्वनि का उच्चारण अघोष ध्वनि की तरह कर देंगे, जिससे अर्थ का अनर्थ होने की पूरी संभावना बनी रहेगी।

15. टेप रिकॉर्डर का प्रयोग विद्यार्थी को शुद्ध उच्चारण सुनाने, उनके उच्चारण को मिलाने, अशुद्धियों को पकड़ने, ध्वनियों की अनेक बार पुनरावृत्ति कराने और उसके अर्थ को भी समझने में सहायक होता है। यह यंत्र भाषा-विशेष की पद्धति के अनुसार भाषा का वांछनीय स्वरूप भी प्रस्तुत करता है। जैसे र का उच्चारण ड़ ध्वनि के उच्चारण भेद को टेप रिकॉर्डर के द्वारा आसानी से पकड़ा-समझा जा सकता है।

16. युगीन आवश्यकताओं और समाज द्वारा निर्धारित शिक्षा के लक्ष्य और हिंदी के प्रयोजनमूलक आयामों की पूर्ति हेतु हिंदी का पाठ्यक्रम प्रांतीय प्राथमिकताओं और सामासिक भारतीय संस्कृति का सामंजस्य करते हुए निर्मित करना चाहिए और निर्धारित अवधि में इसके सम्यक पठन-पाठन की व्यवस्था भी होनी चाहिए।

17. भाषा-शिक्षण एवं पाठ्यक्रम निर्धारण अत्यंत संवेदनशील मुद्दा है। भाषा शिक्षक से यह अपेक्षित है कि अध्यापन में यांत्रिकता, पूर्वग्रह और स्वभाषिक आग्रहों का परित्याग कर संतुलित भूमिका का निर्वहन करे। हिंदीतर भाषा-भाषियों के भाषा-शिक्षण में व्यावहारिक ज्ञान-परीक्षण एवं अध्ययन पर्यटन, यथा-हिंदी क्षेत्रों के विश्वविद्यालयों में हिंदी विषयों की शिक्षण पद्धति से परिचय और संवाद, ग्रंथालयों का अवलोकन, यात्रा प्रतिवेदन का प्रस्तुतिकरण आदि हितकर हो सकते हैं। इसके लिए पाठ्यचर्या में परिवर्तन और पाठ्यक्रम के किसी प्रश्नपत्र में कुछ अंक निर्धारित करना समीचीन होगा।

18. हिंदी भाषा-शिक्षण की विविध प्रणालियों को आत्मसात कर उनका अद्यतन न होना भी इसकी राह में बड़ा अवरोध है। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि हिंदी शिक्षण में हिंदीतर विद्यार्थियों की मनोवैज्ञानिक आवश्यकता को समझकर साहित्य के क्षेत्रों में हो रहे नये शोध, नये प्रयोगों को स्थान देना चाहिए।

*(**लेखकीय परिचय :** प्रो. अवधेश नारायण मिश्र काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी के हिंदी विभाग के प्राक्तन प्रोफेसर हैं। हिंदी साहित्य, समकालीन कविता एवं गीत, भाषा-विमर्श, शैली विज्ञान एवं प्रयोजनमूलक हिंदी के क्षेत्र में आपकी विशेषज्ञता और योगदान उल्लेखनीय है। मोबा: 9415991344, ई-मेल : anmbhu@gmail.com; / डॉ. मीना कुमारी इलाहाबाद विश्वविद्यालय के हिंदी एवं आधुनिक भारतीय भाषा विभाग में सहायक प्रोफेसर। आधुनिक हिंदी साहित्य एवं भाषा-विज्ञान में विशेष अध्ययन। जनकवि नागार्जुन पर आपकी दो पुस्तकें प्रकाशित हैं।*

मोबा: 9454187568, ई-मेल : drmeena.au@gmail.com)

बहुभाषाई एवं बहुसांस्कृतिक अरुणाचल प्रदेश में अनुवाद-अध्ययन की आवश्यकता

ज्योतिष पायेङ

भारत के उत्तर-पूर्वी राज्य अरुणाचल प्रदेश बहुभाषीय और बहुसांस्कृतिक परिदृश्य का एक आकर्षक उदाहरण प्रस्तुत करता है। पूर्वी हिमालय में बसा और भूटान, चीन और म्यांमार से घिरा अरुणाचल प्रदेश अपनी समृद्ध भाषाई विविधता और जीवंत सांस्कृतिक परंपराओं के लिए जाना जाता है। अरुणाचल प्रदेश के बहुभाषी और बहुसांस्कृतिक पहलुओं पर प्रकाश डालें, तो इसके जटिल भाषाई परिदृश्य, विविध जातीय समूहों, सांस्कृतिक प्रथाओं और राज्य की अनूठी पहचान को आकार देने वाले तत्त्वों से साक्षात्कार होता है। इन तत्त्वों के बीच परस्पर क्रिया-प्रक्रिया की खोज करते हुए अरुणाचल प्रदेश में अनुवाद अध्ययन की आवश्यकता एवं संभावनाओं पर प्रकाश डालना उचित ही जान पड़ता है। सामाजिक भाषाविज्ञान के अध्ययन के दृष्टिकोण से अरुणाचल प्रदेश में प्राय: पचास से अधिक भाषाएँ, उप भाषाएँ और बोलियाँ बोली जाती हैं। इस क्षेत्र के प्रमुख भाषा परिवारों में तिब्बती-बर्मी, सिनो-तिब्बती और कुछ इंडो-यूरोपीय भाषाएँ शामिल हैं। राज्य में विभिन्न जातीय समूह रहते हैं, जिनमें से प्रत्येक की अपनी भाषा है। उदाहरण के लिए, आदी, आपातानी, खामति, गालो, तागिन, न्यीशी, मिसिङ और मोनपा जनजातियाँ अलग-अलग भाषाएँ और बोलियाँ बोलती हैं। अरुणाचल प्रदेश में विभिन्न जनजातियों की सांस्कृतिक पहचान में भाषा एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। भाषा अक्सर पारंपरिक प्रथाओं, सामाजिक स्थिति और सामुदायिक सामंजस्य से जुड़ी होती है। स्वदेशी भाषाओं को संरक्षित करने और बढ़ावा देने के प्रयास महत्त्वपूर्ण हैं, क्योंकि आधुनिकीकरण और प्रमुख भाषाओं के प्रभाव के कारण कई भाषाओं के लुप्त होने का खतरा है। अरुणाचल प्रदेश के निवासी बहुभाषी हैं, जो अक्सर हिंदी और अंग्रेजी के साथ-साथ अपनी स्थानीय स्वदेशी भाषा बोलते हैं। हिंदी और अंग्रेजी का उपयोग आधिकारिक और शैक्षिक संदर्भों में किया जाता है, जबकि स्वदेशी भाषाओं का उपयोग दैनिक जीवन और सांस्कृतिक प्रथाओं में किया जाता है। भाषाओं या बोलियों के बीच कोड-स्विचिंग आम है, खासकर उच्च भाषाई विविधता वाले क्षेत्रों में। यह सामाजिक गतिशीलता और पहचान में परिवर्तन को दर्शा सकता है।

स्कूलों में शिक्षा का माध्यम अक्सर हिंदी और अंग्रेजी होता है, लेकिन द्विभाषीवाद को बढ़ावा देने और भाषाई विविधता का समर्थन करने के लिए पाठ्यक्रम में स्थानीय भाषाओं को शामिल करने के प्रयास किए जा रहे हैं। जबकि उच्च शिक्षा और प्रशासनिक मामलों में अंग्रेजी का उपयोग किया जाता है, स्वदेशी भाषाओं की दक्षता और उपयोग विभिन्न क्षेत्रों में काफी भिन्न होते हैं। आधुनिकीकरण और आर्थिक विकास ने नई भाषाओं और बोलियों को पेश किया है और आर्थिक और सामाजिक उन्नति के लिए हिंदी और अंग्रेजी जैसी प्रमुख भाषाओं की ओर युवा पीढ़ी का झुकाव बढ़ रहा है। मीडिया और प्रौद्योगिकी के प्रभाव ने वैश्विक भाषाओं और संस्कृतियों के संपर्क में वृद्धि की है, जिससे स्वदेशी भाषाओं के उपयोग और स्थिति पर असर पड़ा है। भाषा समुदायों के भीतर सामाजिक पदानुक्रम और शक्ति गतिशीलता को दर्शा सकती है। उदाहरण के लिए, कुछ भाषाएँ दूसरों की तुलना में अधिक प्रतिष्ठा रख सकती हैं या उच्च सामाजिक स्थिति से जुड़ी हो

सकती हैं। अरुणाचल प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों में सामाजिक और भाषाई पदानुक्रम स्थानीय परंपराओं और ऐतिहासिक कारकों से प्रभावित होकर काफी भिन्न हो सकते हैं। केंद्र और राज्य सरकारें और गैर-सरकारी संगठन भाषा प्रलेखन, संरक्षण और पुनरोद्धार कार्यक्रमों की दिशा में काम कर रहे हैं। भाषा नियोजन प्रयासों का उद्देश्य भाषाई विरासत के संरक्षण के साथ आधुनिकीकरण की जरूरतों को संतुलित करना है।

अनुवाद अध्ययन एक अकादमिक अनुशासन है जो विभिन्न भाषाओं और संस्कृतियों के बीच विभिन्न पाठों या ग्रंथों के अनुवाद और व्याख्या की जटिल प्रक्रियाओं की जांच करता है। इसमें सैद्धांतिक रूपरेखा से लेकर व्यावहारिक अनुप्रयोगों तक विषयों की एक विस्तृत श्रृंखला शामिल है और यह अध्ययन करता है कि भाषाई और सांस्कृतिक सीमाओं के पार अर्थ कैसे स्थानांतरित किया जाता है। अनुवाद एक भाषा (स्रोत भाषा) से पाठ या कथन को दूसरी भाषा (लक्ष्य भाषा) में प्रस्तुत करने की प्रक्रिया को संदर्भित करता है, जबकि इसका उद्देश्य इसके अर्थ, स्वर और संदर्भ को संरक्षित करना है। अनुवाद अध्ययन इस प्रक्रिया की विद्वतापूर्ण कार्य व्यापार है, जिसमें इसका सिद्धांत, अभ्यास, इतिहास और प्रभाव शामिल है। यह पता लगाता है कि अनुवाद कैसे तैयार किए जाते हैं, प्राप्त किए जाते हैं और उनका मूल्यांकन कैसे किया जाता है। अनुवाद के अध्ययन की जड़ें प्राचीन हैं, इसके शुरुआती उदाहरण भारत, मेसोपोटामिया, मिस्र और ग्रीस जैसी प्राचीन सभ्यताओं के ग्रंथों में पाए जाते हैं। ऐतिहासिक रूप से, अनुवाद ज्ञान, धर्म और संस्कृति के प्रसार के लिए महत्त्वपूर्ण था। समय के साथ, अनुवाद अभ्यास शाब्दिक अनुवाद पर ध्यान केंद्रित करने से लेकर संदर्भ, संस्कृति और उद्देश्य पर विचार करने वाले अधिक सूक्ष्म दृष्टिकोणों तक विकसित हुए हैं। विभिन्न सैद्धांतिक रूपरेखाओं के विकास के साथ, इस अनुशासन ने 20वीं शताब्दी में अकादमिक मान्यता प्राप्त की है।

अनुवाद प्रथाओं को समझने और उनका मार्गदर्शन करने के लिए मॉडल और सिद्धांत विकसित करता है। सिद्धांतों में समतुल्यता, निष्ठा और कार्यात्मकता जैसी अवधारणाएँ शामिल हैं। भाषाओं के बीच प्रभावी संचार प्राप्त करने के लिए विभिन्न तकनीकों और उपकरणों को नियोजित करते हुए, विभिन्न पाठों या ग्रंथों का अनुवाद करने की वास्तविक प्रक्रिया शामिल है। अनुवादों की सटीकता, गुणवत्ता और उपयुक्तता के लिए उनका मूल्यांकन करता है, अक्सर उन्हें स्रोत पाठों या ग्रंथों से तुलना करता है। मौखिक संचार के मौखिक अनुवाद पर ध्यान केंद्रित करता है, जिसमें एक साथ और क्रमिक व्याख्या जैसी विधियाँ शामिल हैं। यहाँ यह जाँच किया जाता है कि सांस्कृतिक अंतर अनुवाद को कैसे प्रभावित करते हैं, जिसमें स्थानीयकरण और विभिन्न सांस्कृतिक संदर्भों में सटीक होने के लिए सामग्री का अनुकूलन शामिल है। भाषा संरचना और शब्दार्थ में अंतर्दृष्टि प्रदान करता है, जो सटीक अनुवाद के लिए आवश्यक हैं। यह पता लगाया जा सकता है कि साहित्यिक अनुवाद कथा शैली और साहित्यिक सौंदर्यशास्त्र को कैसे प्रभावित करता है। इसमें यह भी जाँच की जाती है कि सांस्कृतिक मानदंड और मूल्य अनुवाद प्रथाओं और अनूदित पाठों के अनुरूपण को कैसे प्रभावित करते हैं। मशीन अनुवाद और संगणक-आधारित अनुवाद (CAT) में टूल कृत अनुवाद तकनीक में अनुवाद विधा की प्रगति दिखाई पड़ती है। भाषाओं के बीच संप्रेषण संचार को सुगम बनाने के लिए व्यवसाय, कानून, चिकित्सा और कूटनीति जैसे विभिन्न क्षेत्रों में अनुवाद कार्य उपयोग किया जाता है। अनुवाद कार्य के माध्यम से विभिन्न कार्य व्यापारों, सामजिक-राजनीतिक समझौते, साहित्य-संस्कृति, बाजारों के लिए उत्पादों और सामग्रियों के आदान-प्रदान आदि को यह सुनिश्चित करते हुए अनुकूलित करता है कि वे सांस्कृतिक रूप से प्रासंगिक और उपयुक्त हैं। इसमें

विद्वानों के लेखों, पुस्तकों और साहित्यिक कृतियों का अनुवाद करना शामिल है ताकि उन्हें व्यापक पाठकों तक पहुँचाया जा सके। कृत्रिम बुद्धिमत्ता और न्यूरल मशीन ट्रांसलेशन सिस्टम का विकास इस क्षेत्र को आज बदल रहा है, दक्षता और सटीक अनुवाद के लिए नए उपकरण अपना रहा है। अंतरराष्ट्रीय संपर्क में वृद्धि के लिए भाषाई और सांस्कृतिक अंतर को निष्पादन के लिए प्रभावी अनुवाद और स्थानीयकरण रणनीतियों की आवश्यकता होती है। अनुवाद अध्ययन इस बारे में मूल्यवान जानकारी प्रदान करता है कि अनुवाद किस तरह से आकार प्रदान करता है और भाषाई, सांस्कृतिक और तकनीकी कारकों द्वारा आकार प्राप्त करता है। यह एक अंतर्विषयक क्षेत्र है जो न केवल अनुवाद प्रक्रिया के तकनीकी पहलुओं को संबोधित करता है बल्कि भाषाओं और संस्कृतियों में अनुवाद के व्यापक निहितार्थों का भी पता लगाता है। आज जिस गति से वैश्वीकरण और प्रौद्योगिकी की प्रगति विकसित हो रही है, इसी के अनुरूप अनुवाद अध्ययन बहुभाषावाद, बहुसंस्कृतिवाद, भाषाई संप्रेषण एवं क्रॉस-कल्चरल संचार को समझने और सुधारने के लिए एक महत्त्वपूर्ण विधा है।

1. भौगोलिक और ऐतिहासिक संदर्भ:

अरुणाचल प्रदेश की भौगोलिक विविधता इसके भाषाई और सांस्कृतिक ताने-बाने को महत्त्वपूर्ण रूप से प्रभावित करती है। राज्य की विशेषता में कई तरह के परिदृश्य हैं, जिनमें हरे-भरे तलहटी, उपजाऊ नदी घाटियाँ और पूर्वी हिमालय का ऊबड़-खाबड़ इलाका शामिल है। अलग-अलग ऊँचाई और जलवायु अलग-अलग पारिस्थितिक क्षेत्र बनाते हैं, जिसके कारण वनस्पतियों और जीवों की एक विस्तृत श्रृंखला यहाँ मौजूद हैं। यह स्थलाकृतिक विविधता विभिन्न समुदायों के बीच भिन्नता को बढ़ावा देती है, जिससे भिन्न-भिन्न अनूठी भाषाओं और सांस्कृतिक प्रथाओं का विकास होता है। ऐतिहासिक रूप से, अरुणाचल प्रदेश विभिन्न संस्कृतियों और सभ्यताओं का संगम स्थल रहा है। भारत और तिब्बत के बीच प्राचीन व्यापार मार्गों पर स्थित होने के साथ-साथ दक्षिण-पूर्व एशिया से इसकी निकटता ने सांस्कृतिक और भाषाई आदान-प्रदान को सुविधाजनक बनाया है। तिब्बती बौद्ध धर्म, असम से हिंदू धर्म और ब्रिटिश काल के दौरान औपनिवेशिक प्रभावों के प्रभाव ने इस क्षेत्र की परंपराओं और भाषाओं के समृद्ध ताने-बाने में योगदान दिया है। संप्रति दन्यि-पोलो स्थानीय लोग आध्यात्म से आधारित धर्म की भूमिका उल्लेखनीय है। प्राचीन और मध्यकालीन काल के परिप्रेक्ष्य में अरुणाचल प्रदेश क्षेत्र की रणनीतिक स्थिति ने इसे प्राचीन व्यापार मार्गों के लिए एक चौराहा बना दिया। ऐतिहासिक अभिलेखों और पुरातात्विक खोजों से पता चलता है कि अरुणाचल प्रदेश पर तिब्बत और दक्षिण-पूर्व एशिया की तिब्बती-बर्मी संस्कृतियों सहित विभिन्न सभ्यताओं का प्रभाव था। पड़ोसी क्षेत्रों के प्राचीन ग्रंथ और शिलालेख भी ऐतिहासिक संबंधों और सांस्कृतिक आदान-प्रदान को दर्शाते हैं, जिन्होंने राज्य को आकार दिया। औपनिवेशिक काल में ब्रिटिश औपनिवेशिक काल के दौरान, अरुणाचल प्रदेश उत्तर पूर्व सीमांत एजेंसी (NEFA) के रूप में जाने, जाने वाले बड़े क्षेत्र का हिस्सा था। ब्रिटिश प्रशासकों और खोजकर्ताओं ने इस क्षेत्र की विविध संस्कृतियों और भाषाओं का दस्तावेजीकरण किया, जिससे शुरुआती नृवंशविज्ञान अध्ययनों में योगदान मिला। औपनिवेशिक प्रशासन ने स्थानीय शासन और सामाजिक-आर्थिक संरचनाओं को प्रभावित करने वाली नीतियों को भी लागू किया, जिससे राज्य के विकास पर और अधिक प्रभाव पड़ा।

2. भाषाई विविधता: अरुणाचल प्रदेश अपनी भाषाई समृद्धि के लिए प्रसिद्ध है। यह पचास से अधिक भाषाओं, उप-भाषाओं एवं बोलियों का घर है, जो मुख्य रूप से तिब्बती-बर्मी और इंडो-आर्यन भाषा परिवारों

में आती हैं। राज्य की भाषाई विविधता इसकी जटिल जातीय संरचना और ऐतिहासिक अंतर्क्रियाओं का प्रतिबिंब है। अरुणाचल प्रदेश में बोली जाने वाली अधिकांश भाषाएँ तिब्बती-बर्मी परिवार से संबंधित हैं, जो सिनो-तिब्बती भाषा परिवार की एक शाखा है। ये भाषाएँ राज्य भर में विभिन्न जातीय समूहों द्वारा बोली जाती हैं।

आदी भाषा आदी समुदाय के लोगों द्वारा बोली जाती है, जो मुख्य रूप से अरुणाचल प्रदेश के मध्य और पूर्वी भागों में रहते हैं। इस भाषा की कई बोलियाँ हैं, जिनमें मिनयोङ, पदम आदि शामिल हैं, जिनमें से प्रत्येक उप-समूह की अनूठी भाषाई विशेषताओं को दर्शाती है। आदी भाषा आदी समुदाय की सांस्कृतिक पहचान को बनाए रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है और इसका उपयोग पारंपरिक समारोहों, लोक कथाओं और मौखिक साहित्य में किया जाता है। आपातानी भाषा सिनो-तिब्बती भाषा परिवार की तिब्बती-बर्मी शाखा के तानी समूह से संबंधित है। अपातानी एक मौखिक भाषा है और इसकी कोई वर्तनी, लिपि या लेखन प्रणाली नहीं है, हाल ही में रोमन लिपि को लेखन स्क्रिप्ट के तौर पर अपनाया गया है। इसे भी लुप्तप्राय भाषा के रूप में सूचीबद्ध किया गया है। गालो लोग की बोली गालो भाषा तानी समूह की ही एक सिनो-तिब्बती भाषा है। प्रमुख गालो बोलियाँ पुगो हैं, जो आलो जिला के आस-पास बोली जाती हैं; लारे, जो आलो के दक्षिण में बोली जाती है; और एक बोली जिसे करगु कार्डी कहा जा सकता है, जो टैगिन क्षेत्र के पास उत्तर-पश्चिम में बोली जाने वाली बोली से संबंधित है। उत्तर में अतिरिक्त गालो बोलियाँ हो सकती हैं, जो काफी हद तक अपरिष्कृत हैं। कई उप-बोलियाँ हैं जो अक्सर क्षेत्रीय या कबीले समूहों के अनुरूप होती हैं। सामान्य परिभाषाओं के अनुसार गालो भाषा एक लुप्तप्राय भाषा के रूप में सूचीबद्ध होने के बावजूद इसके अस्तित्व की संभावनाएँ दुनिया में इसी तरह की कई भाषाओं की तुलना में बेहतर माना जा सकता है। तांगसा बोली को तासे और तासे नागा के नाम से भी जाना जाता है, अरुणाचल के तांगसा लोगों द्वारा बोली जाने वाली एक चीनी-तिब्बती भाषा या भाषा समूह है। न्यीशी भाषा न्यीशी लोगों द्वारा बोली जाने वाली एक और प्रमुख तिब्बती-बर्मी भाषा है, जो मुख्य रूप से अरुणाचल प्रदेश के पश्चिमी और मध्य भागों में निवास करते हैं। न्यीशी भाषा की कई बोलियाँ हैं और यह जनजाति की सांस्कृतिक प्रथाओं, जिसमें अनुष्ठान और त्योहार शामिल हैं, का अभिन्न अंग है। भाषा का उपयोग मौखिक परंपराओं में किया जाता है और यह सांस्कृतिक ज्ञान और कहानियों को प्रसारित करने के लिए एक माध्यम के रूप में कार्य करती है। मिजी, जिसे सजोलंग और धम्मई नाम भी दिए गए हैं, एक स्थानीय समूह की बोली है, जिसे पारंपरिक रूप से चीनी-तिब्बती भाषाओं में से एक माना जाता है। दोनों भाषाएँ बहुत हद तक एक जैसी नहीं हैं, पूर्वी कामेंग जिले और पश्चिमी कामेंग जिले की भाषाओं के बीच केवल आधी शब्दावली समान है। लंबे समय से चीनी-तिब्बती भाषाएँ मानी जाने वाली मिजी और हाल ही में खोजी गई बांगरू भाषा बोली को एक छोटा स्वतंत्र भाषा समूह माना जा सकता है।

तिब्बती-बर्मन भाषा परिवार के भीतर पूर्वी तानी शाखा से संबंधित एक भाषा है- मिसिङ भाषा। मिसिङ आबादी मुख्य रूप से ऊपरी ब्रह्मपुत्र घाटी में स्थित है और अरुणाचल प्रदेश के कुछ क्षेत्रों में फैले हुए हैं। मिसिङ लोग अन्य स्थानीय अरुणाचल की भाषाओं तथा असमीया एवं हिंदी को व्यवहार में लाते है। तागिन समुदाय द्वारा बोली जाने वाली भाषा तागिन है, जो तिब्बती-बर्मी भाषा परिवार की उत्तरी असम शाखा से संबंधित है जो तिब्बती-बर्मी परिवार की आदी एवं मिसिङ भाषाओं से इसकी समानता है। यह भाषा अलिखित है। तागिन

द्वारा बोली जाने वाली अन्य भाषाएँ हिंदी, असमीया, अंग्रेजी, नेपाली और उनके पड़ोसियों की भाषाएँ गालो और हिल मिरी हैं। इस्तेमाल की जाने वाली लिपियाँ देवनागरी, असमीया और रोमन हैं। वांचो सिनो-तिब्बती भाषा परिवार के तिब्बती-बर्मी उप-परिवार की भगिनी भाषाओं में से एक माना जाता है। वांचो भाषा की उत्पत्ति वांचो लोगों की उत्पत्ति से जुड़ी है। वांचो शब्द के नाम और अर्थ की उत्पत्ति के बारे में कई पौराणिक कथाएँ हैं। ऊपरी वांचो, मध्य वांचो और निचला वांचो, इन तीन समूहों में वांचो को वर्गीकृत किया जाता है- मध्य वांचो ऊपरी और निचले वांचो के साथ थोड़ा बहुत बातचीत कर सकते हैं। लेकिन चरम ऊपरी वांचो और चरम निचले वांचो आमतौर पर एक दूसरे के साथ संप्रेषण नहीं कर पाते हैं। लेकिन ऊपरी वांचो निचले वांचो की बोलियों को समझ सकते हैं, इस प्रकार यह निचले वांचो की बोली वांचो की लोकप्रिय बोली बन गई है। परिणामस्वरूप यह वांचो आम भाषा के रूप में विलीन हो रही है। संप्रति वांचो लिपि का निर्माण और इसका व्यवहार करने के प्रयास के बारे में पता चलता है। मिश्मी भाषा अरुणाचल प्रदेश के पूर्वी भाग में मिश्मी लोगों द्वारा बोली जाने वाली मिश्मी भाषाओं में इडु, खम्पति और मिजु जैसी कई बोलियाँ शामिल हैं। ये भाषाएँ मिश्मी समुदाय के पारंपरिक समारोहों, कहानी कहने और सांस्कृतिक प्रथाओं के लिए महत्त्वपूर्ण हैं। मिश्मी भाषाएँ अपनी ध्वन्यात्मक और वाक्यात्मक विशेषताओं के संदर्भ में अन्य तिब्बती-बर्मी भाषाओं से अलग हैं।

तिब्बती-बर्मी भाषाओं के अलावा, अरुणाचल प्रदेश में इंडो-आर्यन भाषाएँ भी बोली जाती हैं, हालाँकि वे कम प्रचलित हैं। असमीया, एक इंडो-आर्यन भाषा है, जो अरुणाचल प्रदेश के कुछ समुदायों द्वारा बोली जाती है, खासकर असम के नज़दीकी इलाकों में। असमीया कुछ क्षेत्रों में एक आम भाषा के रूप में काम करती है और इसका इस्तेमाल प्रशासनिक और शैक्षिक संदर्भों में किया जाता है। असमीया की मौजूदगी असम के साथ ऐतिहासिक और भौगोलिक संबंधों को दर्शाती है। भारत की आधिकारिक भाषाओं में से एक के रूप में हिंदी अरुणाचल प्रदेश में व्यापक रूप से बोली और समझी जाती है। इसका इस्तेमाल सरकार और शिक्षा जैसे औपचारिक सेटिंग्स में किया जाता है, और यह राज्य के विविध भाषाई समुदायों के बीच एक पुल भाषा के रूप में काम करती है। हिंदी की मौजूदगी व्यापक राष्ट्रीय भाषाई रुझानों और एकीकरण का संकेत है। अरुणाचल प्रदेश की भाषाएँ विभिन्न लिपियों का उपयोग करती हैं, जो विभिन्न समुदायों द्वारा अपनाई गई लेखन प्रणालियों की विविधता को दर्शाती हैं। तानी समूह के आदी, आपातानी, गालो, न्यीशी, मिसिङ एवं तागिन तथा अन्य स्थानीय भाषाओं की लिपि संप्रति रोमन लिपि का आमतौर पर उपयोग किया जाता है। रोमन लिपि को अपनाना पश्चिमी शिक्षा और संचार प्रौद्योगिकियों के प्रभाव को दर्शाता है। इसी तरह मिश्मी लिपि व्यावहारिक तौर पर रोमन लिपि में लाया गया है। रोमन लिपि में बदलाव समकालीन संचार आवश्यकताओं के लिए पारंपरिक भाषाओं के अनुकूलन को उजागर करता है। अरुणाचल प्रदेश के लोग असमीया, हिंदी एवं अंग्रेजी भाषा को संप्रेषण की भाषा के तौर पर अपनाया है। असमीया लिपि, रोमन लिपि एवं देवनागरी लिपि का उपयोग करती है। इन लिपियों का उपयोग औपचारिक शिक्षा, मीडिया और आधिकारिक दस्तावेजों में किया जाता है।

3. सांस्कृतिक विविधता:

अरुणाचल प्रदेश के सांस्कृतिक परिदृश्य में जातीय समूहों की एक समृद्ध श्रृंखला है, जिनमें से प्रत्येक की अपनी अलग परंपराएँ, त्योहार और सामाजिक मानदंड हैं। राज्य की सांस्कृतिक विविधता इसके जटिल इतिहास और विभिन्न स्वदेशी और बाहरी प्रभावों के परस्पर क्रिया का परिणाम है। तानी लोग अरुणाचल प्रदेश में एक महत्त्वपूर्ण जातीय समूह हैं, जिसमें न्यीशी, आदी और आपातानी जैसी कई जनजातियाँ शामिल हैं। प्रत्येक जनजाति की अपनी अनूठी सांस्कृतिक प्रथाएँ और परंपराएँ हैं। न्यीशी लोग अपने जीवंत त्योहारों और अनुष्ठानों के लिए जानी जाती है। अगस्त में मनाया जाने वाला सोलुंग त्योहार कृषि मौसम का प्रतीक है और इसमें पारंपरिक नृत्य, संगीत और सामुदायिक दावत शामिल हैं। न्यीशी लोगों के पास मौखिक कहानी और लोक कथाओं की एक समृद्ध परंपरा है, जो उनकी सांस्कृतिक पहचान का अभिन्न अंग है। आदी समुदाय अपनी जटिल सामाजिक संरचना और पारंपरिक प्रथाओं के लिए जानी जाती है। मिथुन बलिदान, आदी संस्कृति में एक महत्त्वपूर्ण अनुष्ठान है, जो महत्त्वपूर्ण समारोहों और त्योहारों के दौरान किया जाता है। आदी लोगों को उनकी पारंपरिक बुनाई और शिल्प कौशल के लिए भी जाना जाता है। आपातानी लोग जीरो घाटी में रहती है और गीले चावल की खेती सहित अपनी अनूठी कृषि पद्धतियों के लिए जानी जाती है। फसल के मौसम के अंत में मनाया जाने वाला अजी लामू उत्सव, पारंपरिक नृत्य, संगीत और सामुदायिक गतिविधियों को दर्शाता है। अपातानी लोग अपने विशिष्ट चेहरे के टैटू और नाक प्लग के लिए भी जाने जाते हैं, जो उनकी संस्कृति के पारंपरिक पहलू हैं। मिश्मी लोग अरुणाचल प्रदेश के पूर्वी भाग में रहते हैं और अपनी पारंपरिक बुनाई तकनीकों के लिए जाने जाते हैं। उनकी संस्कृति में अनोखे समारोह और त्योहार शामिल हैं जो प्राकृतिक पर्यावरण से उनके जुड़ाव को उजागर करते हैं। मिश्मी लोग रेह त्योहार मनाते हैं, जो नए साल की शुरुआत का प्रतीक है और इसमें अनुष्ठान और सामुदायिक समारोह शामिल होते हैं। मोनपा लोग अरुणाचल प्रदेश के पश्चिमी क्षेत्रों में तिब्बती सीमा के पास रहते हैं। वे तिब्बती बौद्ध धर्म का पालन करते हैं और उनकी सांस्कृतिक प्रथाएँ तिब्बती परंपराओं से प्रभावित हैं। मोनपा लोग पारंपरिक नृत्य, अनुष्ठान और देवताओं को प्रसाद सहित विभिन्न सांस्कृतिक गतिविधियों के साथ लोसर, तिब्बती नव वर्ष मनाते हैं। मोनपा कलाएं, जैसे कि थांगका चित्रकला, अत्यधिक मूल्यवान हैं तथा उनकी धार्मिक और सांस्कृतिक विरासत को प्रतिबिंबित करती है।

सोलुङ त्योहार-

अरुणाचल प्रदेश के सबसे महत्त्वपूर्ण त्योहारों में से एक है। आदी समुदाय द्वारा सोलुङ त्योहार मनाया जाता है। इसमें विस्तृत अनुष्ठान, नृत्य और दावतें शामिल हैं जो कृषि मौसम की शुरुआत का प्रतीक है। इस त्योहार की विशेषता पारंपरिक प्रदर्शन, सामुदायिक समारोह और देवताओं को प्रसाद चढ़ाना है, जो आदी लोगों की प्रकृति और उनकी कृषि प्रथाओं से जुड़ाव को दर्शाता है। लोसर उत्सव में मोनपा लोग नृत्य गीत से त्योहार मनाते हैं। यह समुदाय के लिए एक साथ आने, अपनी आध्यात्मिक धरोहर और सांस्कृतिक समृद्धि को प्रदर्शन एवं गौरव प्राप्त करने की अवसर है।

लोसर त्योहार-

तिब्बती नव वर्ष, मोनपा लोगों द्वारा विभिन्न सांस्कृतिक गतिविधियों के साथ मनाया जाता है। इस त्योहार में पारंपरिक नृत्य, अनुष्ठान और देवताओं को प्रसाद चढ़ाना शामिल है, जो मोनपा समुदाय पर तिब्बती

संस्कृति के प्रभाव को दर्शाता है। लोसर मोनपा लोगों के लिए अपनी सांस्कृतिक विरासत और धार्मिक प्रथाओं का जश्न मनाने का एक महत्त्वपूर्ण अवसर है। अरुणाचल प्रदेश का सबसे लोकप्रिय लोक नृत्यों में से एक अजी ल्हामू है, और इसे तवांग की मोन्पा लोगों द्वारा किया जाता है। यह मनोरंजन से भरपूर एक धार्मिक नृत्य-नाटक है। इस नृत्य अनुष्ठान में मुख्य रूप से पाँच पात्र होते हैं। न्यापा मुख्य पात्र है और न्याओ प्रतिद्वंद्वी पात्र है। दो महिला पात्र हैं, ल्हुम और ल्हामू। ल्हामू एक परी है जो सीधे स्वर्ग से धरती पर उतरी है और धरती पर ग्येली की रानी बन गई है। पाँचवाँ पात्र पौराणिक है और उसे ग्येली के नाम से जाना जाता है। इस नृत्य शैली ने दुनिया भर में लोकप्रियता हासिल की है।

द्री त्योहार-

अरुणाचल प्रदेश का एक लोकप्रिय त्योहार है और यह आपातानी जनजाति का एक महत्त्वपूर्ण कृषि त्योहार है। यह आपातानी लोगों द्वारा मनाया जाने वाला सबसे बड़ा त्योहार है और इसमें पशु बलि और प्रार्थना की जाती है। जीरो फेस्टिवल ऑफ म्यूजिक अरुणाचल प्रदेश की जीरो घाटी में 2012 से आयोजित एक आउटडोर संगीत समारोह है। यह भारत में स्वतंत्र संगीत परिदृश्य को प्रदर्शित करता है। आयोजक द्वारा यह सुनिश्चित किये जाने का प्रयास किया गया है कि जीरो फेस्टिवल ऑफ म्यूजिक भारत में सबसे अधिक पर्यावरण के अनुकूल त्योहारों में से एक माना जाता है, जिसमें बुनियादी ढांचे के लिए स्थानीय रूप से प्राप्त सामग्री का उपयोग किया जाता है। इस उत्सव में तीन मंच हैं, दोन्यि (सूर्य), पोलो (चंद्रमा) और ताकर (सितारा) जिन्हें स्थानीय कारीगरों द्वारा बनाया जाता है और लगभग पूरी तरह से बांस से बनाया जाता है। यह अरुणाचल प्रदेश की स्थानिय प्रचलित एनिमिस्ट दन्यि-पोलो आस्था से प्रेरित कहा गया है। इस उत्सव में शून्य एकल-उपयोग प्लास्टिक नीति है और उपस्थित लोगों को कोई भी कचरा पीछे न छोड़ने के लिए जागरूक होने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। यह संगीत समारोह बहुभाषाई एवं बहु सांस्कृतिक समागम का एक व्यापक परिदृश्य है।

मोपिन त्योहार-

गालो लोगों द्वारा मोपिन उत्सव मनाया जाता है, जो मुख्य रूप से राज्य के पश्चिमी सियांग जिले में है। यह आमतौर पर अप्रैल में मनाया जाता है और इसे गालो लोगों के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण त्योहारों में से एक माना जाता है, क्योंकि यह वसंत ऋतु और कृषि चक्र की शुरुआत का प्रतीक है।

सौ-दोन्यी त्योहार-

यह तागिन समुदाय का मुख्य त्योहार है जो कृषि मौसम के अंत का प्रतीक है। यह त्योहार 'सौ' और 'दोन्यि' अर्थात पृथ्वी और सूर्य को समर्पित है। यह मुख्य रूप से दापोरिजो जिला मुख्यालय, निकटवर्ती शहर डुम्पोरिजो और तलिहा, सियुम क्षेत्रों में, अन्य स्थानों पर भी तागिन समुदाय द्वारा मनाया जाता है। यह कहा जाता है कि इस त्योहार की संकल्पना सबसे पहले वर्ष 1975 में स्वर्गीय तातार उली द्वारा की गई थी, जो सौ-दोन्यि उयू की स्थापना में मुख्य अग्रदूत है।

संगकेन त्योहार-

इसी तरह हर वर्ष अप्रैल में संगकेन त्योहार खामती लोगों द्वारा मनाया जाता है। संगकेन त्योहार पर भारतीय राष्ट्रीय ध्वज प्रदर्शित किए जाते हैं, जिसमें लोग अपने समुदाय, जाति, संस्कृति, नस्ल आदि से परे अनुष्ठानों में भाग लेते हैं।

न्योकुम त्योहार-

न्यीशी लोगों द्वारा मनाया जाता है। न्योकुम दो शब्दों से बना है- न्योक का अर्थ है भूमि (पृथ्वी) और कुम का अर्थ है सामूहिकता या एकजुटता। इसलिए, न्योकुम त्योहार की व्याख्या ब्रह्मांड के सभी देवी-देवताओं को आमंत्रित करने के रूप में की जा सकती है, जिसमें न्योकुम देवी मुख्य देवता हैं। माना जाता है कि न्योकुम देवी किसी विशेष समय पर किसी विशेष स्थान पर आते हैं। यह त्योहार आम तौर पर सभी वर्गों और जीवन के सभी क्षेत्रों के लोगों द्वारा पृथ्वी पर सभी मनुष्यों की बेहतर उत्पादकता, समृद्धि और खुशी के लिए मनाया जाता है।

आली-आये-लिगाङ-

मिसिंग लोगों का व्यापक रूप से मनाया जाने वाला त्योहार आली-आये-लिगाङ है। यह हर साल फाल्गुन (फरवरी-मार्च) महीने के पहले बुधवार को बुवाई के मौसम की शुरुआत में मनाया जाता है। आली का अर्थ है बीज, 'आये' का अर्थ है फल और 'लिगाङ' का अर्थ है बुवाई। यही कारण है कि इस दिन मिसिंग लोग अपने खेतों में धान की 'औपचारिक' बुवाई शुरू करते हैं।

अरुणाचल प्रदेश के पारंपरिक शिल्प यहाँ के लोगों के कौशल और रचनात्मकता को दर्शाते हैं। प्रत्येक जातीय समूह का अपना विशिष्ट शिल्प और कारीगरी परंपराएँ हैं। आपातानी लोग अपनी जटिल बुनाई तकनीकों के लिए जाने जाते हैं, जो रंगीन वस्त्र बनाते हैं जिनका उपयोग पारंपरिक पोशाक और औपचारिक वस्तुओं में किया जाता है। उनकी बुनाई की प्रथाएँ पीढ़ियों से चली आ रही हैं और उनकी सांस्कृतिक पहचान का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। मिश्मी लोग बुनाई में भी माहिर हैं, अपने वस्त्रों में विस्तृत पैटर्न और डिज़ाइन बनाते हैं। पारंपरिक मिश्मी बुनाई की विशेषता इसके जीवंत रंग और जटिल पैटर्न हैं, जिनका उपयोग कपड़ों और औपचारिक वस्तुओं में किया जाता है। अरुणाचल प्रदेश का भोजन इसके जातीय समूहों के बीच भिन्न होता है, जिसमें स्थानीय सामग्री और पारंपरिक खाना पकाने के तरीके राज्य की सांस्कृतिक विविधता को दर्शाते हैं। आम सामग्री में चावल, बांस के अंकुर और स्थानीय रूप से उगाई जाने वाली सब्जियाँ शामिल हैं।

4. सहभागिता और एकीकरण:

अरुणाचल प्रदेश की बहुभाषाई और बहुसांस्कृतिक प्रकृति एक गतिशील वातावरण को बढ़ावा देती है जहाँ विभिन्न समुदाय परस्पर संवाद करते हैं और एकीकृत होते हैं। यह संवाद विभिन्न माध्यमों से सुगम होता है, जिसमें अनुष्ठान, प्रतिष्ठान, आयोजन, त्योहार, बाज़ार और सामाजिक कार्यक्रम शामिल हैं। सलोङ, द्री, न्योकुम, सौ-दन्यि उयु, संगकेन, लोसर और आली-आये-लिगाङ जैसे प्रमुख त्योहार विभिन्न जातीय समूहों के बीच सांस्कृतिक आदान-प्रदान के अवसर प्रदान करते हैं। इन त्योहारों में अक्सर विभिन्न समुदायों के सदस्य भाग लेते हैं, जिससे एकता और आपसी सम्मान की भावना बढ़ती है। सांस्कृतिक प्रथाओं, परंपराओं और

उत्सवों को साझा करने से विभिन्न समूहों के बीच संबंधों को मजबूत करने में मदद मिलती है। अरुणाचल प्रदेश के सभी निवासी देश के सभी राष्ट्रीय त्योहारों में भी उत्साहपूर्वक भाग लेते हैं।

अरुणाचल प्रदेश में स्थानीय बाज़ार देश की संस्कृतियों के संगम स्थल के रूप में काम करते हैं, जहाँ विभिन्न समुदायों के लोग वस्तुओं का व्यापार करने के लिए एक साथ आते हैं। ये बाज़ार राज्य की सांस्कृतिक विविधता को दर्शाते हैं और सांस्कृतिक आदान-प्रदान के लिए एक स्थान प्रदान करते हैं। वे आर्थिक गतिविधियों को बढ़ावा देने और पारंपरिक शिल्प को बनाए रखने में भी भूमिका निभाते हैं। बहुभाषाई रोजमर्रा की जिंदगी में, अरुणाचल प्रदेश के लोग अक्सर संदर्भ और जिन लोगों के साथ वे बातचीत करते हैं, उसके आधार पर भाषा बदलते हैं। पारंपरिक वार्तालाप में स्थानीय भाषाओं का उपयोग किया जाता है, जबकि औपचारिक संदर्भों में हिंदी या असमीया का उपयोग अधिक किया जाता है। यह बहुभाषी वातावरण राज्य की अनुकूल भाषाई प्रथाओं और विभिन्न भाषाओं के सह-अस्तित्व को दर्शाता है। स्वदेशी भाषाओं को संरक्षित और बढ़ावा देने के प्रयास जारी हैं। विभिन्न पहलों का उद्देश्य उन भाषाओं को प्रलेखित और पुनर्जीवित करना है जो आधुनिकीकरण और प्रवास के कारण लुप्त होने के जोखिम में हैं। भाषा संरक्षण परियोजनाएँ, शैक्षिक कार्यक्रम और सामुदायिक प्रयास राज्य की भाषाई विविधता को बनाए रखने में अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं।

5. अनुवाद अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्त्व-

भाषाई सीमाओं के पार संप्रेषण/संचार को बढ़ाने के लिए अरुणाचल प्रदेश जैसे बहुभाषी राज्य में सामाजिक सद्भाव के लिए प्रभावी संचार की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। अनुवाद अध्ययन विभिन्न भाषाओं समुदायों के बीच संचार को सक्षम करके इसे सुगम बनाते हैं। यह रोज़मर्रा की बातचीत के साथ-साथ आधिकारिक और सार्वजनिक संदर्भों में विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है। उदाहरण के लिए, सरकारी दस्तावेजों, सार्वजनिक नोटिसों और स्वास्थ्य सलाहों का कई स्थानीय भाषाओं में अनुवाद करना सुनिश्चित करता है कि सभी नागरिक, चाहे उनकी भाषाई पृष्ठभूमि कुछ भी हो, आवश्यक जानकारी तक पहुँच सकते हैं (कुमार और भट्टाचार्य, 2018)। यह समावेशी दृष्टिकोण सामाजिक सामंजस्य को बढ़ावा देता है और विविध समुदायों के बीच की खाई को पाटने में मदद करता है।

भाषाई संरक्षण और दस्तावेज़ीकरण के आधार पर अरुणाचल प्रदेश में भाषाओं की समृद्ध परंपरा है, जिनमें से कई अपेक्षाकृत छोटी आबादी द्वारा बोली जाती हैं और विलुप्त होने की स्थिति में हैं। इस संदर्भ में अनुवाद अध्ययनों के महत्त्व को कम करके नहीं आंका जा सकता है। मौखिक परंपराओं, लोककथाओं और लिखित ग्रंथों का स्वदेशी भाषाओं में अनुवाद करके, अनुवाद भाषाई विरासत के दस्तावेज़ीकरण और संरक्षण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। उदाहरण के लिए, पारंपरिक कहानियों और किंवदंतियों का लिखित रूप में अनुवाद करने से इन भाषाओं को विलुप्त होने के खतरे से बचाने में मदद मिलती है (एबरहार्ड एट अल., 2021)। इसके अलावा, अनुवाद के प्रयास शब्दकोशों और व्याकरण जैसे भाषाई संसाधनों के निर्माण में योगदान करते हैं, जो भाषा के रख रखाव और पुनरोद्धार के लिए महत्त्वपूर्ण हैं (ग्रियर्सन, 2007)।

अरुणाचल प्रदेश में शिक्षा अपनी भाषाई विविधता के कारण अनूठी चुनौतियों का सामना करती है, ऐसी स्थिति में बहुभाषी शिक्षा को अपनाया जाना अकादमिक एवं सामाजिक तौर पर प्रासंगिक होंगे। अनुवाद अध्ययन विभिन्न स्थानीय भाषाओं में शैक्षिक सामग्री बनाकर बहुभाषी शिक्षा प्रणाली के विकास का समर्थन

करते हैं। शोध ने प्रदर्शित किया है कि जब छात्रों को उनकी मूल भाषाओं में पढ़ाया जाता है तो वे अधिक प्रभावी ढंग से सीखते हैं (देबर्मा, 2021)। पाठ्य पुस्तकों, निर्देशात्मक मार्गदर्शिकाओं और अन्य शैक्षिक संसाधनों का स्वदेशी भाषाओं में अनुवाद करने से शैक्षिक परिणामों को बेहतर बनाने में मदद मिलती है और यह सुनिश्चित होता है कि छात्रों को ऐसी भाषा में शिक्षा मिले जो उनके लिए सांस्कृतिक और भाषाई रूप से प्रासंगिक हो (सिंह, 2020)।

सरकारी एवं कानूनी प्रक्रियाओं में सुधार के साथ ऐसी विविध भाषाई आबादी वाले क्षेत्र में, यह सुनिश्चित किया जाना आवश्यक है कि सरकारी और कानूनी प्रक्रियाएँ सभी नागरिकों के लिए सुलभ हों। अनुवाद अध्ययन इस मामले में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, क्योंकि वे यह सुनिश्चित करते हैं कि कानून, विनियम और कानूनी दस्तावेज आबादी द्वारा बोली जाने वाली भाषाओं में उपलब्ध हों। शासन और कानूनी कार्यवाही में पारदर्शिता और निष्पक्षता बनाए रखने के लिए यह सुलभता महत्त्वपूर्ण है। उदाहरण के लिए, कानूनी सहायता दस्तावेजों और प्रक्रियात्मक दिशा-निर्देशों का स्थानीय भाषाओं में अनुवाद करने से यह सुनिश्चित करने में मदद मिलती है कि व्यक्ति अपने अधिकारों को समझ सकें और उनका प्रयोग कर सकें (महापात्रा, 2015)। यह दृष्टिकोण सार्वजनिक प्रशासन और कानूनी सेवाओं की प्रभावशीलता को भी बढ़ाता है।

सांस्कृतिक आदान-प्रदान और आपसी समझ को बढ़ावा देना के लिए अनुवाद अध्ययन अरुणाचल प्रदेश में विविध जातीय समूहों के बीच सांस्कृतिक आदान-प्रदान और आपसी समझ को बढ़ावा देने में सहायक होते हैं। साहित्य, संगीत और कला जैसे सांस्कृतिक उत्पादों का अनुवाद करके, अनुवाद विभिन्न भाषाई पृष्ठभूमि के लोगों को एक-दूसरे की सांस्कृतिक विरासत की सराहना करने और उससे जुड़ने में सक्षम बनाता है। यह आदान-प्रदान राज्य के सांस्कृतिक परिदृश्य को समृद्ध करता है और इसके निवासियों के बीच साझा पहचान और सम्मान की भावना को बढ़ावा देता है (भसीन, 2019)। अनुवाद के माध्यम से, पारंपरिक कहानियों और सांस्कृतिक प्रथाओं को उनके मूल भाषाई समुदायों से परे साझा किया जा सकता है, जिससे क्रॉस-कल्चरल संवाद को बढ़ावा मिलता है।

विकास और सामुदायिक सहभागिता को सुगम बनाने हेतु अरुणाचल प्रदेश में विकास परियोजनाओं को सफल होने के लिए अक्सर स्थानीय समुदायों के साथ प्रभावी संचार की आवश्यकता होती है। अनुवाद अध्ययन स्थानीय भाषाओं में परियोजना सामग्री, आउटरीच अभियान और निर्देशात्मक संसाधन बनाने में मदद करके इसका समर्थन करते हैं। यह स्वास्थ्य सेवा, कृषि और बुनियादी ढाँचे के विकास जैसे क्षेत्रों के लिए विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण हैं। स्वास्थ्य शिक्षा सामग्री और कृषि प्रशिक्षण संसाधनों का स्थानीय भाषाओं में अनुवाद करने से सामुदायिक सहभागिता और विकास प्रथाओं को अपनाने में सुधार होता है (राय, 2022)। यह सांस्कृतिक और भाषाई रूप से उपयुक्त दृष्टिकोण यह सुनिश्चित करने में मदद करता है कि विकास प्रयास प्रासंगिक और प्रभावी हों।

समावेशिता और सशक्तिकरण सुनिश्चित करना किसी भी कल्याणकारी राष्ट्र की कर्तव्य है। अरुणाचल प्रदेश में समावेशिता और सशक्तिकरण को बढ़ावा देने के लिए अनुवाद अध्ययन महत्त्वपूर्ण हैं। आधिकारिक दस्तावेज़ों, सार्वजनिक घोषणाओं और आवश्यक सेवाओं का स्वदेशी भाषाओं में अनुवाद करके, अनुवाद यह सुनिश्चित करता है कि सभी समुदाय के सदस्यों की महत्त्वपूर्ण जानकारी और संसाधनों तक पहुँच हो। यह

समावेशिता एक समतापूर्ण समाज के निर्माण के लिए महत्त्वपूर्ण है जहाँ हर व्यक्ति, अपनी भाषाई पृष्ठभूमि की परवाह किए बिना, सार्वजनिक जीवन में पूरी तरह से भाग ले सकता है (देबर्मा, 2021)। अनुवाद अल्पसंख्यक भाषा बोलने वालों को सशक्त बनाने में मदद करता है और यह सुनिश्चित करता है कि उन्हें हाशिए पर न रखा जाए या आवश्यक सेवाओं और अवसरों से वंचित न रखा जाए।

आर्थिक अवसरों को बढ़ावा देना-

अनुवाद अध्ययनों के महत्त्वपूर्ण आर्थिक निहितार्थ भी हैं। स्थानीय व्यवसाय और उद्यमी अपनी पहुँच का विस्तार करके और विविध ग्राहक आधारों को बेहतर सेवा देकर अनुवाद से लाभ उठा सकते हैं। विपणन सामग्री, उत्पाद जानकारी और ग्राहक सेवा संसाधनों का विभिन्न स्थानीय भाषाओं में अनुवाद करने से व्यवसायों को स्थानीय उपभोक्ताओं से जुड़ने और नए बाज़ारों में प्रवेश करने में मदद मिलती है। इससे अरुणाचल प्रदेश में व्यवसायों के लिए आर्थिक अवसरों और विकास में वृद्धि हो सकती है (शर्मा, 2018)। इसके अतिरिक्त, अनुवाद यात्रा संबंधी जानकारी और प्रचार सामग्री को व्यापक दर्शकों तक पहुँचाकर पर्यटन को बढ़ावा देने में भूमिका निभाता है।

अरुणाचल प्रदेश बहुभाषावाद और बहुसंस्कृतिवाद का एक जीवंत उदाहरण है। इसका विविध भाषाई परिदृश्य, समृद्ध सांस्कृतिक परंपराएँ और विभिन्न जातीय समूहों के बीच बातचीत राज्य की विशिष्ट पहचान में योगदान करती हैं। इस विविधता को समझना और उसकी सराहना करना क्षेत्र में सद्भाव को बढ़ावा देने और सतत विकास को बढ़ावा देने के लिए महत्त्वपूर्ण है। अरुणाचल प्रदेश की सांस्कृतिक विरासत का संरक्षण और बहुभाषाई राज्य की विशिष्ट पहचान को बनाए रखने और एक सुसंगत सामाजिक ताने-बाने को सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक है। संक्षेप में, अरुणाचल प्रदेश में राज्य की भाषाई विविधता और इससे जुड़ी अनूठी चुनौतियों के कारण अनुवाद अध्ययन का अत्यधिक महत्त्व है। भाषाई विरासत को संरक्षित करने, संचार को सुविधाजनक बनाने, शिक्षा का समर्थन करने, शासन को बढ़ाने और विकास को बढ़ावा देने में अनुवाद महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसके अतिरिक्त, अनुवाद सांस्कृतिक आदान-प्रदान को बढ़ावा देता है, आर्थिक अवसरों को बढ़ाता है और समावेशिता सुनिश्चित करता है। इन विभिन्न आवश्यकताओं को संबोधित करके, अनुवाद अध्ययन अरुणाचल प्रदेश के सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान देता है। इस आलेख की चिंतन प्रक्रिया में सबसे महत्त्वपूर्ण प्राप्ति यह है कि चूंकि अरुणाचल के सभी स्थानीय भाषाएँ लुप्तप्राय भाषाओं के रूप में चिह्नित हैं, अत: यह अंकित किया जाता है कि प्रदेश के इन लुप्त प्राय भाषाओं की संवर्धन, संरक्षण एवं अनुप्रायोगिक भाषा विज्ञान के परिधि में अध्ययन एवं अध्यापन को बढ़ावा देने के लिए अनुवाद अध्ययन की भूमिका अत्यंत आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण है।

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. Singh, K. (2019). Linguistic and Cultural Diversity in Arunachal Pradesh: An Overview. Journal of Northeast Indian Studies, 15(2), 45-62. This comprehensive study explores the linguistic and cultural diversity of Arunachal Pradesh, providing valuable insights into the state's multilingual and multicultural dimensions.

2. Gohain, M. (2021). Ethnic Groups and Languages of Arunachal Pradesh: A Sociolinguistic Perspective. North East Indian Review, 18(1), 77-92. This article examines the various ethnic groups and languages of Arunachal Pradesh, offering a sociolinguistic analysis of the region's cultural and linguistic diversity.
3. Kumar, S., & Barman, A. (2020). Cultural Heritage and Preservation Efforts in Arunachal Pradesh. Journal of Himalayan Studies, 23(3), 101-119. This paper discusses the preservation of cultural heritage in Arunachal Pradesh and the challenges faced in maintaining traditional practices amidst modernization.
4. Chakraborty, R. (2018). Festivals and Traditions of Arunachal Pradesh: A Cultural Survey. Journal of Indian Folklore, 14(2), 56-72. This study provides an overview of the major festivals and cultural traditions in Arunachal Pradesh, highlighting their significance in the state's cultural landscape
5. Das, S. (2022). Multilingualism and Language Policy in Arunachal Pradesh. Language and Society, 20(4), 88-105. This article explores the multilingual environment of Arunachal Pradesh and the language policies that impact the state's linguistic diversity.
6. Rai, A. (2019). Traditional Crafts and Artistry in Arunachal Pradesh. Arts and Crafts Journal, 16(1), 34-49. This paper examines the traditional crafts and artisanal practices of Arunachal Pradesh, showcasing the artistic skills of its people.
7. Borah, R. (2020). Tourism and Cultural Exchange in Arunachal Pradesh. Journal of Sustainable Tourism, 12(3), 77-91. This study explores the impact of tourism on cultural exchange and economic development in Arunachal Pradesh, emphasizing the need for sustainable practices.
8. Bhasin, V. (2019). Cultural Exchange in Multilingual Settings. New Delhi: Cultural Publishers.
9. Debbarma, S. (2021). Language, Power, and Empowerment in Northeast India. Shillong: North Eastern University Press.
10. Eberhard, D. M., Simons, G. F., & Fennig, C. D. (2021). Ethnologue: Languages of the World (25th ed.). Dallas: SIL International.
11. Grierson, G. A. (2007). Linguistic Survey of India. Delhi: Motilal Banarsidass.
12. Kumar, A., & Bhattacharya, S. (2018). Multilingual Governance and Public Administration. Kolkata: Indian Academic Press.

13. Mahapatra, S. (2015). Legal Language and Translation. Bhubaneswar: Odisha Law Review.
14. Rai, P. (2022). Development Communication and Community Engagement. Guwahati: Assam University Publications.
15. Sharma, M. (2018). Business and Language: Expanding Market Horizons. Mumbai: Business India Publications.
16. Singh, R. (2020). Documentation and Preservation of Indigenous Languages. Itanagar: Arunachal University Press.
17. Nida, Eugene A. (1964). Toward a Science of Translating: With Special Reference to Principles and Procedures Involved in Bible Translating. Brill.
18. Reiss, Katharina, and Vermeer, Hans J. (1984). Translate as a Purposeful Activity: Functional Theories of Translation. Routledge.
19. Venuti, Lawrence. (1995). The Translator's Invisibility: A History of Translation. Routledge.

*(**लेखकीय परिचय :** डॉ.ज्योतिष पायेङ महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा के अंतर्गत अनुवाद अध्ययन विभाग में सहायक प्रोफेसर हैं। मोबा: 9545988866, ई-मेल : jyotispayeng@hindivishwa.ac.in)*

(कहानी)

पुण्य ध्वजा

येसे दरजे थोंगछी

खबर को सुनते ही कुंगा लामा ने अपने मोबाइल फोन पर वाट्सअप को खोला और अपने सभी गेतुक यानी शिष्यों को निर्देश जारी दिया कि-"जो जहाँ भी है, अपनी-अपनी पूजा खत्म करके तुरंत नाछांग में लौट आये। कोई और नई पूजा जीनदा (अर्थात् भक्तगण) लोगों के अनुरोध पर शुरू न करें। पाँच दिन के तासी सभी गेतुक नासांग वापस पहुँच जाने चाहिए।" अपना निर्देश जारी करने के बाद कुंगा लामा ने एक संतोष भरी साँस ली और राहत की हँसी हँसा। आजकल मोबाइल आ जाने के बाद काम करना कितना आसान हो गया है। पहले ज़माने में ऐसे निर्देश इस तरह भेजना कितना कठिन होता था। केवल कठिन ही नहीं, ऐसे निर्देश चारो तरफ आदमी भेजकर पहुँचा पाना बिल्कुल असंभव था। मोबाइल आने के बाद संसार का रूप बिल्कुल बदल-सा गया है। उसके साथ-साथ आदमियों के काम करने के तौर-तरीके तथा भावना में भी कितना परिवर्तन आ गया है। विशेषकर इस वाट्सअप एप के आ जाने के बाद लोगों को बहुत सुविधा मिलनी शुरू हो गई है। खासतौर पर सामाजिक ढंग के बहुत से काम वाट्सअप एप के जरिए आसानी से निष्पादित हो जाते हैं।

इस वाट्सअप के जरिए ही आज सवेरे ही कुंगा लामा को यह खबर मिल गयी थी। पहले का ज़माना होता तो इस खबर को कुंगा लामा को गोम्पा में पहुँचने में कम से कम आधा दिन तो लग जाता। वह भी अगर कोई अपनी ओर से आकर उन्हें यह खबर देता। मगर केवल वह ही नहीं, यह खबर सवेरे-सवेरे ही इंटरनेट तथा मोबाइल द्वारा कहाँ-कहाँ नहीं पहुच चुकी थी। यह जो सोशल मीडिया है-उसके माध्यम से इसके फैलने में समय ही नहीं लगा। यह तेजी से पूरे इलाके में फैल गई। अब तक तो यह मैसेज जिस दरजी ने भेजा है उसके घर के जितने लोग हैं उनके फेसबुक, वाट्सअप, इन्स्टाग्राम और ट्विटर सबमें यह सूचना त्वरित गति से मिल गई होगी।

हर दिन की तरह पौ फटने से पहले कुंगा लामा की नींद टूट गई थी। नींद खुलते ही उनका हाथ अपने मोबाइल फोन पर चला जाना कुंगा लामा की एक आदत बन गई है। यूँ कहें तो इसे ख़राब कहने की जगह अच्छी आदत भी कह सकते हैं। मोबाइल के खुलते ही वह अपने वाट्सअप ग्रुप को खोला। उस ग्रुप को वह खुद अपने शिष्य तथा जीनदा यानी भक्तों को जोड़कर बनाया हुआ ग्रुप है। वह एक गोम्पा यानी बौद्ध मठ का मुख्य लामा है और इस वाट्सअप ग्रुप के जरिए ही आजकल वह अपने गोम्पा के काम का परिचालन सुविधाजनक ढंग से कर पा रहा है। उनके गेतुक लोग जहाँ भी रहे इस वाट्सअप ग्रुप के जरिए उनसे आदेश अथवा सलाह लेते हैं। कुंगा लामा के जितने जीनदा हैं उनको इसी के माध्यम से कुछ खबर देना होता है, कुछ अनुरोध करना है तो इसी के द्वारा लिखकर उन्हें भेजते हैं। किसके घर में वह खुद पूजा करने के लिए जा रहा है, कौन-सा गेतुक या गेतुक के ग्रुप को कहाँ किसके घर में पूजा करने का काम सौंपा गया है, कौन-सा दिन किस काम के लिए शुभ या अशुभ है आदि ढेरों बाते कुंगा लामा इसी वाट्सअप से अपने जीनदा लोगों तक पहुँचाता आ रहा है।

आज भी कुंगा लामा ने उठते ही मोबाइल फोन उठाया ओर वाट्सअप देखा। उसमें उन्होंने अपने ग्रुप में एक मैसेज का संकेत देखा और उसे खोला। उसमें कोई दरजी नामक जीनदा ने उसे लिखा था- "लामा ला!

हमें आपको बहुत दु:ख के साथ बताना पड़ रहा है कि दो दिन के बुखार में कल रात तीन बजकर दो मिनट में हमारा प्यारा भाई तासी हमें छोड़कर चल बसा है। आपको वाट्सअप मैसेज के जरिए अनुरोध करना चाहता हूँ कि उनके शव संस्कार के लिए हमें मौ (अर्थात ज्योतिष शास्त्र में क्या करना है, नहीं करना है-देखने और जानने का कार्य करना) देख देने का कृपा करें। यथासमय में हम खुद आपके घर में उपस्थित होकर मौ में निकली हुई कार्यसूची से रू-ब-रू हो लेंगे।"

कुंगा लामा पहचान नहीं पाया कौन-से दरजी ने यह मैसेज उन्हें भेजा है। क्योंकि आस-पास के गांवो में इस नाम से कोई लोग हैं। दरजी, नरबु, तासी, खान्दु आदि नाम मोनपा जनजातियों में बहुत पाया जाता है। एक ही गांव में कम से कम छह-सात लोगों के नाम इन नामों में मिल जाते हैं। मोनपा लोगों के बीच अपनी जाति लिखने का रिवाज भी नहीं है जिससे पहचाना जा सके कौन-सा नाम किस आदमी का है। बहरहाल, कोई-कोई शिक्षित नौजवानों ने अपने नाम के बाद जात का नाम भी लिखना शुरू कर दिया है। अक्सर कई लोगों का नाम एक होने के कारण सभी लोगों के एक उपनाम भी रहते हैं, जिससे गांव में उस आदमी को जाना और पुकारा जाता है। मगर वह सब नाम ज्यादातर व्यंग्यात्मक होते हैं जिसकी वजह से लोग अपना नाम लिखते समय उस नाम का व्यवहार नहीं करते। इसलिए स्वाभाविक रूप से कुंगा लामा पकड़ नहीं पाया कि यह कौन-से गांव का कौन-सा दरजी का मैसेज हो सकता है और मरने वाला तासी कौन हो सकता है। कुंगा लामा बिस्तर से उठे ही थे, इसलिए वह मोबाइल को छोड़कर नित्य-क्रिया कर्म समापन करने हेतु निकल गए। अपने काम समाप्त करने के बाद उसने अपना मुँह-हाथ साफ किया और अपने निवास घर में बने छोसाम अर्थात घर के प्रार्थना कक्ष में प्रवेश किया। उसमें सजाई हुई बुद्ध तथा अन्य बौद्ध मूर्ति के साथ दलाई लामा की छवि के सामने चौदह खाली पात्र में पानी डालकर एक पंक्ति में रखा, शुद्ध याक के घी के तीन प्रदीप जलाये, अगरबत्ती भी जलाया और थोड़ी दूर में खड़े होने के बाद सात बार उठ-बैठ कर प्रणाम किये। उसके बाद वह अपने आसन में बैठकर मंत्र जपने लगे। यही कोई एक घंटा के बाद लामा की प्रार्थना खत्म हुई। प्रार्थना खत्म होते ही कुंगा लामा ने अपना मोबाइल फिर से खोला ताकि कोई नई खबर उन्हें फिर से मिल जाय। इस बार उन्होंने वाट्सअप के बदले फेसबुक में अपना टाईम लाइन खोला। उसमें दरजी नाम के उस आदमी के टाईम लाईन में हँसते हुई दो नवयुवक का फोटो मिला जिसके ऊपर में लिखा था-कल रात तीन बजकर दो मिनट में मेरे प्यारे भाई तासी इस संसार को त्यागकर स्वर्गवासी हो गए।"

उसके बाद उन्होंने अपने स्वर्गवासी भाई की आत्मा को उद्देश्य करके लिखा था-"तासी, तुम हमें रुलाकर अचानक क्यों चला गया? तुम्हारे इस तरह चले जाने के बाद हमारे वृद्ध माँ-पिताजी एकदम टूट से गए हैं। हमें छोड़ कर चले गए, लेकिन माँ-पिताजी को ऐसे छोड़कर तुम्हें नहीं जाना चाहिये था। तुम जब चले ही गए हो तो हम सांगे चोमदान देव (बुद्ध देव) से प्रार्थना करता हूँ, वह तुमको कईपेमे (स्वर्ग एवं परिनिर्वाण) के रास्ते में ले चलें।"

कुंगा लामा उस फोटो की जोड़ी को देखकर पकड़ नहीं पाये उनमें से कौन-सा युवक दरजी है और कौन-सा तासी। उम्र के लिहाज से भी कौन बड़ा और कौन छोटा है, कह नहीं सकते थे। उसने फिर देखा कुछ मिनट पहले ही किए गए इस अपलोड में नौ लाईक और पाँच कमेंट मिल चुका है। लाईक को देखकर कुंगा लामा को हँसी भी आ गई। उसके हँसने का कारण था उस लड़का के मर जाने पर अब तक नौ लोगों का लाइक

मिला है, यानी अच्छा लगा है। कैसा जमाना आ गया! आदमी के मर जाने पर संवेदना प्रकट करने के बजाय बोलते हैं कि अच्छा लगा। हाँ, जिन लोगों ने अपना कमेंट भेजा है उन लोगों ने तासी की मृत्यु पर अपना शोक जताया है और साथ में किसी ने अगर दरजी और उनके परिवार के प्रति संवेदना जताई है तो किसी ने तासी की आत्मा को श्रद्धांजलि अर्पित की है। ऐसा मैसेज जिन लोगों ने भेजा है उन लोगों ने अक्ल का काम किया है! आजकल ऐसे समय में अगर सोशल मीडिया पर मैसेज देखें तो ज्यादातर लोगों के लाईक ही देखने को मिलते हैं। इसका मतलब कोई मरे तो दु:ख व्यक्त करने वालों से अधिक इस सूचना को पसंद करने वाले की संख्या होती जा रही है। किसी के मरने की खबर से लोगों को मजा आता है। इसीलिए तो उन लोगों ने लाईक दे रखा है। कुंगा लामा ने सोचा-जिन लोगों ने अपना कमेंट भेजा है उन लोगों में से किस-किस ने क्या लिखा है उस पर अपनी आँखे दौड़ाई। उसमें तीन लोगों ने केवल लिखा है 'RIP'। बिल्कुल ही केवल सौजन्य निभाने के लिए लिखा है, उन लोगों ने। केवल नरबु नाम के एक आदमी ने लिखा है- "तासी की मृत्यु का समाचार सुनकर मैं बहुत मर्माहत हूँ। वह हम मोनपा जनजातियों के तासी एक बहुत संभावनापूर्ण नौजवान था। अगर जिंदा रहता, तो वह अपने समाज के लिए बहुत मूल्यवान अवदान दे सकता था। हमारे समाज ने एक होनहार शख्स को खो दिया और मैंने अपने सबसे अच्छे से दोस्त को।"

उस आदमी का मेसेज इतने में ही खत्म नहीं हुआ। उसने असली मैसेज तो मृत तासी को भेजा है- बड़े ही भावुक स्वर में। उसमें लिखा था- "दोस्त तासी! याद है तुमने एक दिन मजाक-मजाक में कहा था कि मैं अगर आगे मर जाऊँ तो तुम मेरे लिए एक फानयोन फान लगाना, तुम अगर आगे मरे तो मैं तुम्हारे लिए फानयोन फान लगाऊँगा। मजाक-मजाक में मैंने भी उस समय हामी भरी थी। सच, तुम मुझे छोड़कर आगे चले गये हो। मैं अब गांव से बहुत दूर में हूँ। मगर मैं आ रहा हूँ। मैंने अपना जो वादा किया था उसे जरूर पालन करूंगा और तुम्हारे लिए एक पुण्य ध्वजा जरूर लगाऊँगा।"

कुछ ही समय के अंदर में उस कमेंट के उत्तर में कई लोगों ने अपना दु:ख प्रकट किया था, जैसे कि तासी नाम का वह मरने वाला आदमी दरजी का भाई न होकर नरबु का ही भाई हो।

सुबह का समय मौ देखने का सही समय होता है। उस समय आप अपना ज्योतिषशास्त्र खोलकर दिन में क्या काम करना उचित है, क्या काम करना अनुचित है, देख सकते हैं। बीमार पड़ने पर क्या पूजा करने से आदमी अच्छा होगा, मौ में वही देख लेने का अनुरोध लेकर अक्सर लोग लामा के पास आते रहते हैं। आदमी मरने पर भी कौन-से दिन में और कौन-से समय में दाह-संस्कार करना है, घर से शव निकाल कर ले जाते वक्त कौन-सी दिशा से लेकर निकलना है, कौन-कौन सी राशि के लोगों को शव के समीप आने के बजाय दूर रहना है, मृतक के नाम में कौन-से बौद्ध भगवान की मूर्ति खरीद कर गांव के गोम्पा में दान देना है आदि; सब लामा लोगों को मौ देखकर अपने जीनदा लोगों को बताना पड़ता है और जीनदा लोग उसी के मुताबिक अपना काम करते हैं। इसके लिए जरूरत है-मृत व्यक्ति की राशि का नाम। मगर जिस मृत व्यक्ति के लिए आज उसे मौ देखना है उसकी राशि क्या थी, उसे उस दरजी नाम के व्यक्ति ने लिखकर नहीं भेजा है। शायद भूल गया होगा। इसलिए कुंगा लामा ने अपना वाट्सअप ग्रुप खोला और उस आदमी को लिख कर भेजा- "आपके भाई तासी की मृत्यु की खबर पाकर दुख हुआ। 'कुनचोक सुम' ने जो भाग्य में लिख कर भेजा है उसे कोई टाल नहीं सकता। इसलिए दु:खी मत होइए। आपके अनुरोध के अनुसार मैं मौ देख दूंगा, मगर उससे पहले उनका राशि का नाम मुझे लिख भेजने की कृपा करें।"

शायद दरजी नाम का वह आदमी वाट्सअप खोलकर इसी प्रत्याशा में ही बैठा था। इसलिए साथ-साथ में उत्तर भी आ गया- "तासी का राशि-नाम था लुक (यानि मेष)। उसके मुताबिक आप उनका मौ देख दीजिए।"

कुंगा लामा राशि का नाम मिल जाने के बाद उस मृत लड़के की उम्र गिन कर देखा तो मिला कि उसकी उम्र महज बीस साल ही हुई थी। बहुत ही कम उम्र में मर गया है वह। यह जानकर कुंगा लामा का दिल कुछ पल के लिए विषादग्रस्त हो उठा। मगर अगले ही क्षण वह दिल से गायब हो गया। उसके बदले उसके मन को कर्तव्य बोध ने आकर जकड़ लिया। लामा ने अपने ज्योतिष-शास्त्र को खोल लिया और ध्यानमग्न होकर उसे देखने में लग गया। साथ-साथ में मौ में जो बातें निकल रही थी उसे वह एक कागज पर लिखता गया। काम समाप्त करने के बाद उसने सोचा मौ में जो-जो बातें निकली हैं उसे वाट्सअप से भेजूँ या कागज का एक टुकड़ा देकर किसी एक गेतुक को ही भेज दिया जाय। वैसे तो उसे अब तक किसी एक लामा को उस घर में पूजा करने के लिए कह देना चाहिए था। अंत में लामा ने निर्णय लिया कि एक लामा तुरंत मृतक के घर भेजकर साथ में कागज को भी दे दिया जाय। क्योंकि कुंगा लामा को मौ में निकली हुई सभी बातें मोबाइल में लिखने में दिक्कत होती है, उसका जो सीमित अंग्रेजी ज्ञान है वह बड़ी-बड़ी बातें लिखने के लिए पर्याप्त नहीं है। इस बार फिर कुंगा लामा ने अपना वाट्सअप ग्रुप खोला ताकि वह जान पाए सबेरे उसने अपने गेतुक लामा लोगों को जो निर्देश जारी किया था, उसका क्या असर हुआ है। उसने देखा उसका निर्देश लगभग सभी गेतुक लामा को मिल गया है और ज्यादातर लोगों ने अपने-अपने स्थान से रवाना हो जाने की सूचना उन्हें भेजी है। केवल दो गेतुक लामा जिन घरों में पूजा करने की प्रक्रिया में जुटे हैं, वह खत्म करने में और वक्त लगने की सूचना भेजी है। फिर भी समय पर उन लोगों ने गोम्पा में पहुँच जाने का वादा किया है।

चाय पीने के बाद कुंगा लामा अपने गोम्पा के ल्हागांग अर्थात गोम्पा के मूल प्रार्थना गृह में गए। वहाँ तब तक दो सीनियर लामा की अगुवाई में छोटे-छोटे गेतुक लोगों ने पूजा-पाठ करना शुरू कर दिया था। अपने मुख्य लामा को आते देख उन लोगों ने तत्काल अपना मंत्रोच्चारण स्थगित कर दिया था, ताकि उनके साथ मिलकर मंत्रोच्चारण कर पूजा समाप्त कर सकें। सबेरे की पूजा समाप्त करने के बाद ही वे लोग हाथ-मुंह धोकर खाने के लिए बैठ सकते हैं। कुंगा लामा के अपने आसन पर बैठ जाने के बाद सब गेतुक अपने लामा की प्रतीक्षा करने लगे कि वह कब अपने खोदन शुरू करें। मगर कुंगा लामा ने खोदन शुरू न करके लामा गोगते से कहा- ''गोगते, तुम लुंगदर बस्ती में चले जाओ। वहाँ किसी दरजी के भाई की मौत हो गई है। उनकी पूजा कर देना।"

'लासो गेरगान ला' अर्थात् धन्यवाद गुरुजी कहकर लामा गोगते अपने आसन से उठ पड़ा।

"और सुनो। जाते वक्त रास्ते में हमारे गेतुक लोग आते हुए मिल जायेंगे। उनमें से दो गेतुक लामा को भी साथ में लेते जाना।"

"शव के सत्कार के समय आप खुद आयेगा या मैं ही कर दूँ?"

"मैं मौ देखकर दे चुका हूँ। यह कागज है। दरजी को दे देना। दाह-संस्कार परसों ही कर सकेगा। वह भी दोपहर के बाद में। उसके लिए मुझे जाना है कि नहीं, मैं सोचकर पीछे बता दूंगा। यह कौन-सी दरजी है, मैं पहचान नहीं पा रहा हूँ। अगर वहाँ समाज का एक जान-पहचान वाला शख्स है या उसका भाई, तो देख लेना। वैसे यह एक लड़का था तो मैं खुद दाह-संस्कार संबंधी पूजा करने चला जाऊंगा। नहीं, तो जरूरत नहीं पड़ेगा। तुम्हें देखने को मिलेगा ही। तब हमें बता देना। उसी के मुताबिक मैं निर्णय ले लूंगा।"

"मैं उस दरजी को पहचानता हूँ। इस बार की ग्राम पंचायत चुनाव में वह जीता है। लुंगदर बस्ती में वह अब एक लीडर के रूप में उभर कर आ रहा है।" लामा गोगते ने कहा।

"तब तो मुझे ही जाना पड़ेगा। उनसे कह दो मैं परसों सबेरे पहुँच रहा हूँ।"

"हाँ, आप अगर शव का दाह-संस्कार कर दें तो उनका मान और इज्जत बढ़ेगा। हमारे लिए अच्छा होगा, क्योंकि ऐसे लीडर लोगों को हाथ में रखने से हमारे लिए कितना अच्छा है, तो मैं चलता हूँ।"

"ठीक है।"

कुछ ही दिन में कुंगा लामा के निर्देश के अनुसार एक दो करके उनके गोम्पा के सभी गेतुक आना शुरू हो गए और पाँच दिन के अंदर सब आकर नाचांग अर्थात गोम्पा के होस्टल में पहुँच गये। सब गेतुक लोगों को मालूम था उन्हें अपने मुख्य लामा ने क्यों ऐसे बुलाया है। क्योंकि लुंगदर बस्ती में एक आदमी की मृत्यु हुई है और उन्हें अब फानयोन फान यानी की पुण्य-ध्वजा छपवाने का काम बारी-बारी से करना है। मृत आदमी की आत्मा ने अपने जीवन-काल में जितने भी पाप कर्म किए होंगे उनसे मुक्त होने हेतु और साथ में नया पुण्य संग्रह करके आत्मा जल्द ही नया जन्म ले सके, उसके लिए गाँव के आदमी लोग अपना एक-एक पुण्य ध्वजा सात दिन के मनलाम के समय गांव की किसी सुविधाजनक जगह में फहरा देते हैं। उस पुण्य ध्वजा में जो मंत्र लिखा होता है उसका प्रिंटिंग गोम्पा में ही होता है और लामा लोग ही उसकी छपाई कर सकते हैं। कोई दूसरा आदमी उसे छाप नहीं सकता है। वैसे तो विभिन्न अवसर पर लगाने के लिए तरह-तरह के बौद्ध ध्वजा दुकान में मिल जाती है। नजदीक की कलाकतांग शहर में पूजा की विभिन्न सामग्री बेचने वाले दो दुकाने हैं भी। मगर मृतक के नाम पर जो फानयोन फान है वह दुकान से खरीद कर लगा नहीं सकते। उसके द्वारा मृतक की आत्मा को कुछ लाभ नहीं होता। उसके लिए लोग दुकान से सात मीटर का सादा मार्किन कपड़ा खरीद कर उसके ऊपर मंत्र छापने का काम गोम्पा में जाकर करते हैं। मंत्र को छपवाने के लिए लोगों को रुपया पैसे लामा लोगों को देने नहीं पड़ते। केवल उन्हें मंत्र छापते वक्त जो लामा मंत्र छाप रहा है, उसे आराक यानी शराब पिलाते रहना पड़ता है। वैसे तो लामा लोगों को शराब पीना मना है, मगर मृत व्यक्ति के लिए फानयोन फान को छापते वक्त उस आराक को पीने से लामा इनकार नहीं कर सकते। क्योंकि वह आराक लामा को नहीं, मृत व्यक्ति के नाम अर्पित किया हुआ होता है और लामा को मृत व्यक्ति के नाम पर उसे पीने होते हैं। अगर मंत्र को छापते वक्त उस आराक को लामा पीकर खत्म नहीं करेंगे तो मंत्र काम में नहीं आएँगे और मृत व्यक्ति को उस ध्वजा द्वारा पाप कर्म से मोक्ष नहीं मिलेगा या पुण्य कमा नहीं सकेगा। इसलिए उस अवसर पर लामा लोगों को शराब पीने की छूट पूरी तरह से मिल जाती है और बहुत से लामा लोगों को, जिसे शराब पीने की आदत है, मगर धर्म पालन का कर्तव्य और लोक-लाज के कारण पी नहीं सकते उन्हें यह सुनहरा मौका मिल जाता है। वह लोग ऐसे सुनहरे मौके के इंतजार में रहते हैं। जिन लामाओ को पीने की आदत नहीं है वह भी ऐसे समय पर मजबूरन शराब के नशे की यातना भोगने पर मजबूर हो जाते हैं। इसलिए कुंगा लामा का वाट्सअप निर्देश मिलते ही गोम्पा के बाहर गांव में जो लामा लोग पूजा करने के लिए गए हुए थे, सब पाँच दिन के अंदर ही नाचांग में आकर उपस्थित हो गए।

दिन में विभिन्न गांव के जीनदा लोग गोम्पा में आने शुरू हो गए। जीनदा लोगों के हाथ में एक सात मीटर लंबा वाला मार्किन कपड़ा था और कंधे में एक थौला था जिसमें एक बोतल आराक और एक खाता यानी सफेद कपड़े का माला था। कुंगा लामा के गोम्पा में केवल एक ही प्रिंटिंग ब्लाक था, इसलिए एक बार में

एक ही आदमी ध्वजा छपवाने का काम कर सकता है। कुंगा लामा ने एक-एक करके गेतुक लामा लोगों को उस काम मे लगाना शुरू कर दिया। गांव वाले अपने-अपने क्रम में गेतुक लामा के पास पहुँचते और अपनी थैली से खाता निकालकर पहले लामा को पहनाते और मार्किन कपड़ा आगे बढ़ा देते। गेतुक लामा उस मार्किन कपड़ा पर मंत्र छापना शुरु करते और जब वह उस काम को कर रहे होते तब जीनदा उन्हें अपने साथ लाई हुई आराक को लामा को पिलाते रहते। एक लामा दो या तीन ध्वजा ही छाप पाता और जब वह नशे में धुत हो जाता, तो उसकी जगह कोई दूसरा लामा आकर ले लेता।

इधर नरबु ने कसम खाई थी कि वह अपने दोस्त तासी के नाम पर जरूर एक फानयोन फान लगाएगा। कॉलेज में उसकी परीक्षा चल रही था, इसलिए तासी के मरने की खबर सुनते ही वह आ नहीं सका। मगर परीक्षा खत्म होते ही वह अपने गांव की तरफ चल दिया। वह जब लुंगदर गांव में पहुँचा तब गांव के लोग अपने-अपने फानयोन फान लंबे-लंबे बाँस में गांव के रास्ते के किनारे लगा रहे थे। उसे देखकर गांव वालों ने कहा-"तुमने बहुत देर कर दी। फिर भी गोम्पा में जाकर देख सकते हो। शायद बिना पिया हुआ कोई लामा मिल जाय।"

कहकर वह आदमी ठहाका लगाकर हँसा। साथ-साथ में कई लोगों ने उसके कहकहे में साथ दिया।

"अगर नहीं मिले भी तो क्या है? मैं खुद छपवाकर ले आऊंगा।" नरबु ने जवाब दिया।

"तुम्हारे पिताजी ने फान तैयार कर फहरा दिया है। तुम्हें अलग से फान लगाने की कोई जरूरत नहीं है।"

"नहीं, मैंने अपने दोस्त नरबु से वादा किया था, मतलब उसके गुजर जाने की खबर सुनकर वादा किया था कि उसकी पुण्य आत्मा के लिए मैं जरूर अपने तरफ से एक फान लगाऊँगा। मुझे अपना वादा निभाना है। कोई लामा बिना नशे में मिल भी सकता है।"

कहकर नरबु गोम्पा की तरफ चल दिया। करीब दो घंटा बिना रुके चलने के बाद पहाड़ के ऊपर में स्थित वह कुंगा लामा के गोम्पा में पहुँच गया। गोम्पा में पहुँचकर उसने देखा गोम्पा का परिसर सुनसान पड़ा हुआ है। अन्य दिनों की तरह वहाँ कोई शोरगुल नहीं हैं। उसने लामा लोगों के सोने का रूम में जाकर के देखा तो सभी लामा नशे में धुत होकर सोए मिले। केवल जाग रहे थे तो छोटे-छोटे कुछ गेतुक। उसने एक छोटे गेतुक से प्रिंटिंग ब्लाक मांगा तो वह दौड़कर नजदीक के स्टोर से ब्लक के साथ स्याही भी ला दिया। अब नरबु ने अपने हाथों से फानयोन फान को छापना शुरू कर दिया। साथ में वह गुनगुनाकर कहने लगा-"लामा लोग ही फानयोन फान छापने से पुण्य होता है मैं यह नहीं मानता। तासी, देखो मैं तो खुद अपने हाथों से तुम्हारे लिए फान छाप रहा हूँ। बिना पीये और शुद्ध मन से। यही मेरी-तुम्हारे प्रति सच्ची श्रद्धांजलि है। तुम इसे स्वीकार करना।"

***

(नोट: प्रस्तुत कहानी में अरुणाचली हिंदी का प्रयोग है। विश्वास है, पाठकगण उसकी खूबसूरती को ध्यान में रखते हुए रचना का पाठ करेंगे।)

***(लेखकीय परिचय :** अरुणाचल प्रदेश साहित्य-संसार के अग्रणी एवं वरिष्ठ साहित्यकार पद्मश्री येसे दरजे थोंगछी वर्तमान में अरुणाचल प्रदेश लिटरेरी सोसाइटी के अध्यक्ष हैं। आपको साहित्य अकादमी पुरस्कार सहित कई राष्ट्रीय स्तर के पुरस्कार प्राप्त हुए हैं। आपकी असमीया एवं हिंदी भाषा में कई महत्त्वपूर्ण पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं- 'शव काटने वाला आदमी', 'मौन होंठ मुखर हृदय', 'सोनाम' आदि। मोबा: 9485231967, ई-मेल: yeshe52@gmail.com)*

(कहानी)

अम्मा

जोराम यालाम

दो ऊँचे पहाड़ों के बीच एक नदी बहा करती थी। सर्दियों में कोहरे से भरी रहती। इन दिनों यह कुछ सूख-सी जाती। लोग आराम से पैदल भी इसे पार कर सकते थे। बारिश के दिनों में यह कोहराम मचाया करती। घास-फूस तथा लकड़ियों से बने न जाने कितने घरों को यह लील गई। लेकिन यहाँ के लोग डरना नहीं जानते थे। रोज एक नया घर खड़ा हो जाता। इस शैतानी नदी को शांत करना है। प्रभु के भक्तों का मेला लगना है। प्रार्थनाएँ गूंजती रहनी चाहिए यहाँ। दिसंबर पवित्र महीना है। नए लोगों के लिए बब्तिस्मा लेने का अच्छा समय।

उस रोज नदी के दोनों तरफ लोगों का ताँता लगा हुआ था। कुछ लोग पानी के बीचों-बीच कांपते हुए खड़े थे। पास्टर के साथ वे लोगों को एक-एक कर नदी में डूबाते और बाहर लाते। और फिर पहले से अधिक ऊँची आवाज में प्रार्थना करने लगते। भीगे शरीर दांत के साथ किटकिटाने लगते। इसके बाद डूबकी लगवाने वाले लोग, "प्रभु प्रभूऊऊउ ...ऊऊ...ढ ध द्ध धन्य धन्य हूऊऊ हो हो प्रभु," कहते हुए तेजी से कपड़े बदलने भागने लगते। कुछ लोग टकटकी लगाये जो कुछ भी हो रहा है, उन्हें देख रहे हैं। पीठ पर बंधे कुछ बच्चे ईं, ऐ, ऊ कर करके रो रहे हैं। एक हाथ बच्चे पर दूसरा हाथ आसमान की तरफ उठाए शरीर को हिला हिला कर, जोर-जोर से कुछ माएँ भी यूनिफॉर्म पहने इन प्रेयर ग्रुप के औरतों के साथ प्रार्थना कर रही हैं, "हे प्रभु कृपा कर ! हे प्रभु दुःख दूर कर ! प्रभु तू सब जानता है। प्रभु इन नए अज्ञानी और पापी लोगों को स्वीकार कर। तेरा सु-समाचार संसार भर में फैले...।"

सुबह के पाँच बजे से लाईन में खड़ी हैं वह भी। घुटनों का दर्द और भी बढ़ता ही जा रहा है। उधर पास्टर बीच-बीच में चिल्लाता है, "प्रार्थना में लगे रहो ! प्रभु को एक क्षण के लिए भी नहीं भूलना। अपने पापों के लिए प्रभु से क्षमा मांगते रहो। आज सब कुछ धुल जाएगा। स्वर्ग जाना है, स्वर्ग जाना है, प्यारे परमेश्वर के पास जाना है। सबकी बीमारी दूर हो जाएगी।" लोग श्रद्धा से हाथ जोड़े, आँखें बंद कर प्रार्थना के स्वर में बहुत कुछ कहते हुए बुदबुदाने लगते हैं। वह भी अपनी दोनों हथेलियों को जोड़ लेती है। बगल में खड़ा दामाद कहता है, "अम्मा, आँखें बंद !" उसने जोर लगाकर आँखों को बंद किया। उसका मन कहता है, "नहीं, नहीं, बिना देखे कैसे प्रार्थना करूँ ! हमारे अनुष्ठान में तो 'न्यूब' भी अपनी आँखे बंद नहीं करते।" उसने अधखुली आँखों से देखा- सबको इधर-उधर, यहाँ और वहाँ। अरे, दामाद किधर गया? वह पीछे मुड़ती है। दामाद फुसफुसाते हुए कहता है, "अम्मा पीछे मत देखो। मैं यहीं हूँ। हमारी बारी आने ही वाली है।" उधर से पास्टर की तेज आँखें तीर की तरह भीड़ को चीरते हुए उसकी तरफ आती है। वह झेंपते हुए जोर से आँखें बंद कर लेती है।

"इस स्थान पर बहुत सारे बराम रहते हैं न , इसलिए नाम पड़ गया–बराम। आप इधर-उधर मत जाना। कब 'बराम' के पेट में चले जाओगे पता नहीं चलेगा।" कल रात दामाद ने ऐसा ही बताया था। उसके शरीर में सनसनी-सी दौड़ गई थी। पहली बार यहाँ आई थीं वह।

"तो ऐसी स्थान को ही बतिस्मा के लिए क्यों चुना होगा?" दामाद हँसता है।

"अरे बताओ न।"

दामाद फिर भी हँसता रहता है। क्या जाने क्यों यह नाम पड़ गया।

वह सोचती है, "प्रभु यीशु हैं तो डर क्या। लेकिन सांप तो सांप है। सावधान तो रहना होगा न।" उसने अधखुली आँखों को पूरा खोल दिया। पास्टर अब भी उसी को देख रहा था। उसने अपनी आँखें फिर बंद कर ली। थोड़ी देर बाद आँखें फिर अधखुली हो गई। पूरी तरह बंद ही नहीं होती। ओह, जाने कब प्रार्थना करना सीख पायेगी वह ! उसका मन फिर उदास हो गया।

"आइए, आइए, यहाँ, यहाँ, हाँ-हाँ यहाँ आइए अम्मा, बैठो बैठो।" पास्टर कहता है।

दामाद उसको कुर्सी पर बैठा देता है। बहुत नर्वस हो रही है वह। उसी समय सूरज रौशन हो गया। उसके शरीर को गर्माहट ने छू लिया। ओह, तो प्रकृति भी साथ है। वह सही कर रही है। बेचैनी कुछ कम-सी हुई।

"आप जानती हैं न आप क्यों आईं हैं यहाँ ?"

"हाँ पास्टर।"

"क्यों ?"

"घुटनों का दर्द दूर करवाना है। स्वर्ग जाना है। पाप धोना है।"

"कौन धोएगा आपका पाप ?"

"जीसू।"

"कैसे ?"

".....।" वह दामाद की तरफ देखती है। दामाद उसके कंधों पर हाथ रखते हुए न घबराने का इशारा करता है।

"जीसू कौन था ?"

"मोरियाम का पुत्र।"

"मोरियाम कौन ?"

"जीसू की माँ।"

"और कुछ जानती हो उसके बारे में ?"

"किसके बारे में ?"

"मोरियाम के बारे में।"

"मेरी देवरानी कहती थी मोरियाम जीसू की पत्नी थी।"

पास्टर का मुँह खुला का खुला रह जाता है। आस-पास खड़े प्रेयर टीम के कुछ लोग अपनी हँसी दबाने लगते हैं। पास्टर दामाद की तरफ देखता है।

"मैंने सब बता तो दिया था कि क्या-क्या बोलना है। शायद भूल गई है फिर से," दामाद ने झेंपते हुए कहा।

"अच्छा अम्मा बताओ। आपकी देवरानी ने ऐसा क्यों कहा होगा ?"

"क्या।"

"अरे, आपने कहा न कि उन्होंने आपको बताया था कि मोरियाम जीसू की पत्नी थीं ?"

"फोटो में जीसू और मोरियाम एक साथ खड़े हैं न। जीसू बुड्ढा और मोरियाम जवान दिखती हैं।"

"लेकिन आपको वे पति-पत्नी ही क्यों लगे ?"

"मुझे तो लगा था बाप-बेटी। लेकिन देवरानी कहती थी कि मोरियाम बूढ़े जीसू की जवान पत्नी थी। लेकिन दामाद ने कहा वे माँ-बेटे हैं।"

"तो किसकी बात सही लगती है ?"

"कौन-सी बात ?"

"ओफ्फो, मोरियाम, जीसू, पति-पत्नी, माँ-बेटा, आपकी देवारनी और दामाद ?"

"ओह.....।" क्या बोलती वह। परेशान-सी हो जाती है।

दामाद कहता है, " अम्मा मोरियाम जीसू की माँ थीं। जीसू की लंबी दाढ़ी है न-इसलिए वह मोरियाम से उम्र में बड़ा दिखता है।

"तो मोरियाम इतना जवान क्यों दिखती हैं ? बच्ची लगती है बिलकुल।"

"अम्मा छोड़ो उसको। आप तो परेशान हो गयीं। चलो कुछ और पूछते हैं," पास्टर ने मुस्कुराते हुए कहा।

"झूठ बोलती थी, इसलिए तो मेरे से पहले मर गई।" उसने धीरे से बुदबुदाते हुए बुरा-सा मुँह बनाया।

"कौन अम्मा ?" पास्टर आश्चर्य से पूछता है।

"मेरी देवरानी।"

"ओह! अच्छा-अच्छा। छोड़ो उसको। आप यह बताओ, बार-बार अपनी आँखें क्यों खोल रही थीं ?"

"कब ?"

"प्रार्थना के वक्त।"

"जागते में कैसे अपनी आँखें बंद रख सकती हूँ ? आँखें खोल कर प्रार्थना नहीं कर सकते क्या ?"

"आँखें खोल कर प्रार्थना नहीं की जाती अम्मा।"

"अच्छा ....मैं नहीं जानती न।"

"अच्छा बताओ, जीसू का जन्म कहाँ पर हुआ था ?"

"नॉर्थ लखीमपुर।" वह तपाक से बोलती है।

"नॉर्थ लखीमपुर नहीं अम्मा, बेतलेहम," पास्टर ने जैसे-तैसे अपनी हँसी रोकते हुए कहा। प्रेयर ग्रुप के लोगों ने भी बहुत मेहनत से अपने को हँसने से रोका। अम्मा ने सकपकाते हुए दामाद की तरफ देखा। दामाद परेशान-सा हो गया।

"उनकी मृत्यु कहाँ हुई थी ?"

"किसकी ?"

"जीसू की।"

यह तो बहुत ही आसान सवाल था। कौन नहीं जानेगा इसे भला! तो उसने ज्ञानियों से अंदाज में कहा, "दापोरिजो में।"

पास्टर जोर-जोर से हँसते-हँसते हुए खड़ा हो गया। प्रेयर ग्रुप के लोग तितर-बितर हो गए। दामाद ने सिर पकड़ लिया। वहाँ नदी में खड़े प्रेयर ग्रुप के कुछ लोग बर्फ बनते जा रहे थे। सब समझ नहीं पा रहे थे कि वे इतना हँस क्यों रहे हैं ? भई, गंभीर और पवित्र समय है। यह लोग अचानक नासमझ और चंचल क्यों हो गए? सबकी आँखें हँसने वाले लोगों पर टिक गईं। छोटे-छोटे बच्चे दौड़-दौड़ कर इन लोगों के पास आने लगे। एक आदमी

ने माइक पर बोला, "अपनी-अपनी जगह पर कृपया बने रहें। यहाँ कोई खेल नहीं चल रहा है।" पास्टर अपनी जगह पर बैठ गए। प्रेयर ग्रुप के लोग गोल घेरा बनाकर फिर से उसी जगह पर खड़े हो गए। चंचल बच्चे शर्माते हुए वापिस अपनी-अपनी माँओं के पास चले गए। इधर अम्मा का शरीर शर्म और झिझक से सिकुड़ा जा रहा था।

"अम्मा, जीसू की मृत्यु यरुशलम में हुई थी। दापो मतलब क्रोस क्रोस," पास्टर ने क्रोस शब्द पर जोर देते हुए कहा।

"अच्छा।"

"क्रोस पर पापियों द्वारा वह लटकाया गया था। दापोरिजो तो अरुणाचल प्रदेश में हैं न। जीसू कैसे इधर आएगा ?"

"क्रूस कात ?"

"हाँ अम्मा। वह क्रोस भारी-भरकम काठ का बना था।"

"...।" वह रुआंसी हो जाती है। पास्टर और दामाद उसको संभालते हैं।

"अच्छा अम्मा, आपके दामाद ने बताया कि आपके पति अब नहीं रहे। वह तो अपने पूर्वजों के पास चले गए होंगे न। आप इसाई बन जाती हैं तो आपकी आत्मा तो स्वर्ग चली जाएगी। आप फिर भी तैयार हैं ?"

"किस बात के लिए तैयार ?"

"आप अपने पति की आत्मा से मरने के बाद मिल नहीं पायेंगी।"

"...।" चेहरे की झुरियों में चिंता, भय और बेबसी का मिश्रित रंग साफ़ दिखने लगा। वह हतप्रभ है।

"बोलो न अम्मा। डरो मत। पिता परमेश्वर आपके साथ हैं।" पास्टर दया से भर गया। उसकी आवाज बहुत नरम थी।

"मेरी माँ और मेरे पिताजी की आत्मा से भी नहीं मिल पाऊँगी ?"

"नहीं।"

"दादा, दादी, नाना-नानी ?"

"नहीं, बिलकुल नहीं।"

"यह तुमने पहले क्यों नहीं बताया मुझे ?" उसने दामाद की तरफ देखते हुए शिकायत और गुस्से से भरे लहजे में कहा।

"अम्मा, स्वर्ग में आराम ही आराम है। नाचते-गाते रहो बस। पूर्वजों की दुनिया इससे उलटी है। भूतों के पास क्यों जाना ?"

"लेकिन मुझे जाना है।" उसकी आँखों में बेबसी का भाव था।

"अम्मा जीते जी अकेली रहना है क्या ?" दामाद ने समझाने के अंदाज में कहा।

"...।"

"तो फिर आप इसाई क्यों बनना चाहतीं थीं ?" पास्टर ने उसके सिर पर प्यार से हाथ फैरते हुए कहा।

"गाँव वाले सभी ईसाई बन गए हैं न। मैं अकेली कैसे रह जाती ! अनुष्ठानिक भी गिरिजा भाग गए।" वह रोने लगती हैं।

"बतिस्मा के लिए तैयार हैं आप ?"

"...।" उसका दिमाग सुन्न पड़ गया।

पति कहता था मरकर भी अलग नहीं होंगे। पूर्वजों के स्थान पर भी अपना परिवार बनायेंगे। खूब-खेती-बारी करेंगे। लंबा-सा घर होगा। पंक्तियों में कई चूल्हे जल रहे होंगे। उन्हीं में एक चूल्हा अपना होगा।

"अम्मा ! हाँ बोलो।" दामाद ने उसके शरीर को झकझोरते हुए कहा।

उसने सकपकाते हुए कहा, "हाँ, हाँ।"

देरी न करते हुए तुरंत नदी में उसके शरीर को डुबकी लगवाई गई। पास्टर ने अंत में उसको नया नाम दिया, "मोरियाम।"

उसने क्षीण आवाज में पुकारा , "दो...न्यी....! मै आती हूँ !" दोन्यी उसके पति का नाम था।

न्यूब = अनुष्ठानिक/पुजारी

बराम = अजगर

दापोरिजो = एक स्थान का नाम है। संक्षिप्त में लोग इसे 'दापो' कहते हैं।

लखीमपुर - असम-अरुणाचल का एक सीमावर्ती इलाका - जो असम के अंतर्गत आता है।

*(**लेखकीय परिचय :** अरुणाचल प्रदेश की सुपरिचित कहानीकार और चर्चित लेखिका डॉ. जोराम यालाम राजीव गाँधी विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में प्रोफेसर हैं। आपकी बहुचर्चित प्रकाशित पुस्तकें हैं- 'साक्षी है पीपल', 'जंगली फूल', 'गाय गेका की औरतें', 'तानी कथाएँ : अरुणाचल प्रदेश के आदिवासी-जीवन की विश्व-दृष्टि'।*

मोबा: 9436044288, ई-मेल : joram.yalam@rgu.ac.in)

(कहानी)

ऑफिसर पत्नी

तारो सिन्दिक

दिन का आखिरी मरीज़ देखने के बाद उन्होंने चाय की भी आखिरी चुस्की ले ली। अपने चेंबर की पपरी छूटी हुई और दरारे पड़ी दीवार पर टंगी वाल क्लॉक पर उन्होंने दृष्टि डाली। शाम चार बजकर पंद्रह मिनट! उसने जल्दी अपनी ज़रूरती सामानों को समेटकर बैग में डालना आरंभ किया। गाड़ी की चाबी, मोबाईल फोन, कलम, हेण्ड सेनिटाईज़र इत्यादि। सामने दरवाजे पर तैनात अस्पताल की महिला कर्मचारी मेमा ने स्नेहयुक्त उलाहना भरे स्वर में पूछा-

"आसुम मैडम, आप क्यों हमेशा इतनी जल्दी में होती हैं? आराम से जाईए ना। घर ही तो जाना है।" धीमी मुस्कान के साथ डॉ. आसुम ने उत्तर में कहा- "हाँ घर ही जाना है। घर में बहुत काम होता है। इसलिए मुझे जल्दी पहुँचना होता है।"

"क्या? घर जाकर भी आप काम करेंगी। सुबह से शाम तक मरीज़ों को देखने के बाद भी घर जाकर काम करेंगी? तो आप आराम कब करेंगी? और आज आप कुछ ज़्यादा ही जल्दी में लग रही हैं।" मेमा ने विस्मय भरे स्वर में पूछा।

मेमा के ममतामय सवालों के घेरे से वह एक ठंडी मुस्कान और केवल इतना ही कहकर बाहर निकली- "हाँ। मैं काम से छुट्टी होकर काम पर ही लौटती हूँ।"

फिर लगभग दौड़ती सी अपनी चेंबर से निकल वह गाड़ी की ओर बढ़ चली। सर्दी की शाम, सूरज मानो जल्द अस्त होने को बेताब, पहाड़ों के ओट में आधा छिप गया था। बाथ नामक कसबे की प्राईमेरी हेल्थ सेंटर की दीवारों और छतों पर सामने बाँस की परछाईयाँ धीरे-धीरे सरकती, और लंबी होती जा रही थी। आसुम ने गाड़ी स्टार्ट की और ईटानगर की ओर रुख किया। आज उनको घर थोड़ा ज़्यादा जल्दी पहुँचना था।

डॉ. आसुम के लिए ऑफिस से इस हड़बड़ाहट के साथ भागना कोई नई बात नहीं थी। वह रोज़ इस तरह भागती, जैसे उनके घर जल्दी नहीं पहुँचने से घर की दुनिया इधर से उधर हो जायेगी। उनको सबसे बड़ी चिंता सताती थी, गोधूलि के समय, गंगा मार्केट और ज़ीरो प्वाइंट में लगने वाली ट्रेफिक जाम। अजगर की तरह रेंगती गाड़ियों की कतार के बीच फँसकर वह बहुत बेबस और लाचार महसूस करती। रोज़ाना बाथ से ईटानगर की ज्योकुम लापाङ तक का सफर तय करना जैसे, उसकी नियति बन गई थी।

आज उन्हें नियति की दुगुनी मार झेलनी पड़ी। बमुश्किल बाथ और गोहपुर के बीच की ऊबर-खाबड़ सड़क पार करते हुए विवेक विहार पहुंची ही थी कि बी.जे.पी. मुख्य कार्यालय के लगभग सौ मीटर के दायरे तक जन सैलाब और बेशुमार गाड़ियों ने सड़क पर कब्ज़े जमा रखे हुए थे। उन्होंने फिर से घड़ी देखी। पाँच बजे! गाड़ी के शीशे उतार भीड़ में से एक सज्जन से इस जमावड़ा का कारण पूछा,-

"भाई साहब! यहाँ क्या चल रहा है?"

शायद वह भाजपा का कोई कार्यकर्ता था। माथे पर भगवा रंग की नेहरू टोपी, गले पर कमल फूल से लदा भगवा मफ़लर और भगवा रंग का 'गालुक' जिसके जेब और पीठ पर 'कमल' खिलखिला रहा था। पान का पीक थूकते हुए उन्होंने जन सैलाब के इकट्ठे होने का कारण बताते हुए कहा,

"मैडम, जिन नेताओं को दो हज़ार चौबीस की विधानसभा चुनाव के लिए बी.जे.पी. पार्टी टिकट नसीब हुए हैं, उन सबका आज ज़ोरो शोरों से मुख्य कार्यालय में स्वागत-सत्कार हो रहा हैं। इसलिए उन नेताओं के साथ उनके समर्थक तथा भाजपा के सभी कार्यकर्ता भी इस खुशी के अवसर में शरीक होने आए हैं। अभी सड़क खाली होने में थोड़ा वक्त लगेगा।"

कहकर वह 'बी.जी.पी. जिंदाबाद' का नारा लगाते हुए उस भीड़ में विलीन हो गया।

"मेरी तो किस्मत ही खराब है आज! इन लोगों को भी आज ही के दिन यह कार्यक्रम रखना था! अब तो आने दोञ्यी भी मुझे समय पे घर नहीं पहुँचा सकती।"

झुंझलाती हुई उन्होंने मोबाईल फोन निकाला और अपने पति को कॉल किया।

"हेल्लो!" सामने से हसबैण्ड ने उत्तर दिया। उनके 'हेल्लो' में जवाब से ज़्यादा फटकार का लहज़ा भारी था।

"कहाँ हो तुम? अब तक तो तुम्हें घर पहुँच जाना चाहिए था। आज इतनी देर कैसे हो गई? तुम्हें पता है न, दातुम और उसकी पत्नी कब से तुम्हारी राह देख रहे हैं। साढ़े पाँच बजे डॉक्टर का अप्वाइंटमेंट है। अब वे समय पर अस्पताल कैसे पहुँचेंगे?"

उन्होंने एक ही सांस में न जाने कितने ताने सुना दिए, मानो समय पर घर नहीं पहुँचकर आसुम ने कोई संगीन जुर्म कर लिया हो। मानो आसुम जान बूझकर कही ठहर गई हो। गाड़ी में ए सी चालू थी, पर न जाने क्यों आसुम को पसीने आ रहा था। विवेक विहार की सड़क पर फैले जन सैलाब की तरह आसुम का भी मन पल भर के लिए न जाने कितनी दिशाओं में विसर्जित होने लगा था। बड़ी मुश्किल से उन्होंने अपने बिखरे मन को समेटा और देरी होने का कारण बताते हुए बहुत ही संतुलित शब्दावलियों में अपने पति से कहा-

"आज के लिए तुम उन लोगों को अस्पताल ले जाओ। जैसे ही सड़क खुलेगी, मैं भी अस्पताल पहुँच.....हेल्लो.हे..हेल्लो?" सामने से फोन डिस्कनेक्ट हो गया। आसुम ने सोचा दोबारा कॉल करने का कोई मतलब नहीं है। उन्होंने फोन बैग में डाला और रुमाल निकाल कर पसीने पोंछने लगी।

अभी सड़कों से भीड़ और गाड़ियों को हटने में देर लगेगी। वह न आगे जा सकती थी न पीछे। सोचा थोड़ा सुस्ता लिया जाए क्योंकि और झुंझलाना बेकार है। उन्होंने अपनी सीट को पीछे की ओर मोड़ा और पीठ के बल लेट सी गयी। बाहर नारेबाजी अपने प्रचण्ड पर थी, गाड़ियों की चिलम-पों भी बेशुमार था। परंतु आसुम के जेहन की दीवारों में न जाने क्यों वे चार पांच वाक्यांश बार-बार उभर-उभर कर एक दूसरे से टकरा रही थीं। उनके हसबैण्ड ने बिना कुछ जाने ही इतनी खरी खोटी सुना दी। उन्हें दु:ख इस बात का ज़्यादा नहीं था कि उनके पति ने उन्हें ताने सुनाए, बल्कि इस बात की तकलीफ़ ज़्यादा थी कि उन्होंने एक बार भी पूछना ज़रूरी नहीं समझा कि 'मैं' कहाँ फंसी हूँ। आसुम ने मन ही मन अपने पति के ताने का उत्तर रच डाले, "एक बार देर हो गई तो कौन सी आफत आ पड़ी है? आप तो घर पर औंदे पड़े हैं, एक बार उन दोनों को अस्पताल लेकर जाने में कौन सी जान निकली जा रही है? तुम्हारे जितने भी रिश्ते नाते, भाई-बंधु डॉक्टरों से इलाज के लिए आते हैं, सब को अस्पताल मैं ही तो लेकर जाती हूँ। ऐसा एक भी मर्तबा नहीं हुआ कि तुमने कभी तकल्लुफ

की हो, उन्हें ले जाने के लिए। मैं ही तो हूँ जो हर बार अपना काम पूरा करके पागलों की तरह भागी चली आती हूँ, उन्हें अस्पताल लेकर जाने के लिए। कभी हीमा हॉस्पिटल, कभी रामकृष्ण मिशन हॉस्पिटल, कभी नाहरलगुन के सरकारी अस्पताल 'थ्रिम्स', कभी नीबा हॉस्पिटल तो कभी होर्मिन हॉस्पिटल। ऐसा कोई अस्पताल नहीं है, जहाँ मैं इन लोगों को लेकर नहीं गई हूँ। मैं भी दिन भर मरीजों को देखकर थक जाती हूँ, मुझे भी शाम को घर लौटकर आराम की जरूरत होती है, परंतु मैंने कभी शिकायत नहीं की। न तुमसे, न तुम्हारे लोगों से। तुम्हारी पत्नी होने का हर धर्म मैं पूरी निष्ठा और लगन के साथ निभाते आई हूँ। परंतु उसका यह सिला कि आज, ज़रा सा विलंब होने पर इतनी कड़वी बातें सुननी पड़ी मुझे।" परंतु आसुम की यह मौन प्रतिउत्तर कभी जुबान तक का रास्ता तय नहीं कर पाया। सहसा उनकी आँखों से दो बूँद आँसू छलक कर पसीनों में मिल गया।

[2]

आज से लगभग 25 वर्ष पूर्व आसुम और तोजुम शादी के बंधन में बंधे थे। तब तोजुम रिश्ते में आसुम का 'किई' लगता था। रिश्ते में माँ का भाई लगने के कारण तोजुम का आसुम के घर आना जाना रहता था। तब अबोध आसुम को क्या मालूम था कि उनके इस तरह घर आने का प्रयोजन कुछ और था। एक रोज़ आसुम की माँ अकेले घर में अपने काम में मशरूफ़ थी। अवसर का फायदा उठाकर तोजुम उनके सामने अपनी मन की बात रख दी। उन्होंने हिचकिचाते हुए कहा –

"अञ्यी! अब तक मैं भाई के रूप में आपके घर आता रहा हूँ। अब मैं आपका 'माकबु' कहलाना चाहता हूँ। मुझे आपकी बेटी आसुम से प्रेम हो गया है। मैं अपनी बाकी की जिंदगी आसुम के साथ बिताना चाहता हूँ।"

आसुम की माँ के ऊपर जैसे कोई बिजली गिरी। अपने भाई से (दूर के ही सही) उन्होंने कभी इस इरादे की अपेक्षा नहीं की थी। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में तोजुम के प्रस्ताव का उत्तर दिया-

"ये तुम क्या कह रहे हो तोजुम? आसुम की उम्र देखी है? अभी केवल दसवीं कक्षा में है। उनके सामने विवाह की बात छेड़ना भी पाप है, गुनाह है। मुझे लगता था तुम मेरे घर बड़ी बहन के प्रति प्रेम के कारण आया करते थे। यदि पहले मुझे तुम्हारी मंशा पता होता तो मैं कभी तुम्हें अपने घर कदम तक नहीं रखने देती।"

न जाने क्यूँ आसुम की माँ आवेश में आने लगी और बिना रुके वह बोलती गयी।

"देखो तोजुम! तुम मेरे भाई जरूर हो मगर कभी भी इस भ्रम में नहीं रहना कि तुम इस रिश्ते का गलत फायदा उठाओगे। मैं विधवा जरूर हूँ, आसुम के अलावा मेरी और भी कई संतान जरूर हैं, मगर मैं कमज़ोर नहीं हूँ। मैं आज भी उतनी ही सक्षम हूँ कि मैं अकेली अपने बच्चों का लालन पालन कर सकूँ। तुम्हें क्या लगा कि मैं अकेली माँ, जीवन की परेशानियों से हारकर, अपनी बेटियों को ब्याहकर, उनसे पीछा छुड़ा लूंगी। यदि तुमने तनिक भी ऐसा सोचा तो यह तुम्हारी जिंदगी की सबसे बड़ी भूल होगी। मैं दिन रात मेहनत करके अपने बच्चों को पढ़ाऊंगी-लिखाऊंगी, उन्हें इस काबिल बनाऊंगी के वे सब अपने पैरों पर खड़े हो सके और समाज में अपनी पहचान बना सकें। मेरी आसुम ने तो अभी-अभी सपनों के पंख खोले हैं। अभी उनको उड़ना है अपने आसमानों में। इसलिए मेरी बात ध्यान से सुनो तोजुम। आईंदा इस इरादे के साथ मेरे सामने आने की गलती

कभी मत करना। यदि बड़ी बहन से मिलने आना हो तो मेरे दिल और घर का दरवाजा तुम्हारे लिए हमेशा खुला रहेगा।"

उस दिन तोजुम को कुछ और कहने की हिम्मत न हुई। अपराध किए मुजरिम सा सिर झुकाए वह घर से निकल गया। आसुम की माँ सजल नेत्रों से उन्हें जाते हुए तब तक देखती रही जब तक वह नज़रों से ओझल न हो गया।

उन दिनों आसुम चर्चे में रहती थी अपने दोस्तों में, बिरादरी में और विवेकानंद केंद्र विद्यालय कुपोरिजो के अध्यापकगण में भी। पढ़ने में अव्वल, खेल-कूद में सबसे आगे, शिष्टाचार की प्रतिमूर्ति और ऐसा कोई काम न था जो उनको नहीं आता हो। हर वर्ष परीक्षा में वह टॉप करती। सी.बी.एस.ई. बोर्ड के दसवीं कक्षा की परीक्षा में भी उसने 'डिस्ट्रिक्ट टॉपर' का उज्ज्वल स्थान प्राप्त किया। धीरे-धीरे समस्त तागिन समुदाय में आसुम के गुण और प्रतिभा, ख्याति प्राप्त करते गये। बिरादरी में कुछ लोग उनसे ईर्ष्या करते कि किसी लड़की में सारा गुण कैसे समाहित हो सकता है। पढ़ती-लिखती है, नाचती-गाती है, खेलती-कूदती है, खेती-बाड़ी में भी पीछे नहीं और घर का कोई ऐसा काम नहीं जिसे वह बड़ी सफाई के साथ न कर लेती हो। दिखने में सुंदर, स्वभाव में सुशील और उस पर सादगी ने मानो उसके सौंदर्य को सातवें आसमान पर आसीन कर दिया। एक लड़की में इतने सारे गुण हों तो किसी न किसी की आँख को खटकेंगी ही।

छोटे समुदाय में किसी लड़की का सर्वगुण संपन्न होना उसकी मुसीबत का कारण भी बन जाता है। सो आसुम अपवाद कैसे रह जाती। लिहाजा, समाज में विख्यात होने के कारण लोगों ने उन्हें दो नज़रों से देखना आरंभ किया- बहू और भावी पत्नी के रूप में। आसुम की माँ के पास न जाने कितने रिश्ते आते रहे। परंतु वह बिना किसी लाग लपेट के सभी रिश्तों को ठुकराती गयी। आसुम की पढ़ाई की रास्ते में बाधक न बनने के फैसले पर वह अटल रही। आसुम भी माँ की हर उम्मीदों पर खरी उतरती हुई अपने लक्ष्य की ओर लक्ष्य भेदी तीर बन आगे बढ़ती गई। पढ़ाई-लिखाई और अन्य ज़रूरी कामों के अतिरिक्त उन्होंने अपना वक्त कभी ज़ाया नहीं किया। इसी अनुशासन, लगन और परिश्रम का ही फल था कि वह दसवीं कक्षा की परीक्षा में डिस्ट्रिक्ट टॉपर बनी। अब आगे की पढ़ाई के लिए उन्हें डिस्ट्रिक्ट से बाहर जाना था।

तोजुम को लगा एक बार आसुम डिस्ट्रिक्ट से बाहर चली गयी तो उसके भी हाथ से निकल जायेगी। अपनी बड़ी बहन से फटकार सुनने के बाद भी तोजुम आसुम को पाने की ज़िद पाल रखा था। वह स्वयं तो दोबारा नहीं गये, परंतु मध्यस्थ के रूप में न जाने कितने लोगों को आसुम की माँ के पास भेजता रहा। जब सभी अपने-अपने प्रयासों में विफल हुए तो उन्होंने अंतिम अस्त्र के रूप में जामरुक को भेजा। जामरुक आसुम के सभी मामाओं में सबसे घनिष्ठ था। आसुम की माँ भी उन्हें अपने सगे भाई के समान मानती थी। जामरुक का कहा आसुम की माँ कभी नहीं टालेगी, यह तोजुम को अच्छी तरह पता था।

नियमित रूप से जामरुक उस दिन भी आसुम के घर आया। पर इस बार उसका आना वैसे आना नहीं था। अब की बार वह दूत बनकर आया था, तोजुम का। आसुम के डिस्ट्रिक्ट टॉपर बनने की खुशी में उन्होंने रसगुल्ले के डिब्बे के साथ आसुम की माँ को बधाई देते हुए कहा-

"दीदी! आपने अपने बच्चों को क्या खाकर पैदा किया है? सब एक से बढ़कर एक है। मजाल किसी की, जो किसी एक में भी कोई ऐब निकाल सकें? लगता है स्वयं दोञ्यी-पोलो ने आपके दामन इन गुणी संतानों

से भरे हैं। आसुम का तो कहना ही क्या? समस्त तागिन समाज में उनकी जैसी प्रतिभाशाली लड़की आज की तारीख में कहीं नहीं है। मैं तो यकीन के साथ कहता हूँ कि बिटिया आसुम बहुत जल्द बड़ा मुकाम हासिल करेगी।"

आसुम की माँ बहुत संयमित महिला थी। वह बेटी की ऐसी प्रशंसा सुनने की आदी हो चुकी थी इसलिए कभी इतराती नहीं थी। समाज में ऐसी महिलाओं की कमी नहीं थी जो अपने बच्चों की छोटी-छोटी खूबियों को भी इस तरह बढ़ा-चढ़ाकर बताती हैं जैसे पूरी दुनिया में उनके जैसे और कोई है ही नहीं। आसुम की मां उन चंचल स्त्रियों में अपवाद थी। जामरुक के जुबानी अपनी बेटी के प्रति इतने सारे प्रशंसा भरे शब्दों को सुनने के बाद भी उन्होंने केवल इतना ही कहा-

"दोञ्यी-पोलो की कृपा से मुझे अच्छे संतान तो मिले हैं, पर हम ठहरे गरीब। गरीबों के अच्छे दिन ज्यादा नहीं टिकते। आसुम भी बहुत पढ़ना चाहती है, कुछ बनना चाहती है। परंतु बिन पैसों के वह कहाँ तक पढ़ पायेगी?"

धीमी मुस्कान के साथ जामरुक ने विनोदी स्वर में कहा, "क्या बात कर रही हो दीदी? तागिन समाज में कोई है ऐसा जो आपको नहीं जानता? सब जानते हैं कि आसुम जब बहुत छोटी थी तभी उनके सर से पिता का साया हट गया। फिर भी आपने अपनी विलक्षण जीजिविषा से अपने सभी बच्चों को बड़ा किया, उन्हें पिता की कमी कभी महसूस नहीं होने दी। हमारे समाज में न जाने ऐसी कितनी महिलाएं हैं जो सुहाग का सुख भोगकर भी परिवार चलाने में बिल्कुल कच्ची हैं। आप तो उन विधवाओं में भी अपवाद हैं जो पति के मरणोपरांत लाचारी की जिंदगी जीते हैं, किसी और के रहम-ओ-करम के मोहताज हो जाती हैं। आप तो इतनी सक्षम हैं कि आसुम तो क्या, बाकी सभी बच्चों को भी जितना चाहे उतना पढ़वाकर ही छोड़ेंगी।"

आसुम की माँ अच्छी तरह जानती थी कि जामरुक परिहास कर रहा है, हालांकि उसमें सच्चाई भी थी। उन्होंने भी परिहास में उत्तर दिया-

"तागिन समाज क्या कहता है, क्या सोचता है, इसका तो मुझे पता नहीं। पर ऐसा तुम जरूर सोचते हो। यह तुम्हारा बड़ी बहन के प्रति प्रेम है।" जामरुक के कुछ कहने से पहले उन्होंने बात आगे बढ़ाई- " लेकिन बेटियों का क्या? वे सब तो एक-एक करके 'ञ्येबु' चली जायेंगी। इन्हें कब तक मैं घर पर रखकर पढ़ाती रहूँगी? नियति पर कब तक मेरी ज़ोर चलेगी?"

जामरुक को जिस मौके की तलाश थी मूल मुद्दे पर आने की, उस मौके की खिड़की और दरवाजे आसुम की माँ ने स्वयं खोल दिए। जामरुक ने फिर उस मौके को हाथ से बिल्कुल नहीं जाने दिया। आसुम की माँ ने 'ञ्येबु' यानी ससुराल की बात छेड़ी, जामरुक ने उसी को आगे बढ़ाते हुए कहा-

"यह तो स्वयं दोञ्यी पोलो की बनाई रीत है। बेटियों का किसी दिन ञ्येबु जाना तो तय है। यह मृत्यु के समान ही सत्य और अटल है।"

"मुझे तो बस यही चिंता सताती रहती है कि इन अभागिन लड़कियों को किस तरह के पति मिलेंगे और इनके ससुराल भी कैसे होंगे?"

"मुझे तो पूरा यकीन है कि मेरी भांजियों को अच्छा पति और अच्छे ससुराल ही मिलेंगे।"

"अच्छा? तुम इतने यकीन के साथ कैसे कह सकते हो?"

"दीदी! दोञ्यी-पोलो सब देखता है। उसी की दया और आशीर्वाद से तो आपके सारे बच्चे इतने संस्कारी और गुणी हैं। आगे भी दोञ्यी-पोलो की दया दृष्टि इन बच्चों पर बनी रहेगी। देख लेना दीदी, मेरी बातें कैसे सच साबित होती है, देख लेना।" जामरुक ने यह बात इतनी दावे के साथ कही मानो उसने कोई भविष्य वाणी की हो।

"कल का क्या ठिकाना, किसके नसीब में क्या लिखा है। यह तो दोञ्यी पोलो ही जानता है।" आसुम की माँ ने यह वाक्य यूँ ही कहने को कह दिया। मगर जामरुक ने उसे गंभीरता से लेते हुए कहा-

"हा दीदी! हंसी मज़ाक की बात कुछ और है। मगर सच कहो तो बेटियों के नसीब में कैसा आदमी लिखा है, कोई नहीं जान सकता। मगर समय रहते यदि हम उनका सही मार्गदर्शन करें तो किसी भी वैवाहिक अनहोनी से उन्हें बचाया जा सकता है। लड़कपन में वह कहीं अंध प्रेम के भंवर में न फंस जाएं, बस इतना ही ख्याल रखा जाए तो आगे बस निश्चिंत रहने का।" एक लंबी आह भरते हुए जामरुक असली मुद्दे पर आया-

"वैसे दीदी, आपने आसुम के बारे में क्या सोचा है?"

"आसुम के बारे में?" यूँ अचानक आसुम को बीच लाये जाने पर आसुम की माँ जैसे बदहवासी से बाहर आयी, झटके से!

"आसुम के बारे में.....सोचना!...क्या सोचना?"

"देखो दीदी। कुछ दिनों बाद आसुम ईटानगर जाने वाली है। आगे की पढ़ाई वह आपसे दूर रहकर करने वाली है। वह हॉस्टल में रहेगी। उनके कई नए दोस्त बनेंगे। लड़कियां.... और लड़के भी। आपके छत्र-छाया से दूर। आपको तो पता ही है कि अरुणाचल प्रदेश की राजधानी होने की हैसियत से ईटानगर बहुत बड़ा शहर है। डापोरिजो से कई गुना बड़ा। बड़े शहर में पलने वाले लोगों की बात ही निराली होती है। आप अंदाजा ही नहीं लगा सकते कि कौन किस किस्म के आदमी हैं। इसमें कोई दो राय नहीं कि आसुम बहुत प्रतिभाशाली लड़की है, मगर शहरी दांव पेंच में अभी वह बहुत कच्ची है। पता नहीं कब, कौन उसको अपनी जाल में....."

"रुको...जरा रुको जामरुक! तुम क्या कहने की कोशिश कर रहे हो? मुझे कुछ समझ नहीं आ रहा। सीधा-सीधा बोलो ना।" बीच में ही जामरुक को टोकते हुए संशय भरे शब्दों में आसुम की माँ ने कहा।

अब की बार जामरुक ने सपाट और सरल शब्दों में अपनी बातों को जारी रखा-

"अब आपसे क्या छिपाना दीदी। मैं आज आपके पास तोजुम के लिए आसुम का हाथ मांगने आया हूँ। आपने तो इनकार से भरे शब्द बाण से उसके हृदय को छलनी कर दिया। मगर आसुम के प्रति प्रेम और उसे पाने की इच्छा तोजुम के मन मस्तिष्क में अभी भी बेशुमार है। वह तो बेचारा दीवाना बन बैठा है। मगर आप से दोबारा नज़रें मिलाने की गुस्ताखी करने से डरता भी है। इसलिए उनकी तरफ से मैं यह प्रस्ताव लेकर आया हूँ।" कहते-कहते जामरुक के दोनों हाथ अनुरोध की मुद्रा में कब जुड़ गये स्वयं उन्हें भी खबर न रही।

एकाएक आसुम की माँ को लगने लगा कि सारी दुनिया उनकी मासूम बेटी के पीछे पड़ी है। वह तो उसे खुले आसमान में उड़ने को छोड़ना चाहती थी, लेकिन यह दुनिया उसे जमीन पर ला पटकने के लिए तुली हुई है। उसके करीबी रिश्तेदार इस होड़ में सबसे आगे। पहले तोजुम और अब तोजुम के लिए जामरुक। परायों से तो वह लड़ लेती, उन्हें दुत्कार देती या मन नहीं किया तो सीधा अनसुना और अनदेखा कर लेती। परंतु

अपनों से कब तक और कहाँ तक भागा जा सकता है? जामरुक को हाथ जोड़ते देख आसुम की माँ का दिल पसीज गया। उनके दोनों हाथ थामते हुए आसुम की माँ ने कहा-

"ये तुम क्या कर रहे हो? मुझे कैसी परिस्थिति में उलझा रहे हो? मैंने तोजुम को साफ कह दिया था कि मैं आसुम पर किसी भी प्रकार का दवाब नहीं डालूंगी। अभी हम दोनों के लिए उसकी पढ़ाई से बढ़कर कुछ भी नहीं।"

"दीदी, आपने कैसे सोच लिया कि आसुम को पढ़ने से रोका जायेगा? आसुम जहाँ चाहे जितना चाहे, वह पढ़ती रहेगी। हम आपको आश्वासन देते हैं कि शादी के बाद भी आसुम अपनी इच्छानुसार पढ़ाई जारी रखेगी।" आसुम की माँ को कुछ न सूझा। वह यूँ मौन रहकर शून्य की ओर ताकती रही। जामरुक ने फिर विवाह का समाजशास्त्रीय पाठ पढ़ाकर उस नीरवता को तोड़ा-

''मसला यह है दीदी, आसुम अब बच्ची भी नहीं रही कि वह विवाह न कर सके। बेटियों को एक दिन घर से विदा होना ही है। आसुम भी सदा बेटी बनकर नहीं रहेगी। रही बात तोजुम की... वह रिश्ते में आसुम का मामा तो लगता ही है। आप तो हमसे बेहतर जानती हैं कि तागिन समाज में मामा-भांजी या मौसी-भांजे के वैवाहिक संबंध को सबसे पवित्र और शुभ माना जाता है। यदि तोजुम और आसुम एक हो जाते हैं तो दोनों परिवारों का संबंध और भी घनिष्ठ और मजबूत हो जायेगा। आपको भाई के साथ दामाद और हमें भांजी के साथ बहू मिल जायेगी। इस तरह आसुम की शादी भी हो जायेगी और वह आपके निकट भी रहेगी। तोजुम सिर्फ दामाद ही नहीं बल्कि भाई के रूप में आपके हर सुख-दु:ख में साथ रहेगा। सिर्फ तोजुम ही क्यों, उनके सभी सगे संबंधी भी जरूरत के समय, हमेशा आपके आस पास ही रहेंगे। विवाह का इससे सुन्दर लाभ और क्या हो सकता है। इसलिए हमारी नज़र में तोजुम आप और आसुम के लिए सबसे सही जान पड़ता है। और यदि आप नहीं चाहती कि अभी आसुम की शादी हो, तो कम से कम सगाई तो कर ही सकते हो। इससे ज़्यादा मेरे पास और शब्द नहीं है कहने को। आगे आप की मर्ज़ी।"

अपने मकसद और बातें पूरी करके जामरुक ने प्रस्थान किया। पीछे रह गई आसुम की माँ। मूर्तिवत! वह खामोश जरूर थी मगर दिल की जमीन और आसमान में आंधी-तूफान उमड़ता घुमड़ता रहा। जामरुक ने उसके मर्म की सबसे नाजुक स्थल पर उस तूफान का बीज बोया था।

उस रात पल भर के लिए आसुम की माँ पलकें मूंद नहीं पायी। अमावसी रात थी। अंधकार अपने प्रचंडतम रूप में संसार को आगोश में ले लिया था। समस्त डापोरिजो नगर उस स्याह रात में पूरी तरह तल्लीन सो रहा था। केवल झींगूरों का शोर कभी-कभी उस सुषुप्त रात की नीरवता पर खलल डाल रहा था। पर आसुम की माँ की आँखें न जाने उस घनघोर अंधेरों में एकटक क्या देखी जा रही थी। नींद की मजाल जो उसके इर्द गिर्द भी भटकने आ जाए। उस भयानक अँधेरे में आसुम की भोली सूरत, तोजुम की आँखों में चाहत और तड़प और कर्तव्य के लिए प्रतिबद्ध जामरुक की काया उनकी आँखों के सामने तैरती रही। वह रात भर जामरुक की कही बातों का विश्लेषण करती रही पर किसी निश्चित निष्कर्ष के बिना उनका विश्लेषण दिशाहीन भटकता रहा। इस विश्लेषण में उसका दिल दो हिस्सों में बंट गया। एक दिल सोचता, 'जामरुक ने जो भी कहा वह कतई भी गलत नहीं है। लेकिन मैं आसुम को किस मुँह से शादी या सगाई के लिए कहूंगी? वह तो बेचारी इतनी सुशील और आज्ञाकारी है कि अपने दिल पर पत्थर और ज़ुबान पर ताला रख लेगी। किसी भी सूरत में मुझे न नहीं

करेगी। तो क्या मैं अपनी फूल सी बच्ची को अभी से विवाह नामक सामाजिक और पारिवारिक बेड़ियों में जकड़ लूँ? उनकी मर्जी जाने बगैर ही इस रिश्ते के लिए हाँ कह दूँ? नहीं... नहीं! मैं इतनी निर्दयी नहीं बन सकती। मैं उसके मनोरम सपनों का कातिल नहीं बन सकती। कभी नहीं बन सकती।'

दिल के दूसरे हिस्से से उन्होंने सोचा, 'बेटी है, कब तक बच्ची बनी रहेगी? मैं लाख चाहकर भी सदा के लिए उसे अपने दामन से लगाकर नहीं रख सकती। किसी निश्चित दिन उसको पराया धन होना ही है, तो बेहतर यही न है कि उसे अपनों के साथ ही रखा जाए। मुझसे विदा होकर भी वह मेरे पास ही रहेगी। तोजुम के साथ रहेगी तो अन्य मामा-मामियों का स्नेह और आशीर्वाद भी मिलता रहेगा। और जामरुक तो साफ कहकर गया है कि उसकी पढ़ाई में बिल्कुल भी अड़चने नहीं आएंगी। उसके सपनों को रंग और आकार देने में तोजुम सहयोगी बनेगा। ऐसे रिश्ते कहाँ आया करते हैं?'

उसी कशमकश में आसुम की माँ ने रात भर कितनी करवटें बदली, उसका हिसाब सिर्फ गीली तकिया और चादर की सिलवटें ही दे सकती थी। अंतत: उसका दूसरा दिल पहले पर भारी पड़ गया-

"आसुम मान जायेगी।"

"आसुम को मानना पड़ेगा।"

[3]

समय चलता है, चलता रहेगा। समय कटु है, समय ही मृदु भी। समय चोट है तो समय ही मरहम भी। समय ही सर्वाधिक बलवान और सबसे बड़ी कमज़ोरी भी वही। मृत्यु की तरह समय ही अंतिम सत्य है। चाहे न चाहे समय के साथ चलने को मनुष्य बाध्य है। मिस से मिसेज बनने के बाद आसुम ने सात बरस का सफर तय कर लिया। इन सात बरसों में आसुम ने अपने जीवन की सबसे कठिनतम साधना की। समय की धारा कितनी भी प्रतिकूल क्यों न हो, उन्होंने अपनी साधना भंग नहीं होने दी। बदले में समय ने उन्हें अपार सफलता से नवाज़ा। आसुम ने ऑल इण्डिया इंस्टीट्यूट ऑफ़ मेडिकल साइंस, दिल्ली से एम.बी.बी.एस की पढ़ाई पूरी करके डॉक्टर की उपाधि हासिल कर ली थी। उसकी पहली पोस्टिंग भी जिला अस्पताल डापोरिजो में हुई। यानी कि अब वह अफसर बन चुकी थी। सरकारी शासन प्रणाली की शब्दावली में 'फर्स्ट क्लास गजेटड ऑफिसर'। जिस सपने को आँखों में सजाए आसुम ने सालों की नींदे और चैन स्वाहा कर दिया था, वह कामयाबी के शिखर पर जाकर साकार हुआ। समस्त तागिन समाज की नजरें आसुम पर टिकी थी, आसुम ने उन नज़रों की कसौटी भी बखूबी पार किया। कुछ जल बुनकर राख हो गए, उसकी अलग दास्तान है।

अब आसुम ऑफिसर के साथ-साथ पत्नी भी थी- ऑफिसर पत्नी। यानी उनके व्यक्तित्व के दो नये आयाम, दो नई पहचान और दो नई ज़िम्मेदारियाँ। जिम्मेदारियों के साथ आसुम का नाता सदियों से था। बचपन से ही वह अपनी ज़िम्मेदारियों को अच्छी तरह निभाती आई है। उसके ससुराल वालों को उन पर बड़ा नाज था कि उनके घर एक ऑफिसर बहू आई है। आसुम के मुख मण्डल पर एक मधुर मुस्कान खिलखिलाती रहती। किसी को वह डाँटती भी तो लगता कि वह पुचकार रही हो इसलिए मरीजों में डॉ. आसुम सबसे चहेती है। तोजुम के सभी सगे-संबंधियों एवं रिश्तेदारों के दिलों में भी आसुम ने बहुत खास जगह बनाई। आसुम और तोजुम के एक होने से दोनों परिवारों के सारे लोग खुश थे, सिवाय तोजुम की माँ की। उनकी माँ को इस बात

का मलाल था कि शादी के वक्त आसुम अपने साथ बहुत 'तासी-लाक्तअ' लेकर नहीं आई। बहू के रूप में एक नामचीन स्त्री के घर आने की खुशी में, जब लोगों ने उन्हें बधाई दी तो उन्होंने नाक-मुंह सिकोड़ते हुए कहा था-

" पढ़ी लिखी हुई तो क्या हुआ? आई तो खाली हाथ ही है न। इससे अच्छा तो वो यापर है। यदि वो मेरी बहू बनती तो न जाने अपने साथ क्या नहीं लेकर आती।" गाँव की कुछ फूहड़ महिलाएँ उनकी हाँ में हाँ मिलाई, पर एक वर्ग ऐसा भी था, जो उनके इस मंद बुद्धि पर अफसोस जताते हुए हंसी भी उड़ाया। घर आई बहू का कोई इस तरह तिरस्कार करता है क्या? बहू भी ऐसी जिनका समस्त तागिन समाज कायल है। ऐसी बातें छोटे समाज में बहुत देर तक छुपी नहीं रहती। उड़ते-उड़ते आसुम के कानों तक यह कड़वा सच पहुंच ही गया, परंतु आसुम ने इस बात का कभी बुरा नहीं माना। उनकी सास का सारा जीवन ही ऐसे परिवेश में बीता है। उनके लिए जीवन की सार्थकता इन्हीं पारिवारिक दांव-पेंच में शातिर होने में है, जिन्होंने अपने जीवन काल में अक्षर का 'अ' तक भी न पढ़ा हो, उसके लिए जीवन और जगत के प्रति कैसा दृष्टिकोण होगा? यह आसुम अच्छी तरह जानती थी। लिहाजा आसुम के मन में अपने सास के प्रति कभी कोई खलिश न रही। आसुम ने कभी किसी से शिकायत करना जाना ही नहीं। बाल्यकाल से ही जो है, जितना है उतने में संतुष्ट रहने को वह अभ्यस्त थी। इस बुनियादी जीवन दर्शन के नींव पर आसुम का कोमल कांत व्यक्तित्व निर्मित हुआ कि उन्होंने प्रतिरोध करना कभी सीखा ही नहीं। अपनी एम.बी.बी.एस. की डिग्री हासिल करने के बाद उन्होंने एक दफा तोजुम से कहा था कि वह आगे और पढ़ना चाहती है। वह केवल सामान्य मेडिकल ऑफिसर तक सीमित न रहकर 'स्पेश्लिष्ट डॉक्टर' बनना चाहती है। तोजुम ने साफ मना करते हुए कहा-

"बहुत हो गई पढ़ाई। तुमने एम.बी.बी.एस. की डिग्री हासिल कर ली। वही काफी है और वैसे भी अब हमें परिवार बढ़ाने के लिए सोचना चाहिए।"

"सिर्फ़ दो साल की ही तो बात है। दो साल तो ऐसे ही बीत जायेंगे। विगत सात साल भी कैसे बीता कुछ पता चला क्या?" उसने लगभग फरियाद की लहजे में कहा। पर तोजुम हर्गिज मानने को तैयार न था। अपनी कही हुई बातों को दोहराते हुए उसने कहा – "बोला ना कि अब हमें परिवार बढ़ाने के बारे में सोचना चाहिए। पिछले सात बरस तुम्हारा कैसे बीता मुझे नहीं पता, पर मेरे लिए एक-एक साल एक युग जैसा लगता था। मैंने बहुत इंतज़ार कर लिया, अब और नहीं। मेरे सभी मित्रगण अब दो-दो, तीन-तीन बच्चों के माँ-बाप बन गए हैं। मेरे लिए अब बच्चे टॉप प्राइयोरिटी हैं। यह तुम्हें भी समझ लेना चाहिए। हम शादी क्यों करते हैं? बच्चे के लिए ही ना? बाद में भी बच्चे करने ही है तो जल्दी कर लेने में क्या हर्ज़? ऊपर से बिरादरी के लोग। शैतानों ने जीना हराम कर रखा है। हमारे बच्चे के लिए हमसे ज़्यादा वे लोग बेताब हैं।"

आसुम और कुछ न बोली। तोजुम ने अपनी कहकर करवट बदल ली। आसुम ने भी विपरीत दिशा करवट बदल कर चुप्पी साध ली। दोनों की खामोशी रात के सन्नाटे को और सघन कर रही थी। जीवन में पहली मर्तबा आसुम ने किसी बाहरी बंधन का दवाब महसूस किया। बंधन- आगे पढ़ने की इच्छा पर। बंधन- बच्चे करने की अनिच्छा पर। दोनों के बीच सिर्फ़ चंद इंच का फासला था पर न जाने आसुम को ऐसा क्यों लग रहा था कि तोजुम उनसे मीलों दूर है?

मिस से 'मिसेज' की उपाधि प्राप्त करने के बाद आसुम सामाजिक और पारिवारिक उलझनों में यूँ उलझती गयी कि उसका पर्सनल स्पेश छोटा होता गया। कुछ समय के बाद वह भी उसके जीवन से लुप्त हो

गया। समय के साथ वह भूलती चली गयी कि उनका अपना भी कोई अरमान है जिसे पूरा करना है। जीवन का मार्ग सपाट हो, आड़े तिरछे हों, फूल खिले हो या काँटे बिछे हों: आसुम बढ़ती गयी, ढलती गयी। अरुणाचल की जनजातीय समाज में महिलाएँ कितनी भी पढ़ी लिखी क्यों न हो, कितने भी ऊंचे पद पर क्यों न बैठी हो यदि वह पारिवारिक सरोकार में शून्य हैं तो वह बहुत अधिक सम्मान का हकदार नहीं होती। समाज महिलाओं के व्यक्तित्व और चरित्र का आकलन इसी आधार पर करता है। विवाह नामक इस संस्था में महिलाएँ किसी भी कार्य क्षेत्र या पद विशेष पर क्यों न हों, उसकी स्थिति एक सामान्य स्त्री से कुछ नहीं होती। वह अपने पद और ओहदे का रोब नहीं जमा सकती। यही सभी रिश्तेदारों के अपेक्षाओं का मूल आधार है। यही स्त्रियों के महत्ता की कसौटी है और चुनौती भी। पति से लेकर सांस, ससुर, देवर, ननद.....सभी उसमें उसी एक अपेक्षित रूप को देखने की इच्छा रखते हैं। यही रिश्तों के धागे आसुम के जीवन में मकड़ जाल बुनते गए जिससे वह कभी आज़ाद नहीं हो पाई।

आसुम ने पति की प्राईयोरिटी को प्राथमिकता देते हुए उनके कुल के दीपक जलाना आरंभ किया। कभी दो तो कभी तीन बरस का फासला रखते हुए वह पंद्रह बरस में पांच बच्चों की माँ बन गई। पहले तीन बेटियाँ फिर बाकी के दो लड़के हुए। फिर गाईनॉकोलोगिस्ट ने मेडिकल जाँच से पता लगाकर कहा कि आसुम और माँ नहीं बन सकती। तोजुम और उसके माँ के तो होश ही उड़ गये। इस खबर से सबसे ज़्यादा तकलीफ तोजुम की माँ को हुई। अपनी लाल-पीली शक्ल के साथ उन्होंने बेटे पर गाज गिराते हुए कहा -

"मैं कहती थी न, इस औरत में कुछ तो ऐब है। हमारे ज़माने में दस-बारह बच्चे पैदा करने के बाद भी माएँ चुस्त दुरुस्त रहती थी। हमने कभी किसी अस्पताल या डॉक्टर के सहारे बच्चे को धरती में नहीं लाया? आजकल की पढ़ी लिखी लड़कियाँ इतनी ढीली ढाली हैं कि उनमें बच्चे जनने की हिम्मत ही नहीं। अब तुम ही बताओ तोजुम, तुम्हारे केवल दो बेटे होंगे? हमारे समाज में किसी भी परिवार का मान-सम्मान बेटों की संख्या से निर्धारित होता है। सिर्फ मान-सम्मान ही क्यों, लोग ऐसे परिवारों पर आँख उठाने से भी डरते हैं। तुम्हारे बुढ़ापे के सहारे के लिए केवल दो लाठियाँ? दोञ्यी-पोलो न करें, कल को यदि एक लाठी टूट...।"
"आने..!" तोजुम ने चिल्लाते हुए माँ को टोका।

"कैसी बातें करती है आप? डॉक्टर ने कहा कि वह और माँ नहीं बन सकती तो मैं क्या करूँ? अब दोञ्यी पोलो ने मेरे नसीब में दो ही बेटे लिखा है तो दो ही सही।" तोजुम को बहू की तरफ़दार करते देख वह अंदर ही अंदर चटपटाने लगी।

पाँच बच्चों की माँ बनने के बाद आसुम का स्त्रीत्व के सबसे पवित्र मगर सबसे व्यस्ततम आयाम से साक्षात्कार हुआ। अपने बचे-खुचे खाली समय, जिसमें वह थोड़ी बहुत किताबें पढ़ सकती थी, वह भी बच्चों के पालन-पोषण में खपा दिया। उन्हें याद ही नहीं कि पिछले पंद्रह सालों में आखिरी बार मेडिकल साईंस और दवाईयों की कोई अपडेटेड पुस्तक कब पढ़ी थी। जो आसुम किताबों की दुनिया की शहज़ादी थी, अब उन्हें फुर्सत ही नहीं एक भी अक्षर पढ़ने का। सुबह आँखे खुलने से लेकर रात को पलक मूंदने तक वह जितने कामों में लगी रहती उसका कोई हिसाब नहीं, कोई नाप नहीं। वह गृहस्थी जीवन में इतनी मग्न हो गई कि बाहरी दुनिया का ज्ञान उसके जेहन में सीमित होता गया। दिल्ली के ऑल इण्डिया इंस्टीट्यूट ऑफ़ मेडिकल साईंस से डॉक्टर की डिग्री हासिल करने वाली आसुम अब केवल 'पत्नी' बनकर रह गई थी। ऑफिसर ज़रूर थी, पर

परिवार में किसी को क्या पड़ी है उसके सरकारी पद से। वे तो इसी बात से खुश है कि उन्होंने तोजुम को पाँच संतानों का पिता बनाया, उनके बच्चों के देख-रेख की सारी ज़िम्मेदारी अपने कंधों पर ले रखी है, घर आए मेहमानों के लिए खान-पान का बहुत अच्छा ध्यान रखती है, चौका-बासन करती है, झाड़ू-पोछा लगाती है, बच्चों और पति के कपड़े धोती हैं, बाज़ार से राशन भी खुद लाती है। तोजुम के सभी रिश्तेदार आसुम के इसी मल्टी टास्किंग के प्रशंसक थे। इतना कुछ करते हुए आसुम किस तरह अपने पेशे को निभाने के जद्दोजहद में लगी हुई है, किसको खबर? पर एक स्त्री अवश्य थी, जो बहुत सूक्ष्मता के साथ आसुम की इस कायापलट ज़िदगी का निरीक्षण करती है, एकांत में आँसू बहाती है और कुछ न कर पाने की विवशता में तड़पती रहती है। वो थी आसुम की माँ! पश्चाताप की आग सीने में दबाकर जब भी वह आसुम से मिलने जाती, उनसे नज़रें नहीं मिला पाती। उन्हें ऐसा जान पड़ता मानो आसुम की आँखें चीख-चीख कर अपने विकट जीवन की जिम्मेदार उन्हें ठहरा रही हो। मानो वह मौन क्रंदन करते हुए कह रही हो-

"देखा माँ! तुम कहती थी न कि अपने से विवाह करके मैं अपनों के साथ और तुम्हारे समीप ही रहूँगी। अब देखो। मैं किन अपनों के साथ हूँ और तुम्हारे कितने समीप हूँ? तुमने मुझे रिश्तों का जो लेखा-जोखा समझाया था, उसका नग्न रूप आज तुम्हारे सामने है। मुझे बचपन से समझाया गया था कि बड़ों की बातें कभी नहीं टालनी चाहिए। अनुभव से समझाई गई बातें कभी गलत साबित नहीं होती। पर आज देखो, तुम्हारी बातें मानकर मैं जीवन के किस उहापोह में फंसी हूँ। तुम्हारे तथाकथित अपने लोग आज मेरे गले का काँटा हैं जो उगलते नहीं बनते न निगलते। फिर मैं कैसे मान लूँ कि अनुभवों से कही गई बातें मील का पत्थर हैं? शादी ब्याह के विषय में तो कतई भी नहीं। मैंने तो देखा है, अपनों के साथ रिश्तों की डोरी में बंधकर न जाने कितनी मासूम लड़कियाँ हर दिन मर-मर कर जीती हैं। आप बड़े लोग अपने संबंधों को और घनिष्ठ और मजबूत बनाने के चक्कर में आगामी पीढ़ी के जीवन के साथ कैसा खेल खेल जाते हैं, आप लोगों को अंदाजा भी नहीं। अपनी बेबुनियाद तर्क को परंपरा और रिवाज़ का नाम देकर हमारे भरोसे और उम्मीदों के साथ बस खिलवाड़ ही करते आए हो। मैंने भी भरोसे और उम्मीदों की दुनिया बसाई थी। पर देखो....मैं उस दुनिया के किस किनारे अटकी हूँ? "

आसुम की माँ तरसती आँखों के साथ अपनी बेटी से मिलने तो जाती है, पर लौटती है आहत ह्रदय और अश्रुपूरित आँखों के साथ। माँ और बेटी जब भी मिलती अपनी-अपनी व्यथा आँखों के ज़बान से बयाँ करके, दिलों के कान से सुनकर विदा होती।

आसुम का पाणिग्रहण करने के कुछ बरस बाद ही तोजुम में बहुत परिवर्तन आ गया था। ऐसा परिवर्तन जिसे किसी भी सुखद दम्पत्य जीवन के लिए अच्छा नहीं कहा जा सकता। उस परिवर्तन का कोई ठोस या सामान्य कारण की जानकारी न आसुम के पास थी न किसी और के पास। शायद स्वयं तोजुम के पास भी नहीं। वास्तव में कोई कारण भी था क्या? शायद तोजुम भी उसी तथाकथित पुरुषवादी व्यवस्था का एक प्रोडक्ट है, जिनके सोच के हिसाब से पत्नियाँ केवल पति और घर संभालने के लिए बनी हैं। आसुम जब एक सामान्य स्त्री थी, जब तोजुम के लिए प्राप्य नहीं था, तब उन्हें पाने की आग तोजुम के सीने में धधकती रहती थी। जब वही स्त्री पत्नी में तब्दील हुई, उसके सीने की आग भी बुझती गयी। वो पागलपन, वो दीवानापन अब एक शुष्क उदासीनता में परिणत हो गया। आसुम के पास पति के इस शुष्कता का प्रति उत्तर देने के लिए न ऊर्जा बचती

थी, न अवकाश होता था। जीवन के इस शुष्कता में रस का एक मात्र आधार उनके पाँच बच्चे थे। उन्हें सकुशल बढ़ते हुए देख वह सारे दर्द और गम को यूँ मुस्कुराकर पी जाती। बच्चे बड़े हुए तो उनकी पढ़ाई की चिंता माँ-बाप को सताने लगी। डापोरिजो में स्कूलों की हालात को देखते हुए दोनों ने मिलकर तय किया कि ईटानगर शिफ्ट कर लेना चाहिए। सो ईटानगर जाने के दिन भी आ गये। तोजुम का समाज में ऊँचे लोगों के साथ उठना बैठना था। ईटानगर जाने से एक शाम पहले उनके मित्र मण्डल एवं सगे संबंधी का हुजूम उनके घर एकत्रित हुआ। ईटानगर शिफ्ट होने से पहले सबको दावत पर बुलाया गया था। आसुम की माँ सबके आने से पहले आई। वह देख रही थी कि आसुम किस तरह बेतहाशा काम किये जा रही थी। स्थानीय चूल्हे के अलाव में कई मुर्गियों को जलाते हुए आसुम पसीने से पूरी तरह लथपथ हो चुकी थी। उनका हाथ बटा रही एक महिला रिश्तेदार ने उसकी चुटकी लेते हुए कहा-

"क्या भाभी आप भी न! एक डॉक्टर होकर यह सब काम कैसे कर लेती हो? आप तो बिल्कुल 'बोस्ती औरत' (ग्रामीण महीला) जैसे हाथ चलाती हो। यह मुर्गी जलाना आखिर कहाँ से सीखा?" कहकर वह बत्तीसी दिखाकर हँसने लगी। चूल्हें को घेरकर बैठी अन्य महिलाएँ भी उस ठहाके में शामिल हुई। आसुम की माँ भी पहले हँसी में शामिल हुई फिर ज़रा सी गंभीर मुख भंगिमा के साथ कहा –

"वही तो। मैंनें तो सोचा था कि मेरी बेटी ऑफिसर बनने के बाद घर की रानी बनेगी। लेकिन यह तो नौकरानी बनी बैठी है। कौन ऑफिसर अपने घर में इस तरह काम करती है। यह तो अपने पति की चड्ढी तक धोती है। जब भी घर आऊँ तो देखती हूँ बस काम ही कर रही होती है। इनकी हथेलियों को देखो, एड़ियों को देखो। कहीं से भी लगता है कि यह ऑफिसर है? जिनकी औकात इनके पैर के धूल की बराबर भी नहीं है, जो सिर्फ पति के उगाये पैसों के वृक्ष के छाँव तले आराम फरमाती रहती हैं, ऐसी महिलाएँ भी अपने घरों में मेमसाहब बन फलती फूलती रहती हैं। और एक यह है कि बस सब कुछ होकर भी निर्धन बनती फिरती है। मानो ज़रा आराम कर लो तो मर जायेगी।"

बेटी को इस तरह ताना देते सुन सारी महिलाएँ अपनी हँसी छूटने से नहीं रोक पाई। आसुम भी सभी की बातों पर हामी भरते हुए हँसती ही रही। हँसते हुए उत्तर में वह इतना ही कहती-

"घर का काम है, खुद नहीं करेंगे तो कौन करेगा?" फिर किसी ने यह कहा, किसी ने वो कहा। सब कुछ न कुछ कहती रही, पर डॉक्टर आसुम तो आसुम है। वह मुस्कुराती हुई चुप्पी ही साधती रही। उनको किसी से कोई शिकायत नहीं। वह ऐसी गंभीर बातों को भी हल्की फुल्की हंसी में उड़ा देती। उस दौरान सारा वक्त तोजुम वहाँ बैठक में मित्रों के साथ ठहाके लगाते हुए खाने-पीने में मशरूफ रहा! सुबह आसुम को भी ईटानगर के लिए निकलना है पर वह देर रात तक काम करती रही। घर आए सभी मेहमानों एवं सगे संबंधियों को खिलाया-पिलाया, उनके जूठे बर्तनों को धोया, बचे कुचे सामानों को पैक किया तब जाकर वह बिस्तर में गई।

आसुम ने जाने ऐसे कितने संजीदे मसलों पर चुप्पी साधकर अपनी इच्छाओं का गला घोंटा है। जब उसकी माँ ने सिसकियाँ लेते हुए तोजुम के साथ शादी के लिए कहा था, उसने चुप्पी साध ली। तोजुम के साथ भावी जीवन से संबंधित उसकी माँ ने जो नफा-नुकसान का विवरण प्रस्तुत किया था, उसे बेतुकी जानकर भी आसुम ने कुछ नहीं कहा। किसी भी स्थिति में आसुम अपने माँ की आँखों में आँसू नहीं देख सकती थी। इसलिए अपने बुद्धि और विवेक के सारे किवाड़ों को बंद करके उन्होंने माँ की बात मान ली। जिस दिन तोजुम

ने आसुम की आगे पढ़ने की इच्छा पर अंकुश लगाया, उस दिन भी आसुम चुप रही। चाहती तो वह भी ज़िद पर अड़ जाती। पर उन्होंने सोचा जिद पकड़ी तो बात और बिगड़ जाएगी। न जाने समाज में कैसी-कैसी बातें बनेंगी। जो लोग मेरे रिश्ते लेकर आया करते थे, मेरी माँ पर तंज कसेंगे, उसका मज़ाक उड़ाया जायेगा। घर की बात घर पर ही रहें, इसी में सबकी भलाई है। बच्चे हो जाने के बाद आसुम की चुप्पी और गहरी होती गई। तोजुम बात-बात पर अपने मित्रों और सगे संबंधियों के सामने उनका अपमान करता, मज़ाक उड़ाता कभी-कभी डाँट-फटकार भी लगाता। पर आसुम चुप रहती। वह कतई नहीं चाहती कि बच्चों को ज़रा भी यह आभास हो कि उनके माता-पिता के बीच कुछ अनबन भी है। वह हमेशा यही सोचती रही कि लोग क्या सोचेंगे। इसी 'क्या सोचेंगे' के पिंजरे में वह लाचारी की हद तक खुद को कैद करती गई।

रात बीती, सुबह हुई। आसुम और उसका परिवार सारे सामान सहित सुबह ही ईटानगर की ओर रवाना हुए। उन्हें विदा करने के लिए सगे संबंधियों का तांता लगा हुआ था। आसुम की माँ भी नम आँखों के साथ बेटी को विदा करने वहाँ मौजूद थी। उनकी शादी तो बरसों पहले हो चुकी थी पर विदाई आज हो रही थी। उन्होंने आसुम की शादी तोजुम के साथ इस भरोसे के साथ कराई थी कि वह शादी के बाद भी उनके आस-पास ही रहेगी। पर आज वह उसी ईटानगर में बसने चली है, कभी जिसके भय से उन्होंने अफरा-तफरी में आसुम की शादी तोजुम से कराई थी। आसुम की गाड़ी आड़ी तिरछी सड़क से होते हुए दोन गाँव की ओर बढ़ने लगी। वहाँ से डापोरिजो नगर भी चारो ओर पहाड़ों से घिरा विवश मगर मनोरम लग रहा था। एक मोड़ आने के बाद डापोरिजो नगर और सुबनसिरी नदी दृष्टि से ओझल हो गया। पर एक जोड़ी बूढ़ी आँखें सफर भर में आसुम के जेहन में तैरती रही।

[4]

"मैडम! मैडम!"

"ह..ह..हाँ.!"

भाजपा के किसी कार्यकर्ता ने आसुम की गाड़ी की शीशा खटखटाते हुए कहा- "मैडम सड़क खुल गई है, अब आप जा सकती हैं।" कहकर वह अन्य को भी आगे बढ़ने के लिए हाथों से इशारा किया।

अतीत के समंदर में आसुम इतनी गहरी उतर गयी थी कि कब उनकी आँख लग गयी उन्हें पता नहीं चला। उसकी निद्रा टूटी। गाड़ियाँ धीरे-धीरे सरकती हुए आगे बढ़ने लगी।

विवाह के पच्चीस बरस के बाद भी उसके व्यक्तिगत जीवन की तरक्की की गाड़ी आगे बढ़ ही नहीं पायी। विवेक विहार के इसी जाम की तरह वह भी कहीं अटक गई थी। अभी गंगा मार्केट और जीरो पॉइंट में भी इसी तरह अटकना है, यह सोचते हुए वह अनमना सा आगे बढ़ती गयी। जैसे-जैसे रामकृष्ण मिशन अस्पताल के पास पहुँची, उसकी आँखें अनायास ही सड़क की बाएँ तरफ़ किनारे पर बने प्राईवेट क्लिनिक के कतारों पर टिक गयी। आसुम जब भी यहाँ से गुज़रती तो उन्हें लगता कि इस प्राईवेट क्लिनिक में कोई जादूई आकर्षण है। वह सोचती कि इन क्लिनिक में सेवारत डॉक्टरगण 'स्पेश्लिस्ट' कहलाकर कितना गर्वित महसूस करते होंगे। फिर वह न चाहते हुए भी अपनी स्थिति की तुलना उनके साथ करने लगती। कहाँ ये स्पेश्लिस्ट डॉक्टर, जिनका अपना नाम है, रुतवा है। मरीज़ों के इलाज के लिए अत्याधुनिक उपकरण से लैस इनके क्लिनिक की बात ही कुछ और है। और कहाँ मैं, ईटानगर से 6 मील दूर स्थित एक छोटे से कस्बे का छोटा सा प्राईमेरी हेल्थ

सेंटर में उलझी हुई। पर वस्तुस्थिति को आत्मसात करना तो वह बचपन से ही सीख चुकी थी इसलिए चंद लमहों के इस मोह पाश से स्वयं को आज़ाद कर वह आगे बढ़ जाती। उन्होंने जीवन में सबसे अच्छा कुछ किया है तो वह है "आगे बढ़ जाना।"

अटक-अटक कर आसुम को आज घर पहुंचते 7 बज गए। पर जैसे ही उन्होंने घर में प्रवेश किया, वे पहले से ही रात्रि भोज का मौज उठा रहे थे। तोजुम सोफे पर बैठकर अपने फोन पर व्यस्त था। व्यस्त क्या था, वह फेसबुक पर स्क्रॉलिंग कर रहा था। वह फॉर्मल ड्रेस में था, शायद कहीं जाना हो। चेहरे पर नाराज़गी साफ-साफ बयाँ हो रही थी। खामोशी की ज़ुबा सब समझ पा रहे थे। स्थिति की गंभीरता को भाँपते हुए दातुम ने चावल का निवाला मुंह में डालते-डालते आसुम से पूछा -

"भाभी, आज तो बहुत समय लगा दी। क्या हो गया था?"

आसुम ने अपना पर्स और बाकी सामानों को डाईनिंग टेबल पर रखते हुए उत्तर दिया –

"क्या बताऊँ दातुम। आज तो मेरी किस्मत ही खराब थी। मैं तो बाथ से निकली थी साढ़े चार बजे। सोचा था पाँच बजे तक घर पहुँचकर तुम्हें अस्पताल ले जाऊंगी। पर मेरी किस्मत तो तुम्हें पता ही है।" कहकर आसुम ने हमेशा की तरह हल्की मुस्कान भरी।

"कोई बात नहीं भाभी, आज तो भईया के कारण हम लोग डॉक्टर से मिल लिए।" कहकर दातुम अपने भोजन को पूरा करने में लग गये। तोजुम अब भी कुछ न बोला। वह मोबाईल फोन पर नज़रे गड़ाए हुए था। पर बिना कुछ बोलकर भी कितना कुछ बोल रहा था वह। उनका पूरा शरीर बोल रहा था। आसुम सब समझ रही थी। तोजुम की न जाने कितनी भाषाएँ थी, पर आसुम को उसकी हर एक भाषा की, उसके लहजे की और उसके अर्थ की हर बारीकियों की अच्छी परख थी। परखते आई है। तोजुम की खामोशी को तोड़ने के वास्ते आसुम ने ही उनसे पूछा –

"ये सूट-बूट पहनकर कहाँ जा रहे हो इतनी रात?"

"हमारे एम.एल.ए. साहब ने डिनर पर बुलाया है। नाहरलगुन जाना है। तुम भी जल्दी तैयार हो जाओ। क्या अब यूँ ही पड़ी रहोगी ऐसे?" तोजुम ने लगभग डाँटते हुए कहा।

आसुम को इस तरह पॉलिटिकल पार्टी में जाना बिल्कुल नहीं सुहाता। पर उनके पास तोजुम को मना करने की कोई वजह नहीं मालूम होती। 'पसंद नहीं है' तो वजह नहीं हो सकती। सो आसुम उनके साथ साये की तरह हर सामाजिक और राजनीतिक समारोह में उपस्थित रहती। तोजुम तो रात-रात भर शराब और कबाब के मज़े लेते रहते, आसुम बगल में बैठी रहती। उनके बेमतलब के जोक्स पर हँसने में साथ देती।

तीन जगह जाम में फँसकर आसुम पूरी तह बेहाल हो चुकी थी। उनका मन कर रहा था कि अभी बिस्तर पर गिर जाऊँ। पर पति ने कहा है हाथ चलाने को। घर में मेहमान भी है, वे क्या सोचेंगे। यह सोचकर आसुम जाने को राजी हुई।

"ठीक है। पाँच मिनट दे दो। मैं चेंज करके आती हूँ।" अपने बेडरूम की ओर जाते जाते उन्होंने घर में काम करने वाली कुसुम को चाय के लिए पुकारते हुए कहा-

"कुसुम दीदी, जल्दी चाय बनाओ। पीकर अंकल के साथ निकलूंगी मैं।"

आसुम को अपने जीवन में किसी भी चीज की लत नहीं लगी। अच्छी हो या बुरी, बड़ी हो या छोटी, लत लगना किसी के लिए अच्छी बात नहीं होती। पर आसुम को चाय की लत ज़रूर लग गयी थी। दिन में कम से कम चार या पाँच बार चाय पीना उनकी आदत बन गयी थी। और स्त्रियों की तरह आसुम को साज-सज्जा में भी उतनी दिलचस्पी नहीं है। इसलिए नहाकर तैयार होने में केवल पाँच से सात मिनट ही लगा। तब तक उसकी चाय भी बनकर तैयार हो चुकी थी।

इस बार चाय कड़वी बनी थी। पर वह बिना कुछ कहे पी गई। जैसे वह चाय न होकर उसकी जिंदगी हो।

बाहर गाड़ी में बैठा तोजुम बेतहाशा हॉर्न मारे जा रहा था।

---

*(**लेखकीय परिचय :** अरुणाचल प्रदेश के सुपरिचित युवा कवि और कहानीकार तारो सिन्दिक देरा नातुङ शासकीय महाविद्यालय, ईटानगर, अरुणाचल प्रदेश के हिंदी विभाग में सहायक प्रोफेसर हैं। आपको साहित्य अकादमी का 'युवा सम्मान' मिला है और आपकी प्रकाशित कृतियाँ हैं- 'अक्षरों की विनती', 'फिर आना तुम', 'तागिन लोक-साहित्य' आदि।*

मोबा: 9402963147, ई-मेल : tarosindik@gmail.com)

(अनूदित कहानी)

दोन्यी पोलो एक्सप्रेस

(अंग्रेजी से हिंदी अनुवाद)

मूल रचना: अजन्ता

अनुवादक: माधुर्ज्य कमल हाजरिका

जब भी मैं रेलगाड़ी से यात्रा करने का मन बनाती हूँ, एक मनमोहक रेलगीत मेरे भीतर गूंजने लगती है, जो अपनी धुन, सामंजस्य या लय खोए बिना जारी रहती है। कभी-कभी मैं उस अनुभव को इन गीतों के माध्यम से व्यक्त करती हूँ....'जगबंधु फटसति', कभी 'रेल ओ रेल दीघे लेलपेल', या कभी-कभी उन प्रसिद्ध रचनाओं के रूप में... 'प्रथम नोहोय द्वितीयो नोहोय तृतीया श्रेनिर जात्री आमी जिबोन रेलोर डोबाट'..., 'द बर्निंग ट्रेन', 'हम दोनों दो प्रेमी दुनिया छोड़ चले' और भी कुछ-कुछ। ट्रेन में चढ़ते समय मैं इन मधुर संगीतों को अपने अंदर महसूस करती हूँ। इसीलिए उस रोज मैंने पूरा दिन लगाकर अपना सब काम पूरा किया और शाम पांच बजे अपने कार्यालय के वाहन से रेलवे स्टेशन के लिए निकल पड़ी। रास्ता खाली होने के कारण वहां पहुंचने में सिर्फ आधा घंटा लगा। स्टेशन पर पहुंचकर मैंने देखा वह भव्य रूप से सजी-धजी यात्रा के लिए तैयार है।

वह ऐसे चमक रही थी मानों अभी-अभी नहाकर आई है। होंठों में हल्की मुस्कान और आँखों में मित्रतापूर्ण दृष्टि लेकर मैंने उसकी ओर अपना हाथ हिलाया। उसने भी पलटकर जवाब दिया, मानों मेरी दोस्ती उसे भी एक अपनापन महसूस कराती है। मैं दिन भर के काम में जुटे होने के कारण काफी थक गई थी। सुबह स्नान करके चेहरे पर थोड़ा-सा क्रीम लगाया था, जो अब तक धूल एवं पसीना से लड़ते-लड़ते अपना रौनक खो चुकी थी। अपने थकान को दूर करने के लिए मैंने स्टेशन में ही एक नल खोलकर और अपने वैनिटी बैग से एक फेसवॉश क्रीम निकालकर अपना चेहरा धोया और तौलिया निकाल कर पोंछने लगी। फिर मैंने अपने चेहरे पर थोड़ी-सी क्रीम लगाई और होंठों पर हल्के लिपस्टिक। कंघी से उलझी हुई बालों को थोड़ा सुलझाती रही थी कि एक चाय वाला लड़का मेरे पास ऐसे आया मानों वह मेरी मनस्थिति भांप लिया हो। मैंने एक कप गर्म चाय और एक पफ बिस्किट से अपने मन को शांत किया। गर्म चाय से थकान मिटने का अहसास हुआ और अब खुद को तरोताजा महसूस कर रही थी। मैं चाय वाले लड़के की ओर देखकर मुस्कुरायी। मैंने सोचा कि थोड़ा टहल लिया जाए। मेरा ट्रॉली बैग बिल्कुल भी भारी नहीं था। मैं ट्रॉली खींचते हुए चलने लगी। नाहरलगुन रेलवे स्टेशन की खूबसूरती अलग ही है, जो चारो तरफ से ऊँची-ऊँची पहाड़ियों से घिरा हुआ यह हमारे अरुणाचल प्रदेश का पहला रेलवे स्टेशन है। यह स्टेशन हम सबके लिए परिवार की पहली बेटी जैसा प्यारा है।

साल के किसी भी मौसम में इस रेलवे स्टेशन की खूबसूरती कभी म्लान नहीं होती। मैंने अपने मोबाइल फोन के कैमरे से आस-पास की हरी-भरी सुंदरता को रिकॉर्ड करना शुरू कर दिया। यात्रियों की भीड़ पहले से ही स्टेशन में मौजूद थी। वास्तव में यात्रियों से ज्यादा उनके रिश्तेदार और मित्र अधिक संख्या में रेलवे स्टेशन पर आये हुए थे। प्रत्येक यात्री के साथ लोगों का एक समूह था। इनमें से ज्यादातर सेल्फी और वीडियो लेने में व्यस्त

थे। मेरी ओर कोई नहीं देख रहा था, पर मैं एक अनजान ख़ुशी अपने मन में लिए सबको देख रही थी। यात्रा की अंतिम घोषणा एक मधुर महिला की आवाज से हुई, "यात्रीगण कृपया ध्यान दें, ट्रेन संख्या 15618, नाहरलगुन-गुवाहाटी, दोन्यी पोलो एक्सप्रेस प्लेटफार्म नंबर एक से छह बजकर पैंतालीस मिनट पर रवाना होगी।" मैंने आखिरी बार अपने मोबाइल फोन पर अपने आरक्षण विवरण की पुष्टि की-पीएनआर नंबर देखा। बोर्डिंग स्टेशन NHLN से VNE तक आरक्षित, यानी नाहरलगुन से विश्वनाथ चारियाली तक, स्लीपर क्लास, बुकिंग स्थिति CNF, यात्री का नाम, सीट S2 /52 निचली बर्थ पर। रेलवे प्लेटफार्म पर वह घोषणा हिंदी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में कई बार दोहराई गई। डिब्बों के दरवाज़े खुले हुए थे। लाइटें लगाई गईं। यात्रियों में अंदर जाने की होड़ मच गई, मैं भी अंदर गयी। बोर्डिंग से ठीक पहले मैं फिर से उसकी ओर देखकर मुस्कुरायी। अब वह यात्रा के लिए तैयार थी। मंच पर प्रदर्शन के लिए तैयार एक सुंदर नर्तक की तरह सतर्क और हँसमुख।

कुछ ही देर में पश्चिमी हवा की तरह वह अपनी नाजुक लेकिन तेज़ चाल के साथ अपनी यात्रा शुरू कर देगी। उसकी अनियंत्रित गति को कौन रोक सकता है? मैं S2 डिब्बे में चढ़ गयी और अपनी आवंटित बर्थ को तलाशने लगी। सीट मिलने पर पास की खिड़की खोलकर मैंने आराम से खुद को सीट पर एडजस्ट किया। प्रस्थान करती रेल की सीटी आस-पास की पहाड़ियों के बीच गूँज रही थी। मेरे दिल के अंदर कुछ सिहर उठा। जब भी मैं यह सीटी सुनती हूं, अपने अंदर छुपी हुई उस उमंग के पक्षी को निकट से महसूस करती हूँ, जो अपने कंपन से मुझे हर बार झकझोर देती है। रेल की इस सीटी की आवाज से शायद हर किसी की भावनाएं जुड़ी होती हैं। शायद रेल उन्हें अपनों से दूर ले जाने के लिए ही सीटी बजाती है। रेल की गति वाली यह गीत मधुर धुन से शुरू होकर धीरे-धीरे तेज होती चली गई। यह धुन मेरे शरीर और मन के साथ एकाकार हो गई थी। ऐसा ही कुछ अन्य यात्रियों के साथ भी हुआ होगा। मैं खिड़की से बाहर की तरफ देख रही थी। रेल से बाहर की दुनिया एवं मनमोहक प्रकृति की सुंदरता को मैं एक पल के लिए भी छोड़ना नही चाहती थी। मैं जिन दृश्यों को देख रही थी उन्हें अपनी दोनों आंखों से अपने दिलोदिमाग में दर्ज भी करती जा रही थी।

रेलवे पुलिस कर्मी मुझे चेतावनी देने के लिए दो बार मेरे पास आये।

'मैडम, खिड़की बंद कर दीजिए... कभी-कभी बाहर से कोई पत्थर फेंक देते हैं।'

मैंने उसे अनसुना किया पर अंत में एक बार मुझे जवाब देना पड़ा,

'ज्यादा चिंता की कोई बात नहीं. अगर मैं खिड़की बंद कर दूं तो मैं इस मनमोहक प्रकृति को नहीं देख पाउँगी।'

वह एक सज्जन व्यक्ति थे, उन्होंने कुछ नहीं कहा। मैं परेशान हो गयी लेकिन, कोई पत्थर क्यों फेकेगा? ट्रेन ने किसी का क्या बिगाड़ा है? जिन लोगों को चलती ट्रेन पर पत्थर फेंक कर मजा आता होगा, उनके दिमाग में जरूर कुछ खराबी होगी। तीसरी बार में उसने खुद ही खिड़की बंद कर दी। मैंने भी एक नम्र और शांत लड़की की तरह इसे स्वीकार कर लिया और चुपचाप बैठी रही। खिड़की बंद करते ही मैंने सहयात्रियों की ओर देखा। कभी-कभी मुझे हारमोती स्टेशन तक डिब्बे में अकेले ही सफर करना पड़ता है। लेकिन आज ट्रेन में बहुत भीड़ थी। सभी यात्री उदास भाव से बैठे हुए थे। ऊपरी बर्थ पर दो व्यक्ति अपने मोबाइल फोन में व्यस्त थे। मेरे साथ बैठी दो कैथलिक नन आपस में अंग्रेजी में बातचीत कर रही थी। बातचीत के दौरान वे कभी-कभी अपनी गर्दन से लटकते क्रॉस को छू लेती थी। भारतीय सेना का एक जवान साइड बर्थ पर था। उसने मेरी ओर देखा और

मुस्कुराया, मैंने भी एक हल्की मुस्कराहट के साथ उसे जबाब दिया। रेल कि इस बहुमूल्य यात्रा को मैं व्यर्थ नहीं जाने दे सकती। मैंने किताब पढ़ते हुए इस समय का अच्छा उपयोग करना चाहा। मैंने अपने बैग से आधा पढ़ चुकी एक उपन्यास निकाला, और एक-एक करके पन्ने पलटने लगी। चलती ट्रेन में आंखों को राहत देने के लिए कुछ मिनट पढ़ने के बाद इधर-उधर देखना जरूरी है। इसके अलावा, मेरे लिए ट्रेन के अंदर एक अलग दुनिया मौजूद थी, इसका भी मुझे आभास हो रहा था। इसमें विभिन्न लोग शामिल हैं, चाहे वे किसी भी जाति, पंथ और धर्म के हों, जैसे फेरीवाले, चाय वाले-मिठाई वाले, चना-बादाम वाले, हिजड़े, सफ़ाई करने वाले बच्चे, महिलाएं और अलग-अलग सक्षम व्यक्ति जो पैसे मागने आते हैं आदि। इतने सारे लोगों का घर, उनकी जिंदगी, उनकी दुनिया बस इसी रेल तक ही सीमित है। ये डिब्बे कितने ही लोगों की आजीविका का साधन है। रेल के अंदर की ये दुनिया मेरे लिए हमेशा एक रहस्य रही है। मुझे इसे आत्मसात करना अच्छा लगता है। रेल में ये स्लीपर और जनरल क्लास देश का आईना है। यह मध्यम वर्ग की वास्तविक तस्वीर है। मध्यवर्गीय परिवारों से भरे हुए इस देश को समझने के लिए किसी को भी एक बार स्लीपर क्लास में यात्रा करनी चाहिए। मैंने पन्नों से नज़र उठाकर डिब्बे में मौजूद एक-एक यात्रियों की ओर देखा। ऊपरी बर्थ पर बैठे दोनों लोग अरुणाचल प्रदेश के आदिवासी समुदाय से थे। माना जा सकता है कि ये दिल्ली, बेंगलुरु या चेन्नई में पढ़ने वाले छात्र हैं। शक्ल-सूरत से वे भगवान बुद्ध की भूमि पश्चिम कामेंग या बोमडिला, तवांग तरफ के लग रहे थे। बौद्ध धर्मी लोग शांति के देवदूत हैं। दूसरी ओर एक लड़की है। इसमें कोई शक नहीं कि वह आबोतानी बेल्ट से ताल्लुक रखती है। यानी वह पश्चिमी अरुणाचल की एक आदिवासी लड़की थी। उसने एक बार भी अपने मोबाइल फोन से नजरें नहीं हटाई। ऐसा लग रहा था जैसे किसी तेज़ तूफ़ान के कारण उसका संपर्क बाहर से कट गया हो। वह छोटे से मोबाइल फोन के अंदर छुपी रहस्यमयी दुनिया की नागरिक थी।

डिब्बे के अन्य सहयात्री, रेल की गति के कारण सुनाई देता यह मजेदार गाना और वे लोग जिनकी जिंदगी ट्रेन से शुरू हो ट्रेन में ही ख़त्म होती है, ये सब उस लड़की के भावनाओं का हिस्सा नहीं थे। मेरे सामने एक मुस्लिम व्यक्ति बैठे हुए थे। उनकी पोशाक से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि वह पांच वक्त नमाजी होंगे। उन्होंने एक किताब खोली और छोटी-छोटी आवाजें निकालते हुए पढ़ने लगे। दोनों मिशनरियों ने भी दो किताबें निकालीं और पढ़ने लगी। चाँदी के क्रॉस चुपचाप उनके छाती के ऊपर पड़े रहे। मैंने सोचा कि वे सब मेरे द्वारा किये गए कार्यों का अनुसरण करते हुए किताबें पढ़ रहे थे। यह लगभग एक सुखद संक्रमित रोग की तरह है। मैं खुशी से मुस्कुराई। सेना का जवान अपने ख्यालों में खोया हुआ था। हो सकता है कि वह किसी दूर स्थान पर छोड़े गए अपने परिवार के बारे में सोच रहा हो। वह बहुत ख़ूबसूरत था। लंबे कद और सुडौल शरीर के कारण और फब रहा था, मानों उसके देह से सौंदर्य की रश्मियाँ निकल रही हों। मैं फिर से किताब के पन्नों पर लौट आई।

नाहरलगुन से यात्रा शुरू करने वाली रेलगाड़ी गुमटू स्टेशन को पार कर असम में प्रवेश कर गई और हारमोती स्टेशन पर रूकी। मैंने फिर से खिड़की खोली और बाहर झाँका। हारमोती छोटे व्यवसायों के लिए एक सुविधाजनक स्थान है जो अरुणाचल प्रदेश से सटा हुआ है। इस स्टेशन पर काफी संख्या में रेलयात्री चढ़े। यात्री हल्ला मचाते हुए अपनी सीट तलाश रहे थे। मैंने खुली हुई खिड़की से बाहर देखा। यात्रियों के मित्रों और रिश्तेदारों की शुभकामनाएँ से भरे हुए विदाई के स्वर चारो ओर गूंज रहे थे....यात्रा मंगलमय हो। एक माँ अपने

पुत्र से स्नेहपूर्वक कह रही थी- "यात्रा मंगलमय हो, मेरे प्यारे बेटे, अपनी सेहत का ख्याल रखना, मुझे कॉल करना।" विदाई के इस पल में कुछ प्रेमी जोड़ों की आंखें विरह वेदना से भर जाती है। हमारी रेलगाड़ी पुनः एक लंबी सीटी के साथ हारमोती स्टेशन छोड़ने के लिए तैयार थी। पुनः महिला की वह आवाज गूंजने लगी- कृपया यात्रीगण ध्यान दें, ट्रेन नंबर 15618 नाहरलगुन-गुवाहाटी दोन्यी-पोलो एक्सप्रेस...फिर से रेलगाड़ी की तेज रफ़्तार वाला गाना शुरू हो गया। कुछ ही मिनट बाद रेलवे पुलिस आई और मुझसे बिना कोई बातचीत किए खिड़की इस तरह बंद कर दी, मानो उसे खिड़की के साथ अनंत काल से दुश्मनी हो। मैं फिर किताब के पन्नों पर लौट आयी। रेल अपने मदमस्त गाना को गाकर तेजी पकड़ रही थी। अगला स्टेशन गहपुर था। यहां रेल कुछ समय के लिए रूकती है। यात्रियों के साथ-साथ चना वाले-बादाम वाले भी यहां रेल में चढ़ते हैं। मैंने अन्य दिनों की तरह मूंगफली का एक पैकेट खरीदा। इतने में एक वृद्धा अपने लड़खड़ाते कदमों से डिब्बे के अंदर आयी, और सीट ढूंढ़ते हुए इधर-उधर देखने लगी। अचानक चुपचाप बैठे हुए यात्रियों में हलचल शुरू हुई। अनेक अनजान आवाजें चारों तरफ गूंजने लगी। एक ने उस वृद्ध महिला से पूछा...

'आपका क्या नंबर है?' (सीट संख्या)

वह वृद्धा सिर हिलाकर संदेश देती है कि उसे पता नहीं या हो सकता है कि उनके पास टिकट नहीं है। उनका इशारा किसी को समझ में नहीं आया। एक अन्य व्यक्ति ने कहा, "मुझे टिकट देखने दो"। इस बार भी वृद्धा सिर हिला देती है। इससे स्पष्ट हो गया कि उसके पास टिकट नहीं है। यात्रीगण परेशान नजर आने लगे थे, इतने में एक ने वृद्धा को दिशा दिखाकर कहा-

'तो फिर उस तरफ जाइये, आपको सीट मिलेगी।'

उसने ऐसे कहा मानो रेल का चप्पा-चप्पा वह जानता हो, मानो वह रेल के TTE या TTC की तरह कोई रेलवे अधिकारी हो। जब वृद्धा बैठने वाली थी तो यात्रीगण सोने की व्यवस्था करने लगे। दो सीटों के बीच की बर्थ को खोला गया। इस अवधि में मुझे कभी नींद नहीं आई। मैं केवल तीन घंटे के लिए यात्रा करती हूँ। एक बार मैंने दोनों मिशनरियों से अनुरोध किया कि "मैं बिश्वनाथ चारियाली में उतर जाऊंगी। क्या आप कृपया उसके बाद सोने की व्यवस्था कर सकती हैं?" उन्होंने मेरे इस अनुरोध को ठुकरा दिया और कहा- "माफ करें मैडम।" अगर बीच की सीट खुली हो, तो कोई निचली सीट पर नहीं बैठा जा सकता, अगर मैं उस जगह पर खुद को समायोजित करने के लिए गलत मुद्रा में बैठूंगी तो इससे मेरी गर्दन में दर्द होगा। यात्री किनारे की स्लीपर सीटें खोलकर अपना बिस्तर व्यवस्थित करने लगे। सैनिक जवान अब भी उदासीन बैठा हुआ था। मैंने उनसे कहा।

"श्रीमान! सुनिए"

"जी मैडम"

उसने जिज्ञासा भरी नजरों से मेरी ओर देखा। मैंने उन्हें हिंदी भाषी होने का अनुमान लगाते हुए हिंदी में ही पूछा। "आपको भी अभी सोना है क्या?" उन्होंने कहा, "नहीं। आप यहां बैठ सकती हैं मैडम।" मैं बहुत खुश हुई। मैंने अपनी सीट उसके बगल में ले ली। बूढ़ी महिला भी मेरी तरफ देखते हुए उसकी सीट पर बैठ गई। सेना का जवान मेरी तरफ देखकर मुस्कुराया। मैंने उस बूढ़ी औरत और सेना के जवान से बारी-बारी से बात करना शुरू किया। मेरी धारणा सही थी। वह एक हिंदी भाषी व्यक्ति था। मैंने उससे हिंदी में बातचीत शुरू की।

'आप सेना में जवान हो क्या?'

'हाँ, पैरा कमांडो रेजिमेंट...'

'पैरा कमांडो रेजिमेंट... वह क्या होता है?'

वह बहुत उत्साही होकर मुझसे कहा- पैरा कमांडो का गठन 1966 में हुआ था। पैरा कमांडो भारतीय सेना की उच्च प्रशिक्षित पैराशूट रेजिमेंट का हिस्सा है और भारत के विशेष बलों के सबसे बड़े हिस्से का प्रतिनिधित्व करता है। भारतीय सेना की पैराशूट इकाइयाँ दुनिया की सबसे पुरानी हवाई इकाइयों में से एक है। वह हिंदी भाषी होते हुए भी फर्राटेदार अंग्रेजी बोल रहा था। वह छुट्टी पर आया था। उसकी बहन का परिवार ईटानगर में था। वह अपनी छुट्टी ख़त्म होने से पहले अपनी बहन से मिलने आया। बहन का पति भी सुरक्षाकर्मी है। वह केंद्रीय रिजर्व पुलिस बल में है, और अब सचिवालय में कार्यरत हैं।

'सचिवालय में? मैं भी वहीं काम करती हूँ।'

मैंने उत्साहपूर्वक कहा। तभी रेलगाड़ी के असली TTC अंदर आये। सभी ने उन्हें अपना टिकट दिखाया। उन्होंने वृद्धा को सामान्य डिब्बे में जाने को कहा। बुढ़िया ने उनकी बातों पर ध्यान नहीं दिया। वह बैठी रही। मैंने TTC से कहा-

'मैं विश्वनाथ चारियाली में उतरूंगी। क्या आप कृपया उस वृद्ध महिला को मेरी सीट पर बैठने देंगे?'

TTC ने उत्तर दिया,

'नहीं, सीट नंबर 52 विश्वनाथ से अन्य यात्री के लिए बुक है।'

'ओह! अच्छा ऐसा है।'

मैंने वृद्धा से पूछा कि वह कहाँ जायेगी। वृद्धा बोड़ो समुदाय की लग रही थी। वह असमीया तो समझती थी, लेकिन अच्छे से बोलने में असमर्थ थी। उसने केवल इतना कहा,

'रोंगिया..."

यह तो बड़ी दुविधा की बात है। दोन्यी पोलो एक्सप्रेस रात को करीब 2 बजे रोंगिया पहुंचेगी। बूढ़ी औरत अपने अस्थिर कदमों से कहाँ जायेगी? क्या उसे कोई स्टेशन से लेने आएगा? बिना टिकट अकेली उसे देखकर यकीन करना मुश्किल हो रहा था कि स्टेशन पर कोई उसे लेने आएगा। मैं उनके बारे में सोच कर बेचैन हो गई। मेरे पास भी उन्हें मदद करने का कोई रास्ता नहीं था। मेरी यात्रा केवल तीन घंटे की थी। यदि मेरी गुवाहाटी तक की बुकिंग होती तो मैं उस वृद्ध महिला के साथ बर्थ साझा कर सकती थी। मैं उस वृद्ध महिला के लिए एक रात की नींद त्याग कर सकती थी। ईश्वर ने मुझे इस त्याग से वंचित कर दिया। वह एक भयंकर जाड़े की रात थी। रेल सेवा स्लीपर क्लास में गर्म कंबल उपलब्ध नहीं कराते हैं। महिला एक पुरानी सूती मेखला चादर पहने हुए थी, जिसके ऊपर ओढ़ी हुई थी एक घिसा-पिटा स्वेटर, इस अवस्था में वह रात कैसे गुजारेगी?

अचानक डिब्बे के अंदर एक खाना वाला आया....खाना खाना...

सभी लोगों ने अलग-अलग आइटम का ऑर्डर किया। सेना के जवान ने मेरी तरफ देखा, मैंने उन्हें कहा कि मैं कुछ देर में घर पहुंच जाऊंगी, वहीं पर अपना भोजन करूंगी। उन्होंने मेरी इस बात को सराहा और उस वृद्ध औरत की ओर देखा। इस बार हम दोनों एक साथ जोर से हंसे क्योंकि बातचीत के दौरान हमें पता ही नहीं चला कि कब वह वृद्ध महिला उकडू बन सोने लगी थी। जवान ने एक प्लेट चावल और एक प्लेट रोटी ऑर्डर किया। पूर्णतः शाकाहारी व्यंजन। मुझे यह जानकर खुशी हुई कि वह शाकाहारी था। मैं भी शाकाहारी हूँ। हम फिर से

बात करने लगे। मैंने उन्हें बताया कि मैं महीने में दो बार और सप्ताह के अंत में ईटानगर से अपने गृह नगर विश्वनाथ तक यात्रा करती हूँ। और ऐसी ही अनेक घटनाओं की साक्षी बनती रहती हूँ। जो प्रायः मेरे दिल पर असर डालती हैं। एक दिन इसी दोन्यी-पोलो एक्सप्रेस में मेरी मुलाकात एक विवाहित जोड़े से हुई, जो अपने पांच महीने के बच्चे के साथ दोईमुख से गुवाहाटी की यात्रा कर रहे थे। बच्चा हृदय रोग से पीड़ित था। आर्थिक रूप से दुर्बल माता-पिता असम सरकार द्वारा दिए जाने वाले मुफ्त इलाज का लाभ उठाने के लिए असम जा रहे थे। बच्चा सोया हुआ था। आँखें आधी खुली, आधी बंद थीं। उस मासूम चेहरे को देखकर किसी का भी दिल दर्द से भर सकता है। उस बच्चे के मुखमंडल से यह पता चल रहा था कि बच्चा कितना कमज़ोर है। अक्सर मुझे उनकी याद आती है। क्या बच्चा और उसके माता-पिता ठीक होने के बाद दोन्यी-पोलो एक्सप्रेस से लौटेंगे? इसी तरह एक बार एक व्यक्ति अपनी बेटी की शादी कराने के लिए उसे गुवाहाटी ले जा रहा था। 24-25 साल की लड़की बहुत सीधी साधी थी। वह सिसक रही थी, जिसे देखकर उसके पिता ने उसे डांटा कि मत रोओ। उन्होंने कहा- "इतनी बड़ी लड़की होकर रोती हो, क्या तुम्हें शर्म नहीं आती है।"

मैंने उसका हाथ धीरे से पकड़ते हुए कहा- 'क्यों रो रही हो?'

उसने जवाब दिया-'मेरी शादी हो जाएगी।'

मैंने थोड़ा अफ़सोस के साथ मुस्कुराया और कहा-'यह तो जीवन का एक नियम है कि लड़की को शादी करके दूसरे घर में जाना ही पड़ता है। यदि आपकी शादी नहीं होगी तो लोग आपके माता-पिता पर हंसेंगे।'

आंसुओं को अपने हाथों से पोछकर उसने उत्तर दिया-'मैडम, मैं इसलिए नहीं रो रही हूँ कि मेरी शादी होने वाली है, बल्कि मैं अपने लियोनार्डो के लिए रो रही हूं। वह मेरी जिंदगी है। मैं उसके बिना अपने जीवन की कल्पना नहीं कर सकती।'

यह सुनकर मैं चौंक पड़ी। माता-पिता अपनी लड़की की शादी उसके प्रेमी से दूर क्यों कर रहे हैं। मैंने उसके पिता की ओर देखा, उनका चेहरा उदासी से ढका हुआ था। उन्होंने कहा-'लियोनार्डो इसके कुत्ते का नाम है।'

'ओह! क्या वह लियोनार्डो को अपने साथ नहीं ले जा सकती? यदि ऐसा होता तो बेहतर होता।'

'उनकी शादी गुवाहाटी में बड़े धूमधाम से तय की गई है, अगर वह अपने साथ एक स्थानीय कुत्ता ले जाए तो कैसा लगेगा? सीधी-सादी लड़की यह नहीं समझती...'

इस दोन्यी पोलो एक्सप्रेस में मेरा इस तरह की बहुत सी घटनाओं से साबका हुआ है।

वह मेरी बातों को मंत्रमुग्ध होकर सुन रहा था, मानों उसे कोई सुनाने वाली मिल गयी हो। वह एकटक मेरी और हल्की मुस्कराहट के साथ देख रहा था, और पूछा-

'क्या आप साहित्यकार हैं?'

'मैं एक साहित्यकार हूं। आप कैसे जानते हो?'

'आपको कैसे पता चला कि मैं आर्मी से हूं?'

हम दोनों खूब हंसे।

मैंने कहा-'कोई अंधा आदमी भी आपको देखकर कहेगा कि आप सेना की किसी रेजिमेंट से हैं।'

'और कोई गूंगा व्यक्ति आपकी बात सुनेगा तो कहेगा कि आप कवि-साहित्यकार हैं।'

'कृपया मैं आपका नाम जान सकता हूँ।'

'स्मृतिशिखा। आपका?'

'अमन कुमार।'

'नाम, जात, पेशा, धर्म, शौक इन सबसे ऊपर हम इंसान हैं, है ना अमन जी? यदि कोई अपना परिचय एक इंसान के रूप में नहीं दे सकता, तो इस जीवन का महत्त्व ही क्या है?'

'सही कहा आपने, स्मृतिजी...'

'अमन जी, क्या आप कृपया मुझे किसी और दिन पैरा-ग्लाइडिंग के अपने अनुभव बताएँगे?

'ज़रूर स्मृतिजी, शायद हम भविष्य में एक दिन दोन्यी -पोलो एक्सप्रेस के किसी डिब्बे में जरूर मिलेंगे...'

'लेकिन इस वृद्ध महिला का क्या होगा अमन जी?'

'मैं भी यही सोच रहा हूँ स्मृति जी... 'माँ जी' का क्या होगा?'

अचानक बाहर से एक तेज़ हवा अंदर आयी, हम दोनों के जिस्मों को छूकर चली गई। एक अनजान उत्कंठा मेरे दिल में जगी, मैंने अमन जी की ओर देखा, वह हल्की मुस्कान मेरे दिल में जैसे दस्तक दे गयी हो। अपने अनुभवों को जानकर मैं माहौल को बदलना चाही। मैंने उनसे पूछा, 'क्या पैराशूट से उड़ना अच्छा लगता है?'

उन्होंने हँसते हुए कहा, 'हाँ... अच्छा लगता है...मेरे कर्तव्य मुझे आसमान की ओर खींचते हैं और धरती के प्रति मेरे प्रेम मुझे ज़मीन की ओर...।

निचली बर्थ की दोनों मिशनरी गहरी नींद में थीं। एक की गर्दन से क्रॉस लटक रहा था और दूसरी अपने आरामदायक गर्म कपड़ों को लपेटे चुपचाप सो रही थी। बीच वाली बर्थ में पांच वक्त नामाजी खर्राटे ले रहे थे। डिब्बे में एक और महिला यात्री थी, सखा-सिंदूर और मंगल सूत्र पहने एक खूबसूरत महिला। हो सकता है कि वह अभी तक किसी बच्चे की माँ नहीं बनी हो। वह अपने सपनों की दुनिया में खोई हुई थी। उनके पति साइड अपर बर्थ पर थे, और अपनी हल्की नींद में ही कभी-कभी खाँसकर अपनी जागृति का संकेत दे रहे थे। रेल के सफ़र में रात को अक्सर लोगों को सावधान रहना पड़ता है। और तो और इतनी खूबसूरत पत्नी साथ होने से सावधान रहना कर्त्तव्य बन जाता है। मोबाइल में व्यस्त अरुणाचल के दोनों युवक हेडफ़ोन निकाले बिना ही सो गए। या फिर उन्हें अभी नींद नहीं आ रही थी, इसीलिए आंख बंद करके गाना सुन रहे होंगे। बहुत देर नहीं हुई थी। गुवाहाटी-नाहरलगुन शताब्दी एक्सप्रेस की क्रॉसिंग के कारण हमें गहपुर स्टेशन पर आधे घंटे तक इंतजार करना पड़ा। क्या यात्रियों को इतनी नींद आ रही है? लोगों को सुखी नींद में देखकर मुझे अच्छा लगता है। दुर्बल शरीर वाली माँ जी गहरी निद्रा में थीं। अमन न जाने क्यों बड़बड़ाने लगा...ईश्वर अल्लाह तेरे नाम...सबको सन्मति दे भगवान...सीताराम...सीताराम। उकडू बनी सो रही माँ जी ने अपना आकार इस तरह खोल लिया, मानो डोरी की गांठ धीरे-धीरे खुल रही हो। उनका आकार लंबा हो जाने के साथ-साथ अमन और मैं करीब आ रहे थे। एक अजीब-सी हलचल मेरे शरीर में मैंने अनुभव किया। एक अनजाना शांति। हम दोनों एक दूसरे की ओर देखे और दोनों मुस्कुराये।

मैंने अमन से कहा, 'रोंगिया तक आपको सोने नहीं मिलेगा, क्या आपको नींद नहीं आएगी, अमन जी।'

'यह कोई गंभीर मामला नहीं है स्मृति जी। हमें बिना सोवे और बिना खाना खाए रहने की आदत है। हमारा पेशा ही ऐसा है। देखिये माँ जी कैसे बेख़ौफ़ होकर सो रही हैं।'

सचमुच, मैंने माँ जी की ओर देखा। क्या वह झुर्रीदार चेहरे और दुर्बल शरीर वाले किसी की मां हैं? क्या उसका अमन जैसा जवान बेटा है? या कोई विवाहित बेटी...? अगर आज अमन जी यात्रा नहीं कर रहे होते तो माँ जी का क्या होता?

तातीबहार, बेदेती आदि पार करने के बाद बोरगांग रेलवे स्टेशन आया। अगला विश्वनाथ चारियाली मेरी मंजिल थी। मैं अपनी जगह पर पहुंचने ही वाली थी। मुझे कुछ मिनटों के बाद अमन और माँ जी को छोड़ना होगा। मुझे खालीपन महसूस हुआ। मेरे सीने के अंदर का खामोश पक्षी फिर से बेचैन हरकतें करने लगा। मैं गुजरते समय को संजोने के लिए उत्सुक थी, जो कभी संभव नहीं था। यात्रा के दौरान अमन जैसा सहयात्री मिलना सौभाग्य की बात है। सच कहूँ तो हर सफ़र में हमें अमन जैसे कितने मुसाफ़िर मिलते हैं। दरअसल, दुनिया में अभी भी इंसानियत कायम है क्योंकि अमन जैसे कुछ लोग हैं। अमन को सहयात्री के रूप में पाकर बहुत अच्छा लगा। हमारी दोस्ती बहुत ही कम समय में परवान चढ़ गई, लेकिन अब मैं डिब्बे के अन्य यात्रियों जैसे दोनों मिशनरी, सखा-सिंदूर पहनने वाली महिला और उसके पति, मोबाइल वाले अरुणाचली दोनों लड़कों के बीच अमन को छोड़ दूंगी। मेरा मन नहीं मान रहा था, बेशक बूढ़ी माँजी भी अमन के साथ थीं। एक विरह चीख के साथ रेलगाड़ी रूक गई। मैं नीचे उतरने में व्यस्त हो गयी। अमन भी खड़ा हो गया। माँ जी जाग नहीं रही थी। अमन ने सीट के नीचे रखा मेरा बैग निकाला, मैंने अपने स्वेटर के ऊपर जिस शॉल को पहना हुआ था, उससे माँ जी के शरीर को ढँक दिया। माँ जी गहरी नींद में थीं। फिर भी मैंने उसके सिर पर धीरे से हाथ फेरते हुए कहा-

'माँ, मुझे उतरना है। अलविदा।'

अमन भी मेरे साथ उतर गया। उसने बैग रेलगाड़ी से नीचे रख दिया और कहा – 'आपसे मिलकर खुशी हुई स्मृति जी। आपको हमेशा याद करेंगे। चिंता मत करो, मैं रात को रोटी खाता हूँ। चावल का पैकेट माँ जी के लिए रखा हुआ है। जैसे ही वह उठेंगी हम अपना रात्रि भोजन एक साथ करेंगे।'

'ओह। सच में आप बहुत अच्छे हैं अमन जी... अपना ख्याल रखना....रेलगाड़ी में भी और पैराशूट में भी...शुभ यात्रा।'

'जरूर स्मृति जी... आप भी बहुत अच्छी हैं... आपका बहुत-बहुत धन्यवाद।'

रेलगाड़ी ने फिर से विरह गीत सुनाया...अमन डिब्बे के दरवाज़े पर खड़े होकर हाथ हिलाते रहे। रेल गीत शुरू हो गया। दोन्यी-पोलो एक्सप्रेस 15618 अपनी स्वाभाविक गति से आगे बढ़ी। अमन धीरे-धीरे मेरी आंखों से ओझल हो गया।

अंतिम समय में मैं उसकी ओर देखकर हाथ हिलायी थी, और चिल्लाकर कही थी-

'आपका यात्रा मंगलमय हो। और मन ही मन रेलगाड़ी को भी कह रही थी कि बाकी सभी यात्रियों के साथ अमन और माँ जी को भी सुरक्षित ले जाओ...'

रेलगाड़ी ने भी जवाब दिया...

'अलविदा स्मृति, फिर मिलेंगे...'

वह लयबद्ध गति से चली गई... नजरों से ओझल होने वाली वह और कोई नहीं.... बल्कि प्यारी दोन्यी पोलो एक्सप्रेस थी, जो अपने अंदर एक रहस्यमयी दुनिया लेकर तेज गति से गंतव्य की ओर दौड़ती है। कौन जानता है कि कितने विलाप, अनेक अनकहे दुःख, आँसू और हँसी वह अपने भीतर छुपाकर रखती है।

मैं सोच ही रही थी कि रेलगाड़ी बहुत दूर पहुंच गई। रेलगीत अब भी मंद-मंद सुनाई दे रही थी। प्लेटफार्म अगली रेलगाड़ी की प्रतीक्षा में एक नम्र और शांत आज्ञाकारी लड़की की तरह खामोश था। रेलगीत अब भी मेरे मन में गूंज रहा है...अभी भी यह सफर जारी है। (चलते-चलते..यूँ ही कोई...मिल गया था यूँ ही कोई...सरे राह...चलते-चलते....)

- 'जगबंधु फटसति': असमीया लोकोक्ति।
- 'रेल ओ रेल दीघे लेलपेल': रेलगाड़ी की लंबाई को वर्णन करती हुई एक लोकोक्ति।
- 'प्रथम नोहोय द्वितीयो नोहोय तृतीया श्रेनिर जात्री आमी जिबोन रेलोर डोबाट': डॉ. भूपेन हाजरिका द्वारा रचित गीत।

*(**लेखकीय परिचय :** अरुणाचल प्रदेश की सुपरिचित कथाकार अजन्ता अरुणाचल प्रदेश लिटरेरी सोसाइटी की संस्थापक सदस्या रही हैं और आप वर्तमान में अरुणाचल प्रदेश सरकार में अपनी सेवाएँ दे रही हैं। मोबा:8787482378, ई-मेल : ajantadotc@yahoo.in; / **अनुवादक परिचय:** माधुर्ज्य कमल हाजरिका वर्तमान में राजीव गाँधी विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में शोधार्थी हैं। मोबा: 9401690026, ई-मेल : madhurjyahazarika3@gmail.com)*

जमुना बीनी की तीन कविताएँ

(1)

नदी के दो पाट

तुम्हारी अधिकांश बातें
मुझे समझ
नहीं आती
बिल्कुल दूसरी बोली
बोलने लगे हो तुम
तुम्हारा पहनावा विचित्र
तुम्हारी आदतें अजीब
तुम वह हो
पर
वह नहीं
जिसे मैं जानता था।

आज
सालों बाद
हम मिलें
तुम तो जैसे कोई
खोजी पर्यटक
साहस और रोमांच की खोज में
मेरी दुनिया
देखने आये।

अचरज का विषय हूँ
मैं तुम्हारे लिए
हाँ !!
आदिम संस्कृति के साथ
जीता एक आदिवासी
अजायबघर का
आदर्श नमूना।

सुविधा
भोगने की ललक
ले गया दूर तुम्हें हमारे गाँव से
उन लोगों से दूर
जो तुम्हें
जानता था, समझता था
अपना मानता था।

तुमने अपना लिया
न्यीपाक[1] के तौर-तरीके
तुम्हारे और मेरे बीच
दूरी इतनी बढ़ गई
जैसे
नदी के दो पाट।

---

1. न्यीपाक – गैर आदिवासी या मैदानी वासी

(2)

तथाकथित

भगत सिंह , सुखदेव को
हम जानते हैं पर क्या
मातमुर जामोह[1] मोजी रीबा[2] का
नाम सुना तुमने कभी ?

हमें पता है
गाय तुम्हारे लिए
महज एक पशु नहीं
एक जीवित
श्रद्धापूरित संपत्ति है
लेकिन मिथुन[3]
किस पशु का नाम है
यह तुम नहीं जानते।

हमने अपना लिया तुम्हारा पहनावा
खान-पान, बोली
सवाल यह है
तुमने कितना हमें अपनाया ?

हमारे ऊपर बहुत कुछ
और बहुत सारा
लिखा तुमने।

कितना अंतर है
तुम्हारी

और
हमारी लेखनी में
तुम्हारा लेखन
सहानुभूति से भरा
और
हमारा लेखन
आत्मसम्मान से मदमाता।

---

1. मातमुर जामोह – अरुणाचली स्वतंत्रता सेनानी
2. मोजी रीबा- अरुणाचली स्वतन्त्रता सेनानी
3. मिथुन- भैंसानुमा दिखने वाला पशु जिसका अरुणाचली समाज में सांस्कृतिक-धार्मिक एवं आर्थिक महत्त्व है

(3)
लौटने के इंतजार में

मैं वाङपान की
बूढ़ी माँ से मिली
हिम्मत बटोर कर पूछ ही लिया-
'वाङपान की याद नहीं आती ?'

नम आँखें मुझे देर तक ताकती रही
एक अर्थपूर्ण
गहरी साँस भरकर फिर बोली-
अरसा हो गया
उसे देखे
कलेजे पर पत्थर रखकर
यहाँ से भगाया था
जंगल-आदमी1 उसे जबरन उठाकर
ले जाते अपने दल में शामिल करने।

हो न हो
मुण्ड-आखेटकों की
वीर भूमि को
जरूर किसी का
अभिशाप लगा है।
बरसों से
शांति और प्रगति
इस भूमि से रूठी हुई है।
मैंने उनकी
झुर्रियों से बने नक्काशीदार हाथ को
थाम उन्हें बतलाया-
'वाङपान घर लौटना चाहता है'
वह सकपकाकर बोली- 'नहीं, नहीं !
उसे पूछो
जंगल-आदमी या भारतीय आर्मी
दोनों में से
किसकी गोली का स्वाद पसंद है ?

बेटा मेरा
दूर सही पर है जिंदा
माँ के मन को इतनी तसल्ली काफी है।

इधर मुक्ति कहाँ
जंगल-आदमी का शिकंजा
और
भारतीय आर्मी का चंगुल
इनके बीच पीसने को अभिशप्त
हमारा युवा

वापसी में बार बार मैं
उन तमाम
नोक्टे-वांचो[2] युवाओं के बारे
सोचे जा रही थी
जिनको इंतजार है
अमन बहाली का
घर लौटने का।

---

1. जंगल आदमी – एन एस सी एन उग्रवादी
2. नोक्टे-वांचो – नोक्टे और वांचो आदिवासी

*(**लेखकीय परिचय** : अरुणाचल प्रदेश की सुपरिचित कवयित्री एवं कहानीकार डॉ. जमुना बीनी राजीव गाँधी विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में सह प्रोफेसर हैं। मोबा: 9436044327, ई-मेल : jamuna.bini@rgu.ac.in)*

दोगे डमदिर की दो कविताएँ

(1)

वो सात दिन
घर से दूर
अपनों से दूर
एक नए शहर में
एक नए एहसास को महसूस करते हुए
ले आयी...
एक रंग, दूसरा रंग
एक और रंग
समाज का, संस्कृति का
व्यक्ति का, समष्टि का।

इन सँकरी गलियों में
बाहें फैलाए चल रहा है वर्तमान
चल रही हैं गलियां भी
अनवरत, अविराम।

मैंने देखा!
संस्कृति पोषित करते
विद्वानों को
गुरु-शिष्य, ईश्वर-भक्त को
जो अपने आपमें पूरी परंपरा थे
अखंड और नश्वर।

यह मंदिरों का शहर
जहाँ ज्ञात हुआ
घर एक मंदिर है यहाँ।
नाव गंगा पर
हम नाव पर
आगे बढ़ रहे
मंथर-मंथर।
फिर देखा-
मणिकर्णिका की भूमि
गंगा के रहते
दु:ख की लपटों में जल रही
सामने शीतल, अग्नि शामक
कई-कई लपटें उठ रही...
हो रही स्वाहा-स्वाहा,
सत्य, यही निर्धारित अन्ततोगत्वा।

एक का सुख, दूजे का दु:ख
कितना विरोधाभास है
इस जीवन में,
यह सात दिन नहीं
जीवन के सात जन्म की तरह है।

(2)

नमक जीवन का
सिसकियां, सिसकती मरती हैं
कोई नहीं सुनता उसे
पीड़ा का नमक चखकर
वह छन्न से टूट जाती हैं।

*(**लेखकीय परिचय :** डॉ. दोगे डमदिर दोज्यी-पोलो शासकीय महाविद्यालय, कामकी, वेस्ट सियाङ जिला, अरुणाचल प्रदेश के हिंदी विभाग में सहायक प्रोफेसर हैं। मोबा: 8794163810, ई-मेल : dogengomdir66842@gmail.com)*

 ISSN: 2582-6530

आईनाम इरिंग की तीन कविताएँ

(1)
रंगरेज

जब संसार बनकर तैयार हुआ होगा
तब उसे रंगने की बारी आई होगी।
उसने रंगों से भरे डिब्बियों का
ढक्कन उतारा होगा
और उँगलियों से आसमान पर
सात रंगों की सात रेखाएँ खींच दी होंगी,
वह इंद्रधनुष बन गया होगा।

फिर इस रंग को उस रंग से मिलाकर
कुछ गहरा कुछ हल्का कर
मिट्टी, पत्थर, पेड़-फूल, पशु-पक्षी
और अंत में मनुष्य को रंगा होगा।
पर न जाने क्यों उसने-
पानी पर एक बूँद रंग न गिराया,
हवा पर एक बूँद रंग न निचोड़ा
उजास पर एक बूँद रंग न छिड़का
वक़्त पर एक बूँद रंग न डाला
एहसास पर एक बूँद रंग न मला।
उसने कई चीजों को बेरंग ही रहने दिया
या फिर यह उसका आठवाँ रंग है
जो एक अनसुलझी पहेली है
और उनका यह आठवाँ रंग काफ़ी है
मनुष्य को जीवन भर उलझाए रखने के लिए।
हाय! न जाने यह कौन रंगरेज हैं?

(2)
प्यारी आँखें

(एक)

किसी-किसी की आँखें
बहुत प्यारी होती है।
हँसते हैं
तो साथ हँसने लगते हैं
रोते हैं
तो बड़ी देर तक नमी रहती है।
ऐसी आँखों की झील में
कुछ भी तो डूबता नहीं।
प्रेम का फूल हो
या नाराज़गी का पत्थर
सब कुछ तैर जाता है।
डरती हूँ
इस गहरी-लंबी दुनिया में
वे प्यारी आँखें कहीं डूब न जाए
फिर लगता है
यह गहरी-लंबी दुनिया ही
उन्हीं आँखों में तैर रही है।

(दो)

मन कोई पिंजरा होता
और उदासी कोई चंचल पंछी
आँखों से
चेहरे से
दिल से

अपने सारे पंखों को समेटकर
मेरी छाती से वह उड़ जाता
सरहद पार
कहीं दूर
बहुत दूर।

(3)

पहाड़

पहाड़ को और पहाड़ होना चाहिए था
और ऊँचा
और दुर्गम
और ऊबड़-खाबड़
और जंगली।
हर एक पत्ता मुट्ठी
हर एक डाल तलवार
हर एक चट्टान फौलादी बन
और खूँखार होना चाहिए था
ताकि हवाओं की आजादी बनी रहे
चिड़ियों की आवाजें गूँजती रहें
झरने गिरते और बहते रहें
ताकि मनुष्य जाति के अंदर
पहाड़ी दुनिया को न उजाड़ने का खौफ़ बना रहे।

***

*(**लेखकीय परिचय:** डॉ. आईनाम इरिंग, शासकीय महाविद्यालय, गेकू, ज़िला अपर सियांग, अरुणाचल प्रदेश के हिंदी विभाग में सहायक प्रोफेसर हैं। आपकी हाल ही में प्रकाशित कविता-संग्रह 'मीत' बेहद चर्चित रहा है।*
मोबा: 7641915211, ई-मेल : ayinamering23@gmail.com)

गुम्पी डूंसो लोम्बि की दो कविताएँ

(1)

घर

पहाड़ों के बीच मेघों की बोली
कुसुमों की टोली,
अपनी भाषा में गीत गाती...

गौधूलि की आहट,
तर-तर करती संध्या
चेष्टाओं से वापस बुलाती,
यह आभास कराती,
कि यही तो वह आँगन है
कि यही तो वह फुलवारी है
जहाँ से हमने देखी दुनिया
प्रकृति की दुनिया !

सूर्य की इस भूमि में,
प्रकृति से आलिंगन की गाथा
कहती है अपनी व्यथा,
कि यही तो वह घर है
जहाँ से पर्वत श्रृंखलाओं का आरोहण कर
दोङ[1] से सर्वप्रथम देश में
सूर्योदय होने की क्षणज्योति कराती
आन्अ-दोञी[2] है !

पहाड़ों के बीच मेघों की बोली
कुसुमों की टोली
अपनी भाषा में गीत गाती।

---

(2)

गेकर-सिञिंग और दोइमुख में प्रेम

गेकर-सिञिंग और दोइमुख में प्रेम है
महका-महका बहार है,
मैं रहता हूँ गेकर-सिञिंग के पास
दोइमुख मेरी रहती है निर्जुली के पास,
चंदन साँप से नहीं भीड़ से लिपटी है
और भीड़ चंदननगर में भी रहती है,
चिम्पु, थिम्पू जैसा होता
सड़क के किनारे महल नहीं बनता
सही समय पर गंगा पहुँचता,
गंगा बह नहीं रही है
आकाश-द्वीप के समीप खड़ी है
भीड़ से जकड़ी है
स्थानीय उत्पादों को बेच रही है,
कचरा खूब जम रहा है
गंगा मैया भी सह रही है,
गेकर-सिञिंग और दोइमुख में प्रेम है
महका-महका बहार है,
दोइमुख मेरी फोन करी
मैंने बताया बैंक तिनाली,
नीचे विवेक विहार ऊपर ईटाफोर्ट दिख रहा है
आहुम का इतिहास कह रहा है,
ट्रेकर में बैठकर दूर से गोम्पा निहार रहा हूँ
अभी जीरो प्वाइंट पर चढ़ रहा हूँ,
चालक की अपनी स्टाइल होती है
पलक-झपक कर पहलवान मोड़ पर आबोतानी से
मिलना होता है,
कुछ समय में मौसी भी दिख जाती है
सब्जियों के साथ मन भी बहल जाता है

गेकर-सिञ्चिंग और दोइमुख में प्रेम है
महका-महका बहार है,
पप्पू नहीं पापु-नाला
किसी जमाने में
शीतलता का अनुभव हुआ होगा
अब वाकई में नाला बन चुका,
गंदगी से समझौता कर चुका है
रास्ता युपिया से भी है
मगर बाजार नाहरलागुन के ही सस्ते हैं
जहाँ एक साथ में सब बिकते हैं
गेकर-सिञ्चिंग और दोइमुख में प्रेम
महका-महका बहार है,

अब मैं रोऊंगा
दोइमुख मेरी रोएगी,
क्योंकि ट्रैफिक रोएगा,
अब हाथी का कोई सिर नहीं रहा
केवल हाथी माथा रहा,
दिल्ली में-
"बारापुला फ्लाइओवर न होता तो साउथ एक्स
और
सराय काले खाँ की दूरी कम न होती"*
हाथी माथा से ए-सेक्टर तक फलाइओवर होता तो
ट्रैफिक रोता नहीं,
मैं स्वप्न में खो गया था
क्योंकि ट्रेफिक रो रहा था,
फ्लाइओवर मात्र स्वप्न है
स्वप्न देखना बुरा नहीं
बुरा तो एनक्रोचमेंट,
स्वयं का एनक्रोचमेंट,
सरकारी टेबल पर बैठकर
सरकार को बेचना,
स्वयं को बेचना
अब सरकारी नियम
मात्र नियम ही रह गया
गेकर-सिञ्चिंग और दोइमुख में प्रेम है
महका-महका बहार है,
ताकार कॉम्पलेक्स का इतिहास पुराना है
बगल में ट्रेकर से उतरना है,
ट्रिम्स को देखकर
बचपन अपनी याद आता है,
एक सुई के लिए एक कमरा में रोते-रोते जाना
और आज कमरे-कमरे भटकना,
गेकर-सिञ्चिंग और दोइमुख में प्रेम है
महका-महका बहार है,
नाहरलागुन की सब्जी-मंडी का कूड़ा
और मन का बुरा होना
तय है,
दोइमुख से मिलने का अफसाना
फिर टेम्पो में बैठ जाना
उपहार लेना
लेकिन टेम्पो में बैठकर
दाएं-बाएँ
सिर पर गूमड़ नहीं बनाया तो कुछ नहीं बनाया,
कूद-कूद कर निर्जुली पहुँचना
फिर कुछ पल मौन होना,
किसी ने कहा था
किसी जमाने में
बागे कोई आया था,
यहाँ पहले बसा था
उन्हीं से जुड़ा नाम
बागे तिनाली रखा था,
गेकर-सिञ्चिंग और दोइमुख में प्रेम है
महका-महका बहार है,
दोइमुख से मिलूंगा,
प्रेम की बातें करूंगा,

दिकरोङ की हवाएँ चलेंगी
ऊपर रोनो-पुतु आशीष देगा
लेकिन मन भर गया
गेकर-सिञिंग और दोइमुख की जमीं
खुश नहीं है
मानव, मानव पर बोझ है
शरीर नहीं, मन मलिन है,
गेकर-सिञिंग और दोइमुख में प्रेम
बना रहे सदियों-सदियों तक
दोइमुख से मिला
उपहार दिया
गेकर-सिञिंग लौटा
दोइमुख भी बदल गई थी वैसी नहीं थी,
गेकर-सिञिंग और दोइमुख में प्रेम है
महका-महका बहार है,

.....

दोङ– अरुणाचल प्रदेश के अंजाव जिला तथा भारत, चीन और म्यानमार सीमा में स्थित एक गाँव है, जहाँ से भारत देश में सर्वप्रथम सूर्योदय होता है।

आन्अ-दोञी- आन्अ यानी माँ तथा दोञी यानी सूर्य। अरुणाचल प्रदेश के तानी समूह की जनजाति सूर्य को माता कहती है।

* "बारापुला फ्लाइओवर न होता तो साउथ एक्स और सराय काले खाँ की दूरी कम न होती"- यह पंक्ति रवीश कुमार की लिखी पुस्तक इश्क में शहर होना से ली गई है।

*(**लेखकीय परिचय** : गुम्पी डूसो लोम्बि अरुणाचल राज्य की प्रथम हिंदी अधिकारी के रूप में सम्मानित हुई हैं तथा वर्तमान में राजीव गाँधी विश्वविद्यालय, अरुणाचल प्रदेश में अपनी सेवाएँ दे रही हैं। आपकी अरुणाचल प्रदेश की लोक-कथाओं पर केंद्रित पुस्तक 'यापोम-गालो लोक-कथाएँ' काफी चर्चित रही है। आप वर्तमान में राजीव गाँधी विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में शोधार्थी भी हैं। मोबा: 9233992844, ई-मेल : rguho123@gmail.com)*

 ISSN: 2582-6530

दोरजी लोन्पु की तीन कविताएँ

(1)
मेन

मोनपा समाज में
हर गाँव में
पहुँचने से पहले
कुछ मील
जंगल, तीनाली और चाराली में ही
दर्शन करने मिलेंगे
सदियों से बना ये मेन
दूर दरार से आ रहे
अनजान लोगों को
गाँव-गाँव का रास्ता
दिखाता है
उस मेन में
कुछ सीढ़ी बनी होती है
जिससे मुसाफिर लोग
कुछ चंद आराम फरमा सकें
आज सड़क बन जाने से
अब मेन जंगल में
छुप रहे हैं
अभी बहुत कम लोग
पैदल चल रहे हैं
जिसमें आने वाली
नई पीढ़ी के बच्चे
बहुत जल्द
एक और शब्द खो देंगे।

.....

*मेन-
बौद्ध धर्म में प्रचलित गुम्पा का एक प्रतीक चिह्न

(2)
नेयु

मोनपा समाज में
पुरुष नेयु सुंदर
देखने के लिए
नहीं पहनता
न ही शौक को
पूरा करने के लिए
रीत रही कि
जब पुरुष की शादी हो जाती है
तब वह दायें कान में
नेयु पहन लेता है।

नेयु पहनने से
पता चल जाता है
कि अब वह कुंवारा नहीं है।
रोचक बात यह है कि
वह जिंदगी में
एक ही
पत्नी के साथ रहेंगे।
इसलिए एक ही कानफुली लगाता है।
पूर्वजों की हर चीज
कुछ न कुछ
सीख देती है कि
हमें जिंदगी को
कैसे अनुशासन के साथ
हर पहलू को समझते हुए
आगे बढ़ाना है।

.....

* नेयु : झुमका

(3)

केकोड़

मोनपा समाज में
केकोड़ की पहचान
स्त्रियों को सुंदर दिखना नहीं
न ही सुरूप का प्रतीक
केकोड़ माँ से मिली
शिक्षा होती है।
केकोड़ माँ से मिला
सम्मान और प्रतिष्ठा होती है,
जो हर बेटी के नसीब में नहीं होती।
धागा टूटने पर
माला बिखर जाती है।
फिर भी माँ
उस टूटे हुए केकोड़ को
मजबूत धागे में बांधना सिखाती है,
क्योंकि अच्छी बहू नहीं बनने से
ससुराल टूट जाता है।
इसलिए
माला और धागा को
जिंदगी से जोड़कर
माँ तब तक कहती रहती
जब तक रिश्तों के अहमियत को
समझ नहीं आ जाता
माला बेटियों के बीच पीढ़ी-दर-पीढ़ी
चलने वाली
वो भूमिका होती है
जो जिम्मेदारी का प्रतीक है।
ऐसा कहा जाता है कि
केकोड़ पहनने से
माँ की कमी महसूस नहीं होती
क्योंकि यह माला लाल रंग की होती है।
जो बेटियों के जीवन में
हर वक्त साहस, उत्साह
एवं नवजीवन बनाए रखते हैं।

---

* केकोड़: माला

***

(लेखकीय परिचय : *दोरजी लोन्पु अरुणाचल प्रदेश के मोनपा जनजाति के पहले युवा कवि हैं। इनकी कविता-संग्रह की दो पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं- 'मोन्युल के पेङदाङ में खिले फूल' और हाल ही में प्रकाशित 'रंगहीन दुनिया के वारिस'।*
मोबा: 9436059651, ई-मेल : dorjeelonpu1990@gmail.com)

सोनी रुमछू की चार कविताएँ

(1)

अस्तित्व

जन्म की आशा ही
नहीं की गयी जिसकी
पर जन्मी वह
ईश्वर भेजना चाहते थे जिसे,
आधे दिल से
अपनाई गयी वह
अपने घर-समाज से
ठुकराई हुई
इस संसार में आखिर
आ ही गयी वह।
भाइयों के बीच
पिता का स्नेह तलाशती,
जरूरतों के लिए
अपनों के आगे हाथ फैलाती,
कहीं सहारा न पाकर
खुद ही खुद को
मुकम्मल किया उसने
अपनी राह
उसने खुद बनाई है।
समाज के
सारे मापदंडो को
तहस-नहस करती हुई
अपनी नई चाल चलना,
पितृसत्तात्मक समाज में
आवाज़ बुलंद कर
अपने अस्तित्व की
गवाही देना,
क्या आसान सफ़र रहा होगा यह?
आसान था नहीं
सबसे लड़कर अपने हक,
अपने अस्तित्व की नींव रखना,
अपनी आवाज़ बुलंद करना
जब कोई कहे
'मर्दों के बीच न बकना',
'औरतों की तरह रहो' कहने पर
उनका मुंह बंद करना
उनकी तंज भरी हँसी का जवाब
मुस्काते चेहरों से देना,
आसान था नहीं
सबसे लड़कर खुद को दर्ज करना
और मौत का रास्ता आसान लगने पर भी
जिंदगी का चुनाव करना
आसान नहीं था यह।

(2)

काश !

माना कई भाई-बहन थे
कई ज़िम्मेदारी थी,
खाने-पीने की किल्लत रहती थी
कभी-कभी ही मनपसंद
खाना मिला करता था
पर स्कूल की दहलीज ही
चढ़ने दिया होता मुझे
काश पढ़ने दिया होता मुझे।
काश! पढ़ने दिया होता मुझे,
तो धोती नहीं मैं गंदे बर्तन,
गंदे कपड़े
अनजान व्यक्ति के लिए
पकाती नहीं मैं
स्वादिष्ट भोजन
खुद बासी खाने को,
होती नहीं मैं मजबूर
किसी के घर जाने को
और घुट-घुट कर
बचपन बिताने को।
काश पढ़ने दिया होता मुझे,
तो करती नहीं मैं संघर्ष
काम ढूँढ़ने को,

होती नहीं मैं लाचार
किसी अजनबी से ब्याहने को।
काश पढ़ने दिया होता मुझे,
तो सिखाती मैं भी
अपने बच्चों को
क ख ग,
पढ़ाती उन्हें
आदर्श कहानियाँ,
बनती उनकी
प्राथमिक शिक्षक मैं।
काश पढ़ने दिया होता मुझे,
हर बात पर दूसरों का
सहारा न लेना होता
काश मुझे केवल अक्षर का ही
ज्ञान होता।

(3)

वहाँ नहीं पहुँचना

नहीं पहुँचना वहाँ
जहाँ लाशों की सीढ़ियाँ बनायीं जाती हों,
जहाँ बेईमानी के सहारे
ईमान का गला घोंट दिया जाता हो,
जहाँ गरीबों से छीनकर
अमीरों को सब दे दिया जाता हो,
जहाँ औरों का घर फूँककर
अपनी रोटियाँ सेकी जाती हो,
जहाँ धर्म का पैगाम बस
नफ़रत को बढ़ाना हो,
जहाँ कुर्सी मिलने पर
ईमानदारी खो जाती हो,
और अपने ही लोगों का दर्द
भुला दिया जाता हो।
नहीं पहुँचना वहाँ
जहाँ पहुँचने के लिए
विकास के नाम पर
विनाश की नीति अपनाई जाए,
मात्र कुछ सुविधाओं के लिए
बहुमूल्य पेड़ काटे जाएं,
बिजली के लिए
बस्तियाँ उजाड़ी जाएं,
और पल भर के आराम के लिए
अगली पीढ़ी दाव पर लग जाए।
नहीं पहुँचना वहाँ
जहाँ पढ़ना-लिखना सब व्यर्थ हो जाए,
इंसान का इंसान से
भरोसा ही उठ जाए,
नहीं पहुंचना वहाँ
जहाँ पहुँचकर करुणा खो जाए।

(4)

विवशता

जंग छिड़ी रहती है
मस्तिष्क में हमेशा
जाति, धर्म, लिंग
आधार बन ही जाते हैं और
विचार बदल ही नहीं पाता।
किसी की जाति पूछना
क्या अपने-आप में जातिवाद नहीं?
क्या इंसान की पहचान जाति ही है?
धार्मिक विचारों का अलग होना
क्या लोगों के बीच की दूरी समझी जाए?
कमजोरी का उदाहरण हमेशा स्त्रियाँ ही क्यों बनी?
आपके सामने सब कुछ
खत्म होता दिखे और
आप लिख-लिखकर
कलम तोड़ दो पर
लोगों को यह बस
एक कविता ही लगे।
……..

*(**लेखकीय परिचय :** सोनी रुमछू राजीव गाँधी विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में शोधार्थी हैं।*
मोबा: 8729941573, ई-मेल : sonyrumchu0872@gmail.com)

जोमयीर जीनी की दो कविताएँ

(1)

इगिन और ओयोक

'आ-न'[1] के साथ 'इगिन'[2] लिए
जंगल जाया करती थी
भर-भर टोकरी
सब्जी बटोरा करती थी
'आ-बो'[3] के साथ 'ओयोक'[4] लिए
जंगल जाया करती थी
घर में घेरा लगाने
बांस लाया करती थी
इगिन और ओयोक के बीच
कभी चुनना नहीं पड़ा था
बेटी हूँ, बेटा नहीं
कभी सुनना नहीं पड़ा था।

स्कूल के फैंसी ड्रेस प्रतियोगिता में-
पाँच वर्षीय, मैं
'आ-न दोन्यी'[5] नहीं
'आ-बो तानी'[6] बनी थी मैं
'गा-ल'[7] नहीं
'हा-ब'[8] पहनी थी मैं,
इगिन और ओयोक के बीच
कभी चुनना नहीं पड़ा था
बेटी हूँ, बेटा नहीं

कभी सुनना नहीं पड़ा था।

यूं ही,

बचपन
बचपने में बीत गया
और आपकी छोटी-सी बेटी
सयानी हो गई;
हुए मेरे रिश्तेदारों में बहुत चर्चे
कहा,
'कितना करोगे और इसपे खर्चे?'
हुई मेरे जवान होने की खूब तैयारी
अर्जी जारी की है बहुत भारी
जन-सभा ने जताई शंका
दूल्हा ढूंढ़ो कोई ढंग का!
वो कहने लगे।

वो कहने लगे
कि मेरे सपनों में भी होंगे बंधन
कि मैं अपनी नहीं, हूँ मैं पराया धन
कि मेरी लकीरें यूं ही बनकर आई हैं
इनमें क्या ही दोष,
क्या ही दुहाई है।
वो कहने लगे।
वो कहने लगे
कि मेरा अस्तित्व मुझ से नहीं
पारिवारिक दायित्व से है।

मैं कहती हूँ
आपके निगाहों से निगाहें
बराबर- कर चल सकती हूँ
हर रंग- रूप में ढल सकती हूँ

[1] आ-न : माँ
[2] इगिन : टोकरी
[3] आ-बो : पिता
[4] ओयोक : तलवार
[5] आ-न दोन्यी : सूर्य देवी
[6] आ-बो तानी : (गालो समुदाय के) पहला पितृ पुरुष
[7] गा-ल : (गालो समुदाय के) महिलाओं का पोशाक
[8] हा-ब : (गालो समुदाय के) पुरुषों का लंगोट

सारा-का-सारा
बस एक भ्रम ही तो है
देखिए हमारे एक-से कर्म ही तो हैं
इगिन और ओयोक के बीच
कभी चुनना न पड़े
बेटी हूँ, बेटा नहीं
कभी सुनना न पड़े।

(2)

बेटी हूँ, बेटी रहूँगी

अरे! बेटा
सुनो! बेटा
ऐसा करना बेटा
वैसा करना बेटा
अरे! बेटा

अरे! बेटा
कहकर न पुकारो मुझे
नहीं बन सकती हूँ आपका बेटा।
नहीं बनना चाहती हूँ आपका बेटा
बेटी हूँ
बेटी रहूँगी!

इतनी शिद्दत से
इस झूठ को
न पिलाओ मुझे,
कि कहीं ये
सच बनकर
मेरी रगो में दौड़े
बेटी हूँ
बेटी रहूँगी!

एक राजकुमार आएगा,
तुम्हें सफ़ेद घोड़े पर
बैठा कर ले जाएगा,
दूर पहाड़ी के उस पार
बसाओगे तुम अपना संसार
तलाश है मुझे
इन आँखों को
न उस राजकुमार का
तलाश है, इन आँखों को
तो उस घोड़ी का,
जिस घोड़ी पर बैठकर,
लगाम अपने हाथों लेकर,
(क्योंकि आपको तो लगता है
लगाम ही नहीं मेरी ज़बान पर,
है न?)
तो उस घोड़ी पर बैठकर
लगाम अपने हाथों लेकर
जाऊँगी मैं,
समाज के उस पार
जहाँ समझ हो भरपूर।
जहाँ बचपन में मुझे
गुड्डा-गुड्डी तक
न सीमित रहना पड़े
जहाँ यह कहना न पड़े
कि माँ,
भाई को तो आपने
ऐसा टोका ही नहीं था

जहाँ मेरी कीमत
इस चेहरे से न तौला जाए
है हिम्मत?
इन पंखों को चलो खोला जाए
इन आँखों को चलो खोला जाए
जिसमें, हजार सपने हैं
बुनी हैं तमाम रेखाएं

ये रेखा
ये रेखा जो काफ़ी पुरानी है,
ये रेखा जो है काफ़ी पुरानी
लो लड़की हो गई है सयानी
हाँ,
माना
माना कि ये कंधे कमजोर हैं,
माना कि ये कंधे कामज़ोर हैं
इनमें थोड़ा- कम,
थोड़ा-कम- ज़ोर है;
पर दे सकती है
ये आपको कंधा
क्यों ये कानून है अंधा?
क्यों ये कानून है अंधा?
बेटी हूँ,
बेटी रहूँगी
इतनी शिद्दत से
इस झूठ को
न पिलाओ मुझे,
कि कहीं ये
सच बनकर
मेरी रगों में दौड़े
बेटी हूँ,
बेटी रहूँगी।

---

*(**लेखकीय परिचय:** जोमयीर जीनी अरुणाचल प्रदेश की उदीयमान कवयित्री हैं। आपका पहला काव्य-संग्रह 'सैनिटी इन वैनिटी' चर्चित रहा है। आपका दूसरा काव्य-संग्रह 'तुम्हारी प्रिय' अंग्रेजी और हिंदी में साथ-साथ प्रकाशित हुआ, जिसने लोगों का ध्यान आकर्षित किया है। वर्तमान में आप राजकीय दंत महाविद्यालय एवं चिकित्सा केंद्र, आरआईएमएस, आंध्र प्रदेश में अपनी सेवा दे रही हैं। मोबा. 9774623215, ई-मेल : jomyirjini@gmail.com)*

वांगो सोसिया की दो कविताएँ

(1)

मुझे जीना है

मुझे जीना है
अपनी बेटी के लिए
मुझे जीना है।

मुझे जीना है
ताकि नर्म बिस्तर लगा सकूँ
और उसका मनपसंद नाश्ता बना सकूँ
मुझे जीना
ताकि उसके झोले में
ढेर सारी किताबें और फल भर सकूँ।

मुझे जीना है
ताकि उसे अपने हाथों से चोटी बनाना सीखा सकूँ
मुझे जीना है
ताकि उसे दोस्तों के साथ
खेलता और मुस्कुराता देख सकूँ
मुझे जीना है
अपनी बेटी के लिए।

मुझे जीना है
ताकि उसकी जिंदगी के संघर्षों में साथ दे सकूँ
उसके दिल में करुणा का बीज बो सकूँ
मुझे जीना है
ताकि उसकी जीत में, मैं अपनी जीत देख सकूँ
मुझे जीना है
ताकि उसके साथ एक अपनाया हुआ समाज बना
सकूँ
मुझे जीना है।

अपनी बेटी के लिए
मुझे जीना है।

मुझे जीना है
ताकि उसके साथ
जंगली फूल और लकड़ियाँ इक्कट्ठे कर सकूँ
मुझे जीना है
ताकि उसके साथ थोड़े फल, थोड़े सब्जियाँ उगा
सकूँ
मुझे जीना है
ताकि आने वाली पावस ऋतु में
बारिश का मज़ा ले सकूँ
मुझे जीना है
ताकि उसके लिए फूल का हार बना सकूँ
मुझे जीना है
अपनी बेटी के लिए।

मुझे जीना है
ताकि उसे कुश्ती लड़ना सीखा सकूँ
मुझे जीना है
ताकि उसे फूल से त्रिशूल बनना सीखा सकूँ
मुझे जीना है
ताकि उसे अधर्म का नाश करना सीखा सकूँ
मुझे जीना है
ताकि उसे कलम की सही पहचान करना बता सकूँ
मुझे जीना है
अपनी बेटी के लिए
ताकि उसके साथ

मैं एकता, प्रेम और शांति का संदेश दे सकूँ
वसुधैव कुटुंबकम का मतलब बता सकूँ।
मुझे जीना होगा,
हाँ, मुझे जीना होगा
अपने बेटी के लिए।

(2)

मैं हारा नहीं इस जंग में

यह कहानी कभी मेरी थी ही नहीं
बस कुछ लोगों की अस्पष्ट आवाजें थी
जिसे मुझे आवाम तक पहुँचाना था

मैं हारा नहीं था, इस जंग में
मैंने बहुत कुछ सीखा है, जाना है
और
मैंने देखा है
लोहे की तरह तपती धूप में
पत्थर तोड़ते हुए, उसे देखा है
घर पर आते ही
एक फूल के रूप में उसे देखा है
मगर कहो तो सही , बताओ तो सही
बस एक बार, बस एक बार
कि हो कौन तुम ?
यह लोग तुम्हें उस हालत में न छोड़ें
कि तुम एक पत्थर तोड़ पाओ
मैंने देखा है
उसे एक ऊँची ईमारत से कूदकर आत्माहत्या करते हुए
एक माँ को अपने बच्चे के लिए तड़पते हुए
मैंने देखा है...
एक अठारह साल के बच्चे को घर से निकलते हुए
अठारह साल का बच्चा ? अठारह हो या इक्कीस हो या पच्चीस
एक माँ के लिए उसके बच्चे उसकी दुनिया होते हैं
मगर तुम क्या समझोगे?

यह दर्द मेरा नहीं, उन माँओं का है
जो पितृसत्तात्मक समाज में अपने बच्चों के लिए न लड़ पाई
यह दर्द उन बहनों का है,
जो अपने भाइयों के लिए खड़ा न हो सके
यह दर्द उन औरतों का है,
जो अपनी आवाज़ न बुलंद कर पाई

पहचानों इन दरिंदों को
ये हत्यारे हैं
भावना, अविश्वास और ऐसे कई लोगों के हत्यारे हैं

यह जंग अब तक चल रही है
और इस जंग में केवल मैं नहीं
इस जंग में वे सभी हैं
जिनका इस समाज ने
केवल हिंसा, अत्याचार और शोषण किया है

आज हम उठेंगे, हम लड़ेंगे
आप रोकना मत, हम करेंगे सामना
यह कौन सा धर्म है, यह कौन सी व्यवस्था है
जो मुझे आप लोगों से दूर रखती है

नहीं चाहिए ऐसा धर्म
जो मुझे मेरे परिवार से अलग रखता हो
नहीं चाहिए ऐसा धर्म
जो मुझे समाज से अलग रखता हो
नहीं चाहिए ऐसा धर्म

जो मुझे अपने आप से दूर रखता हो
और उन लोगों का क्या
जो धर्म के नाम पर पाप पर पाप करते है
सही कहा है ओशो ने
'जब तक धर्मो में पाप धोने के व्यवस्था है, लोग
पाप धो-धो कर पाप करेंगें।'
माँ, ये वही लोग हैं
जिन्होंने मुझे मानसिक रोग का शिकार कहा।
माँ, ये वही लोग हैं
जिसने मुझे पाप के रूप में जन्मे हो कहा
और तुम मान गई।

न तुम समझी, न लोगों ने मुझे समझने की कोशिश की
तुमने यह कहकर छोड़ दिया कि तू बड़ा हो गया है
अपनी जिंदगी जी
तुम यह बात बार-बार क्यों दोहराती थी
हाँ माँ
बड़ा हो गया हूँ
आँचल से दूर कर
सामने खड़ा तो कर दिया
मगर अब जाऊँगा कहाँ
मुझे आपकी आज भी इतनी ही ज़रूरत है
जितनी उस वक्त थी
जब पहली बार आपने
लड़खड़ाते हुए चलना सिखाया था
जीवन में पहला अक्षर बोलना सिखाया था

मगर मैं मासूम
इन दरिंदो से अपरिचित क्या करता
आज बहुत बड़ा हो गया हूँ
एक साहित्यकार बन गया हूँ
आज गलत और सही में फर्क पहचानता हूँ
आज बहुत बड़ा हो गया हूँ
शब्दों का मूल्य जानता हूँ
आज इतना बड़ा हो गया हूँ
कलम को तलवार से बलवत्तर मानता हूँ
हाँ, मैं बड़ा हो गया हूँ
कहानी सुनाता हूँ
लोगों के हक़ के लिए लड़ता हूँ
मैं समलैंगिक हूँ
मैं इंसान बनना सिखाता हूँ

अब बोलो- है कोई, जो मुझे रोकेगा?
है कोई जो मुझे तोड़ेगा?
हाथों में समाज द्वारा पहनाई ज़ंजीरों को तोड़ा है मैंने
अब कंधा से कंधा मिलाकर चलता हूँ

तुम रूकना मत
वे रोकेंगे, उठाके पटकेंगें, वे ढोंग रचाएँगे
मगर तुम रूकना मत
तुम हार मत मानना
वे पीछे धकेलेंगे, तुम्हें ज़लील करेंगे
मगर तुम हार मत मानना
तुम उस मनुष्यता के मशाल को लेकर चलते रहना
इंसान बनना
तुम इंसान बनना, जो प्रेम करना सिखाता हो
तुम एक बेटा बनना, जो सब की इज्ज़त करता हो
तुम बेटी बनना, जो सबकी मदद करती हो
तुम एक पिता बनना
जो मुसीबतों का डटकर सामना करता हो
तुम एक माँ बनना, जो सबको संवारती हो
हाँ, मैं आज हारी नहीं माँ, मैंने सीखा है
मैंने जीना जाना है
और कैसी हार माँ, अपने परिवारों से, अपने लोगों से
और यह कैसी जंग

जो यूँ ही छेड़ दी आप लोगों ने।
ऐसा दर्द जो सहन न कर सके
ऐसा खाना जो खा न सके
ऐसा रिश्ता जो निभा न सके
ऐसी जिंदगी जो गुजारी न जा सके
हमने वो जिंदगी गुजारी है

हमसे पूछो परिवार से अलग होना होता क्या है?
हमसे पूछो बिना इज्ज़त की जिंदगी होती कैसी है
अरे, हमसे पूछो ऊपर न छत, न साथ देने वाला हो
तो घर-बार होता क्या है ?
अरे, हमसे पूछो बिना माँ के जिंदगी होती कैसी है?
जब इंसान मजबूर हो आत्महत्या करने को
तो दिल की आवाज होती कैसी है
हमसे पूछो !

सुनती हो? या बहरी हो तुम
जो अपने बच्चों की चीख न सुन पाई
देखा है? या अंधी हो तुम
जो अपने बच्चों का दर्द न देख पाई
कुछ बोला तुमने या गूंगी हो ?
जो अपने बच्चों के हक के लिए न लड़ सकी।

किसी को रंग के लिए, किसी को लिंग के लिए
किसी को जाति के लिए।
नहीं माँ, ऐसी दुनिया नहीं देखना चाहता
जहाँ एक मनुष्य दूसरे मनुष्य का शोषण करे।

जब आज इस बड़ी सभा से
अपने घर वापस जाएंगे
इसी आशा में, इसी ख्वाहिश में कि कुछ बदलाव
हो, कुछ नया हो
जहाँ प्यार हमारी भाषा हो, मनुष्यता हमारे दिल में
और शांति लोगों के विचारों में
एक परिवार की तरह हो
बच्चों के झोले में
ढेर सारे फल और किताबें हों
एक समाज जिसमें सहज स्वीकृति हो
ऐसा देश जहाँ प्यार करने की आजादी हो
कौन रहता है इस देश में
हम रहते हैं, और हम ही रहेंगे, बदलाव हम लाएंगे
अब समलैंगिक को हम परिभाषित करेंगे
मगर तुम वादा करना
तुम साथ दोगे
पीछे मुड़ोगे नहीं
तुम वादा करना
तुम हार नहीं मानोगे
तुम्हारे साथ में हूँ, हम हैं
हम सब हैं
तुम्हें वो पहला कदम बढ़ाना होगा
खड़े हो कर कड़े निर्णय लो, अपने लिए खड़े रहो
क्योंकि
यह जंग हम कभी हारे ही नहीं
हमने सीखा है, हमने जाना है
कि मनुष्यता से बड़ा धर्म–कुछ है ही नहीं।

***

*(**लेखकीय परिचय :** वांगो सोसिया राजीव गाँधी विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में शोधार्थी हैं।*
मोबा: 8131806570, ई-मेल : wanggosocia@gmail.com)

गोकेन गेई की तीन कविताएँ

1.

जुगनू...

क्या मैं जुगनुओं को दोबारा देख पाऊंगी...?
सभी जगहें
इतनी भीड़-भाड़ वाली और दमघोंटू हैं...!
मुझे डर है कि
मैं उन्हें दोबारा कहीं न देख पाऊं...!!

क्या मैं फिर से जुगनुओं को ढूंढ़ पाऊंगी...?
कोहरे से भरे हुए सारे रास्ते बहुत धुंधले हैं...
मुझे डर है कि शायद मैं उन्हें दोबारा न पा सकूं..!
अरे जुगनुओं..! औरों की तरह तुमने भी मुझे
अकेला छोड़ दिया...
भीड़ भरी जगहों पर अकेले...
धुंधली राहों पर अकेले..!

मेरे मित्रों..! वे दिन गए जब आप सब संजोते थे
जगमगाती रोशनियों से भरी मेरी राहें...!!
वे दिन गए
जब आप सब मेरे यहाँ मुझसे मिलने आते थे...!
अब तुममें से कोई मेरी राहें नहीं सजाता..!
अब तुममें से कोई मेरी जगह
मुझसे मिलने नहीं आता...!
मानों तुम सब भी डरे हुए हो....
भीड़-भाड़ वाली जगहें...
धुंध भरे रास्तों से डर लगता है...!

भीड़ भरी जगहों में खो जाने से डर लगता है...
मेरी तरह, मानो तुम भी डरे हुए हो...
मुझे फिर से न पा सकने का डर..!!
मानो तुम भी डर गए हो मेरे दोस्तों..!
डर है कि धुँधले रास्ते तुम्हें मुझ तक शायद न ला
पाए..!!!!

2.

खुद को वक़्त देना है अभी मुझे

जरा ठहरो कुछ देर..! थोड़ा वक्त लगेगा..!!
समय..! कृपया धीरे-धीरे आगे बढ़ो...

मैं तुम्हारे साथ चलना सीख रही हूँ..!
लेकिन इसमें वक्त लगेगा.. ज़्यादा तेज़ मत चलो..!

जरा ठहरों कुछ देर..! थोड़ा वक्त लगेगा..!!
करने को बहुत कुछ बाकी है..
कई अधूरे सपनो को मुझे दफनाना है..!
कई दर्दनाक यादों को मुझे मिट्टी में सुलाना है..!
मैं उन्हें दफनाने के लिए
एक खूबसूरत जगह ढूंढ़ रही हूं..!!
लेकिन इसमें वक्त लगेगा...!!!!

मुझे बहुत से अनकहे शब्द कहने हैं..!
कई अव्यक्त भावनाएँ जाहिर करनी हैं..!
कई अनछुए पल मुझे जीने हैं..!
मुझे बहुत सारे प्यारे पल जुटाने हैं..!!
लेकिन इसमें वक्त लगेगा..
समय, ज़्यादा तेज़ मत चलो..!

जरा ठहरो कुछ देर..! थोड़ा वक्त लगेगा..!!
समय, कृपया धीरे धीरे चलो..!

मुझे अपना प्यार ढूंढ़ना है...!
लेकिन इसमें भी शायद वक्त लगेगा..!

मैं ख़ुद भी इन लम्हों को जीना चाहती हूं
समय, ज़रा रुको...इनको साकार होने में
थोड़ा, तो वक्त लगेगा
इन सबके लिए
खुद को वक़्त देना है अभी मुझे।

3. कोंपल

मैं और कोंपल..!
आप किससे बात करना चाहते हैं..?
"उस आत्मा से जो मुझमें ईश्वरीय प्रेम देखती है.."
उसने जवाब दिया..!!
वह कौन है जिसे आप देखना चाहते हैं..?
मैंने उससे पूछा..!
"जो मुझे आत्मा की निगाहों से देखती है"...!!
उसने जवाब दिया..!!
सबसे सुंदर कौन है..??
"वह जिसे हर जगह
सुंदरता ही सुंदरता दिखाई देती है..."
उसने जवाब दिया और मुस्कुराया..!!
फिर मैं कौन हूँ तुम्हारी नजरों में..? मैंने पूछ लिया..!!
"तुम वही हो जिसकी मैं प्रतीक्षा कर रहा था.."!!!
मेरे ही भीतर उगे कोंपल ने उत्तर दिया..!!!!

***

***(लेखकीय परिचय :** गोकेन गेई, शासकीय महाविद्यालय, गेकू, ज़िला अपर सियांग, अरुणाचल प्रदेश के इतिहास विभाग में सहायक प्रोफेसर हैं। मोबा:8131980788, ई-मेल : geyigoken27@gmail.com)*

मियाज़ी हज़ाम की तीन कविताएँ

(1)

सोलुंग पर्व

सोलुंग ख़त्म हो गया है
चारो ओर फैले हुए हैं-उत्सव के अंतिम अवशेष,
तंबू के निशान
मंडप और पदचिह्न से भरा हुआ मैदान,
गूंजते मंत्रोच्चार,
मादक शराब और भुने हुए माँस,
सुडौल शरीर वाले पुरुष और सुंदर महिलाएँ,
जो हैं पहाड़ियों के देवताओं की संतानें,
प्रार्थनाएँ, अनेक अनुष्ठान और नृत्य
नेताओं और प्रशासकों के भाषण।

राणाघाट पुल के बगल में
मैं देखता हूँ आपका प्रवाह,
हे, शक्तिशाली सियांग!
आपका जल गवाह है
सुनहरे अतीत
समृद्ध वर्तमान और अदृश्य भविष्य का,
आपके बच्चे
आज विदेशी आस्थाओं को अपनाने लगे हैं,
समय का उतार और प्रवाह बदलता है
अपना रूप हर पल
जैसे आपके पानी का बदलता है रंग,
मटमैला लाल, पारदर्शी हरा और शांत नीला होना
कंक्रीट के गाने
कुकुरमुत्ते की तरह पनपते भोजनालय और
स्मार्ट सिटी के सपने,
घुमावदार पहाड़ों को काटकर
सड़क अब पक्की हो गई है,
हमारी पहली मुलाकात में
सड़कें शिशु थीं, और कल
हम विश्वदृष्टिकोण, सामाजिक आस्था और
आनुष्ठानिक प्रथाओं पर चर्चा कर रहे थे,
एक बंद कमरे में,
सभागार में सब उपस्थित, बैठे हुए थे मुख्य वक्ता,
संरक्षण, पुनर्निर्माण एवं प्रदर्शन पर बातें हो रही
थीं,
संस्कृति जो आज जीवित है,
अब इसी तरह विकसित और पुनर्नवा हो रही है।

(2)

जामुन का पेड़

पका हुआ जामुन, जो गिरते हैं
पुरानी छतों पर
रात और दिन से बेखबर होकर
कुछ विकृत आकृति बनाते हुए पड़े रहते ऊपर
जिसके नीचे लोग बैठते हैं शाम को, आग के पास
इकट्ठे।
उन फलों का पकना पतझड़ है,
पचासवीं सर्दी को झेलता एक आदमी
इधर-उधर घूमते,
हाथ में बाल्टी
(या कभी-कभी एक कटोरा)
गिरे हुए जामुन चुनते,
अपने बचपन वाले बगीचे में।
उन्हें बड़े प्यार से धोते और सुखाते हैं,
सर्दियों की शर्मीली धूप में

सिकुड़ी हुई यादें
तेल और मसालों के साथ संरक्षित
सर्दी को याद करने के लिए
चिलचिलाती गर्मी में
पककर गिर जाती हैं
इसी प्रकार सबको गिरना होगा एक दिन।

---

(3)

शरद का पुनःआगमन

पुनः आगमन हुआ ऋतु शरद का,
पीछे वाले आंगन में
गुड़हल की पत्तियों का हँसना,
लुका-छिपी खेलना
ढेर सारे फूलों के बीच
साल के आखिरी फूल का खिलना
प्रवासी पक्षी
इसकी शाखाओं पर तेजी से छलांग लगाती
जबकि
एक बिल्ली का बच्चा
वॉशिंग मशीन के ऊपर सोया हुआ है
आँख खोलता है और फिर सो जाता है।
एनएच 37,
सात ऋतुओं को मैंने
तुम्हारे नाम समर्पित कर दिया है।
शांत संध्या में छिटपुट बादल कभी-कभी
नीले आसमान चित्र बनाता है-
राक्षस और ड्रेगन की तैयारी का
देवी के स्वागत का
कभी-कभी नाव पर
कभी घोड़ा, तो कभी शाही हाथी पर
उत्सव के चार दिन
और फिर शांति,
फिर एक इंतज़ार
अमावस्या के लिए
हुई घोषणा काली के आगमन की,
रोनो हिल्स पर पंद्रहवीं शरद ऋतु
मेरी आत्मा मेरी सफेद मेज में समा गई
मैंने पत्तों को बदलते देखा है
पंद्रह साल तक,
लकड़ी में लपेटी आत्मा
जिसने मेरी दृष्टि अवरूद्ध कर दी है।
मेरी खिड़की के पीछे बन रही नई इमारत के नीचे
मैं हमेशा जाता हूँ
और
आसमान को रंग बदलते हुए देखता
और प्रतीक्षा करता
सर्दियों के लिए
जो हमें पुनः पल्लवित करने के लिए आने वाली है।

***

***(लेखकीय परिचय :** डॉ. मियाज़ी हज़ाम राजीव गाँधी विश्वविद्यालय के अंग्रेजी विभाग में प्रोफेसर हैं।*
मोबा:9436270177, ई-मेल : miazi.hazam@rgu.ac.in)

दोयिर एते की तीन कविताएँ

1.

शिकार

पूर्णिमा की हर रात
हमारे पूर्वज एकत्र होते हैं
नदी के किनारे
हथियार हैं उनके साथ
बांस के तीर और दाव
प्रवेश करते हैं
उस जंगल में
जहाँ कभी मानव जाति का पतन हुआ था,
आज अविचल खड़ा है वह,
कफन की तरह शांत, खामोश!

जंगल गवाह है,
हर पुत्र के जन्म और पिता की मृत्यु का
जंगल गवाह है,
हर उन जनजातीय नियमों का
जहाँ हर आदमी जंगल का बच्चा है।
सदियों से हर पीढ़ी का जन्म इसी प्रकार हुआ,
जवान शरीर में पुराना खून
यह शरीर और वह जंगल
एक ही परंपरा से बंधे हैं सब,
चमकते चाँद में,
रात की ठंडी रौशनी में,
लोग बिना परवाह
अपनी परछाईं डालते हैं।
रात की ठंडी रोशनी
छुपी हुई परछाइयों को प्रकट करती है,
लंबी काली शाखाओं पर
अंधेरे में
जीवन का आदिम गीत गाता,
शिकारी और शिकार के बीच
एक पागल कर देने वाला नृत्य
प्रकट होता है
लुका-छिपी करते हुए।

पुरुषों के गुजरते पाँव,
ताजे मांस की तलाश में।
एक झटके में टूटी हुई टहनी,
सर्र...! एक हल्की-सी सरसराहट,
गर्रर्! एक खतरनाक गुर्राहट,
कानों में जैसे कोई भयंकर आवाज,
ललाट पर पसीने की बूंद,
बहरे कर देने वाले सन्नाटे में
जंगल में जैसे जान आ गई
क्रूर जानवरों का यह क्षेत्र
धुंध और वाष्प से घना
चारो ओर पंजे, शल्क और दाँत के निशान,
अपने अस्तित्व को बताते हैं
स्वयं को पुनर्जीवित करते हैं।

अतीत में की गई भूल
दोहराना नहीं चाहिए
जब एक भाई को गोली मार दी गई
एक अमावस की रात में,
एक अंधेरे आकाश के नीचे
दोन्यी-पोलो उसकी आत्मा को आशीर्वाद दें!
क्योंकि उसकी मृत्यु बहुत बुरी थी
कभी-कभी पुरुषों का दिल
अपने हक से अधिक की तलाश करना चाहता है

पर भूल जाता है कि वह जंगल में है,
जीवन को नियंत्रण करता यह जंगल।
अंदर-बाहर, बाहर-अंदर,
अपनी ही लय में मदमस्त,
आशीर्वाद और श्राप से भरा हुआ
जहाँ अपने कार्य का निष्पादन
अथवा सीमा के उल्लंघन में से
किसी एक का चुनाव हमें स्वयं करना होता है।

प्रातःकाल की शोभा खिल उठती है
नींद टूटती है, मनोरम चिड़ियों की चहचहाहट से
थके हुए शिकारियों को जगाती है यह सुबह,
भोर निकट है, हमें जल्दी करना होगा
सूरज उग रहा है धीरे-धीरे,
ओह! माँ, पक्षी अभी उड़ेगी अपने लक्ष्य की
तलाश में
बहुत जल्द ही
फुर्तीला हिरण, कर्कश सूअर, डरपोक गिलहरी
भालों और तीरों से परे होंगे।

पीछे घर के चूल्हों में
प्रत्याशा में आग जलाई गई होगी
बच्चों को लेकर चिंतित
और पुरुषों की प्रतीक्षातुर पत्नियाँ
भूख और पुरा-भय के साथ
बाट जोहती हैं
बूंद जैसे छलकने के लिए बिल्कुल हो तैयार।

2.

लुप्तप्राय लिपि

खोये हुए शब्दों की कहानी
अभी भी हमें सताती है
हम पर आरोप लगाया जाता है कि
हमारे पास इतिहास और प्रामाणिकता का अभाव है
हमारी वाचिकता को सुनी-सुनाई बातें कहकर
खारिज कर दिया गया,
इसलिए
आज हम अभाव से पीड़ित हैं
सभी भाषाओं को लेकर, जो परंपराओं से निर्मित हैं।

पौराणिक समय में, हमारे देवताओं ने हमें उपहार दिया
उत्कीर्ण प्रतीक और संकेत
चमड़े, छाल और पत्ती में
पर यह हास्यकर है या दुःखद घटना
कि उन चमड़े, छाल और पत्तियों को
भूख में चबाया गया था
बकरियों, मेमने और कुत्तों द्वारा
या डूब गया था
प्रचंड बाढ़ में और नदी में
यहां तक कि
तानी ने भूख में
उन चमड़े के टुकड़ों का सहारा लिया
प्रतीक और संकेत
सब खो गए।

स्मृति में केवल हम जीवित रहे
हम अपनी कहानियों को सुनाने की इच्छा रखते हैं
आध्यात्मिक न्यूब के जादुई मंत्रों में।
दादी-नानी की स्मृतियाँ
बस गई हैं तन-मन में,
उत्सुक कान और आँखों में समाई
उनसे की बातचीत के दृश्यों को
याद करते रहते हैं,
विचार से तेज़ शब्द, आवाज और ध्वनियाँ
सब बह गया

एक उफनती नदी की तरह
सूखी कलम ने फिर गोद लिया
आधुनिक आवाज़ों द्वारा चिह्नित और हस्ताक्षरित
कुछ शब्द, वर्ण।
लेकिन हमने उन कहानियों को अधिक गाया,
अपने बचाव में कि
हमारे चमड़े में उतारे गए शब्द नहीं बचे
लेकिन, सब कहने की बात है
याद रखने के लिए स्मृतियाँ काफी हैं
जिनमें बसी हैं अनगिनत कहानियाँ
अपनी पहचान के ऐतिहासिक साक्ष्य।
ख़ाली आसमान के ख़ालीपन को भरने के लिए
मेरा यह आधुनिक दिमाग है,
अपने पूर्वजों की ओर आकर्षित
जिनके गीत हम आज भी गाते हैं
स्मृति में टंकी स्वर को पहचानते हैं
और सुर में अपने होने को साबित करते हैं।

(**टिप्पणी:** अरुणाचल प्रदेश की लगभग हर जनजाति के पास कोई लिखित लिपि नहीं है। हैरानी की बात यह है कि प्रत्येक के पास एक कहानी है कि कैसे उन्होंने अपनी लिपि खो दी। गालो जनजाति में लिखित शब्द को 'बोई बोला' कहा जाता है। कहानी यह है कि हमारे पूर्वज आबो तानी (पिता तानी) को एक दयालु उई (आत्मा) द्वारा एक जानवर की सूखी खाल में लिखकर लिपि का ज्ञान दिया गया था। भूख के कारण या गलती से तानी ने सूखी खाल को खा लिया और बोई बोला का ज्ञान हमसे हमेशा के लिए छूट गया। -दोयिर एते)

3.
बेचैनी

जब मैं चली, तो तुम रोई,
उन कोल के पेड़ों के बीच
खड़ी होकर
अपनी बूढ़ी आँखों पर
दबाव डालते हुए
तुमने देखा, जहाँ तक नज़र जा सकती थी,
मेरे पिता की बनाई भूमि पर खड़ी हो
तुमने अपने झुर्रिदार हाथ लहराए
सिर्फ तुम ही जानती थी
मुझे अच्छी तरह
मैं तुम्हारा ही अंश थी
जिस जिगर के टुकड़े को
खून-पानी से सनी औरत बनने के लिए
अपने से दूर देश भेज रही थी
मैं अब तुम्हारे चूल्हे का साथी नहीं थी,
जबकि मैं तुम्हारा हाथ पकड़े रखना चाहती थी
लेकिन मेरा सौभाग्य उल्टा था
मैं रेत की तरह फिसलती चली गई।

मैं गहनों और मोतियों से सजी थी,
जो सबके लिए अनमोल थे
पर तुमने देखा
तांबे और पीतल को, लिपटे और फुफकारते
मेरे पैरों और हाथों को जलाते हुए।
मैं कितनी असहाय और बेचारी थी,
एक-एक सांस के लिए जूझ रही थी,
उस वक्त मैं अपने भाइयों को
ज़ोर-ज़ोर से गाते हुए देख रही थी,
यह मेरे लिए सम्मान की बात कैसे हो सकती थी?

मुझे लग रहा था कि
मैं जैसे बलि का बकरा होऊँ
सब मिलकर गा रहे हों
और मैं अकेले आँसू में डूबी थी।

तोप्पो गोन* की तरह
क्या मैं

पत्थर में बदल गयी थी?
क्या मैं
ऐसे ही अकेली रह जाऊंगी हमेशा?
यह एक सिहरन
एक बेचैनी
मेरे सपने में तैर रही थी।
जबकि-
मैं तुम्हारे प्यार का स्वाद चखना चाहती हूँ,
तुम्हारी कोमल छाती पर सोना चाहती हूँ,
तुम्हारा दुलार महसूस करना चाहती हूँ,
तुम्ही एकमात्र सहारा हो जिसे मैं जानती हूँ।

अब, जब तुम लेटी हो
जलती हुई लौ के समीप
सिमटी हुई परछाइयाँ और गीली आँखें
और साथ में पिता की दबी आवाज
जैसे तुम इंतजार कर रही हो
और सिर्फ मेरा इंतजार कर रही हो!
इस घड़ी मैं जो साँस ले रही हूँ
यह एक ऐसा जीवन है
जिसमें मैंने खुद को खो दिया है।
जबकि मैं तुम्हारा हाथ थामे रखना चाहती थी
तुम्हारे हाथ अब भी मेरे पिता की भूमि से जुड़े हैं,
जो अब भी बहुत नरम और मुलायम हैं।
कोल अब सूख गए हैं
तुम्हारा चूल्हा अब ठंडा पड़ गया है,
जबकि मेरे पास सिर्फ कुछ क्षण बचे हैं
तुमसे उधार में लिए हुए।

(तोप्पो गोन- गालो लोककथा में तोप्पो गोन एक युवा दुल्हन है, जो अपने पति के घर जाते समय पत्थर में बदल गई।)

***

***(लेखकीय परिचय** : दोयिर एते राजीव गाँधी विश्वविद्यालय के अंग्रेजी विभाग में सहायक प्रोफेसर हैं। नार्थ ईस्ट राइटर फोरम्स के अरुणाचल चैप्टर के अंतर्गत 'मैट्रिक्स' पुस्तक के दो खंडों के संपादन का कार्य किया है तथा वर्तमान में 'दी अरुणाचल टाइम्स' समाचार-पत्र में पाक्षिक स्तंभ लेखन का कार्य नियमित रूप से कर रही हैं। आदिवासी लेखन एवं अध्ययन में आपकी गहरी अभिरुचि है और आप अरुणाचल प्रदेश लिटरेरी सोसायटी में सक्रिय सदस्य के रूप में अपना योगदान दे रही हैं।
मोबा: 9436046749, ई-मेल : doyir.ete@rgu.ac.in)*

गंखु सुमन्याँ की दो कविताएँ

(1)

बारिश

रोते, रोते
बारिश हुई
कौन था वो
जिसने युद्ध में
पहली चीख लगाई
रोते-रोते!
इस बंजर में
आसमान एक धूसर रंग लिए है,
इसके पीछे छिपा है
युद्ध...
देवताओं का सारा इतिहास
सारा अतीत
जिसके, केवल आँसू हम पर गिरे
हम वो नासमझ,
अल्पज्ञ हैं
अँधेरे में ढूंढ़ते हुए
उन संदेहों को पाले हुए हैं,
जिसका भार हम उठा नहीं सकते।
हे ईश्वर! हमारे लिए
फिर से रास्ता खोल दो,
लाल ऊंची दीवार
समुद्र और हमारे दृश्य
हमारी सुनने की क्षमता
सबको...
भर दीजिए फिर से
इस जहां में
अपनी उपस्थिति का भयावह प्रमाण।

(म्यूस इंडिया के अंक 112, नवंबर-दिसंबर 2023 में प्रकाशित)

(2)

संतरे

संतरे की उपस्थिति
बूढ़े लोगों के सपनों में
मंगलकारी फल की तरह
जो उनको मिले हैं एकदम अंत में,
सभी तरह के श्रम से
निवृत्त हो जाने के पश्चात।
पहाड़ों की पतली पगडंडियां
जिनकी भसकने वाली मिट्टी पर
संतुलन बनाकर चढ़ना,
सूरज की रोशनी में चमकते
सबसे पके फल को चुनना,
जिनकी गंध में मौजूदगी
सभी अच्छी चीजों की
अच्छा पानी, अच्छी धूप, अच्छी मिट्टी,
अच्छी हवा...
बुजुर्ग, छील रहे हैं हाथ
इन हाथों पर हैं अनगिनत दाग और निशान
सूर्य की रौशनी में तपे हुए
जिनकी उभरी हुई नसें
हिल-डुल रही हैं
लगता है जैसे जिंदा हों।
और फिर रस भरे संतरे का स्वाद
मिठास और नमकीन मिश्रण संग
मुंह में घुमा और घुलाकर
बीज फेंक देना
और फिर महसूस करना
कृतज्ञता...
अपने को मिले इस सौभाग्य के लिए।

(मैट्रिक्स एंथोलॉजी के खंड-I, 2022 में प्रकाशित)

***(लेखकीय परिचय** : गंखु सुमन्याँ, वांचा राजकुमार शासकीय महाविद्यालय, देवमाली, अरुणाचल प्रदेश के अंग्रेजी विभाग में सहायक प्रोफेसर हैं। आप रचनात्मक रूप से बेहद सक्रिय हैं और आपकी कविताएँ राष्ट्रीय स्तर की पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं। मोबा:8414912718, ई-मेल : gankhu.sumnyan@gmai.com)*

सुबी ताबा की दो कविताएँ

(अंग्रेजी से हिंदी अनुवाद)

पूर्णिमा ओसुनाम तायेङ

(1)

पाषाण

वह पल जब छोड़ गए तुम मुझे
रूपांतरित हुई मैं
अविचल
खामोश
मेरे अधर पर कोई शब्द नहीं
न ही आँखों में कोई स्पंदन
मै निर्वाक बनी रही
जैसे कोई पाषाण!

(2)

प्रिय बोहेमियन

प्रिय बोहेमियन सखा!
एक कहानी है
स्मृतियो में बसी कोई...
यदि तुम सुन लो तो शायद चीख पड़ो।
शांत, किंतु अपरिचित-सी बात
छत की भीतों पर तैर गया हो कोई जैसे
उस वक्त
जब दार्जिलिंङ के पास प्रार्थना कर रही थी मैं !

तुम्हारे गांव पहुंची
मुक्त हो सारे कष्ट और थकान से
मैं यहाँ तुम्हारे तीर्थ के पगडंडियों के साथ हूँ!
चीन की वे महान दीवारें-
'पगोडा' के बीच के पदचिह्न
बौद्ध भिक्षु तुम्हारे उपाख्यानों में निमग्न हैं!
हारमोनियम के साथ घुमंतू बंजारा
वे तुम्हारे लिए खेल रहे कुछ सिक्कों के खातिर
ग्रीक स्थापत्य के संधि-स्थल के समीप।
रंगीन इंडोनेसियाई आसमान के बीच
सुनाई दी, तुम्हारी बिखरी हुई मुस्कान
पत्तों के पलक पर दिखीं थीं
जो पिछले जुलाई में !
तुमने बुना है कोई संगीत,
मोहक-सा
न्यूयार्क के सर्द सड़कों पर मदहोश करती हुई
तुम्हारी मुस्कान निशस्त्र कर देती है बहुत।
तुम्हारी आवाज़ लंदन की दास्तां है
जो आती है परित्यक्त टेलीफोन बूथ से
मुझे पुरानी स्मृतियों से आजाद करने के लिए!

***

*(**लेखकीय परिचय:** खोजी प्रवृत्ति की सुबी ताबा कहानीकार और कवयित्री हैं। उनका प्रकाशित काव्य-संग्रह 'द बोहेमियन मैन' काफी चर्चित रहा है। कृषि विज्ञान में पीएच.डी. सुबी ताबा ने पूर्वोत्तर सौंदर्य प्रतियोगिता में अपना उच्च स्थान बनाया है तथा वर्तमान में आप अरुणाचल प्रदेश सरकार में अपनी सेवा दे रही हैं। मोबा. 8731899801, ई-मेल : subitaba@gmail.com) / अनुवादक पूर्णिमा ओसुनाम तायेङ राजीव गांधी विश्वविद्यालय में पीजीडीएफएस की विद्यार्थी रही हैं।*

(स्त्री बोध)

नेयाङः आन्ने और आदी स्त्री

पूर्णिमा ओसुनाम तायेङ

नानी मेरी हमेशा मुझसे एक बात कहा करती हैं कि लड़कियाँ 'नेयाङ-आन्ने' (पत्ते) की तरह होती हैं। जिस तरह से वह इस प्रकृति का एक अंश है, लड़कियाँ भी उसी तरह से हैं। लेकिन जैसे प्रकृति के नियम अनुसार किसी पत्ते को पेड़ से या पौधे से हमेशा चिपके रहने की इजाज़त नहीं होती है, उसी तरह स्त्री का जीवन भी होता है और यही दोनों की जीवन-संस्कृति है। वह एक जीवन समाप्त कर दूसरी जगह नया जीवन शुरू करती है। और नानी मेरी यह भी बताती हैं कि-'सेको कोम तानी-अमों सिम दाक्कि सुलाना कामांङ, रुना-पीना बी अतिको मिंकेन बोला तानी- अमो सो ङोलुम पीलेन तुंग, डेम तानी ङोलू मिङकेन बोसुला येबोसुपे आयदुंङ।' अर्थात् "कोई भी मनुष्य संसार के विरुद्ध नहीं हो सकता है। वह स्वयं खुद का निर्माता जरूर है, पर उसे जीवन जिस परम सत्ता ने दिया है उसको नहीं भूलना चाहिए।" वह बताती हैं कि हमारे प्रकृतिजीवी पूर्वजों ने अपने जीवन के नियम इस तरह से तय किए हैं, जो अधिक सार्थक और सतत बने रहने में उपयुक्त है। अतः पुरखाई जीवन के तौर-तरीकों को आदरपूर्वक स्वीकार करना चाहिए। लड़कियाँ या स्त्रियाँ यही करती हैं। वह पत्तियों की भाँति अपनी हरियाली को बनाये रखने की चेष्टा करती हैं। हर तरह की स्थिति-परिस्थिति में पत्तियाँ अपने हरेपन को नहीं खोना चाहती हैं।"

नानी की बात मैं ध्यानपूर्वक सुनती आई हूँ। मुझे लगता है कि जैसे स्त्री ही प्रकृति की छाया हो। स्त्री प्रकृति का ही दूसरा नाम-सा लगती है। अगर ऐसा है तो यह एक कड़वा सच भी है कि पेड़ से बिछड़कर आज तक कोई भी पत्ती अपने हरेपन को नहीं बचा सकी है या इस दुःख में वह फिर पीली पड़ जाती है। अरुणाचल प्रदेश के आदी जनजाति के समाज में स्त्रियों का परिचय पत्तों से तुलना करते हुए दिया जाता है। पत्तों का महत्त्वपूर्ण स्थान आदी जनजाति के पारंपरिक समाज में देख सकते हैं। यह रीत पुरखों से अब तक परंपरा के रूप में अपनाई जाती रही है। यह मुझे अच्छा लगता है कि स्त्रियों की तुलना हमारे आदिवासी समाज में फूलों से नहीं होती है। यह और बात है कि कभी-कभी स्त्री की तारीफ़ में प्रेमी या आने-आबू (माँ-पिता) उसकी तुलना फूलों से कर देते हैं पर बड़े-बुजुर्ग स्त्रियों की तुलना हमेशा पत्तों या नदियों से ही अधिक करते हैं। नदियाँ भी बहने को विवश हैं। वह अथाह जलराशियों का भार लिए हुए यात्रा करती हैं और रास्ते की सभी तरह की भूमियों को सींचने का काम करती हैं। आदिवासी भाषा के लोक-साहित्य में भी स्त्रियों के लिए पत्ते को प्रतीक रूप में चुना गया है। आदी लोकगीतों से लेकर लोक-सुभाषित अथवा मुहावरे-लोकोक्तियों तक में स्त्रियों के लिए पत्ते प्रतीक के रूप में सबसे अधिक इस्तेमाल होते हैं। आदी लोकगीत में एक स्त्री प्रश्न करती दिखती हैं-"आई नों ङोमे ओमे कोपे ओना दे/ङोक्के येपेको एम केन्बी दुनेया/याय नों ङोमे मीमे कोपे ओना दे/ङोक्के येकेङ एम मीबी दुनेया/मीमे नेयांङ ए ङो/.... बानने नेयांङे ङो/मीबो दिते कोन लो/.... ओमुम दिसी दिला येपे।" इसका भावार्थ बेहद मार्मिक प्रसंग को प्रकट करता है- "माँ आपने मुझे बेटी के रूप में जन्मा/क्या मेरे कल के भविष्य का

आपको अनुमान है?/पिताजी आपने मुझे स्त्री के रूप में जन्मा/ क्या मेरे कल के रहने का आपको अनुमान है?/मैं स्त्री-नेयाग हूँ/।।। मैं उपजने वाली नेयोङ हूँ/मेहमानों के पर्वतों में।।। परायी-सी अश्रु बहाती रहूँगी।"

अब कुछ अपने दिल की बात साझा करने मन है। मैंने फूलों की तारीफ सुनी है। हमेशा फूलों की खूबसूरती ही लोगों को सम्मोहित करती है या कि अपनी ओर खींचती है। यक़ीनन फूल बहुत सुंदर होते हैं और उनके रंग भी उसी की तरह प्यारे और बड़े न्यारे होते हैं। कुछ लाल तो कुछ पीले, कुछ नीले नज़र आते हैं। इसी तरह कुछ फूल गुलाबी रंग में मोहक अधिक लगते हैं। इस खूबसूरती का मुख्य कारण उनका ताजेपन से नहाया होना है। इन कारणों से उनकी खूबसूरती की सराहना होती होगी, ऐसा मैं सोचती हूँ। इसके विपरीत पत्तों के पास तो एक ही रंग होता है-'हरा'। यह रंग हमेशा नए और विशेष लगते हैं। यदि इस बारे में विचार करें, तो दिलचस्प बातें मालूम पड़ेंगी। इन पत्तों में जैसे सभी रंगों की छाया हो। यह बदलते हुए मौसमों के साथ अपने रंग और उसकी छाया में बदलाव लाती रहती हैं। वैसे हरा रंग मौन में भी मुखर अधिक है। वह अपने हरेपन में सबसे सुकोमल होते हैं। मुझे फूलों से ज्यादा पत्ते पसंद आते हैं, क्योंकि मौसम के साथ उनके बदलते रंग और अवस्था मुझे अत्यधिक प्रभावित करती है। अगर दोस्त मेरे सामने फूलों की सुंदरता के बारे में बोल रहे होते हैं, तो मैं उनसे पूछती हूँ कि-'तुम्हें पत्ते कैसे लगते हैं? इन फूलों के नीचे भी कई-कई पत्ते हैं-एक-दूसरे से जुड़े हुए, डलियों में भरे हुए। ये पत्तियाँ कई आकारों में एक के ऊपर एक या ऊपर-नीचे गुँथी मिलती हैं, ये तुम्हें कैसे लगते हैं?' दरअसल, पत्ते भी कई प्रकार के होते हैं। कुछ छोटे तो कुछ बड़े। कुछ हरे तो कुछ पीले। पेड़ों की टहनी में ये बहुत प्यारे लगते हैं। हर पत्ते अपने-आप में एक खास तजुर्बे को इंगित कर रहे होते हैं। पत्तियाँ अपने हरे रंग को नहीं छोड़ना चाहती हैं। उनमें एक रस-गंध बसा होता है जैसे वे कोई जीव-द्रव्य हों। विज्ञान कहता भी है कि पत्तियाँ भोजन बनाने में जुटी होती हैं। इस समिधा में पत्तियाँ क्या-क्या जतन नहीं करती हैं। वह श्रमशील हैं और जिनका काम जीवन की निरंतरता को बनाए रखना है। शायद इसीलिए नए पत्ते हरा रंग लिए हुए प्रकट होते हैं और बेहद खूबसूरत दिखाई देते हैं। उसके हरेपन में ही फूलों के प्राण उमगते हैं। पत्तियाँ ही हैं जो फूलो को उसके रंग निखारने में सहयोग करती हैं। सच तो यही है कि पत्तों की हरियालो की गोद में ही फूलों की नन्हीं और रंगबिरंगी कलियाँ खिला करती हैं। ये बातें कितनी माकूल हैं और स्त्रियों से कितनी मेल खाती हैं।

आदी समाज की स्त्रियों के लिए ऐसे कई किस्से-कहानियाँ तथा उपदेश मौजूद हैं, जिसे बड़े-बुजुर्ग (नानी-दादी लोग) किसी फुर्सत के दिन देखकर हम बच्चों को 'तुङगु' (बरामदा) पर इकट्ठा कर लेते। नानी रात की चांदनी में वे अक्सर बड़े इत्मिनान से बताया करती थीं। वह हमेशा हमें आलसी न होने की सीख दिया करती थीं। वे बताती थीं कि इस संसार में आलसियों और दुष्टों के लिए कोई जगह नहीं है। इसीलिए हमें 'मिलो-आर्दा' (आज्ञाकारी और श्रमशील) और दूसरों के प्रति 'दोन्यी-दादे' (दिल से निर्मल और दयावान) होना चाहिए। कभी-कभी वह बेहद रोचक कहानियों के बहाने हमें हमारे आगे की जीवन से जुड़ी बातें बतातीं और उनसे रू-ब-रू कराती थीं। हमारी बढ़ती रुचियों को देखकर वह कई सारी कहानियाँ सुना जाती थीं। ऐसे ही कई कहानियाँ रात के समय चाँदनियों के बीच यादों के माध्यम से कहती जातीं थीं और हम बड़े ठाट से सुनते हुए आनंद उठाया करते थे। वे कहानियाँ मेरे जीवन में आज भी बनी हुई हैं। यह हमें जीवन जीने का मकसद देती हैं और पूर्व बीते अनुभव के माध्यम से हमें अपना जीवन सुगम और सरस बनाने का पाठ पढ़ाती हैं।

आदी समाज की स्त्रियों में प्रकृति उनके संग-साथ के सहजीवन में ही नहीं अपितु उनके व्यवहार और व्यक्तित्व में भी दिखाई पड़ते हैं। सुनी हुई कहानियाँ सच से साक्षात्कार कराती मालूम देती हैं और कई सावधान, सचेत और सतर्क भी किया करती हैं। ये बातें रोजमर्रा के जीवन और व्यवहार में घुलमिल गईं हैं जिसे मैं अपनी व्यक्तिगत उपलब्धि मानती हूँ। सामान्यतः स्त्री अपने बागान-बगीचों, खेती-बारी, घर-परिवार और जीव-जंतुओं के लिए सदैव चिंतित और उनकी ही फिक्र में निहाल दिखाई देती हैं। वह अपने बच्चे के लिए हमेशा तत्पर और उसकी सुरक्षा में तैनात रहती हैं। आज भी मेरी माँ मुझे चूल्हे पर खाना-पकाना सिखाती है, तब वह मुझसे हमेशा एक बात का ध्यान रखने को कहती है कि चावल का दाना 'पकिंग' (बर्तन) के मुँह से बाहर नहीं गिरना चाहिए और आग पर तो बिल्कुल नहीं।' मैंने माँ से तुरंत पूछा-"क्यों? ऐसा हुआ तो क्या होगा?" माँ ने बताया कि "आम्बिन-एम इपाक-इयाक मिल आम्बिन-ए-कोम कापदुनायके, मीरे सुदुनाय के" अर्थात चावल को ठीक तरह से इस्तेमाल नहीं करने से वे भी दुखी होकर रोते हैं और निराश हो जाते हैं कि उन्हें बड़ी मेहनत से खेत में उगाकर भी उनको ठीक तरह से ग्रहण नहीं किया गया और वह इस बात से बेहद दुःखी और भावुक हो जाते हैं।

स्त्रियाँ भावुक मात्र नहीं होती हैं। बल्कि हर तरह की भावनाओं का वह तहेदिल से स्वागत करती हैं। स्त्रियाँ उदारशील होकर हर तरह के भाव को सहेजने और संजोने का संवेदनशील प्रयास करती हैं। वह अपनी स्त्रियोचित भाषा में प्रकृति ही नहीं अपितु हर चीज से तादात्म्य बिठाती चलती हैं। अरुणाचल प्रदेश की आदी स्त्रियों का शिष्ट आचरण अपने आपमें उदाहरण है। आदी स्त्रियाँ संबंधों का कद्र करती हैं। प्रेम को चिह्नती और बखूबी पहचानती हैं। उनका प्रकृतिजीवी आदिवासी मन प्रकृति के नियमों में रींझा-भींजा होता है। वह प्रकृति के छाये में नहीं अपितु प्रकृतिधर्मी होकर अपना जीवन जीते हैं। अगर वे कहीं किसी मौके पर 'इमोशनल' हैं तो ये उसका प्राकृतिक स्वरूप और मूल स्वभाव है। गाँवों या बस्ती में अधिकतर आदी समाज की स्त्रियाँ तल्लीनता के साथ अपने काम में जुटी दिखती हैं। वह घर पर बैठ आराम कम ही कर पाती हैं। वह घर के काम निपटाकर खेती-कार्य में व्यस्त हो जाती हैं, क्योंकि उनको अपने खेत में उपजाए हुए फसल की देखभाल और निगरानी करना होता है। इसलिए वह इन कार्यों को परे छोड़कर न तो हट सकती हैं और न ही बेसुध हो पाती हैं। आदी जनजाति की घरेलू स्त्रियाँ खेतों पर जाती हैं, तो उन्हें यह अंदाजा लगाते देर नहीं लगती कि आज कितनी भिंडी, बैंगन, मूली, अदरख, मिर्च इत्यादि उगे हैं या हरी सब्जियाँ तोड़े जाने के लिए तैयार हैं। यदि उन्हें वह आज ही ना तोड़ सकीं, तो जंगली सूअर या अन्य जानवर उनको नष्ट कर देंगे। या फिर बारिशों में भींग कर वह सड़ जाएँगी। आदी गाँव-बस्ती की स्त्रियाँ काफी श्रमशील होती हैं। पहाड़ी जीवन ने उनके पाँव में मजबूती और अदम्य साहस रोप दिया होता है। इन स्त्रियों को इस बात का न तो अहंकार या झूठा दंभ होता है कि उनमें श्रम की क्षमता अधिक और बेजोड़ है। वह अकुंठ भाव से अपने हर कार्य को बड़ी कुशलता एवं परिश्रम के साथ करती जाती हैं। मेरी भाभी गाँव में रहती हैं। मैंने आज तक उन्हें कभी आराम करते हुए नहीं देखा। वे या तो खेत गई होती हैं या घर के कार्य निपटाने में मगन होती हैं। उनसे जब भी पूछती हूँ कि आपको थकान बहुत होती होगी? आप कुछ आराम कर लिया करें, तो मुस्कुराती हुई कहती हैं-'डो एनपे लगियेदा, ऐनममिल सियुम ओयिङ दोपेनाम कामा येडा।' अर्थात आज यदि मैं नहीं गई तो खाने को घर पर सब्जी नहीं होगी।

आदी स्त्रियों की खूबियाँ बेशुमार हैं। वे जितनी श्रमशील प्रकृति की और शारीरिक श्रम करने में कुशल होती हैं, उतनी ही कला-शिल्प, हस्तकला, दस्तकारी, बागवानी, साज-सज्जा आदि में निपुण होती हैं। पारंपरिक

परिधानों में नये-नये प्रयोग करना आदी स्त्रियों का प्रिय शगल है। इसी तरह वे अनेकानेक कलाकृतियाँ बनाने में पारंगत होती हैं जिसका परिज्ञान उन्हें परंपरा से हुआ होता है। आदी त्योहारों के मौके पर स्त्रियों की असल सुंदरता देखी जा सकती है। वे समूह के साथ चलती हुई, नृत्य करती हुई, हड़बड़ाहटों एवं चीख-चिल्लाहटों के बीच गति करती हुई कमाल की लगती हैं। गीतों की धुन में उनका प्रदर्शन मोहक और उनकी मुद्राएँ आकर्षक हो जाती हैं। उनके इस तरह बन-ठन कर त्योहार में शामिल होने से गाँव का माहौल खुशनुमा हो जाता है, मानों उसकी रूह लौट आई हो। स्त्रियाँ पुरुषों से अलग भाव-भंगिमा और रूप-रंग गढ़े हुए इधर से उधर दौड़ती-भागती तथा एक-दूसरे के घर आना-जाना करती हैं। हर-बार की तरह वे अपने घर के पास से अपने सहेलियों को चिल्लाकर पुकारती हैं। उनके इस चिल्लम-चिल्लाई से गाँवों का सूनापन दूर हो जाता है। गलियाँ गूँज उठती हैं, तो रास्ते की रौनक देखते बनती है। इन त्योहारों के समय आदिवासी स्त्रियाँ खेती-बारी के काम नहीं करती हैं। आदी समाज में इन दिनों कृषि-कार्य करने की मनाही है। इसके लिए आदी भाषा में 'न्योनाम' शब्द प्रयुक्त है। इस नियम को गाँव के सब लोग मानते हैं और निभाते भी हैं।

'सोलुङ' आदी समाज का एक खास त्योहार है। यह विशेष रूप से खेतों में उपजाए गए धानों के लिए मनाया जाता है। इस त्योहार में स्त्रियों का महत्त्व खास होता है। सोलुङ आदी जनजाति का मुख्य त्योहार है। पहाड़ों में बसे 'आदी-आमोङ' (पहाड़ी क्षेत्र) लोग इस त्योहार को 7-8 दिन तक मनाते हैं जबकि नीचे बसे 'मोङगु आमोङ' (मैदानी क्षेत्र) के लोग इसे 4-5 दिन तक मनाते हैं। सोलुङ को अगर दूसरे नाम से पुकारा जाये तो इसे 'लुने-गीदी' (महिलाओं का त्योहार) भी कहा जाता है। इस त्योहार को धूमधाम से मनाये जाने हेतु गाँव के सभी लोगों को स्मरण कराया जाता है। आपस में संपर्क किया जाता है। सभी को एक साथ जुटने या इकट्ठा होने हेतु बुलाया जाता है। नौकरी के कारण जो लोग गाँव से बाहर यानी दूर रह रहे होते हैं, उन्हें विषेष रूप से आमंत्रित किया जाता है, ताकि नई पीढ़ी के युवा लोग अपनी परंपरा और संस्कृति से जुड़ सकें, प्रत्यक्ष अनुभव कर पायें। यह सामूहिक एकजुटता सोलुङ त्योहार की सफलता को भी सुनिश्चित करती है। यही एक ऐसा समय है जब गाँव की युवा-स्त्रियाँ सज-धज कर या स्वयं को पारंपरिक वेश में आभूषणों से सुसज्जित कर के बाहर निकलती हैं। पोशाक-पहनावे में आदी स्त्रियाँ लाल रंग की गाले पहनती हैं। उनके माथे पर गाले से बनाए मुकुट होते हैं जिसे धारण किए होने से उनके चेहरे पर एक अलग तरह का निखार आ जाता है और वह बेहद सुंदर प्रतीत होती हैं। त्योहार वाले मौके पर वे दिन भर सोलुङ मैदान पर मौजूद होती हैं। उत्सव का आनंद लेती इन स्त्रियों के होने से आदिवासी पहचान और अस्मिता को गौरवान्वित होने का अवसर मिलता है। इस समय रोज तरह-तरह के आयोजन होते हैं। जैसे-नृत्य, गीत-संगीत, फुटबाल या अन्य खेल-कूद की प्रतियोगिता आदि। फिर इस रात को 'मुसुप' पर 'पोनुङ' नृत्य होता है। नव-युवतियाँ अपने पारंपरिक परिधानों में एकत्र होती हैं। फिर आधी रात तक पोनुङ नृत्यों का सिलसिला चलता रहता है। रात में इस नृत्य का दृश्य बेहद अद्भुत और विभोर कर देने वाला होता है क्योंकि यहाँ एक ऐसा माहौल रहता है, जहाँ गाँव के एक-एक सदस्य इकट्ठे रहकर इस उत्सव का आनंद ले रहे होते हैं। मुसुप में बच्चे से लेकर बूढ़े तक वय के लोग नाच-गाने में जुटे होते हैं। स्त्रियों के बीच खड़े 'मिरी' (पुरोहित) 'आबांग' (महागाथा) सुना रहे होते हैं। इसके इर्द-गिर्द जुटी स्त्रियाँ एक-दूसरे का हाथ पकड़े रहती हैं। गोलाकार रूप से वह आपस में हाथ मिलाकर खड़ी 'मिरी' के लिए लगातार हामी भरने

का काम करती हैं। इससे मिरी के कहे गीतों को बल मिलता है और वह उत्साहित होकर अपनी महागाथा कहना जारी रखते हैं।

यह दृश्य इतना अद्भुत होता है जैसे शाम के किसी समय में पर्वतों के बीच सूरज डूबने की तैयारी कर रहा हो। नारंगी-सा गोलाकार सूर्य का घेरा बनाए वे धीरे-धीरे उसकी लालिमा में इज़ाफा करने में जुटी हुई हों। पोनुङ नृत्य का यह सिलसिला अगले तीन रात लगातार जारी रहता है। नानी से एक बार मैंने 'आबाङ' के बारे में पूछा था। उन्होंने जवाब में बताया था कि 'आबाङ' कई तरह के होते हैं। पर पोनुङ वाले 'आबाङ' पर मिरी द्वारा जो गीत सुनाया जा रहा होता है, वह जीवन का एक लंबा गीत है जिसमें स्त्रियों के लिए एक बहुत बड़ा और महत्त्वपूर्ण कथानक का हिस्सा रहता है। इसीलिए जो स्त्री पोनुंग नृत्य कर रही होती हैं, उसे अनिवार्य रूप से यह कहा जाता है कि वह इस नृत्य में शुरू से आखिर तक बनी रहें। नहीं तो उनका जीवन पूरा होकर भी अपूर्ण होगा या जीवन में अधूरापन सताएगा। आदी जनजाति का मानना है कि पोनुङ नृत्य करना कोई बच्चों का खेल नहीं है। यह माना जाता है कि इसके लिए अपार धैर्य की जरूरत होती है। इसीलिए यह अपेक्षा होती है कि इस पोनुङ नृत्य में ज्यादा से ज्यादा गाँव की युवा स्त्रियाँ शामिल हों, ताकि माहौल आनंदपूर्ण बना रहे।

आदी समाज की स्त्रियों का महत्त्व केवल त्योहारों तक ही सीमित नहीं होता है, अपितु उनका महत्त्व गाँव के हर एक छोटे-बड़े मौके पर विशेष होता है। आदी जनजाति के विभिन्न रीति-रिवाजों, नियम-प्रथा को निभाने में उनकी भूमिका बढ़-चढ़ कर होती है। कई बार जब पुरुष 'आपता-गता' (जंगली-शिकार) के लिए निकल रहे होते हैं तो महिलाएँ पुरुषों के लिए 1-2 दिन 'न्योलिकदुङ' (मनाही) करती हैं जैसे उस वक़्त गाले नहीं बनाना, सुई धागा नहीं पिरोना, धागा नहीं छूना इत्यादि नियम का पालन करती हैं। ऐसी मान्यता है कि ऐसा करने से अपशकुन होता है। आदी महिलाएँ इन नियमों का रस्म करते वक़्त गंभीर होती हैं, तो दूसरी ओर किसी नये घर के उद्घाटन के मौके पर या 'डाङा-आरान' तथा 'निलुम' जैसे अवसर पर 'महिला-समूह' (रासेंग-पार्टी) को खास तौर पर आमंत्रित किया जाता है, ताकि उद्घाटन समारोह में खुशहाली और रौनक लायी जा सके। इस घड़ी 'महिला-समूह' से एक नेतृत्वकर्ता (जो अनुभवी और होशियार हो) होता है जो अपने समूह का नेतृत्व करता है। ऐसे माहोल के दौरान महिला समूह के द्वारा कई लोक-गीत गाये जाते हैं जिनमें से कुछ उनके अनुभव की कथा या आपबीती-सी होती हैं तो कुछ मस्ती बिखेरने के लिए मनोरंजक ढंग से गाया जाता है। आदी समाज का लोक-गीत उनके रोजमर्रा के जीवन एवं प्रत्यक्ष अनुभव से संबद्ध होता है। उसके बोल भावपूर्ण और शब्द गहरे अर्थ को पिरोये हुए होते हैं। ऐसे ही अवसरों पर लोकगीतों की प्रासंगिकता एवं महत्त्व देखते बनता है। अपने समय में नानी के द्वारा ऐसा ही एक गीत गाया गया था, जिसे उन्होंने मुझे अपनी यादें साझा करते हुए सुनाया था-

''आङोङ-ए (हे सखी!)
लेरो-गो-गोई.... (सुर और ताल है)
लेन-तो-ला (बाहर निकल आओ)
लेरो-गो-गोई
एङो-तारो-ए (छोटी-बड़ी मछलियां)
लेरो-गो-गोई

सिगो-ले-लो (नदी-धाराओं में)
एलो-रेनुङ-ए (वहाँ पर हम लोग)
ले-रो-गो-गोई
नुमान-लाङ-कापे (नृत्य करने चलते हैं)''

सदियों से आदी समाज की स्त्रियाँ अपने लोक-जीवन को व्यवहारों में जीती आई हैं। लोकगीत उनके कंठाहार में बसते हैं। आदी स्त्रियों का श्रमशील होना महज पारंपरिक संस्कार नहीं है, बल्कि वे स्वयं को प्रकृति के साथ संगत एवं लयबद्ध कर जीती दिखती हैं। प्रकृति के साथ आदी स्त्रियों का जुड़ाव अटूट भी है, तो 'नेयाङ आन्ने' की तरह हरेपन से भरा हुआ भी। उनके द्वारा गाए जाने वाले गीत इस बात के साक्षी हैं कि वह प्रकृति की समानधर्मा विराट हैं और सूक्ष्म भी। उनके भावों की कई परतें हैं जिसमें जितनी जानी हुई हैं, उससे कहीं अधिक अपरिचित हैं। इसीलिए आदी लोक-गीतों में स्त्रियों के चित्रण-वर्णन बहुत हैं। बस अंतर इतना है कि आदी जनजाति की ही उपजनजातियों की स्त्रियाँ इसे अलग-अलग रूपों में गाती हैं। दरअसल, इन्हें पहले से ही जानकर लिपिबद्ध या स्वरबद्ध नहीं किया जा सका है, इस नाते भिन्नता इनकी खासियत बन चुकी है। मेरी नानी जो गाती हैं, उसमें कुछ चीजें संलाप की तरह होता है। खुद को संबोधित इन गीतों में नानी अपने होने का प्रमाण ढूँढ़ती हैं और प्रकृति के सहकार संग अपने जीवित होने की पुष्टि करती हैं। उनकी इस उम्मीद में एक ऐसे फूल की छवि भी है जिसे देखते हुए वह अपने पुराने दिन याद करने लग जाती हैं। वह जो बोलती हैं उसे मैं पूरी तरह नहीं समझ पाती हूँ, लेकिन इतना समझ लेती हूँ कि इनके कहे का भावार्थ गहरा और आत्मीय है। वह गाती हुई कहती हैं-

"आबा बोमोङ लोङएम, पारो लोङम
बोमोङ सासारे सादाक ताकामेम
पारो सासारे सादाक ताकामेम
बोमोङ लामकाङ-एम दुया तिनासी
पारो लामकाङ-एम दुया तिनासी
मितिक आने-सी मितिक काममे
लामकाङ-एम दुया तिनासी।"

लोकगीतों की भाँति ही आदी समाज की कथा-कहानियाँ, मिथक-बिंब, संस्कार-संस्कृति आदि समृद्ध रूप में इन गीतों में विद्यमान हैं। आदी स्त्रियाँ इन्हीं को आज भी अलग-अलग तरीके से दोहरा रही हैं, उन्हें अपनी भाषा-बोली में पुनर्जीवित कर रही हैं। आदी भाषा-बोली में लोक-साहित्य बहुत सरल ढंग से रचे-बुने होते हैं। जैसे आदी स्त्रियों का व्यवहार और उनका स्वभाव। सदियों से आदी समाज की स्त्रियाँ संघर्ष और परिश्रम की अकथ कहानी कहती आई हैं। उनकी हथेलियाँ खुरदुरी और पाँव बेवाई फटे हुए अवश्य हैं, लेकिन उनकी प्रकृति शक्तिस्वरूपा और दिव्य है। यही नहीं आदी स्त्रियाँ घर-आँगन की सजावट से लेकर जंगल सफा करने और अन्न उपजाने तक अपनी भूमिका सर्वोपरि बनाई हुई हैं। निराई किए हुए खेत और उनमें लहराते हुए धान आदी स्त्रियों के हाथों का करिश्मा साकार करते दिखते हैं। यह आदी स्त्रियों के श्रमिक और गुणी होने का साक्षी है। आदी स्त्रियों की भावनाएँ आज भी खेतों, नदी, नालों, पहाड़, घाटियों, पशु, पक्षियों आदि से लय करते हुए मालूम देते हैं। हरितिमा के गहने पहनी प्रकृति स्त्रियों के महाबली होने का प्रमाण देती हैं। 'सिंयाङ-आने' स्वयं साक्षी है,

आदी भावभूमि के कण-कण इस बात की गवाही देते हैं। इस मौके पर अरुणाचल प्रदेश की सुपरिचित लेखिका जोराम यालाम की कही ये पंक्तियाँ माकूल लगती हैं-

"तुम साक्षी हो, मेरे हर एक तड़प का
एक वेदना है, मेरे लिए तुम्हारे न तड़पने का
तड़पते हो मेरे लिए, लेकिन वे मेरे लिए तो नहीं है
सुनो दो किनारों की कहानी है, बहता हुआ यह जल
बूंद हूँ मैं, मुझसे ही नदी और समंदर है
समंदर का नदी को, और नदी को मेरा इनकार है?"

*(**लेखकीय परिचय**: पूर्णिमा ओसुनाम तायेङ राजीव गाँधी विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग से परास्नातक और पीजीडीएफएच पाठ्यक्रम पूर्ण कर चुकी हैं। मोबा: 8413951094, ई-मेल : kimp2976@gmail.com)*

(आदिवासी दर्पण)

अनुष्ठान प्रिय मुकलोम जनजाति

चावाङ ताङहा

अरुणाचल प्रदेश क्षेत्रफल की दृष्टि से पूर्वोत्तर का सबसे बड़ा राज्य है। यहाँ अलग-अलग नामों से कई जनजातीय समुदाय रहते हैं। मुकलोम इन्हीं जनजातियों में से एक है, जिसकी सामाजिक व्यवस्था और सांस्कृतिक पहचान बेजोड़ है। ताङसा जनजाति की यह एक उप जनजाति है। अरुणाचल प्रदेश की अन्य जनजातीय समुदाय की भाँति मुकलोम जनजाति भी वनों, पहाड़ों, नदियों एवं घाटियों के बीच बसे बस्तियों में रहती हैं। उनका जीवन प्राकृतिक है यानी वे प्रकृतिजीवी आस्था एवं लोक-विश्वास के हैं। मुकलोम जनजाति के बारे में अरुणाचल प्रदेश की ही दूसरी जनजातियाँ कम जानती हैं। ऐसे में पूर्वोत्तर और देश के अन्य हिस्सों के लोग लगभग अपरिचित होंगे। संचार-साधनों की बढ़ती अधिकता, पहुँच और प्रभाव के बीच अजनबीयत की यह बात सही नहीं लगती है, लेकिन सचाई यही है कि मुकलोम जनजाति के बारे में जानकारी बहुत कम है या है भी तो आधी-अधूरी।

मुकलोम जनजाति इतिहास

मुकलोम अरुणाचल प्रदेश के मूल निवासी हैं। अरुणाचल प्रदेश के चांगलांग जिले के चाङलाङ, मियाओं, खरसङ और उसके आस-पास और खिमयाङ सर्कल (वृत्त) में रहने वाले ताङसा लोगों का यह एक उप समूह है। वे मूल रूप से पूर्वी भारत के पूर्व दिशा में स्थित मूकलूम नाम के एक पर्वत के आस-पास रहते थे। इस पर्वत से निकटता के कारण ही मुकलोम जनजाति नाम पड़ा। परंपरागत रूप से अन्य सभी आदिवासियों की तरह मुकलोम आदिवासियों ने कभी भी किसी नए धर्म को नहीं अपनाया। वे केवल प्रकृति के प्रति पूर्ण समर्पित बने रहे। वे मूल रूप से मूकलूम नाम के एक पर्वत के आस-पास रहते थे। इसी पर्वत से मुकलोम जनजाति का नाम पड़ा। परंपरागत रूप से मुकलोम जनजाति ने कभी भी किसी अन्य धर्म का अनुसरण नहीं किया। वे केवल प्रकृति के आधार पर जीवने जीने में विश्वास करते आये हैं और खुद को 'प्रकृतिजीवी' (एनिमिस्ट) मानते हैं। जल, जंगल, पशु-पक्षी, मानव-जगत आदि से उनका साहचर्यपूर्ण जीवन एवं संगति है। वह प्रकृति के परम सत्ता यानी निराकार देवता 'खटकरांग'/'रंग-कथक' की स्तुति और उनका आह्वान करते हैं। मुकलोमों ने पारंपरिक रूप से किसी भी संप्रदाय विशेष द्वारा स्थापित ईश्वर की पूजा नहीं की और न ही किसी ईश्वर के लिए निर्दिष्ट किसी भवन या मंदिर जैसी संरचना का निर्माण किया। उन्होंने यह जरूर किया कि अपने जनजातीय बोध और गरिमा के लिए जंगल, जानवरों, मानव जैसे विभिन्न आत्माओं के साथ साहचर्य और सह-अस्तित्व का संबंध बनाया और अपने जनजातीय इतिहास को सुरक्षित रखा। इन सबके अलावा उन्होंने एक ऐसी दिव्य-सत्ता की परिकल्पना की जिनकी उपस्थिति और निराकार सहयोग से वे अपनी स्मृतियों को दिव्य और दैवीय बनाये रखें। सहज मानवीयता की इसी आकांक्षा में उन्होंने खटकरांग/रंग-कथक देवता को अपनाने हेतु प्रवृत्त किया।

मुकलोम जनजाति का इतिहास इस समाज के पुराने विधि-विधान अथवा अनुष्ठान को देखकर महसूस किया जा सकता है। मुकलोम जनजाति के समाज में नवजात बच्चे के जन्म के बाद अनुष्ठान करने की परंपरा

है। इसी तरह सयाने हुए लड़के-लड़कियों के विवाह संबंधी अनुष्ठान की बारी आती है। प्रकृतिजीवी आदिवासी कृषि कार्य का अनुष्ठान पूर्ण मनोयोग और अभ्यासपूर्वक करते हैं। इसी तरह वे नया घर बनाने के लिए अनुष्ठान करते हैं। त्योहारों एवं विशेष अवसरों पर अनुष्ठान आदि आयोजित करते हैं। यहाँ तक कि मृत्यु के समय में किया जाने वाला अनुष्ठान भी पूर्ण निष्ठा एवं लोक आस्था के साथ किया जाता है। उनका अनुष्ठान केवल पूजा-पाठ तक सीमित नहीं है। वह इसी बहाने अपनी स्मृतियों को ताजा करते हैं। पुरखों को याद करते हैं। वह उन आत्माओं को स्मरण करते हुए तृप्त करने का प्रयास करते हैं जिनका अनुभूत एवं आविष्कृत सत्य उन तक पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित होकर पहुँचा है।

मुकलोम समाज आशावादी है। इस समुदाय ने नकारात्मकता को नकारते हुए परस्पर सकारात्मकता सिरजने का कार्य हमेशा किया है। मुकलोम समाज में आर्थिक परिस्थिति कैसी है और उनके जीवन-निवाह या फिर आजीविका का मुख्य साधन क्या है, यह जानना भी जरूरी है। मुकलोम जनजाति की मातृ-भाषा एवं मातृ-बोली के बारे में जानना तो और भी रोचक है, क्योंकि इस जनजाति की भाषा जानने वाले कम लोग बचे हैं और नए लोग आधुनिकता के प्रभाव में अपनी भाषा और संस्कृति से दूर होते जा रहे हैं। मुकलोम जनजाति के पूर्वजों का मानना था कि 'मनुष्य जाति में जनजातियों का जन्म दो भाई-बहन के संबंध से हुआ था। जब दोनों भाई-बहन बिना मां-बाप के दु:खद काल में रह रहे थे, तो उसी वर्ष जब मनुष्य का अंत काल आने वाला था; उसके कुछ दिनों पूर्व एक असहाय, जीर्ण अवस्था, वस्त्रहीन केवल कुछ पतले चादर लपेटे और एक कान में धान और दूसरे कान में रेशमी कीड़ा लगाए कोई संत पूरे नगर/गाँव का परिभ्रमण कर रहे थे। लेकिन कोई उन्हें अपने घर में प्रवेश नहीं दे रहा था। उस गाँव के आखिर में इसी भाई-बहन का घर था। संत ने विनीत भाव से वहां जाकर पूछा कि 'बच्चों, क्या तुम दोनों के घर के अंदर मैं आ सकता हूँ?' दोनों भाई-बहन ने कहा 'जी बिल्कुल बाबा, हमारे घर में आने की कोई पाबंदी नहीं है। आप हमारे घर के भीतर प्रवेश कर सकते हैं।' इसी बात से वे बूढ़े बाबा खुश हुए और वे घर के अंदर प्रवेश कर गए और कहा कि मेरे सामने गलीचा बिछाओ। उस बूढ़े बाबा की बात सुनकर दोनों ने गलीचे बिछाए। उसी गलीचे में बूढ़े बाबा ने एक कान से धान का बीज और दूसरे कान से रेशमी कीड़ा दिया और साथ में एक चिड़िया भी दी जिसको मुकलोम में 'वोखिंग' कहते हैं। बूढ़े बाबा ने कहा कि-''एक समय ऐसा आएगा जब पापी मनुष्य का अंतकाल आएगा। एक भूकंप के रूप में जोरदार झटका लगेगा। उसी समय जब ये चिड़िया कूं करेगी तभी तुम दोनों एक बड़ी गहरी गुफा खोदना और दूसरी बार कूं करने पर धान और रेशमी कीड़े के साथ अंदर चले जाना। तीसरी बार कूं करेगी तभी तुम दोनों उस गुफा से बाहर निकलना। ये कह कर वे बूढ़े बाबा वहां से चले गए।

एक समय आया जब वह चिड़िया कूं करने लगी। दोनों भाई-बहन ने जैसे उस बूढ़े बाबा ने कहा था वैसे ही किया और दोनों गुफा के अंदर सुरक्षित पहुँच गए। दुनिया में भूकंप आया और सारी मनुष्य जाति उस भूकंप में काल का ग्रास हो गया। जब चौथी बार चिड़िया कूं करने लगी तो वे दोनों उस गुफा से बाहर आए और विनाश से बचने का संकेत देने के लिए उस बूढ़े बाबा को देवता 'खटकरांग/रंगकथक' नाम से धन्यवाद देने लगे। उसी रंगकथक का दिए धान के बीज और रेशमी कीड़ा को जमीन में बोकर उन्होंने खेती-बारी का कार्य आरंभ किया। उन्हीं दो भाई-बहन के संबंध से मनुष्य जाति का जन्म हुआ और वे अपने को आज भी उन्हीं दो भाई-बहन के बच्चे मानते हैं। जब सारे बच्चे बड़े हो गए तो उन दोनों ने सभी बच्चे को मरे जानवर के चमड़े

और बांस के पत्तों के ऊपर यह लिखकर दिया कि सब अपने-अपने जनजाति व परिवार को आगे बढ़ाएँ और इस दुनिया के अलग-अलग क्षेत्रों में निवास करें। यह कहानी पूर्वजों से चली आ रही है कि 'मनुष्य जाति का जन्म दो भाई-बहन के संबंध से हुआ था। जब दोनों भाई-बहन बिना मां-बाप के दु:खदकाल में रहे रहे थे तो उसी वर्ष जब मनुष्य का अंतकाल आने वाला था, उसके कुछ दिनों पूर्व एक असहाय, अवस्था वस्त्रहीन केवल कुछ पतले चादर लपेटे और एक कान में धान और दूसरे कान में रेशमी का कीड़ा लगाए पूरे नगर/गाँव में प्रवेश करने की अनुमति मांगे घूम रहे थे परंतु उस अनजान आदमी बूढ़ा को किसी ने भी अपने घर के अंदर प्रवेश करने से मना कर दिया। उस गाँव में आखिरी घर उस भाई-बहन का था, उन्होंने वहां जाकर पूछा कि 'क्या तुम दोनों के घर के अंदर प्रवेश कर सकता हूं बच्चों?' दोनों ने कहा' जी बिल्कुल बाबा, हमारे घर में कोई पाबंदी नहीं है। आप हमारे घर के भीतर प्रवेश कर सकते हो' इसी बात से वे बूढ़े बाबा खुश हुए और वे घर के अंदर प्रवेश करने लगे और कहा कि मेरे सामने गलीचा बिछाओ। उस बूढ़े बाबा की बात सुनकर दोनों ने गलीचे बिछाए। उसी गलीचे में बूढ़े बाबा ने एक कान से धान के बीज और दूसरे कान से रेशमी कीड़ा दिया और साथ में एक चिड़िया भी दी जिसको मुकलोम में ' वोखिंग' कहते हैं, और कहा कि एक समय ऐसा आएगा मनुष्य के पापों का अंतकाल आएगा। एक भूकंप के समय जब ये चिड़िया कूं करेगी तभी उसी समय एक बड़ी गहरी गुफा खोदना और दूसरी बार कूं करने पर धान और रेशमी कीड़े के साथ अंदर चले जाना। तीसरी बार कूं करेगी तभी तुम दोनों उस गुफा से बाहर निकलना। ये कह कर वे बूढ़े बाबा वहां से चले गए। जैसे ही चिड़िया कूं करने लगे तो उस बूढ़े बाबा ने जैसा कहा था उन दोनों ने वैसे ही किया और दोनों गुफा के अंदर सुरक्षित पहुंच गए। दुनिया में भूकंप आया और सारी मनुष्य जाति उस भूकंप में लुप्त हो गई। जब चौथी बार चिड़िया कूं करने लगी तो वे दोनों उस गुफा से बाहर आए और विनाश से बचने का संकेत देने के लिए उस बूढ़े बाबा को देवता 'खटकरांग रंगकथक' नाम से धन्यवाद देने लगा और उसी रंगकथक द्वारा दिए गए धान के बीज और रेशमी कीड़ा को जमीन पर फेंककर खेती-बारी का कार्य प्रारंभ हुआ। उन्हीं दो भाई-बहन के संबंध में मनुष्य जाति को जन्माने का यश पूरी दुनिया में विख्यात है।

मुकलोम आदिवासी समय के साथ अपनी तादाद में बढ़ने लगे थे। ऐसे में इस समुदाय ने दूसरी जगह स्थान बदलने के लिए यात्रा शुरू कर दी। यात्रा में बच्चे पहाड़ों और जंगलों को पार करते-करते भूख-प्यास से सूखे जा रहे थे। आदिवासी समुदाय जो मैदानी इलाकों की ओर बढ़ गए, वे गैर-आदिवासी कहलाये। मैदानी भाग में गए इस समुदाय ने बांस के पत्ते पर ज्ञान लिख लिया था जो आखिर तक उनके साथ बना रहा। उन लोगों ने वैसे ही ज्ञान का प्रचार-प्रसार किया जैसा कि उनके मां-बाप ने उनसे कहा था। यह समुदाय ज्ञानी और शिक्षित होता गया और गैर-आदिवासी कहलाया। दूसरी ओर आदिवासी समुदाय ने पहाड़ों के बीच ही अपने रहवास की जगह बना ली। इस दौरान जिस-जिस के पास मांस के चमड़े में ज्ञान और बौद्धिक विचार लिखकर भेजा गया था, वे लोग अपनी भूख-प्यास मिटाने के लिए मांस के चमड़े को खाकर आगे बढ़ते गए। इस तरह यह समुदाय ज्ञान एवं शिक्षा के मामले में पीछे रह गया। यात्रा में आगे बढ़ते इन आदिवासियों के समूह से कुछ लोग भारत के पूर्व दिशा में चले गए और मुकलोम पर्वत में रहने लगे। मुकलोम पहाड़ पर बसे लोग मुकलोम कहलाए।

मुकलोम जनजाति रंगकथक को आज 'रांगफ्रा' धर्म के नाम से जानता है। मुकलोम समाज में इसे रांगफ्रा नामक मूर्तिपूजक देवता के आकार अथवा रूप-रंग में हिंदू धर्म के समान जाना जाता है। आज ये 'स्वदेशी

धर्म' के अंतर्गत आते हैं। कुछ मुकलोंमों ने अब दिव्य आत्माओं को खुश करने की अपनी पारंपरिक प्रथा को बंद कर इसाई धर्म अपना लिया है। अब यह समुदाय पारंपरिक अनुष्ठान के प्रति आग्रही नहीं रह गया है। आज कुछ मुकलोम लोगों के सोच-विचार ऐसे बन गए हैं जिसको केवल धर्म ही दिखता है। अब भाईचारा कम हो रहा रहा है या उनमें आपसी विश्वास कम होने लगा है। अब पहले की तरह सामूहिक एकता अथवा एकजुटता नहीं दिखाई पड़ती है जो बेहद चिंता की बात है। मुकलोम जनजाति की बोली एक है जिसे ताङसा समुदाय आसानी से समझने लग गए हैं। आज के युग में मुकलोम बोली को गैर आदिवासी जनजातियाँ भी आसानी से समझने लग गई हैं।

मुकलोम जनजाति में अनुष्ठान

मुकलोम जनजाति का समाज पारंपरिक रूप से समृद्ध है। समुदाय के लोग पूर्वजों के समय से ही विभिन्न अनुष्ठानों का नियमबद्ध ढंग से पालन करते आ रहे हैं। यह उनकी संस्कृति का हिस्सा है। नवजात बच्चे के जन्म से लेकर मृत्युकाल तक मुकलोम समुदाय अलग-अलग पद्धतियों में अगाध विश्वास करता आया है। मुकलोम समाज में यह अनुष्ठान परंपरागत पूर्वजों के समय से चली आ रही है जब भी किसी के घर नवजात बच्चे का जन्म होता है तो शिशु का स्वागत धूमधाम से किया जाता है और पूरे रीति-रिवाज के साथ विधिवत अनुष्ठान संपन्न किया जाता है। इस अवसर पर देवताओं को धन्यवाद दिया जाता है। नवजात बच्चे के जन्म के ठीक तीन दिन बाद इस शिशु को नया नाम दिया जाता है। बच्चे को नाम देते समय घर के मर्द नदी मछली पकड़ने जाते हैं और औरतें बच्चे सहित घर में ही उनकी वापसी की प्रतीक्षा करती हैं। जैसे ही मर्द नदी से मछली पकड़ कर लाते हैं- उसी समय से घर के औरतों का कार्य शुरू हो जाता है। वे सभी बच्चे और माँ को बिठाकर थाली में धान के कुछ छिलके पानी सहित रख देते हैं और घर वालों द्वारा सुझाए गए नामों को बोलते हैं। यह रिवाज़ तब तक चलता है जब तक धान के छिलके गोल-गोल चक्कर काटकर आपस में मिल नहीं जाते। इस रिवाज़ के लिए नवजात शिशु के माँ बाप, नाना नानी, दादा दादी का होना और भी शुभ माना जाता है। साथ गाँव वालों को भी आमंत्रित किया जाता है। ख़ासकर गाँव के बड़े बुजुर्गों को। इसके अलावा और जितने भी लोग इस अनुष्ठान में शामिल होते हैं वे नवजात शिशु को आशीर्वाद सहित कुछ रुपए देकर स्वागत करते हैं।

शादी संबंधी अनुष्ठान की पद्धति

पूर्वजों के समय में लड़का-लड़की एक-दूसरे को पसंद करके शादी नहीं करते थे। उस समय आपसी सहमति से शादी तय कर दी जाती थी यानी कि लड़के के माँ-बाप लड़की के माँ-बाप आपस में ही तीसरे आदमी के साथ मिलकर यह संबंध जोड़ देते थे। इसे मुकलोम समुदाय 'मुकलोम कामवा' कहा जाता है। यह परंपरा पूर्वजों से चली आ रही है। परंतु इस युग में लड़का-लड़की की पसंद, ना-पसंद और राय को प्राथमिकता दी जाने लगी है। इसके बाद ही शादी के रस्मों की शुरुआत होती है। पूर्वजों के समय का ही नियम अनुष्ठान मुकलोम जनजाति अपनी शादियों में अपनाते चले आ रहे हैं। सबसे पहले तीसरे आदमी यानी कि कामवा लड़के के घर वाले और लड़की के घर वाले के यहाँ जाकर रजामंदी द्वारा आपस के रीति-रिवाज अनुसार शादी की तारीख पक्की कर देते हैं। मुकलोम रीति-रिवाज के अनुसार लड़के वाले लड़की वालों को दो मिथुन, एक सुअर और लड़की के रिश्तेदारों को कुछ रुपये नियम के अनुसार सौंपते हैं। शादी के समय सब रिश्तेदारों को अपने संबंध के अनुसार विभिन्न रस्मों और अपनी भूमिका को निभाना पड़ता है। जैसे बड़े भइया, बड़ी दीदी, बुआ, चाचा-

चाचा, मामा-मामी को यह रस्म निभाना अनिवार्य माना जाता है। ऐसा होने के बाद ही शादी संपन्न होती है। शादी के बाद भी शादी के घर में जितने भी काम में हाथ बंटाने आते हैं, उन्हें रिवाज के अनुसार बांस के डिब्बे में दारु भर करके और मांस के टुकड़े को हरी पत्तियों में बांधकर उन सभी के घरों में भेजा जाता है। तभी ही शादी के अनुष्ठान को पूर्ण रुप से संपन्न माना जाता है।

कृषि-कार्य से संबंधित अनुष्ठान और कार्य-कलाप

आदिवासी समुदाय में कृषि कार्य की शुरुआत प्रायः फ़रवरी महीने में करते हैं। मुकलोम जनजाति पूर्वजों से ही परंपरा कृषि कार्य करने की विधि अपनाई चली आ रही है। खेती से संबंधित अनुष्ठान विशेष ढंग से प्रयोजन अनुसार संपन्न होता है। मुकलोम समुदाय में कृषि कार्य तीन प्रकार के तथा तीन बार होते हैं- पहली 'हिमी पिग' (बाजरा की खेती) यह खेती कार्य दिसंबर से लेकर जुलाई महीने तक होते हैं। दूसरी, 'खांगपिग' (स्थानांतरित खेती) जिससे संबंधित खेती कार्य की शुरुआत फ़रवरी से लेकर नवंबर महीने तक होती है और तीसरी, 'नालटोंग पिग' (पानी खेती) जिसकी शुरुआत जून से लेकर दिसंबर महीने तक होती है। परंतु तीनों ही कृषि कार्य के अनुष्ठान एक हैं। सबसे पहले खेत की तैयारी करने की बारी आती है, जिससे पूर्व उस स्थान पर बड़े बुजुर्ग हाथ में चावल जिससे हमारे मुकलोम में "वोंगखी" कहते हैं और साथ में एक प्रकार की वनस्पति जो जंगलों में ही पाई जाती है जिसे 'मनरूँग बंग' कहते हैं, दोनों प्रकार की सामग्री को लेकर वोंगखी (चावल) को हरी पत्ती में रखकर और मनरूँग बंग (जंगली वनस्पति) को खेत काटने वाले स्थान पर चुनवा देते हैं और (रोमरांग) रीति-रिवाज़ के अनुसार बड़े बुजुर्ग जंगलों के अदृश्य रखवाले से विनती करते हैं कि आज से इस स्थान पर हम अपने पेट के लिए तथा जीवनयापन के लिए खेती करेंगे। इस खेत में जितने भी प्रकार के व्यंजन उगेंगे वह निरोग एवं सुरक्षित हों। खेती की शुरुआत पेड़-पौधों की कटाई से होती है और कटे हुए तमाम पेड़-पौधों को आग से जलाया जाता है। तत्पश्चात बीज बोते हैं। बाजरे के बीज जनवरी महीने में, स्थानांतरित खेती में बीज मई महीने में और पानी खेती में बीज जुलाई महीने में बोते हैं। यह कार्य सबसे व्यस्त, उत्साह और उमंग से भरा हुआ होता हैं। इस अवसर पर गाँव वालों का आपसी भाईचारा देखने को मिलता है। लोग एक दूसरे के खेतों में हाथ बटाते हैं और एक उत्सव की तरह कार्य मिल-जुलकर निपटाते हैं। फसलों की कटाई से पूर्व मुकलोम समुदाय में एक और प्रमुख अनुष्ठान होता है जिसे 'हारोंग' कहते हैं। यह अनुष्ठान बाजरे और धान के फसलों के स्वागत हेतु धरती मां को पूजते हैं क्योंकि नाना प्रकार के फसलों की अच्छी उपजाऊ धरती मां की ही देन है। यह अनुष्ठान परंपरागत अनुसार बड़े बुजुर्ग द्वारा रीति-रिवाजों के साथ संपन्न होता है। इस अनुष्ठान को गाँव वाले एक त्यौहार की तरह ही जश्न के रूप में मनाते हैं। इस अनुष्ठान के लिए गाँव वाले लोगों की संख्या के अनुसार मिथुन, सूअर और मुर्गी-मुर्गा साथ ही दारू पहले से इंतजाम करके रखते हैं। हारोंग के दिन गाँव की सभी औरतें सवेरे सूर्य उदय होने से पहले अपने-अपने खेतों में जाकर लाल पके हुए बाजरे और धान की पत्तियों को लेने जाती हैं और गाँव के बूढ़े–बच्चे और जवान हारोंग स्थल में पहुंचते हैं और रोमरांग के लिए मिट्टी का ढेर बनाकर रखते हैं और मिथुन को लकड़ी की नोक में फँसाकर रिवाजों के साथ प्रार्थना करते हैं। जैसे ही स्त्रियाँ बाजरे और धान की पत्तियां ले आती हैं, गाँव के बड़े बुजुर्ग जिसे 'रोमवा' कहते हैं- वे चावल (वोंगखी), बांस में दारू (खमती)- पानी और माँस सहित मिट्टी के ढेर में रख देती हैं और साथ ही जंगली वनस्पति 'मनलूम बंग' को उसके पास ही चढ़वा देती हैं और गाँव के 'तमवा' (पुजारी) द्वारा गाँव वालों की अच्छे फसलों तथा स्वास्थ्य

की कामना करते हैं, तत्पश्चात सभी गाँव वाले खाना, मांस और दारू-पानी का खान-पान करते हैं। आखिर में गाँव के रोमवा (पुजारी) द्वारा एक बार फिर से रीति-रिवाजों के अनुसार हारोंग अनुष्ठान को संपन्न करने हेतु प्रार्थना करके ही घर लौटते हैं। उसके बाद सभी घर लौटकर मुर्गी की बलि देकर बाजरे और धान की पत्तियों को घर के बड़े स्तंभ में बांध देती हैं। इसके साथ ही अपने पूर्वजों और पूजनीय को धन्यवाद तथा मातृभूमि को धन्यवाद देते हुए मुकलोम जनजाति के सारे लोग अपने पारंपरिक अनुष्ठान को पूर्ण श्रद्धा के साथ संपन्न करते हैं।

नया घर बनाने संबंधी अनुष्ठान पद्धतियाँ

मुकलोम समाज में घर बनाने का कार्य मिलजुल कर होता है। यह कार्य लोगों को मदद का मौका देता है जिससे आपसी एकता को बल मिलता है। पुराने पड़ चुके घर जिसे तोड़कर नये निर्माण की आवश्यकता है, उसे तोड़ने से एक दिन पहले गाँव के सारे लोग पुराने घर पर इकट्ठे होकर स्थानीय दारु का सेवन करते हैं जिसे मुकलोम समाज में 'हिमपोंग' कहते हैं। दूसरे दिन घर को तोड़ा जाता है और सारे गाँव के लोग मिलकर नया घर का निर्माण करते हैं। नया घर बनाने के पश्चात सारे गाँव के लोगों को इकट्ठा किया जाता है और माँस-दारू खिलाया-पिलाया जाता है। बूढ़े-बुजुर्ग इसमें रीति-रिवाज के अनुसार सारे अनुष्ठान को संपन्न कराते हैं, लेकिन नए घर में सूर्यास्त से पहले ही प्रवेश करना अनिवार्य होता है और पूर्वजों के अनुसार ऐसा करना, पारंपरिक रूप से शुभ माना जाता है।

त्यौहार/पर्व की अनुष्ठान पद्धतियाँ

त्यौहार को मुकलोम समुदाय में 'मोह-मोल' कहते हैं। यह त्यौहार अप्रैल महीने में जोर-शोर से मनाया जाता है और 25 अप्रैल को चाङलाङ जिले में सारे आदिवासी जनजातियों के लिए विशेष कार्यक्रम का आयोजन किया जाता है। इसमें हर ताङसा जनजाति की हरेक उप-जनजाति अपनी-अपनी संस्कृति की पहचान के साथ उपस्थित होते हैं। जैसे-मुकलोम, तुत्सा, लोङचाङ, हावी, जुगली आदि होते हैं। मुकलोम जनजाति में सांस्कृतिक वस्त्र-वेशभूषा, आभूषण, रंग-बिरंगे साज-सज्जा अत्यंत मनोहारी दृश्य प्रदर्शित करते हैं। पुरुषों का पहनावा अलग है। जैसे-सिर की टोपी को बांस के सूत से बनाया जाता है और उसमें चिड़ियों के पंखों को भी सजाया जाता है। गले के आभूषण के लिए बांस के सूत से बना गोले आकार की माला तैयार किया जाता है। दोनों हाथों-पैरों के लिए बांस के सूत से बनी चीज को पहनाया जाता है। बांस की टोपी को मुकलोम में 'खोपोङ' कहते हैं। पुरुष के वस्त्र साधारण होते हैं। ऊपरी हिस्से के शरीर में सफेद बनियान और नीचे के लिए नीला बनियान और साथ में पतली-सी चार डोरियों को बनियान के ऊपर बांधते हैं। उस चादर में नीले रंग के साथ लाल और सफेद रंग का मिश्रण भी दिखता है जिसे चादर के आखिरी हिस्से में मिलाया जाता है। पुरुषों की वेश-भूषा में सबसे अधिक सजावट होती है। इस त्यौहार के मौके पर सबसे महत्त्वपूर्ण और लोकप्रिय चीज ढोल होती है जिसे मुकलोम में 'नोङ' कहते हैं। इसे मांस के चमड़े से ही तैयार किया जाता है। कोने-कोने में बांस के सूत से इसे बांधा जाता है। इसे बजाने के लिए लकड़ी के डंडे का उपयोग किया जाता है।

मुकलोम समुदाय में स्त्रियों का त्यौहारी वस्त्र-आभूषण अत्यंत सुंदर और रंग-बिरंगा होता है। इनके ऊपरी हिस्से के वस्त्र सफेद रंग के होते हैं जिसे नीली ओढ़नी के साथ पहना जाता है। सफेद रंग के साथ लाल रंग के मेखला जिसको मुकलोम में 'खतसा' कहते हैं। साथ में गले में बांस के सूत से बना गोले आकार के और

साथ ही सिक्के से बने हुए व लाल रंग के अनेक प्रकार की मालाएँ पहनाई जाती हैं। हाथों-पैरों में भी बांस के बने कंगन और सूत को बांधते हैं और सिर पर बांस के सूत से बनी पट्टियों के साथ तीन लाठी जो लकड़ी का बना हुआ होता है, उस पर चिड़ियों के पंख और प्लास्टिक के बने रंग-बिरंगी पट्टियाँ सजी होती हैं।

'मोह मोल' त्यौहार पूरे चाङलाङ जिले में सप्ताह पर चलता है। मोह-मोल के समय में सांस्कृतिक प्रदर्शन के साथ-साथ गाना भी गाया जाता है। इसी गाने में मुकलोम जनजाति की कहानी, रीति-रिवाज को गाने के माध्यम से बयां किया जाता है। वाचिक परंपरा की इन भाषाओं में मुकलोम समाज की गहन एवं गूढ़ बातें समायी होती हैं। यह अफसोसजनक है कि आजकल की नई पीढ़ी इनको भली-भाँति नहीं समझ पाती है। क्योंकि मुकलोम जनजाति के गुणी और कला-संपन्न पूर्वजों की भाषा एवं बोलने के ढंग अलग ही थे। इसे मौखिक साहित्य में मुकलोम समुदाय ने बचाए रखने का हरसंभव प्रयास किया है, लेकिन अब पुरानी पीढ़ी की तरह नई पीढ़ी अपनी भाषा में रुचि नहीं ले रही है। यह संकट लगातार तेज होता जा रहा है जिसे मुकलोम समुदाय एक बड़े खतरे के रूप में देख रहा है। मुकलोम जनजाति में यह चिंता और निराशा का बड़ा कारण है जिसे यदि एक बार नष्ट हो जाने दिया गया तो इस समुदाय के पुरखों या पूर्वजों की बोली-वाणी को दोबारा उसी रूप में सिरज पाना असंभव होगा।

मृत्यु संबंधी अनुष्ठान पद्धतियाँ

मुकलोम जनजाति के पूर्वजों का मानना था कि मनुष्य मरने के बाद अपनी-अपनी जनजाति के पूर्वजों के पास पहुँच जाता है। यह मान्यता आज भी बरकरार है। मुकलोम समुदाय में इंसान का देह से प्राण त्यागते ही तीन बार बंदूक आसमान की ओर चलाता है जिससे गाँव वाले समझ जाते हैं कि किसी की मृत्यु हो गई है। मृत्यु के बाद तुरंत ही मृत शरीर को जंगली पौधे के पत्ते जिसे 'खोंमख़ी जग' कहते हैं, इस पत्ते को पानी में भिगोकर स्नान करवाते हैं और मृत शरीर को खल जिसे लकड़ी से बनाया जाता है और बीच में बांस की बनी कालीन को बिछाया जाता है। उस खल में मृत शरीर को उठाते समय भी तीन बार बंदूक चलाया जाता है। तत्पश्चात मृत शरीर को घर के बीचो-बीच खल के सहारे उठाकर लगभग दो रात और तीन दिनों तक रखा जाता है। इन दिनों में बीच-बीच में जैसे सवेरे, दिन, शाम और रात के समय भी बंदूक चलायी जाती है। उस मृत शरीर को खाना-पीना देते हैं और बांस की बनी टोकरी उसके सिरहाने पर रख देते हैं। इस दु:खद समय में केवल गाँव वाले ही नहीं बल्कि अन्य आस-पास के गाँव वाले भी साथ खड़े होते हैं। मुकलोम समाज में मृत शरीर को जलाया जाता है जबकि अन्य तंगसा उपजातियों में मृत शरीर को दफनाया जाता है। मृत शरीर को ले जाते समय घर के भीतर बने मिट्टी के चूल्हों को साफ़ करके उसके ऊपर बांस के बने बड़े आकार वाले टोकरी से ढँक देते हैं और घर के सभी सदस्य गाँव वालों सहित मृत शरीर को जलाने ले जाते हैं, ले जाते समय कोई भी सदस्य पीछे नहीं लौटता। मृत शरीर को जलाते समय मृतक के रिश्तेदार भाई-भैया द्वारा बांस में नाले का पानी उठाने का रिवाज होता है। दो लोग दो-दो बांस में बांस की टोकरी को पीठ से लाद कर तीन बार लाते हैं, उसके बाद घर के सदस्यों को बाएं हाथ से लकड़ी के टुकड़ों को अपने–अपने सिर के ऊपर घुमाकर जली हुई आग के पार फेंकने का रिवाज है। यह रिवाज इसलिए किया जाता है ताकि मृत व्यक्ति घर के लोगों को भूलकर अपनी जगह शांतिपूर्वक जा सके। यह कार्य पूर्ण होने के बाद घर के सदस्य वापस आ जाते हैं। वापस आते समय कोई भी पीछे मुड़कर नहीं देखता, क्योंकि पीछे मुड़कर देखना वर्जित है। घर आकर घर के चूल्हों में पैरों के निशान जाँचता है अगर चूल्हों

पर किसी के पैरों का निशान मिलता है तो यह अशुभ माना जाता है। दूसरी ओर, दाह संस्कार के बाद दो भाईयों द्वारा लाए गए उसी नाले के पानी से अग्नि को बुझाया जाता है। यही मृत शरीर के अंतिम संस्कार का मुख्य अनुष्ठान है।

पूर्वजों के समय में आपात दुर्घटना में हुई मौत होने की स्थिति में मृत शरीर को अनुष्ठान के साथ विदाई या उसका अंतिम संस्कार नहीं किया जाता था। उस मृत शरीर को उसी स्थान पर छोड़ देते थे या जला दिया जाता था। बिना अनुष्ठान किए एक जानवर की मृत्यु की भांति। इस मान्यता को आज की पीढ़ी उसी तरह से पूरे रीति-रिवाज एवं अनुष्ठान के साथ अंतिम संस्कार करके विदाई देती है जैसा सामान्य स्थिति में किया जाता है। इस तरह शुभ-मांगलिक अवसर पर अथवा शोक से संबंधित अनुष्ठान मुकलोम जनजाति की पहचान को बताते हैं। मुकलोम समुदाय अनुष्ठान अभ्यास से गहरे आस्था के साथ जुड़े हुए हैं। इस जन-समुदाय के लोगों का यह मानना है कि जब तक पारंपरिक अनुष्ठान-अभ्यास चलते रहेंगे, तब तक मुकलोम समाज की संस्कृति चलती रहेगी। वह यह भी मानते हैं कि जब यह अनुष्ठान समाप्त हो जाएंगे तब मुकलोम जनजाति के समाज की संस्कृति भी समाप्त हो जाएगी।

मुकलोम समाज की आर्थिक परिस्थितियाँ

मुकलोम समुदाय के पूर्वजों की आर्थिक परिस्थिति इतनी अच्छी नहीं थी। वे अपने जीवनयापन अथवा आजीविका के लिए वनों पर अधिक निर्भर थे। मुकलोम जनजाति के ऐतिहासिक कथा के अनुसार आदिवासी लोगों ने लिखित ज्ञान की बहुमूल्य निधि जो मांस के चमड़े के रूप में उन्हें दी गई थी, को अपनी भूख मिटाने के लिए खा लिया। शायद इसी कारण मुकलोम जनजाति में इतना अज्ञान, अंधविश्वास, अशिक्षा और गरीबी बढ़ गई थी जो आज तक भी मुकलोम जनजाति पुनः प्राप्त नहीं कर सकी है। आज भी उनके पास इतिहास का लिखित साहित्य नहीं है। आर्थिक परिस्थिति में मुकलोम अन्य जनजाति से काफी नीचे है। कारण कि पढ़े लिखे या बड़े अधिकारियों के होते हुए भी समाज में ज्ञान का कोई आदान-प्रदान पारस्परिक सहयोग-भावना से नहीं हो पा रहा है। मुकलोम जनजाति अधिसंख्य कृषि पर निर्भर है जो उनका पारंपरिक पेशा या कि जीने का आधार है। लेकिन यह भी सच है कि शिक्षा ने मुकलोम समुदाय के लोगों के जीवन में बदलाव लाना शुरू कर दिया है। आज बीस-तीस प्रतिशत लोग सरकारी नौकरी कर रहे हैं जिनके ऊपर अपने मुकलोम समुदाय की पहचान और संस्कृति को बनाए और बचाए रखने की सबसे अधिक जवाबदेही है।

मुकलोम जनजाति की मातृ-भाषा एवं बोली

मुकलोम जनजाति की मातृभाषा 'मोकलोम' भाषा ही है। इस की शुरुआत ऐतिहासिक रूप से प्रचलित मौखिक कथा के अनुसार प्रकृति प्रदत्त आध्यात्मिक शक्ति से हुई है। जिस प्रकार मुकलोम जनजाति का प्रारंभ दो भाई-बहन से हुआ था, उसके अंतर्गत मुकलोम जनजाति के लोगों ने जंगल-वनों में अपना निवास स्थापित करना शुरू कर दिया था। वे अपने निवास स्थान के आस-पास खेती कर गाँव का निर्माण कर रहे थे। इसलिए लोगों ने प्रकृति को अपना मुख्य देवता मानकर उसकी पूजा करना शुरु कर दिया। कथा के अनुसार मुकलोम जनजाति के लोगों के पास कोई मौखिक भाषा नहीं थी। लोग इशारों से आपस में वार्तालाप करते थे। धीरे-धीरे लोगों ने चीजों को नाम देना शुरू कर दिया और साथ ही पूर्वजों का यह भी कहना है कि जनजाति समाज के लोग प्रकृति की पूजा पूरे श्रद्धा से करते थे। इसलिए आध्यात्मिक रूप से लोगों को मुकलोम बोली की प्राप्ति हुई।

मुकलोम जनजाति की बोली एक है जिससे मुकलोम आपस में अपने विचारों का आदान-प्रदान करते हैं। मुकलोम में एक ही मातृभाषा एवं बोली होने के कारण लोग इसे आसानी से समझ लेते हैं और इसे बोला भी जा सकता है। कहा जाए तो मुकलोम बोली सहज और सरल है। इसमें कोई विशेष परिवर्तन करके अभ्यास नहीं करना पड़ता है। यह सीधे-सीधे बोलियों में बोला जाता है। यह अवश्य है कि केवल मौखिक बोली होने के कारण लोगों को बोलने में आसानी और सहजता होती है। मुकलोम जनजाति की एक ही बोली होने के कारण लोगों को बातचीत करने में स्वतंत्रता होती है और आसानी से एक-दूसरे की बातों को समझ भी जाते हैं। इस संदर्भ में एक उल्लेखनीय सचाई यह है कि आज तक मुकलोम जनजाति की कोई भी बात लिखित रूप में प्रकाश में नहीं आई है और न ही इनके साहित्य सार्वजनिक रूप से प्रकाश में आ सके हैं। आज के युग में इस दिशा में गहन तरीके से विचार-विमर्श की आवश्यकता है तथा मुकलोम समुदाय के साहित्य के दस्तावेजीकरण की दिशा में ठोस कदम, निर्णय और आपसी सहयोग अपेक्षित है। आधुनिक समय-समाज और बदली हुई परिस्थितियों के साथ मुकलोम समाज विकास की ओर बढ़ने का पूरा प्रयास कर रहा है और उनमें अपनी आर्थिक परिस्थितियों को भी मजबूत व सुदृढ़ करने का संकल्प दिखाई दे रहा है। यह उम्मीद की जानी चाहिए कि सांस्कृतिक विविधता एवं भाषाई बहुलता वाले देश के एक प्रमुख राज्य के रूप में अरुणाचल प्रदेश की गरिमा और ऐतिहासिक गौरव को आगे बढ़ाने एवं ऊपर उठाने में ताङसा जनजाति की उप-जनजाति के बतौर मुकलोम समुदाय का योगायोग सर्वाधिक होगा और इस समुदाय की अपनी पहचान और अस्मिता सामाजिक-सांस्कृतिक अस्मिता भी बरकरार रह पाएगी।

*(**लेखकीय परिचय :** चावाङ ताङहा राजीव गाँधी विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग से परास्नातक हैं और वर्तमान में* आप अध्यापन कार्य कर रही हैं। *मोबा: 8119982652, ई-मेल : chawangtangha6272@gmail.com)*

(यात्रा-वृत्तांत)

स्वर्ण पगोडा की भूमि-नामसई

दयाराम वर्मा

दिनांक 03 नवंबर, 2022 से 5 नवंबर, 2022 के बीच अरुणाचल के नामसई जिला मुख्यालय पर राष्ट्रीय स्तर के अरुणाचल प्रदेश साहित्य महोत्सव का आयोजन राज्य के 'सूचना एवं जनसंपर्क विभाग' और 'अरुणाचल प्रदेश साहित्यिक समाज' (एपीएलएस) के तत्त्वावधान में रखा गया था। इसमें देश-विदेश के लगभग 100 से अधिक साहित्यकारों को आमंत्रित किया गया, सौभाग्य से उनमें से एक मैं भी था। सभी औपचारिकताओं के बाद दो नवंबर, 2022 को आयोजकों की ओर से मुझे जयपुर से वाया गुवाहाटी डिब्रूगढ़ का हवाई टिकट उपलब्ध करवा दिया गया। नामसई, लोहित जिले के पश्चिमी हिस्से को विभक्त कर 2014 में बनाया गया अरुणाचल प्रदेश का 14वाँ जिला है। 'नोआ दिहिंग ' नदी के समीप बसे इस शहर की सीमाएं उत्तर-पूर्व में 'लोहित', दक्षिण में 'चांगलांग' और पश्चिम में असम राज्य के 'डिब्रूगढ़' जिले से लगती हैं। राष्ट्रीय राजमार्ग 15 से होते हुए, निकटतम हवाई अड्डे डिब्रूगढ़ से नामसई की दूरी करीब 125 किलोमीटर है। इस हवाई अड्डे को मोहनबाड़ी भी कहा जाता है। दो नवंबर, 2022 को विमान ने जब डिब्रूगढ़ हवाई अड्डे के रनवे को छूआ तो शाम के साढ़े तीन बज चुके थे। डिब्रूगढ़ आने का यह मेरा तीसरा अवसर था। पहली बार इस हवाई अड्डे पर वायु सेना की सेवा के दौरान वर्ष 1988 में जोरहाट से टूटिंग जाते समय और दूसरी बार नवंबर, 2019 में अरुणाचल के भ्रमण से लौटते समय मेरा आना हुआ था। यद्यपि यह एकल पट्टी वाला एक छोटा सा हवाई अड्डा है, लेकिन सुदूर दक्षिण-पूर्व अरुणाचल, पूर्वी असम एवं नागालैंड को शेष भारत से जोड़ने वाला एकमात्र हवाई अड्डा होने के कारण इसका महत्त्व बढ़ जाता है। बाहर आने के बाद मैंने हमारे समन्वयक श्री सावांग वांगछा से बात की। उन्होंने एक ड्राइवर के मोबाइल नंबर दिए। शीघ्र ही सामने की पार्किंग में ड्राइवर से संपर्क हो गया। लगभग 25 डिग्री तापमान, साफ आसमान और शांत हवाओं के चलते मौसम सुहावना था। थोड़ी ही देर में अहमदाबाद, गुजरात से पधारे डॉ. राजेश रठवा और सुंदरनगर, हिमाचल से पधारे वरिष्ठ साहित्यकार डॉ. गंगाराम राजी भी हमसे आ मिले। ये दोनों भी अरुणाचल लिट-फेस्ट में भाग लेने जा रहे थे। डॉ. राजी के साथ उनकी धर्मपत्नी भी थीं। यहाँ से नामसई का सफ़र लगभग तीन घंटे का था। कुछ और मेहमान भी थे जो दूसरी गाड़ियों में जा रहे थे। शाम के चार बज चुके थे, अत: बिना समय गँवाए, हम आरामदेह इनोवा गाड़ी में रवाना हो लिए।

हवाई अड्डे से निकलने के पंद्रह-बीस मिनिट पश्चात ही ड्राइवर ने एक रेस्टोरेंट पर भोजन के लिए गाड़ी रोकी। हमने भी यहीं पर भोजन कर लेना उचित समझा। रेस्टोरेंट साफ़-सुथरा था और खाना भी संतोषजनक था। अब सूर्य अपनी अंतिम रश्मियों को समेटते हुए पश्चिम में डूबने की तैयारी कर रहा था। जयपुर (राजस्थान) और यहाँ के सूर्यास्त में लगभग डेढ़ घंटे का अंतर था। यह पूरा क्षेत्र मैदानी भाग था-डिब्रूगढ़ से ही चाय के विशाल बागान आरंभ हो जाते हैं जो आगे तक चलते हैं। लेकिन प्रतिपल गहराते अंधकार के कारण दाएँ-बाएँ कुछ भी देख पाना संभव नहीं था। गाड़ी की तेज गति के बावजूद झटके नहीं लग रहे थे, अर्थात राजमार्ग बढ़िया था।

परिचयोपरांत गपियाने-बतियाने का सिलसिला आरंभ हुआ। डॉ. राजेश रठवा, गुजरात विद्यापीठ अहमदाबाद में रिसर्च एसोसिएट थे। वरिष्ठ साहित्यकार और कथाकार डॉ. गंगाराम शर्मा 'राजी' ने बताया कि अब तक उनके 27 कहानी संग्रह और 12 उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। बीच-बीच में हमारी, श्रीमान सावांग से मोबाइल फोन पर बातचीत हो रही थी जो नामसई में हमारे निर्धारित ठिकानों के बारे में मार्गदर्शन करते जा रहे थे। असम के चबुआ और तिनसुकिया शहर से गुजरते हुए लगभग दो घंटे के पश्चात गाड़ी ने 'काकोपथार' नामक चेक-पोस्ट पर अरुणाचल की सीमा में प्रवेश किया। यहाँ हमारे 'इनर लाइन परमिट' की जाँच की गई। नामसई पहुँचते-पहुँचते स्थानीय समय के अनुसार काफी रात हो चुकी थी। प्राय: सभी दुकानें और बाजार बंद हो चुके थे। सड़क के दोनों ओर दूर-दूर तक समतली जमीन पर अंधकार में डूबे खेत-खलिहान या जंगल थे। डॉ. गंगाराम शर्मा 'राजी' और उनकी धर्मपत्नी को नामसई में उनके लिए आरक्षित होटल में छोड़ने के बाद हम आगे बढ़ गए। समन्वयक श्री सावांग वांगछा के अनुसार हमें 'चौंखम' गाँव के 'ह्वेन ताई होम स्टे' में रूकना था। गूगल नक्शे का अनुसरण करते हुए हम नामसई से करीब अट्ठाईस किलोमीटर और आगे आ गए। लेकिन चौंखम में हमें अपना गंतव्य को ढूंढ़ने में थोड़ी परेशानी का सामना करना पड़ा-कारण कि गूगल सही लोकेशन को मैप नहीं कर पा रहा था। इस समय वीरान सड़कों पर कोई मार्गदर्शन करने वाला भी नहीं था। खैर, कभी थोड़ा आगे कभी थोड़ा पीछे चक्कर लगाने के बाद अंत में हम एसबीआई की शाखा के पास पहुँच ही गए, होम स्टे इसके पास ही था। इस समय रात्रि के साढ़े नौ बज चुके थे।

जब हम 'ह्वेन ताई होम स्टे' पहुँचे तो हमने यहाँ की स्वामिनी, लगभग पैंतालीस वर्षीय, गौर वर्ण श्रीमती मुक्ता नामचूम को हमारा इंतजार करते पाया। कई एकड़ में फैले इस फार्म हाउस के पिछले हिस्से में दो मंजिला इमारत थी और शेष में खेती-बाड़ी हो रही थी। छोटे-छोटे चाय बागानों से घिरा यह होम स्टे एक शांत और खूबसूरत फार्म हाउस था। हमें एक बेहद साफ सुथरा और सुविधाजनक कमरा दिया गया। खाने में ताजा सब्जी-दाल-चावल-रोटी के साथ-साथ कुछ एक खामती व्यंजन और मछली आदि परोसे गए। भोजन की गुणवत्ता और स्वाद बिल्कुल घर पर बने भोजन जैसा ही था। बाद में हमें ज्ञात हुआ कि इस क्षेत्र में जगह-जगह लोगों ने अपने घरों या फार्म हाउस में होम स्टे खोल रखे हैं। बाहर से आने वाले पर्यटक होटलों में रूकने की अपेक्षा पेड़-पौधों से घिरे, खुले प्राकृतिक परिवेश वाले इन होम स्टे में ठहरना अधिक पसंद करते हैं।

अगली सुबह नाश्ते के उपरांत आस-पास टहलने के उद्देश्य से हम निकल पड़े। थोड़ा आगे, कुछ फर्लांग की दूरी पर एक पुराना बौद्ध विहार देख हम चौंक उठे। इस विहार में कई छोटे बड़े मंदिर थे, जहाँ विभिन्न मुद्राओं में तथागत की गोल्डन मूर्तियाँ स्थापित थीं। यहाँ के बौद्ध मंदिरों का स्थापत्य, म्यांमार के गोल्डन बौद्ध मंदिरों के सदृश होने के कारण इसे 'सुनहरी पगोडा की धरती' कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं। विहार में इस समय कुछ एक मजदूरों के अलावा कोई नहीं था। एक ओर नए भवन का निर्माण कार्य चल रहा था तो वहीं एक नई मूर्ति का भी निर्माण हो रहा था। पीपल के एक विशाल पुराने पेड़ के नीचे टूट कर गिरे पत्तियों के विशाल ढेर इस बात का द्योतक थे कि पगोडा परिसर काफी समय से बंद है। कुल मिलाकर यहाँ सादगी भरी शांति का सम्मोहक वातावरण था।

गाँव की चंद और गलियों में घूमते हुए हमने देखा कि यहाँ के घर एक दूसरे से पर्याप्त दूरी पर-अपेक्षाकृत खुले परिवेश में बने हैं। घरों के एक हिस्से में या आस-पास चाय के छोटे बागान भी थे। अधिकांश घर सीमेंट-

कंकरीट से निर्मित पक्के बंगले-नुमा घर हैं। घरों की बालकनी, बरामदे और छत आदि पर लकड़ी की आकर्षक रेलिंग एवं कलात्मक आकृतियाँ, केन के सुंदर फर्नीचर, रंग-बिरंगे सजावटी पेड़ पौधे, यहाँ रहने वालों के बेहतरीन सौंदर्य बोध को अभिव्यक्त कर रहे थे। घरों के बगीचों के बीच पारंपरिक लकड़ी और घास-फूस की झोपड़ियाँ, मछली पालन के छोटे तालाब, मुर्गियों के झुंड, सुस्ताते कुत्ते आदि भी प्राय: सभी जगह देखने को मिल रहे थे। लगभग 9 बजे हमने स्टे होम में नाश्ता किया और साहित्य महोत्सव में भाग लेने के लिए नामसई की ओर रवाना हो लिए।

चौथे अरुणाचल लिट-फेस्ट का शुभारंभ अरुणाचल प्रदेश के उप मुख्य मुख्यमंत्री श्री चाउना मेन के मुख्य आतिथ्य में, अरुणाचल प्रदेश साहित्यिक समाज के अध्यक्ष और वरिष्ठ साहित्यकार पद्मश्री येशे दोरजी थोंग्ची, ख्यातिलब्ध लेखिका पद्मश्री ममंग दई आदि की गरिमामयी उपस्थिति में नामसई के बहुउद्देशीय सांस्कृतिक हॉल में हुआ। न केवल हिंदी और अंग्रेजी बल्कि भारत की विभिन्न स्थानीय भाषाओं जैसे मणिपुरी, असमी, भोजपुरी, गुजराती, बंगाली और दक्षिण भारतीय भाषाओं की रचनाओं की प्रस्तुति के कारण यह महोत्सव हमारे देश की 'विविधता में एकता' को मजबूती प्रदान कर रहा था। सम्मेलन में जिन प्रमुख साहित्यकारों, रंगकर्मियों, कलाकारों, कवियों, प्रकाशकों और लेखकों ने भाग लिया वे थे- वरिष्ठ साहित्यकार पद्मश्री येशे दोरजी थोंग्ची, ख्यातिलब्ध लेखिका पद्मश्री ममंग दई, पद्मश्री गीता धर्मराज, ध्रुव हजारिका, दिविक रमेश, देवेन्द्र मेवाड़ी, सत्य नारायण उर्फ़ अंकल मूसा, डॉ. जमुना बीनी तादर, डॉ. रति सक्सेना, डेविड डविडर, विकास राय देव बर्मन, डॉ. वांग्लिट मोंगचां, रीकेन गोमले, जयन्त माधव बरा, तेनजिन सुंड्यु, डॉ. गंगाराम राजी, मीठेश निर्मोही, धनंजय चौहान, संतोष कुमार भदौरिया, रवि सिंह और संतोष पटेल।

नामसई और चौंखम के बीच टेंगापानी नामक स्थान पर, टेंग नदी के किनारे नामसई का प्रसिद्ध स्वर्ण पगोडा अवस्थित है। आज थोड़ा समय निकालकर मैं और डॉ. रठवा यहाँ पहुँचे। 49 एकड़ में फैले इस स्वर्ण पगोडा को वर्ष 2010 में आम जनता के लिए खोला गया। स्थानीय भाषा में इसे 'कोंगमु खाम' कहा जाता है। 'विश्व त्रिपिका फाउंडेशन' इस स्वर्ण पगोडा को भारत में पहले अंतरराष्ट्रीय त्रिपिटक केंद्र के रूप में विकसित कर रहा है।

इसमें बौद्ध विहार के अलावा बुद्ध के अनेक मंदिर बनाए गए हैं। सभी एक से बढ़कर एक खूबसूरत, विशाल और भव्य हैं। प्रार्थना सभागार में पूरी तरह केन से बनी एक मूर्ति तो विश्व में महात्मा बुद्ध की सबसे विशाल केन की मूर्ति बताई जाती है। इस पगोडा के लिए बुद्ध की एक विशाल विशुद्ध कांस्य मूर्ति थाईलैंड के भिक्षु क्लाट अरांजिकावास ने दान में दी। यहाँ का सारा निर्माण म्यांमार या थाईलैंड के कारीगरों द्वारा किया गया है। इस परिसर में एक पुस्तकालय, एक क्लिनिक और लगभग 100 भिक्षुओं के लिए छात्रावास आदि की भी उत्तम व्यवस्था है।

एक विशेष बात जो हमें यहाँ आकर ज्ञात हुई वह यह कि ताई-खाम्पति की अपनी एक लिपि भी है, जिसे 'लिक ताई' के नाम से जाना जाता है। यह लिपि म्यांमार की शान (ताई) लिपि से उत्पन्न हुई है। यह एक ताई भाषा है, जिसका थाई और लाओ से गहरा संबंध है। भाषा, लिपि, रीति-रिवाज और संस्कृतियों का एक स्थान से दूसरे स्थान पर सदैव आदान-प्रदान होता रहा है। तथापि, लचीलेपन, व्यावहारिकता, व्यापार एवं सरलता आदि के पैमानों पर जो भाषा, लिपि, रीति-रिवाज या संस्कृति अधिक प्रचलन में आती है वह फलती

फूलती रहती है। हरे भरे विशाल पेड़ों और सुंदर बगीचों के बीच बने इस पगोडा में असीम आध्यात्मिक शांति का अनुभव किया जा सकता है।

अगले दो दिन, सुबह के नाश्ते और शाम के भोजन के समय श्रीमती मुक्ता नामचूम रसोईघर में अपनी एक सहयोगिनी के साथ उपस्थित रहतीं और हमारी जरूरत की हर छोटी-बड़ी चीज का ख्याल रखतीं। उनकी सादगी भरी मेहमान-नवाज़ी क़ाबिल-ए-तारीफ़ थी।

उधर, लिट-फेस्ट में विभिन्न सत्रों में कथा वाचन, काव्य पाठ, लेखकों से भेंट, पुस्तक प्रदर्शनी, पुस्तक परिचर्चा, उपन्यास और कविता लेखन पर कार्यशाला, साहित्य की एक कला के रूप में रंगमंच आदि विविध विषयों पर बुद्धिजीवियों के बीच सार्थक परिचर्चाएं हो रही थीं। 'ट्रांसजेंडर' को समर्पित एक सत्र 'रेनबो कोन्क्लेव' इस समारोह का एक अनूठा आयोजन था, जिसमें 'ट्रांसजेंडर' समुदाय के कवियों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से अपनी अस्वीकृति, अपमान, उपेक्षा आदि के दर्द को बखूबी बयान किया। प्राय: सभी सत्रों में बड़ी संख्या में स्थानीय शिक्षण संस्थाओं के विद्यार्थी भी अपनी उपस्थिति दर्ज करा रहे थे। प्रतिदिन रात्रि भोज के साथ-साथ, रंगारंग सांस्कृतिक कार्यक्रमों में सभी उम्र के साहित्यकारों को बिंदास नाचते गाते झूमते देखना और उनका हिस्सा बनना अविस्मरणीय था।

चार नवंबर की रात को 'ह्वेन ताई होम स्टे' में गुवाहाटी की श्रीमती रूमी लश्कर बोरा और इलाहाबाद की डॉ. शमेनाज बानो भी आ पहुँची, लेकिन डॉ. शमेनाज शेख और डॉ. राजेश रठवा अगली सुबह ही चेक आउट कर चले गए। उस रोज मुक्ता नामचूम के भोजन कक्ष में सुबह के नाश्ते के उपरांत बातचीत के दौरान रूमी बोरा ने बताया कि यहाँ से थोड़ी ही दूरी पर 7-केएम नामक एक रिसोर्ट में साहित्य अकादमी कलकत्ता के क्षेत्रीय सचिव श्री देवेंद्र कुमार देवेश, पंडित रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर की सहायक प्राध्यापक डॉ. आरती पाठक और जशपुर, छत्तीसगढ़ से सहायक प्राध्यापक श्रीमती कुसुममाधुरी टोप्पो ठहरे हुए हैं और आज उनका परशुराम कुंड देखने का कार्यक्रम है। ड्राइवर सहित दो गाड़ियों की व्यवस्था थी, अत: मैं भी उनके काफिले में शामिल हो गया। मुझे और श्रीमती बोरा को लेकर ड्राइवर 7-केएम रिसोर्ट पहुँचा। यहाँ शेष लोग हमारा इंतजार कर रहे थे।

7-केएम रिसोर्ट चौंखम गाँव से कुछ एक किलोमीटर की दूरी पर ही था। स्वच्छ-पारदर्शी नील-वर्ण पानी की एक छोटी नदी के पास कई एकड़ में फैले इस रिसोर्ट की सुंदरता देखने लायक थी। एक तरफ, लकड़ी, घास-फूस और बाँस के अनेक कॉटेज नजर आ रहे थे। नदी पर बने सुंदर लकड़ी के पुल के उस पार रिसोर्ट था। नदी किनारे लगभग आठ से दस बाँस से कलात्मक झोपड़े थे। प्रत्येक झोपड़े के आगे ढलान में, नदी के पानी को छूती हुई बांस की चटाइयाँ बिछी थीं। पानी इतना पारदर्शी था कि तलहटी में तैरती छोटी-छोटी सैकड़ों मछलियाँ और लुढ़कते हुए कंकपड़-पत्थर तक एकदम साफ नजर आ रहे थे।

इस समय आसमान में काफी ऊँचाई पर छितराए बादल तैर रहे थे। रिसोर्ट के पीछे लंबे-चौड़े मैदानों के अंत में दूर कहीं नीली चुनरिया ओढ़े मिश्मी पहाड़ियों की लंबी श्रृंखला थी। आस-पास के खेतों में चाय और अन्य फसलें लहलहा रही थीं। पंद्रह से बीस सैलानी भी इधर-उधर मौज मस्ती में व्यस्त थे। रिसोर्ट के भोजन कक्ष, स्वागत कक्ष और अन्य सभी प्रकार के ढांचों का निर्माण सौ फ़ीसद बाँस, केन, घास-फूस आदि द्वारा

अत्यंत आकर्षक डिज़ाइन में किया गया था। यहाँ कई तरह के मनोरंजक इनडोर खेल-कूद की भी व्यवस्था थी। कुछ लोग नदी में स्नान का आनंद ले रहे थे।

नदी के समीप एक प्लेटफॉर्म पर सजी पंक्तिबद्ध आराम कुर्सियों पर पसर कर हमने भी अल्प काल के लिए प्रकृति के सान्निध्य में कल-कल बहते पानी के संगीत का आनंद लिया। मंथर गति से बह रहे पानी की गहराई अधिकतम कमर तक ही थी; अतएव यहाँ स्नान करने में किसी प्रकार का खतरा नहीं था। भारत में इतनी स्वच्छ एवं पारदर्शी नदियाँ दुर्लभ ही हैं। वर्ष 1988-89 में जब मैं ऊपरी सियांग जिले के टूटिंग कस्बे में था तब सियांग का पानी इसी प्रकार साफ, पारदर्शी और नील-वर्ण हुआ करता था। लेकिन, जब तीस वर्ष बाद, वर्ष 2019 में मेरा पुन: उस क्षेत्र में जाना हुआ तो गेल्लिंग से लेकर पासीघाट तक सर्वत्र सियांग के जल को काला और मटमैला पाया।

हमने थोड़ी देर रूककर इस रिसोर्ट के प्राकृतिक सौंदर्य का लुत्फ उठाया और फिर आगे के लिए निकल पड़े। एक गाड़ी में मैं, देवेंद्र देवेश और रूमी बोरा थीं और दूसरी गाड़ी में डॉ. आरती पाठक, डॉ. कुसुममाधुरी टोप्पो उनकी बेटी और पति देव थे।

राष्ट्रीय राजमार्ग संख्या 15 पर अवस्थित परशुराम कुंड की रिसोर्ट से लगभग 77 किलोमीटर की दूरी थी। इस राजमार्ग का रख रखाव अच्छा नहीं था। जगह-जगह से टूटी-फूटी होने के कारण खूब झटके लग रहे थे। सड़क के दोनों ओर मैदानी भू-भाग पर दूर-दूर तक चाय और धान के खेत लहलहा रहे थे। जहाँ-तहाँ पीठ पर टोकरी लटकाए, सर पर बड़े गोल केन वाले टोप ओढ़े, औरतें और आदमी खेतों में काम करते नजर आ रहे थे। आगे चलकर जब हमने मेडो चाय बागान और मेडो गाँव को पार किया तो पहाड़ी क्षेत्र आरंभ हो गया। कुंड की ओर जाने वाला मार्ग, मुख्य सड़क से 90 डिग्री का कोण बनाते हुए एक पहाड़ी चढ़ाई वाला रास्ता था। अब हम कामलांग आरक्षित वन क्षेत्र से गुजर रहे थे। यहाँ ऊँचाई वाले पेड़ों, जंगली पौधों और सघन लताओं का साम्राज्य था। रास्ते में हमने अनेक सूखे नालों को भी पार किया। इस क्षेत्र में सूखे नालों की उपस्थिति असमान्य बात थी, क्योंकि जहाँ तक मेरी जानकारी थी हिमालयन नदी-नालों में वर्ष पर्यंत पानी बहता रहता है।

अरुणाचल व असम में 200 किलोमीटर की यात्रा करने के बाद लोहित नदी ब्रह्मपुत्र में समाहित होती है। इसका उद्गम तिब्बत (वर्तमान चीन) की तिरप-फासी पर्वत श्रृंखला है। यह दोनों देशों की सीमा पर 'किबिथो' नामक छोटे से गाँव के पास से गुजरते हुए भारत की सीमा में प्रवेश करती है। वहाँ से यह मिश्मी पहाड़ी के दर्रों को पार करती हुई लोहित जिले के मैदानी भाग में पहुंचती है। लोहित के ऊपरी इलाकों में मिश्मी जनजाति का बाहुल्य है तो इसके निचले या मैदानी भागों में खम्पति और सिंगफोस का।

लोहित जिले में जहाँ मिश्मी पहाड़ियाँ आरंभ होती है, वहीं विशुद्ध जल से लबरेज़ लोहित नदी भी पहाड़ियों से उतरकर अपना मैदानी सफ़र शुरू करती है। यही जगह है- परशुराम कुंड। पौराणिक कथाओं के अनुसार परशुराम को विष्णु भगवान के दश अवतारों में से एक माना गया है। कालिका पुराण और श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार त्रेता युग में ऋषि जमदग्नि की पत्नी रेणुका, एक बार नदी से पानी लेने गई। नदी में एक अत्यंत सुंदर राजकुमार को सुंदर स्त्रियों के साथ स्नान करते देख ऐसी मुग्ध हुई कि समय का ख़याल ही न रहा। रेणुका के आश्रम पहुँचने पर ऋषि जमदग्नि अत्यंत क्रोधित हो उठे और अपने पुत्रों से कहा कि वे रेणुका की हत्या कर दें। ऋषि के बड़े पुत्र यह नहीं कर पाए लेकिन छोटे पुत्र परशुराम ने अपने पिता की आज्ञा का पालन करते हुए अपनी

ही माँ की एक कुल्हाड़ी से हत्या कर दी। उसने अपने अन्य भाइयों की भी पिता की आज्ञा न मानने के कारण हत्या कर दी।

जब उसके पिता उससे प्रसन्न हो गए तो परशुराम ने उनसे, अपनी माँ और भाइयों को पुनर्जीवित करने का वर मांग लिया। ऋषि जमदग्नि ने पुत्र परशुराम को वर दे दिया साथ ही यह भी वर दिया कि पुनर्जीवित होने पर उसकी माँ या भाइयों को उनकी हत्या की घटना याद नहीं रहेगी। लेकिन मातृ हत्या के पाप के कारण कुल्हाड़ी का हत्था उसके हाथ से चिपक गया। परशुराम ने उससे छुटकारे का उपाय अपने पिता श्री से पूछा। ऋषि जमदग्नि ने कहा कि वह पवित्र नदियों में जाकर स्नान करे, जब वह पाप मुक्त हो जाएगा तो कुल्हाड़ी का हत्था भी छूट जाएगा।

इसी कारण परशुराम ने विभिन्न पवित्र नदियों में जाकर स्नान करना आरंभ किया और जब लोहित नदी के इस स्थान पर स्नान किया तो उसके हाथ से चिपका हुआ हत्था छूटकर गिर गया। इस प्रकार हिंदु धर्मावलंबियों के बीच, पापों से प्रायश्चित या मुक्ति की कामना के रूप में इस स्थान पर आकर स्नान करना प्रचलन में आया। प्रति वर्ष पौष माह (जनवरी) की मकर संक्रांति के दिन हजारों हिंदु श्रद्धालु यहाँ आकर पवित्र डुबकी लगाते हैं।

कुंड तक पहुँचने के लिए एक पगडंडी-नुमा रास्ता पहाड़ों के बीच से बना हुआ है। सबसे पहले सीमेंट के ऊंचे स्तंभों वाला एक द्वार नजर आया। इस पर लिखा था 'श्री परशुराम धाम कुण्ड 24/08/2010 गाड़ियों से उतरकर हम पैदल ऊपर की ओर चल पड़े। आगे रास्ते में पुराने मंदिर परिसर के पास ही भगवान परशुराम का एक नया मंदिर बना हुआ था। इस मंदिर की 51 फुट की भगवान परशुराम की कांस्य मूर्ति का अनावरण दिनांक 21 मई, 2022 को केंद्रीय गृह मंत्री श्री अमित शाह ने किया था।

यहाँ दैनिक कामों में व्यस्त पुजारी और कामगार लोग दिखाई पड़ रहे थे। बंदर, लंगूर और गाय-बछड़े आदि भी देखे जा सकते थे। चंद प्रसाद और पूजा सामग्री से सजी-धजी दुकानें थीं। इनको पार करने पर एक घुमावदार रास्ता नजर आया-जहाँ पत्थर काट कर सीढ़ियां बनाई गईं थी। हम इन सीढ़ियों पर नीचे उतरते गए। सैकड़ों सीढ़ियाँ और कई घुमाव पार करने के बाद आखिर में हमें लोहित नदी नजर आई। जहाँ सीढ़ियां समाप्त हो रही थीं वहाँ की चट्टानों से लोहित की प्रचंड लहरें टकरा कर भीषण गर्जना उत्पन्न कर रही थीं। एक ओर पहाड़ के एक हिस्से में परशुराम कुण्ड का पवित्र धाम था। यहाँ एक पुजारी, श्रद्धालुओं को आशीर्वाद और प्रसाद वितरण कर रहे थे।

यद्यपि लोहित सियांग की तरह विशाल नदी नहीं कही जा सकती, लेकिन इस बिंदु पर इसका बहाव काफी तेज था और पाट भी बहुत चौड़ा था। इस पाट के लगभग आधे हिस्से में ही नदी का प्रवाह था। थोड़ी ही दूरी पर नदी के आर-पार एक लंबा पुल भी नजर आ रहा था। चारो ओर पहाड़, हरियाली और स्वच्छ वातावरण तन-मन को अंदर तक प्रफुल्लित कर रहे थे। यहाँ असल परीक्षा वापिस लौटते समय होती है, जब खड़ी चढ़ाई वाली सैकड़ों सीढ़ियां चढ़नी पड़ती हैं। गाड़ी की पार्किंग तक आते-आते हम सब की टांगे थक कर चूर हो चुकी थीं। यहाँ यह उल्लेख करना प्रासंगिक होगा कि जिन व्यक्तियों को घुटने में दर्द रहता है या अधिक उम्र के कारण चढ़ने-उतरने में परेशानी होती है, वे इन पहाड़ी सीढ़ियों पर किसी प्रकार का जोखिम न लें। लौटते समय हमने नदी पर बने पुल से बहुत-सी तस्वीरें लीं और एक रेस्टोरेंट पर रूककर भोजन किया।

रास्ते में चौंखम कस्बे के नजदीक एक पालि विद्यालय का बोर्ड देखकर मैं चौंक उठा। पालि! पालि भाषा का विद्यालय और यहाँ? बाद में इस विषय पर और जानकारी जुटाने पर ज्ञात हुआ कि बौद्ध के धर्मोपदेश (धम्म) मूल रूप से पालि भाषा में ही लिपिबद्ध हुए। म्यांमार और थाईलैंड में भी बौद्ध धर्म का प्रसार-प्रचार, पूर्वोत्तर भारत से ही हुआ। बाद में ताई-खम्पति जो म्यांमार से इधर आए, अपने साथ अपनी भाषा और लिपि को भी लेकर आए। यद्यपि विश्व की सभी प्रमुख भाषाओं में बौद्ध साहित्य का अनुवाद आसानी से उपलब्ध होगा फिर भी इस लुप्तप्राय भाषा के नाम से इस छोटे से गाँव में एक विद्यालय के संचालन को इस भाषा के जरिए यहाँ के लोगों की अपनी आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित रखने के एक प्रयास के रूप में देखा जा सकता है।

इस दौरे के बाद, राजीव गांधी विश्वविद्यालय, दोईमुख के हिंदी विभाग के सहायक आचार्य श्री राजीव रंजन प्रसाद के सौजन्य से मुझे पूर्वोदय प्रकाशन, नई दिल्ली से वर्ष 2001 में प्रकाशित एक दुर्लभ ग्रंथ 'अरुणाचल प्रदेश का खम्पति समाज और साहित्य' प्राप्त हुआ। इसके रचयिता थे डॉ. भिक्षु कोण्डिन्य। इस पुस्तक में खम्पति समाज के इतिहास, रहन-सहन, भाषा-शैली, साहित्य, धार्मिक अनुष्ठान, बौद्ध परंपरा, रीति-रिवाज, खान-पान व कृषि आदि की अनुभवजन्य बारीक से बारीक जानकारियाँ प्रदान की गई है वह अचंभित करती है। नामसई में खम्पति प्रमुख जनजाति और थेरवादी बुद्धिज्म प्रमुख धर्म है।

आज महोत्सव का अंतिम दिन था। अरुणाचल प्रदेश लिटरेरी सोसाइटी के महासचिव मुकुल पाठक ने समारोह का विधिवत समापन किया और सभी साहित्यकारों और मेहमानों को माननीय उप मुख्यमंत्री चाउना मेन की ओर से चौंखम के नजदीक के एक गाँव 'मेमे' के 'तुंग ताओ' रिसोर्ट में उसी रोज रात्रि-भोज का न्योता भी दे दिया।

तुंग ताओ रिसोर्ट भी 7-केएम रिसोर्ट की भांति एक छोटी नदी के किनारे स्थित था। रात्रि भोज के साथ स्थानीय गीत-संगीत एवं नृत्य की शानदार व्यवस्था थी। ठंड से निपटने के लिए जगह-जगह अलाव जलाए गए थे। नदी के ऊपर बने लकड़ी के कलात्मक प्लेटफॉर्मों पर सांस्कृतिक आयोजन हो रहे थे। मुख्य अतिथि, साहित्यकारों और अन्य गणमान्य नागरिकों की गरिमामयी उपस्थिति में चुनिंदा लेखकों और कलाकारों को पारंपरिक 'थाई सन पैरासोल एशियन छतरी' के साथ सम्मानित भी किया गया। देर रात हम वापिस अपने स्टे होम में लौटे।

अगला दिन घर वापसी का दिन था। नामसई की ढेरों अविस्मरणीय यादें संजोकर हमने हमारी मेजबान श्रीमती मुक्ता वांगचूम से विदा ली और डिब्रूगढ़ हवाई अड्डे के लिए रवाना हो गए। इस समारोह में एक शख्सियत सूत्रधार की भांति हर समय हर जगह मौजूद थीं। हर व्यक्ति से उनका आत्मिक मेल-मिलाप औपचारिकताओं की सीमा से परे दिलों की सरहदों तक था। इस वृत्तांत के अंत में उस शख्सियत, हर दिल अजीज डॉ. जमुना बीनी तादर का हार्दिक आभार और धन्यवाद।

*(**लेखकीय परिचय:** दयाराम वर्मा अरुणाचल प्रदेश में लंबे समय तक नौकरी के लिए पदस्थापित रहे हैं। आपका उपन्यास 'सियांग के उस पार' और यात्रा-वृत्तांत 'ब्रह्मपुत्र से सांग्पो की यात्रा' पुस्तक काफी चर्चित रही हैं। आप जयपुर स्थित पंजाब नेशनल बैंक से मुख्य प्रबंधक के पद से सेवानिवृत्त हुए हैं तथा इस समय जयपुर में रहते हुए साहित्य लेखन और अन्य रचनात्मक गतिविधियों में योगदान दे रहे हैं।*
ईमेल- drv.excel@gmail.com)

(गाँव ज्ञान)

देसाली बस्ती: इदु मिश्मी लोक-जीवन और लोक-रंग

रेनू मिसो

भारतीय समाज की लोक-संस्कृति यहाँ के गाँव-कस्बे में बसी हुई है। भारतीय समाज को प्राणवान बनाने में यहाँ की ग्रामीण परंपरा, लोक-विश्वास एवं धार्मिक आस्था का योगदान महत्त्वपूर्ण है। भारतीयता की पहचान इन्हीं लौकिक तौर-तरीकों और रीति-रिवाजों से मिलकर बनती है। एम. फोस्टर के अनुसार, "लोक-संस्कृति को जीवन की ऐसी सामान्य विधि के रूप में समझा जाता है जो एक क्षेत्र विशेष के गाँव, क़स्बा तथा नगरों के कुछ पास भी व्यक्तियों की विशेषता के रूप में स्पष्ट होती है तथा लोक समाज उन व्यक्तियों का एक संगठित समूह है जो लोक संस्कृति से बंधा होता है।" देसाली बस्ती का लोक-समाज एवं लोक-सांस्कृतिक जीवन इदु मिश्मी जनजाति से जुड़े हुए हैं। ध्यातव्य है कि आदिवासियों की जीवन-शैली एक ही तरह की होती है। वे अपनी मूल प्रकृति में प्रकृतिजीवी स्वभाव के हैं। कई लोग मानते हैं कि प्रकृति ही आदिवासियों को जोड़े रखती है। संपूर्णता में देखें तो प्रकृति पर हर मनुष्य निर्भर है और हर कोई प्रकृति से प्रत्यक्ष या परोक्ष ढंग से जुड़ा हुआ है। आदिवासी से परे समुदाय के लोग भी प्रकृति के नियम कानून पर चलते और वे भी प्रकृति पर निर्भर रहते हैं।

सभी मनुष्यों के पूर्वज एक ही माने जाते हैं-'होमो सेपियन्स'। इसलिए मनुष्यों के जीवन स्तर भी एक जैसे हैं और उनकी आकृति, लक्षण एवं विशेषताएं भी बिल्कुल एक जैसे ही है। फर्क है तो उनके सामाजिक संरचना के कारण क्योंकि जब से मानव जाति का विकास हुआ है तब से मानवों द्वारा समाज की भी संरचना हुई है। इसलिए मानवों ने अपनी सुविधा अनुसार सामाजिक नैतिक मूल्यों और लोक-विश्वासों को स्थापित किया है। यही सामाजिक नैतिक मूल्य या कि लोक-विश्वास उस समाज-विशेष के मनुष्यों की पहचान और अस्मिता के निर्माण कार्य और विकास प्रक्रिया में सहायक सिद्ध होते आए हैं। ये लोक-आधार इतने मजबूत या कहें ताकतवर हैं कि व्यापक समाज के व्यक्ति और संकीर्ण समाज के व्यक्ति में अंतर पैदा हो जाते हैं।

देसाली बस्ती के लोक-जीवन में मुख्य समस्या यही है कि वे अब तक जागरूक नहीं हुए हैं। इस बस्ती के बुजुर्गों को बहला-फुसलाकर मूर्ख बनाया जाता है और उन्हें लगता है कि पैसा उनकी फौरी जरूरत की पूर्ति के लिए अहम है। इसके उलट वे ज्ञान के महत्त्व को नहीं समझ पाते हैं जबकि ज्ञान अथवा शिक्षा मूल्यवान है। देसाली बस्ती के लोगों को आज भी अँधेरे में रखा जा रहा है क्योंकि लोग जितना शिक्षा से दूर रहेंगे अपने हक़-अधिकार के लिए उतनी ही कम बातें करेंगे जिसका फायदा उन चंद नेताओं को होगा जो अपने लाभ के लिए ग्रामीणों को मोहरा बनाते हैं या चंद सिक्कों के लिए उनके मत को खरीद लेते हैं। इसलिए खंडहर में तब्दील स्कूल के पुनर्निर्माण को अनदेखा किया जा रहा है। ऐसा इसलिए भी आसानी से हो पाता है कि ग्रामीण लोग अपने काम में अति-व्यस्त होते हैं और उनका अधिसंख्य काम कृषि से जुड़ा है जो सालों भर चलता-रहता है। देखा जा सकता है कि देसाली बस्ती के अधिकतर लोग किसान हैं, वह किसी प्रकार की दुनियादारी से कोई वास्ता नहीं रखते हैं। वे दुनियाभर की ख़बरों से भी बेखबर रहते हैं और किसने कितना तरक्की कर लिया हैं,

उस बात से उन्हें कोई फर्क नहीं पड़ता है। अधिकतर युवा वर्ग कक्षा 10वीं में विफल होने वाले लोग हैं। शिक्षा से कट चुके युवाओं के सामने आगे बढ़ने के रास्ते लगभग बंद हो चुके हैं और उन्हें कोई विकल्प नजर नहीं आता है। इसलिए कभी-कभी वह लोग गलत कदम भी उठा लेते हैं। इस बस्ती में अब तक ऐसा माहौल नहीं बना है कि पढ़ाई करने वाले लोगों को यहाँ का समाज प्रोत्साहित कर सके बल्कि इसके ठीक विपरीत हतोत्साहित किया जाता है। लोग कहने लगते हैं कि पढ़ाई करके तुम लोगों में से कितने लोग कामयाब हो पाएंगे। उनकी ऐसी धारणा बन चुकी है कि पढ़ाई करके भी नौकरी नहीं मिली तो पढ़ाई ही बेकार है। वास्तविक ज्ञान प्राप्त करने या इस अर्जित ज्ञान को महत्त्व देने वाले बहुत ही कम लोग हैं। जो लोग ज्ञान को कमाई का साधन मानते हैं या वहीं तक सीमित कर देखते हैं; उनका भी दोष नहीं है। इन सब चीजों का सूक्ष्म अवलोकन करने के बाद ऐसा प्रतीत हुआ है कि देश का एक शिक्षित वर्ग चाँद पर पहुँच चुका है और दूसरा वर्ग अभी अपनी बुनियादी शिक्षा के लिए लड़ रहा है जो उसे पूरी तरह अब भी नसीब नहीं हुआ है। गाँव में रोशनी है तो क्या हुआ संज्ञानात्मक और आलोचनात्मक विकास के स्तर पर उनकी समझ या बुद्धि वैज्ञानिक बिल्कुल नहीं है। वे एक ऐसे अँधेरे से घिरे हैं जहाँ रौशनी पहुँचने के रास्ते ही मानों बंद है। वैसे यह मानी हुई बात है कि हर मनुष्य को इतनी शिक्षा जरूर मिले ताकि वे किसी के बहकावे में न आ सके और अपनी बुद्धि का उपयोग कर सके, साथ ही अपने अस्तित्व को समझ सके।

इस संपूर्ण सृष्टि में मनुष्य ही एक मात्र ऐसा जीव है जो अपना भला-बुरा सोच सकता है या अपने बुद्धि-विवेक के आधार पर अवसरानुकल निर्णय ले सकता है। दरअसल, उसकी बुद्धि विकसनशील है। इसीलिए तो मनुष्य को मानव-कल्याण और प्रकृति की संरक्षा की जवाबदेही उठानी पड़ती है। या मनुष्य का गुणधर्म ही है कि वह एक मार्गदर्शक की भूमिका में अपने चेतना को सकारात्मक से नकारात्मक दिशा में मोड़ सकता है, लेकिन आज मनुष्य स्वार्थवृत्ति में फंसकर अपनी ही बुद्धि और विवेक का गला घोंटता दिख रहा है।

यह संकट अरुणाचल प्रदेश के देसाली बस्ती पर भी गहराया हुआ है। इदु मिश्मी लोक-समाज का जीवन बदलाव के मुहाने पर है और भाषा के स्तर पर विलुप्ति का संकट मंडरा रहा है। यह भले ही अब भी बचे हुए हैं तो इसलिए कि बस्ती में बुजुर्ग अभी बचे हुए हैं। उन लोगों के कारण लोक जीवन की परंपरा और शैली अभी भी सुरक्षित है। ग्रामीण बुजुर्ग लोगों के जीवन दर्शन में लोक से संबंधित दर्शन तो मिल ही जाते हैं; साथ ही साथ उनकी स्मृति के माध्यम से लोक-साहित्य को भी जान-समझ सकते हैं। ग्रामीण इलाके दूर-दराज स्थित होने के कारण आधुनिकता के प्रभाव में या उसकी जकड़ में नहीं आ पाए हैं। इसलिए उन्होंने अपने वंश को अपने ही जीवन-शैली के अभ्यास और अनुभव से पाला-पोसा है। इसके उलट वर्तमान पीढ़ियों को हिंदी भाषा बोलने में ही सुख की अनुभूति प्राप्त होती है। दूसरी तरफ यह है कि कुछ साल पहले देसाली बस्ती जो कि पूरी तरह से किसी धार्मिक संक्रमण के शिकार नहीं हुए थे आज इस बस्ती में ईसाई धर्म की पहुँच बढ़ चुकी है। इस संक्रमण के कारण इदु मिश्मी लोग बहुत ज्यादा मात्रा में ईसाई धर्म में रूपांतरित हो रहे हैं। यह चिंता का विषय इसलिए भी है, क्योंकि जो लोग कल तक अपने पूर्वजों के जीवन दर्शन और जीवन-शैली का निर्वाह कर रहे थे वे अब ईसाई धर्म में रूपांतरित हो रहे हैं या हो चुके हैं। इसका कारण स्पष्ट है और जो धर्मांतरण करने वाले लोग हैं वे इन स्वदेशी धर्म का पालन करने वाले लोगों के मन-मस्तिष्क में किसी धर्म-विशेष से संबंधित ऐसी-ऐसी बातें उनमें भर देते है कि वे अंततः उस पर आँख मूँद कर विश्वास करने लगते हैं और अपनी मौलिक सामाजिक-

परंपरा से कट जाते हैं या उसको गैर-जरूरी समझने लगते हैं। रोजमर्रा के जीवन में ईसाई धर्म द्वारा संचालित सामाजिक व्यवस्था को माना जाने लगा है, इसलिए ग्रामीण लोगों के सोच-विचार तेजी से बदल रहे हैं। धर्मांतरित लोग नए धर्म के प्रति वफादार होने लगतें हैं। यह प्रक्रिया अनवरत घटित होने के कारण धीरे-धीरे लोक-संस्कृति और लोक-समाज की स्वदेशी परंपरा लुप्तप्राय होने लगती है या उनका महत्त्व समय के साथ कम होता चला जाता है। ऐसे लोग अपनी मूल वंश या जनजाति के समारोहों में भी शामिल नहीं होते हैं और अधिक चिंता की बात यह है कि वे लोग अपने वंश को ईसाई धर्म की जीवन-शैली के अनुकूल इस कदर ढाल लेते हैं कि उसमें इदु मिश्मी की लोक परंपरा या लोक संस्कृति कहने लायक कुछ भी नहीं बच पाता है।

आज कल के पढ़े-लिखे लोग ईसाई धर्म से इसलिए जुड़ रहें हैं क्योंकि उनको आर्थिक सहायता मिलती है और उन्हें भौतिक लाभ के हर तरह के अवसर मिलते हैं। इसी के साथ विदेश जाने तक का अवसर दिया जाता है। इस प्रकार के अवसरों का लुत्फ़ उठाने के लिए लोग इस धर्म से जुड़ रहे हैं। जहाँ पहले समाज को व्यवस्थित रूप में रखने के लिए उसे समाज-विशेष के नीति-नियमों का पालन करना अनिवार्य होता था। आजकल धार्मिक स्वतंत्रता के अधिकार के चलते अब पहले जैसी बाध्यता अथवा कठोर बंधन नहीं रह गया है। यानी अब सब के लिए एक ही कानून लागू है। इसलिए स्थानीय नियम या बंदिश महत्त्वहीन हो चुके हैं। आज भी स्थानीय नियम का वही लोग अनुपालन कर रहें हैं जो अपने धर्म से गहरे जुड़े हैं या उनके लिए पूर्णतः समर्पित हैं। ऐसे लोगों के द्वारा ही लोक-समाज में संस्कृति और परंपरा की मूल्यवर्द्धक बातें परिलक्षित होती हैं; लेकिन कुछ-कुछ ऐसी भी रवायत देखने को मिलती है जो पक्षपाती और अन्यायपूर्ण हैं, इसलिए ऐसी चीजें भले ही लोक-आचरण या नैतिक आग्रह से ही क्यों न जुड़ी हुई हों; उनको आज के समय में बाहर निकाल देना ही बेहतर है। देसाली बस्ती के इदु मिश्मी समुदायों के लोक-समाज को निम्नलिखित रूपों में अभिव्यक्त किया जा सकता है-

रहन-सहन-

जो लोग बस्ती में रह रहे हैं वे लोग बहुत ही साधारण ढंग से जीवनयापन करते हैं। खासकर बूढ़ा-बूढ़ी लोगों की ख्वाहीश लंबी-चौड़ी नहीं रहती है। वे केवल अपनी दिनचर्या में व्यस्त रहते हैं। खेती से घर और घर से खेती करने में ही जिंदगी गुजार देते हैं लेकिन उनके ठीक विपरीत आज की पीढ़ियों में तीव्र बदलाव परिलक्षित होता है। आज के युवा जरूरत से ज्यादा ख्वाहिश रखते हैं कई-कई बच्चे तो अपने अभिभावक को परेशान कर देते हैं। नई पीढ़ी के लोग पदार्थवादी दुनिया से प्रभावित होते जा रहे हैं, इसलिए वे अपने जीवन में अधिक ख्वाहिशों की कामना करके गलत कदम भी उठाने लगते हैं। इन बातों से इतर देखें तो देसाली बस्ती में जब भी लोगों की जरूरत पड़ती है, बस्ती के लोग एक दूसरे का सहारा बनते हैं। किसी के घर में जब किसी की मृत्यु हो जाती है तो लोग ख़ुशी-ख़ुशी उनकी सहायता करते हैं। किसी के घर के जल जाने से भी लोग एक-दूसरे की मदद करते हैं।

स्त्री-पुरुष-

लैंगिक पक्षपात तो पहले से ही समाज में मौजूद रहे हैं, क्योंकि सामाजिक संरचना ही पितृसत्तात्मक है। यह बात सिर्फ देसाली बस्ती पर लागू नहीं होती है, बल्कि स्त्रियों को पुरुष के समान किसी भी देश में नहीं देखा जाता है। सांविधानिक रूप में समानता स्थापित तो किया गया है, लेकिन प्रत्येक लोगों के मन-मष्तिस्क

में समानता की चेतना डालना संभव नहीं है। आज के आधुनिक युग में समानता की बात बढ़-चढ़ कर की जाती है लेकिन पूर्ण रूप से समानता अभी तक आधिकारिक रूप में प्राप्त नहीं हुई है। देसाली बस्ती के लोग अभी तक इस लैंगिक समानता को लेकर जागरूक नहीं हैं, इसलिए स्त्रियों का जीवन आज भी दयनीय स्थिति में है। घर-परिवार चलाने के लिए स्त्री-पुरुष दोनों की आपसी-समझ की जरूरत होती है लेकिन कहीं-न-कहीं से समाज पुरुषों के पक्ष में होता है। ये सब चीज किसी के भी वैवाहिक जीवन में देखी जा सकती हैं।

इदु मिश्मी लोक-कला-

कला को लेकर दुनिया भर में विभिन्न परिभाषाएं गढ़ी गयी हैं। कला मनुष्य की आंतरिक गति-संगति आधारित विभिन्न प्रवृत्तियों की बाहरी अभिव्यक्ति है। दुनिया भर में कला का स्वरूप अलग-अलग है, क्योंकि जिस जगह में जो चीज एक उपलब्धि के रूप में विकसित हुई है या विरासत में मिली है वहां के लोगों ने उसका महत्त्व जान लिया है और उनको उपयोग में लाना सीखा है। उदाहरण के तौर पर देखें तो जिस प्रकार अन्य समुदाय के लोगों ने मिट्टी का प्रयोग करके मटका बनाना सीख लिया उसी प्रकार आदिवासी समुदाय के लोगों ने भी बांस का प्रयोग करके टोकरी बनाकर उनका अपने दैनंदिन कार्य में प्रयोग करना सीख लिया है। देसाली बस्ती में पुरुष लोग बांस का प्रयोग करके अनेक चीजें बनाने में माहिर होते हैं तो वहीं महिलाएं बुनाई के काम में माहिर होती हैं। लेकिन यह लोक कला अब लुप्त होने वाली हैं, क्योंकि स्कूल में ये सब नहीं सिखाया जाता है। वर्तमान में उस चीज को पढ़ाई के रूप में पढ़ना पड़ता है जो अलग समुदाय की भाषा और संस्कृति की देन है। इसलिए आजकल पढ़े-लिखे लोग लोक कला में ध्यान नहीं दे रहे हैं और न ही इसका महत्त्व जान पा रहे हैं। मगर इदु मिश्मी लोक कला का सही तरीके से उपयोग करना वे सीख लें तो यह बहुत उपयोगी हो सकता है। इदु मिश्मी के त्यौहार को निम्नलिखित रूप में देखा जा सकता है-

रेह-त्यौहार-

मनुष्यों ने अपने ऐतिहासिक विकास प्रक्रिया में सामाजिक संरचना की कलात्मक और रचनात्मक बनावट द्वारा अपनी खुशियों को अभिव्यक्त करने का तरीका ढूंढ़ निकाला है। आदिवासी समाज में त्यौहार इसी का परिणाम है। एक विशेष त्यौहार का नाम लेने पर उस विशेष समुदाय का ज्ञात हो जाता है। इसलिए त्यौहार किसी विशेष समुदाय के सामाजिक-संस्कृति से जुड़ा हुआ होता है। वैसे ही रेह-त्यौहार का नाम लेने पर इदु मिश्मी समुदाय का बोध होता है। इदु मिश्मी लोग रेह-त्यौहार को दो तरह से मनाते हैं- एक व्यक्तिगत रेह और दूसरा केंद्रीय रेह। वास्तव में इदु मिश्मी समुदाय के यहाँ एक ही रेह हुआ करता था, व्यक्तिगत रेह जो कि लोग अपने घर के और स्वयं घर के मालिक की सुख-समृद्धि के लिए मन्नते मांगते थे। यह सब ओझा (इगु) के द्वारा ही किया जाता था। आज भी अच्छा या बुरा दोनों का परिणाम इगु के ऊपर आश्रित रहता है। इस व्यक्तिगत रेह उत्सव का प्रतिष्ठापक कौन है और क्यों मनाये जाने लगे? किस तरह से इसका निर्माण किया गया? इसकी कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है, बल्कि ये इदु मिश्मी लोक-समाज के एक अंग बने हुए हैं। इन मान्यताओं को लोक ने ही गढ़े थे। ये इदु मिश्मी के पूर्वजों द्वारा निर्माण किया गया एक प्रमुख पर्व-त्यौहार है जिनकी उनकी लोक-संस्कृति देसाली बस्ती से जुड़ी हुई है। रेह त्यौहार परिवर्तनशील रहे हैं और समय के साथ थोड़ा-बहुत बदलाव होता रहा है। व्यक्तिगत रेह उत्सव 5 दिन के लिए आयोजन किये जाते हैं। इसे आयोजित करने के लिए 10 या 20 साल पहले आयोजक यानी घर मालिक (इदु मिश्मी के शब्द में आयोजक को 'रेता' कहते हैं) तैयारी में

लग जाते हैं। जहाँ-जहाँ रेह आयोजन किये जा रहे हैं उस जगह जाकर आयोजक के वहां धन देना पड़ता है और आयोजक धन और व्यक्ति विशेष के नाम को अभिलिखित रूप में रखता है। धन किसी भी चीज के रूप में हो सकते हैं- सूअर, मिथुन, इकट्ठे मछली, जंगली चूहा, चिड़िया, पैसा इत्यादि। धन देते समय ही धन का हिसाब-किताब किया जाता है और जब धन देने वाला व्यक्तिगत रेह आयोजन करता है तब पूर्व रेह आयोजक को वर्तमान आयोजक के यहाँ धन वापस करना पड़ता है; बाकी चुकता करना पड़ता है (इदु मिश्मी शब्द में इसे 'आदा' कहते हैं)। जब रेह आयोजन के लिए आयोजक निर्णय ले लेता है, तब एक महीने पहले अपनी सभी रिश्तेदारों के यहाँ निमंत्रण भेज दिया जाता है। यह निमंत्रण पत्रों द्वारा नहीं, बल्कि रस्सी में गांठ बनाया जाता है और कितने दिन के अंतर्गत रेह आयोजन किया जायेगा उतनी गांठ बनाकर निमंत्रण भेज दिया जाता है। एक गांठ एक दिन के समान होता है। (इदु मिश्मी भाषा में इसे 'ताए' कहते हैं)

रेह समारोह के प्रथम दिन को 'अन्द्रोपू' कहा जाता है। इसी दिन ओझा का प्रवेश होता है और दूसरे दिन को 'एयानी' कहते हैं। इस दिन दूर के रिश्तेदार लोगों का आना प्रारंभ होता है। यह प्रक्रिया तीसरे दिन के रात तक चलती है। तीसरे दिन को 'एंयानी' कहा जाता है। इसी दिन में 'एम्बो' यानी की दूर से आए हुए रिश्तेदार लोगों को पैसे दिए जाते हैं। चौथे दिन को 'इलिउमुनी' कहा जाता है। इस दिन मेहमानों को विदा किया जाता है और अंतिम पांचवे दिन को 'अरुहा' कहा जाता है। कबीले के सब लोग मिलकर पार्टी करते हैं। इस व्यक्तिगत रेह के माध्यम से मनुष्यों को परखा जाता था, जिसने भी रेह में ज्यादा मात्रा में मिथुन और सूअर काटा है उनके नाम को ऊँचे स्तर पर रखा जाता था और उन्हें 'एहो' यानी धनी व्यक्ति माना जाता था। इसी प्रकार जिस किसी के पास भी ज्यादा मिथुन हैं, उन्हें धनी व्यक्ति में गिना जाता था। इसलिए व्यक्तिगत रेह उत्सव इदु मिश्मी समुदाय के लोक समाज और लोक-संस्कृति का एक अंग है। व्यक्तिगत रेह के माध्यम से व्यक्ति यानी आयोजक अपने रिश्तेदरों से मिलता है और उसके कितने रिश्तेदार हैं उनकी खोज-खबर भी ले लेता है। अब तक के लिए व्यक्तिगत रेह आयोजक में दिबांग वैली के पूर्व विधायक का अभिलेख सबसे ज्यादा है। उन्होंने 9 बार व्यक्तिगत रेह आयोजन किया था। उनका नाम तद्रे तचो है। वे दिबांग वैली जिले के सर्वप्रथम विधायक के रूप में जाने जाते हैं और दिबांग वैली जिले को प्रतिष्ठित करने में उनका सबसे ज्यादा योगदान माना जाता है।

केंद्रीय रेह उत्सव-

केंद्रीय रेह उत्सव के प्रतिष्ठापक नेता इता पुलु को माना जाता है। इता पुलु द्वितीय विश्व युद्ध के समय में कुली का काम करते थे। 1953 में उन्हें राजनीतिक दुभाषिया के रूप में संयुक्त किया गया और उन्होंने एजेंसी परिषद सदस्य के रूप में कार्य किया। 1967 ई. को रोइंग में उन्होंने सर्वप्रथम केंद्रीय रेह त्यौहार का आयोजन किया था तथा उन्होंने अरुणाचल प्रदेश के हर गाँव के इदु मिश्मी व्यक्तियों को आमंत्रित किया। इस केंद्रीय रेह उत्सव के सर्वप्रथम मुख्य अतिथि चो. खामुम गोहन थे। 1975 ई. में नेता इता पुलु को एक विधायक के रूप में चुना गया और उन्हें इदु मिश्मी समुदाय का प्रथम विधायक माना जाता है। 1977 ई. में वे राजनीति छोड़कर समाज सेवा में लग गए थे। और 29 सितंबर, 2002 में उनका निधन हो गया। केंद्रीय रेह उत्सव दो दिन के लिए मनाया जाता है। यह व्यक्तिगत रेह की तरह नहीं होता है। यहाँ मुख्य अतिथि को आमंत्रित किया जाता है और उनका स्वागत किया जाता है। इसको मनाने के लिए चंदा जमा किया जाता है। इस तरह देखा जाये तो जहाँ

व्यक्तिगत रेह में एक अकेले की मेहनत होती है और उसका श्रेय भी उस व्यक्ति विशेष को ही जाता है। मगर केंद्रीय रेह उत्सव का श्रेय पूरे समुदाय को जाता है।

'कैमे हा' त्यौहार-

यह इदु मिश्मी समुदाय का एक अनुष्ठानिक त्यौहार है जो कि फसल की कटाई के समय में मनाया जाता है। फसल पकने के बाद सर्वप्रथम घर पर नई फसल लाई जाती है। जिस दिन नई फसल लायी जाती है, उस दिन फसल की पूजा की जाती है। ऐसे ही फसल को पूजने की परंपरा प्रत्येक आदिवासी समुदाय में देखने को मिलती है। लेकिन उस पारंपरिक त्यौहार को मनाने के लिए अलग-अलग मान्यताएं गढ़ी गई होती हैं। इदु मिश्मी समुदाय के 'कैमे हा' त्यौहार से संबंधित यह मान्यता है कि जिस दिन नई फसल काटी जाती है, उस दिन घर के लोग नए चावल खाने के लिए जितना आनंदित और उत्साहित रहते हैं उतना ही आनंदित और उत्साहित घर के भूत (खिनु मेको) भी रहते हैं। इस त्यौहार में पूरे परिवार के साथ खाना खाया जाता है। प्रयास यह किया जाता है कि जितना हो सके घर के पूरे सदस्य की मौजूदगी में इस त्यौहार को मनाया जाए। अगर किसी कारणवश उस दिन घर का कोई सदस्य उपस्थित नहीं हो पाए तो उस सदस्य के नाम खाना निकालकर रख दिया जाता है। ऐसा इसलिए करते हैं, क्योंकि ऐसी मान्यता है कि घर के किसी भी सदस्य की अनुपस्थिति में उसका हिस्सा नहीं देने पर घर का भूत (खिनु मेको) गुस्सा हो जाता है और उनका गुस्सा होना घर के लिए अशुभ होता है। इसलिए उसके हिस्से को निकालकर रख देना ही शुभ माना जाता है। इसके बाद उस खाना को कोई भी सदस्य खा सकता है। बस भूत को संबोधित करने हेतु यह अनुष्ठान किए जाते हैं। यह आज की पढ़ी-लिखी पीढ़ी की दृष्टि से विचार करने पर अंधविश्वास लगता है; मगर यही परंपरा पूरे परिवार को एकजुट करने या एकसूत्र में बाँधने का काम करती है और घर के किसी सदस्य की अनुपस्थिति का एहसास भी कराता है। इस त्यौहार का दिन बहुत ही शुभ होता है। इस दिन फसल को लेकर अनाप-सनाप बातें नहीं करनी होती है। ऐसी बुरी बातें करने पर खेती की देवी (मानु) नाराज हो जाती हैं और फसल खराब होना लाज़िम है। इस त्यौहार में एक रात निषेध माना जाता है। उस दिन खाना खाने के बाद अन्य चीजों को खाने से सख्त मना किया जाता है तथा खाने को लोगों को परोसने से पहले थोड़ा-सा खाना निकालकर 'ऐ' यानी लो कहकर भूतों को संबोधित किया जाता है। उसके बाद ही लोगों के थाल में खाना परोस दिया जाता है। इस दिन विशेषकर खाना के साथ कुछ भी मांस होना आनिवार्य माना जाता है। कुछ भी मांस हो सकते हैं- जैसे मछली, मुर्गी आदि। यह भी मान्यता है कि आज घर पे 'कैमे हा' होगा। ऐसी झूठी जुबान नहीं देनी होती है। इस त्यौहार को लेकर मज़ाक नहीं किया जाता है और अगर एक बार जुबान दे दिया तो उससे नहीं मुकरना होता है। ऐसा भी माना जाता है कि झूठी दिलासा देते रहने से भूत की भी अपेक्षा बढ़ जाती है और अगर उसकी अपेक्षा पूरी नहीं हुई तो घर के लोगों पर भूत का काला साया पड़ सकता है और यह घर परिवार के लिए प्रतिकूल माना जाता है। इसलिए इसको लेकर छेड़खानी नहीं की जाती है।

अन्य अनुष्ठान-

मानव जाति का विकास आधुनिक परिघटना नहीं है। यह आदिम काल से शनै:-शनै: आज तक पहुंची है। समाज की संरचना करते समय मनुष्यों ने अपने-अपने समाज के लिए अनुष्ठानों का आयोजन और उनकी प्राण-प्रतिष्ठा की है। इसलिए अनुष्ठान संबंधी मान्यता लोक-परंपरा से ही चली आ रही है। इसमें कुछ-कुछ

अंधविश्वास भी हो सकते हैं और वर्तमान परिस्थितियों में ये परंपरा के उलट भी हो सकती है। ऐसे ही लोक-प्रचलन में शामिल इदु मिश्मी जनजाति के कुछ प्रमुख अनुष्ठान निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत है:-

1. जब पुरुष जंगली जानवरों का शिकार करते हैं- जैसे मिश्मी ताकिन, हिरण, बंदर, भालू आदि; तो शिकार करके घर लाने पर रोक होती है। इस वर्जना को मानना पड़ता है। खासकर जब स्त्रियों के मासिक धर्म (menstruation) हो रहे होते हैं तो स्त्रियों को खाना बनाने की अनुमति नहीं होती है। घर ले आने की स्थिति में भी जब तक घर पर जानवरों का मांस रहेगा तब तक घर के सदस्यों को कई तरह की वर्जना को मानना पड़ता है। शिकारकर्ता को इस वर्जना को कम से कम 5 दिन तक अलग से मानना पड़ता है।
2. प्रत्येक जानवर को मारने के बाद एक प्रकार की पूजा की जाती है। स्थानीय भाषा में 'आपू' कहते हैं। यह अभ्यर्थना एक तरह से इष्ट को धन्यवाद देना होता है।
3. स्त्रियों और पुरुषों के लिए अलग-अलग जानवरों के मांस होते हैं; लेकिन पुरुष स्त्री के हिस्से में मिले सभी तरह के मांस खा सकते हैं मगर पुरुष को जिन-जिन मांस को खाने की छूट मिली है उन्हें स्त्रियाँ नहीं खा सकती हैं। मगर आजकल लोग अपनी मर्जी से खाने लगे हैं। मिथुन, मुर्गे, सूअर आदि पुरुष के ही खाने के मांस माने जाते थे लेकिन आजकल स्त्रियां भी इनको खाने लगी हैं। आज जंगली जानवर को छोड़कर पालतू किस्म के जानवरों के सभी मांस सब के खाने के लिए सामान्य मांस की तरह प्रयोग होता है।
4. यहाँ तक की रहने के लिए भी अलग-अलग कमरा हुआ करता था। जंगली जानवर के मांस को पुरुष जिस जगह रहता है, उसी जगह वह उनका भोजन कर लेता है। उस जगह को स्थानीय भाषा में 'आलोंगा' कहते हैं और स्त्री की जगह को 'अपिनोको' कहते हैं।
5. बच्चा जन्म होने पर ओझा किया जाता है उसको 'आ ताएँ' कहते हैं। इसमें इगु द्वारा बच्चो के जीवन की सुख-समृद्धि और लंबे जीवन के लिए किया जाता है। इसके बिना बच्चे के जन्म को अधूरा माना जाता है और बच्चे के जन्म होते ही 5 दिन होने से पहले ही बच्चे का नामकरण करना अनिवार्य माना जाता है। नहीं तो ऐसी मान्यता है कि 'खिनु' भूत उसका नामकरण करके बच्चे को ले जाते हैं।
6. पति और पत्नी की मृत्यु होने पर भी 10 महीने के लिए अनुष्ठानों को मानना पड़ता है। अगर पति की मृत्यु हो गई तो पत्नी को मानना पड़ता है और पत्नी की मृत्यु हो गई तो पति को मानना पड़ता है।
7. अंतिम संस्कार समारोह चार या पांच दिन के लिए मनाये जाते हैं। इसके भी अलग-अलग प्रकार होते हैं। जैसे- आत्मा हत्या, दुर्घटना के कारण मरने वालों के लिए अलग से अनुष्ठानों का पालन किया जाता है और जो बीमार होकर मरते हैं उनके लिए अलग से अनुष्ठानों का पालन किया जाता है। इस समारोह में भी ओझा के बिना अनुष्ठान को अधूरा माना जाता है क्योंकि इगु ही है जो मनुष्य और आत्मा के बीच माध्यम बनता है और मरने वाले की आत्मा को आत्माओं की दुनिया में पहुँचाने का काम करता है। ओझाई करते समय आत्मा के संदेश को मनुष्य तक इगु द्वारा ही लाया जाता है। इगु ही वापस बताता है कि आत्मा ने ये या वो बातें कही हैं। ऐसी मान्यता है कि ओझाई अच्छे से नहीं करने पर आत्मा वापस घर लौट आती है और यह घर वालों के लिए अशुभ माना जाता है, इसलिए बुरी आत्मा को घर वापस नहीं आने देने के लिए ओझाई किया जाता है। इगु ही आत्मा के साथ संवाद करके बताता है कि आत्माओं की दुनिया ही अब उसका घर है तथा आत्मा को यह भी बताया जाता है की पूर्व परिवार और घर से उसका कोई वास्ता नहीं है।

8. ओझा के कई प्रकार होते हैं। जैसे एक रात के लिए किसी बीमारी के लिए किए जाने वाले को 'आई' कहते हैं, दूसरा घर पर बहुत-सी चीजों से जुड़ी दुर्घटनाएं घटते रहने पर इन चीजों से बचने के लिए भी 2 दिन के लिए ओझा किया जाता है, उसे 'तानो' कहते हैं। फिर छोटा-मोटा पंद्रह-दस मिनट के लिए आवश्यकतानुसार भी ओझा किया जाता है उसे 'कालीवु' और 'मचिवु' कहते हैं।

देसाली बस्ती का लोक-जीवन उपर्युक्त प्रक्रियाओं और चरणों से गुजरकर वर्तमान स्वरूप में विद्यमान है। देसाली बस्ती के लोग अब तक बहुत-सी चीजों से अनजान हैं बल्कि कई-कई अब भी ऐसे सोच-विचार करने वाले लोग हैं जो मर्द और औरत के बीच स्टीरियोटाइप/रूढ़िबद्ध धारणा रखते हैं। अब तक अपने ही समाज के बने-बनाये कानून जो कि पितृसत्तात्मक व्यवस्था का पालन कर रहे हैं और घरेलू-हिंसा तो रोजाना किसी-न-किसी के घर में होती ही रहती है। रोजमर्रा के जीवन में देसाली बस्ती की वर्तमान सामाजिक परिस्थितियों का वर्णन इसी तरह से किया जा सकता है। देसाली बस्ती का लोक-जीवन अब तक अँधेरे में है। एक तरफ दुनिया भर में आधुनिकता की होड़ मची हुई हैं। मनुष्य ने इतनी तरक्की कर लिया है कि वैज्ञानिकों द्वारा बनी मशीनों को चाँद ग्रह के हर कोने में भेजा जा रहा है। अपने देश को दूसरे देश के मुकाबले में कम आंकने नहीं देने वाले लोग भी हैं। लेकिन भारत देश के कई कोने में ऐसी बस्तियां भी हैं, जहाँ लोग शिक्षा के तौर पर बुनियादी ज्ञान भी नहीं पा सकते हैं क्योंकि वहां की स्कूल व्यवस्था पूरी तरह ध्वस्त हो चुकी है। दु:खद यह है कि स्कूल की जो इमारत मौजूद है, उस जगह गाय, बैलों और बकरियों का आश्रय स्थल बन चुका है। गाँव के स्कूल खंडहर में तब्दील हो गए हैं। इस चिंताजनक स्थिति से परिचित स्थानीय नेता भलीभांति परिचित हैं, लेकिन इन नेताओं के मस्तिष्क में ये संवेदनशील विचार कभी नहीं आते हैं कि शिक्षा जनसमाज में बदलाव लाने का मुख्य हथियार है और इस ओर ध्यान दिया जाना अत्यंत आवश्यक है।

*(**लेखकीय परिचय :** रेनू मिसो राजीव गाँधी विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग की शोधार्थी हैं।*
मोबा: 8794256568, ई-मेल : renumiso4728@gmail.com)

(गाँव ज्ञान)

दामिन बस्ती और जैव-विविधता का लोक-पक्ष

तार्बा यादम

उत्तर-पूर्व को सामूहिक रूप से 'सेवेन सिस्टर' कहने का चलन रहा है। पूर्वोत्तर के ये मुख्य राज्य हैं - अरुणाचल प्रदेश, मेघालय, त्रिपुरा, असम, मिजोरम, मणिपुर, नागालैंड और अब आठवें राज्य के रूप में सिक्किम भी इसमें शामिल हो गया है। अरुणाचल प्रदेश का नामकरण सर्वप्रथम 20 जनवरी, 1972 ई. को हुआ। इससे पूर्व यह ऐतिहासिक रूप से उदयाद्रि अथवा उदयांचल के नाम से जाना जाता था। अंग्रेजी शासनकाल में इस राज्य को 'नेफा' (नार्थ ईस्ट फ्रंटियर एजेंसी) कहा जाता था। भौगोलिक दृष्टि से तिब्बत, म्यांमार और भूटान की सीमा पर स्थित इस राज्य की प्राकृतिक सुंदरता मनमोहक है, जिसकी ढेरों प्रशंसा की जाती रही है। दामिन बस्ती मनोरम भूमि अरुणाचल प्रदेश के कुरूग कुमै जिले का आखिरी गांव हैं, जो प्राकृतिक रूप से बहुत खूबसूरत और मनमोहक गांव है। इनके अंतर्गत एक-दो छोटे-छोटे गांव आते हैं जैसे- कोपिला, चाते, रुबा आदि। यहां का खान-पान, रहन-सहन बहुत ही भिन्न है। अधिकतर लोग यहाँ बहुत ही मेहनती होते हैं। इस गाँव में ज्यादातर किसान ही रहते हैं, जो मेहनत करके अपनी सब्जियां और फल उगाकर बेचा करते हैं। ये लोग इसी पैसे से अपना और अपने परिवार का पेट पालते हैं। दामिन बस्ती में दो स्कूल हैं- कस्तूरबा गाँधी बालिका विद्यालय और सेकेण्डरी स्कूल दामिन। यहां के लोग बहुत ही खुले विचारों को लेकर जीवन को जीते हैं और सभी लोग एक साथ मिलकर रहते हैं। इस जगह आइटीबीपी की छावनी है। सेना की मौजूदगी सीमा सुरक्षा की दृष्टि से खास है। अंतरराष्ट्रीय सीमा दामिन से इतना करीब है कि उनके बीच सिर्फ एक पर्वत की दूरी है जिसके इस पार दामिन है, तो उस पार तिब्बत स्थित है। यहाँ ऊँचाई पर बर्फ जमे होते हैं, जिसके कारण ठंड ज्यादा होती है।

दामिन वह अंचल है, जिसके अंदर में छोटी-छोटी अन्य बस्तियाँ हैं। जैसे-कोपिला, रूबा, पानियासंग, चाकते इत्यादि। 2011 की जनगणना के आंकड़ों के अनुसार गाँव की जनसंख्या डेढ़ सौ थी, जिसमें पुरुष जनसंख्या 70 और महिला जनसंख्या 80 के आस-पास मानी गई। हाल के दिनों तक जनसंख्या बढ़ी है और अब इस गाँव की जनसंख्या 5000 से अधिक है। कोलोरियांग दामिन के निकट का शहर है जहाँ से लोग घरेलू सामान-वगैरह खरीदते हैं। 2018 ई. से पहले तक दामिन बस्ती में सड़क या अन्य यातायात के साधन नहीं थे। सन् 2017 से पहले इस गाँव में सड़क नहीं थी। यहाँ सड़क-मार्ग 2017 के बाद बनने शुरु हुए। बीआरओ के प्रोजेक्ट अरुणांक द्वारा पिछले 10 वर्षों से इस कठिन इलाके में सड़क-मार्ग तैयार करने का काम किया गया। यह दामिन गाँव के लिए किसी उपहार से कम नहीं था। दामिन तक मार्ग का हो जाना एक चुनौतीपूर्ण लक्ष्य था, जिसे बीआरओ ने एक अभियान के रूप में पूरा किया। सामान्यतः इस गाँव में 15 डिग्री से 20 डिग्री तक तापमान रहता है। अक्सर सर्दियों में तापमान 5 डिग्री से 7 डिग्री तक गिर जाते हैं। यह क्षेत्र सर्दियों के दिनों में बहुत ठंडे और गर्मियों में गर्म हो जाते हैं। पहाड़ी क्षेत्र और वन व वनस्पति से घिरे होने के कारण अन्य जिलों की अपेक्षा वर्षा बहुत अधिक होती है। दामिन गाँव में ज्यादातर समय बादल मंडराते रहते हैं।

जैव विविधता की राजधानी कुरूंग कुमै

अरुणाचल प्रदेश का कुरूंग कुमै जिला जैव-विविधता की राजधानी है। दामिन बस्ती की जैव-विविधता अपने आप में विशिष्ट है। पूरे जिले में 1321 पौधे की प्रजातियाँ मिलती हैं। औषधीय पौधे इस जिले में सर्वाधिक पाए जाते हैं। ज्यादातर कुरुंग कुमै पश्चिम कमिंग पूर्वी कमिंग में पाए जाते हैं। यहाँ जो औषधीय पौधे मिलते हैं, उनमें से कुछ मुख्य हैं-सेशिया (सर दर्द, गैस एवं पाचन, बदन दर्द, डायरिया, डायबिटिज इत्यादि), एस्ट्रिका (डायरिया, सिर दर्द, निमोनिया इत्यादि), मार्सिनासिया (त्वचा संबंधी रोग), यूट्रेकासिया (टीबी, जलने के बाद, दाँत दर्द), पिनेसिया (एंटीसेप्टिक), पोआसिया (कैंसर, डायबीटिज, दाग, पाचन संबंधी, पेट संबंधी इत्यादि।)। ये सभी औषधियाँ बड़ी काम की हैं और कई असाध्य बीमारियों को दूर करती हैं। इस जिले में हर वर्ष बाहर यानी देश-विदेश से खोजकर्ता आते हैं, जो अपने अध्ययन एवं अनुसंधान के सिलसिले में इस जिले का जगह-जगह दौरा करते हैं। तमाम तरह के अध्ययन एवं विश्लेषण का काम करते हैं। लेकिन अभी भी इस जिले के कई हिस्से ऐसे हैं जहाँ और भी औषधीय गुण वाले पौधे हैं, जिन्हें अभी तक खोजा नहीं जा सका है। यदि इस दिशा में गंभीर शोध-अनुसंधान किए जाएं तो कई सारी औषधियाँ मिल जाएंगी जिसका लाभ हर किसी को हो सकता है तथा अलग-अलग किस्म की असाध्य या लाइलाज बीमारियों का उपचार संभव है। यह सही बात है कि औषधीय पौधों की खोज के लिए भारत क्या पूरी दुनिया में अभी तक बहुत सी बीमारियों की दवा नहीं बनी है। अरुणाचल प्राकृतिक प्रदेश है और यहाँ बहुत-सी औषधियाँ भी छुपी हुई हैं, जिसकी अभी तक खोज नहीं की गई है। दामिन बस्ती में बहुत-से ऐसे औषधीय पौधे मिलते हैं जो किसी अन्य राज्य और देश में नहीं पाए जाते हैं। औषधीय पौधों की कई ऐसी प्रजातियाँ हैं जो दुर्लभ प्रकृति की हैं। जैसे-हिमालयन 'ब्लू पोपी' जो कि बस हिमालय पर्वत के इर्द-गिर्द मिलती है। दामिन बस्ती से कुछ दूरी पर ठंड के दिनों में 'ब्लू पोपी' प्रजाति के पौधे मिल जाते हैं। आर्सिया सिकाकियान एक जापानी प्रजाति 'जैक-इन पलिप्ट' का पौधा है। यह सालों भर उगता है। यह नम भूमि वाले क्षेत्रों में पाया जाता है। यद्यपि इसके अरुणाचल प्रदेश में पाये जाने संबंधी कोई सूचना नहीं मिलती है, तथापि यहाँ के विज्ञानियों ने इसे खोज निकाला है। इसी तरह फलों में 'मूसा ओरनाटा' नामक पौधे भी यहाँ मिलते हैं। इसे स्थानीय भाषा में 'कुदुक' कहा जाता है। एक असामान्य वुडलैंड प्लांट अपने बैगनी रंग एवं हरे रंग के साथ सफेद धारियों के लिए प्रसिद्ध है। इसी तरह 'सौसूर्या', 'अनलुक्रेटा मात्सुम' और 'कोएज़ज' अस्ट्रिका प्रजाति एवं परिवार के हैं, जो बहुत कम पाए जाते हैं और लुप्तप्राय होने की कगार पर हैं। दामिन बस्ती के इर्द-गिर्द इसके होने की पुष्टि होती है, जो बहुत दुर्गम स्थानों एवं जंगलों के बीच पाए जाते हैं।

दरअसल, दामिन गांव में फलों की बात करें तो यहाँ 'मूसा' और 'ऑरनाता' मिलते हैं जो केले की प्रजाति है। केले की ये अधिसंख्य प्रजातियाँ बड़े उष्ण कटिबंधीय सदाबहार क्षेत्र के बारहमासी फल हैं। मुख्य रूप से ये उच्च तापमान और आर्द्रता वाले तराई क्षेत्रों में मिलती हैं। दामिन गाँव में संतरा भी अधिक पाई जाता है। अमरुद, ब्लैकबेरी आदि यहाँ के लोग उगाते हैं। दामिन बस्ती के लिए ये सब मशहूर फल हैं और बड़ी मात्रा में मिलते हैं। इसी तरह 'बाचीन' एक और लोकप्रिय फल है, जिसका वैज्ञानिक नाम 'आर्बतस यूनेदुस' है जो इरिकाशिया परिवार से है और इसका सामान्य नाम 'स्ट्राबेरी ट्री' है। बाचीन का स्वाद खट्टा रहता है, इसलिए यहाँ के लोग इसे चीनी में भिगोने के बाद ही खाते हैं। मॉरीशस स्ट्रॉबेरी प्रजाति के फल भी बड़ी मात्रा में मिलते

हैं, जिन्हें दामिन बस्ती में 'चिरीगापो' कहते हैं। इसी तरह एक और पौधा बेहद महत्त्वपूर्ण है। वह है-'कैनारियम स्ट्रिक्टम'। इस पेड़ का सामान्य नाम 'ब्लैक दाम्मर' है तथा स्थानीय नाम 'संगलुम' है और इसे असमीया में धुना कहा जाता है। ब्लैक दामर के बारे में कहा जाए तो यह एक सदाबहार पेड़ है जो 50 मीटर तक की ऊँचाई वाला होता है। इसका तना बेलनाकार होता है। मुख्य रूप से 'ब्लैक दामर' के छाल को प्राप्त करने के लिए पेड़ की ऊपरी परत की उचित देखभाल और छँटाई की जाती है। 'ब्लैक दामर' वाणिज्य की दृष्टि से बेहद महत्त्वपूर्ण माना जाता है। एक अन्य वानस्पतिक महत्त्व का पौधा है-'थिसानोलाएना लैटिफोलिया'। इसका सामान्य नाम 'एशियाई झाड़ू घास' है। यह 'पोएसी' परिवार का पौधा है। इसका स्थानीय नाम 'ताजी/फूल झाड़ू' है। एशियाई झाड़ू घास एक सदाबहार झुरमुट के रूप में उगने वाला घास है। यह 2 से 4 मीटर तक लंबा होता है। इसके ऊपरी हिस्से में जो फूल होते हैं, वे धूल वगैरह को पकड़ लेते हैं। इस कारण इनका उपयोग प्रायः झाड़ू बनाने में होता है। कई बार इनका उपयोग सजावटी वस्तु के रूप में भी अलग-अलग तरीके से किया जाता है।

हरी सब्जियों का विविध रूप

दामिन गाँव में ज्यादातर हरी सब्जियाँ खाना पसंद किया जाता है। यहाँ हरी सब्जियों की कई किस्में पायी जाती हैं। इस तरह यहाँ के लोग इन सब्जियों को तरह-तरह से बनाकर खाना पसंद करते हैं। कोई उबालकर खाना पसंद करता है, तो कोई तलकर खाना पसंद करता है। वैसे तो अरुणाचल के लगभग सभी जनजातियों के लोग हरी सब्जी खाना पसंद करते हैं। इन पौधों में 'तासे' और 'ताची' पाया जाता है। स्थानीय लोग तासे को छोटे-छोटे बुरादा की तरह छिलते हैं और उसे पानी में भिगोकर नरम बनाते हैं। उसके बाद धूप में सुखाया जाता है और सूअर की मीट के साथ खाया जाता है। इसे प्रायः सूअर के खाने देने के लिए दाने के रूप में भी प्रयोग किया जाता है। इसी तरह दामिन गाँव में सबसे मनपसंद चीज 'अमजी दगम' होता है। दगम स्थानीय भाषा का शब्द है जिसका अर्थ 'भोजन' होता है। दामिन बस्ती में पाया जाने वाला एक महत्त्वपूर्ण पेड़ है-'संगचर'। यह स्थानीय नाम है। इसका पेड़ बहुत ही ऊंचा और ताकतवर होता है। यह हिलाने पर भी नहीं हिलता और इसके ऊपर चढ़ना पड़ता है। 'संगचर' खाने में थोड़ा तीता होता है, जिसकी चटनी बनाई जाती है। 'संगचर' के पेड़ काफी मात्रा में ही उगते हैं, इस कारण यह काफी महंगा होता है। दामिन बस्ती में 'यरक्यिंग' के पेड़ मिलते हैं, जिसके फल की सब्जी बनाने में खूब उपयोग होता है। कई लोग इसे खाना के साथ सीधे भी खाते हैं। इसका स्वाद थोड़ा तीता होता है। प्रायः 'यरक्यिंग' को खाने के समय मिर्च की तरह प्रयोग किया जाता है। इसे करा दादी के लोग 'जायर' के नाम से जानते हैं तह इसे पापुम पारे की ओर 'तायर' भी कहा जाता है। यरक्यिंग के बारे में कहा जाता है कि इसे खाने के बाद अधिक नींद आती है। खाने के साथ पेय पदार्थ भी दामिन बस्ती में बेहद लोकप्रिय है। यहाँ जब भी कुछ त्यौहार होता है या फिर सामान्य दिनों में घरों में लोकल मदिरा बनाया जाता है। यह लोकल मदिरा भी दो-तीन किस्म का रहता है। एक होता है- 'तामिक अपोंग'। यह मड़ुआ से बनाया जाता है। दूसरा पेय है-'पोना अपोंग'। यह चावल से बनाया जाता है। पहले चावल को पकाया जाता है और सुखाने के बाद नरम किया जाता है। नरम करने के बाद दवाई लगाकर उसे डब्बे के अंदर डाल दिया जाता है, ताकि अंदर हवा न जा सके। दो-तीन हफ्ते के बाद यह लोकल अपोंग पीने के लिए तैयार हो जाता है। इसी तरह काला अपोंग को भी बनाया जाता है। लोकल मदिरा बहुत किस्म का बनाया जाता है। कई लोग केले से भी बनाते हैं और आलू से भी बनाते हैं। आलू की बात करें, तो दामिन बस्ती में अधिक आलू उगाया जाता है।

लेकिन यह बाजार में बिकने वाले आलू से अलग दिखता है, जिसे यहाँ के लोग इंगी कहते हैं। इंगी भी अलग-अलग किस्म की है जैसे-'संग्ने इंगी'। यह पौधों की जड़ों में उगता है और मोटा-सा होता है। इसके अंदर से एक रेशेदार रस्सी निकलती है। इस इंगी का छिलका मोटा और कड़ा होता हैं पर देखने में मोमबत्ती के आकार की तरह लगता है। हुशे इंगी एक जंगली इंगी है, जो दिखने में गोलाकार आकृति का होता है। इसको चबाचबा कर खाया जाता है क्योंकि यह बहुत स्वादिष्ट होता है। इस इंगी को जंगल से खोदकर कठिनाई से निकाला जाता है। इसी तरह हुला इंगी किसी विशेष आकार का नहीं होता है, बल्कि आड़ा-तिरछा होता है। इसके साथ ही इस पर छोटे-छोटे काले रंग के धब्बे होते हैं। हुला इंगी खाने पर थोड़ा कड़वा लगता है और इसको पकड़ने पर यह फ़िसलने लगता है। इसी प्रकार दामिन बस्ती में अनेक तरह की इंगी पायी जाती है। जैसे-न्यिरेक इंगी, एंग इंगी, रंयेक इंगी इत्यादि। दामिन बस्ती के अधिकतर लोग इनको नाश्ते के तौर पर चाय के साथ भी खाते हैं और कई डिनर के तौर पर भी खाते हैं।

दामिन गांव में 'पीके पीला' भी बहुत मशहूर है, जो आपातानी जनजाति का मुख्य व्यंजन है। वैसे सूअर की चर्बी को इकठ्ठा करके डब्बे में रख दिया जाता है, जिसे पीके कहा जाता है। पीला केले की शाखाओं को काटकर छोटे- छोटे टुकड़ों से बनाया जाता है। इन छोटे-छोटे टुकड़ों को थोड़े समय तक धूप में सुखाया जाता है और फिर इसको जलाकर पानी डालकर पीला बनाया जाता है। यहाँ के लोग खाने पीने के बहुत ही शौकीन होते हैं। पुरानी कहावत है कि यहां की स्त्रियों को बकरी का मांस, बंदर का मांस और मुर्गियों के पेट को खाने की मनाही है। कहा जाता है कि यदि यहां की स्त्री यह सब खा ले तो उसे पाप लग जाता है। इसके साथ ही कई पुरुष भी इसे नहीं खाते, क्योंकि अगर यह सब खा ले तो उन सब की आयु कम हो जाती है। उन सबकी मृत्यु जल्दी हो सकती है। मरने के बाद वह स्वर्ग नहीं जाते यह सब कहा जाता है। पर यह सब पुरानी कहावतें हैं, जो आजकल यहां के लोग नहीं मानते हैं।

बांस से बनाई जाने वालीं सब्जियां

अरुणाचल प्रदेश में बांस की सब्जियां बहुत प्रसिद्ध है। बांस की दो किस्में हैं- ई और ताबू। ताबू भी बांस की प्रजाति है। बांस का व्यंजन अलग अलग तरीके से बनाया जाता है। दामिन के लोग बांस में खाना पकाकर खाना अधिक पसंद करते हैं, जिसे चिन्दुंग आचिंग कहते हैं। बांस को काटकर उसके अंदर केवल खाना नहीं पकाया जाता है बल्कि मांस, मछली आदि भी पकाया जाता है। यहाँ के लोग नये बांस को ई कहते हैं, जिसे छोटे-छोटे टुकड़ों में काटकर बोतल में रख दिया जाता है। थोड़े दिन बाद उसमें खट्टापन आ जाता है, जिसे ईकूंग कहते हैं। ईकूंग को सुखाकर ईयूप बनाया जाता है। जिसे यहां के लोग हरी सब्जियों में डालकर मसाले के तौर पर इसका सेवन करते हैं। स्थानीय लोग इसका प्रयोग मसाले के रूप में करते हैं। यहां के लोग ईकूंग और ईयूप के बिना हरी सब्जियों का स्वाद अधूरा मानते हैं। इसका प्रयोग उबली सब्जियों में किया जाता है। दिंक्यो और दिंग्बर भी बहुत खास है। यह दिंक्यो गाय या मिथुन के मांस से बनाया जाता है। मांस को काटकर पतली लकड़ी में घुसाकर थोड़े दिन तक उसको रापकी में सुखाया जाता है। जिसे शादी ब्याह में लड़के वाले लड़की को दिंक्यो बना कर देते हैं। दिंक्यो मछली से भी बनाया जाता है और अन्य पशु-पक्षियों के मांस से भी बनाया जाता है। ताशे आटा के जैसे होता है, जिसे यहां के लोग गर्म पानी में डालकर नर्म करके खाते हैं।

पक्षी और जानवर

दामिन गांव अरुणाचल प्रदेश के कुरूग कुमै जिले का सबसे अंतिम गांव है, जो हिमालय पर्वत के बेहद करीब है। यहां मिथुन पाया जाता है। मिथुन की बात करें तो मिथुन अरुणाचल प्रदेश के वासियों के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण जानवर है। यहाँ हर त्यौहार या किसी विशेष समारोह में मिथुन की बलि दी जाती है। शादी-विवाह के अवसर में वर पक्ष के लोग वधू पक्ष को मिथुन देकर वधू को अपने घर ले जाते हैं। बदले में वधू पक्ष के लोग वर पक्ष को स्थानीय आभूषण देकर उनके साथ वधू को विदा कर देते हैं। दामिन के जंगलों में भालू, बंदर, शेर, मिथुन आदि पाए जाते हैं। यहाँ पहाड़ी याक भी पाया जाता है, जो लंबे बालों वाला पालतू पशु है। यह जानवर भारतीय उपमहाद्वीप के हिमालय क्षेत्र के तिब्बती पठार, उत्तरी म्यांमार, यूनानी सिचुआन और उत्तर में मंगोलिया और साइबेरिया तक पाया जाता है। यहां के शिकारी लोगों ने भी कुछ याक को घने जंगलों में देखा है। दामिन गांव में हिरण भी दो-तीन प्रकार के मिलते हैं और बंदर भी कई तरह के हैं। पहले दामिन गांव के लोग अधिक शिकार करते थे, लेकिन आजकल शिकार करने पर पाबंदी लगा दी गयी है। दामिन गांव के लोग जंगली जानवरों के साथ घरेलू जानवर जैसे कुत्ता, बिल्ली, मुर्गा-मुर्गी, बकरी, सूअर आदि को भी पालना पसंद करते हैं। ज्यादातर लोग कुत्ते को पालना पसंद करते हैं। कहा जाता है कि कुत्ता आदमी का सबसे अच्छा मित्र है। अक्सर देखा जाता है कि गांव में जब भी मालिक शिकार या खेत में जाता है, कुत्ते अपने मालिक के पीछे-पीछे चलते हैं और समय-समय पर मालिक की रक्षा करते हैं। दामिन बस्ती में भेड़-बकरी को भी पाला जाता है, क्योंकि बस्ती में जब लोगों के घर में मेहमान आते हैं तो भोजन के लिए मुर्गी, सूअर आदि का मांस पकाकर परोसा जाता है। इस बस्ती में पशु तो हैं ही, साथ ही साथ कई प्रकार के पक्षी भी हैं जो यहाँ की जलवायु और मौसम के बदलने पर आस-पास दिखाई देते हैं। मौसम बदलने के कारण गौरैया, बाज़, कबूतर आदि समय-समय पर एक जगह से दूसरी जगह आते-जाते हैं।

निष्कर्ष रूप में कहें, तो अरुणाचल प्रदेश का बेहद खूबसूरत गाँव है-दामिन जिसका वातावरण मनोरम और जैव-विविधता से लैस, प्राकृतिक दृश्य मनोहारी है। अरुणाचल प्रदेश के कुरूंग कुमै जिला का यह अंतिम गाँव है। यहाँ तक पहुँचने का मार्ग कोलोरियांग से है। अब आवाजाही और संचार-तंत्र के फैलाव के कारण यहाँ तक पहुँचना अब कठिन नहीं रहा। बहुत पहले से अरुणाचल प्रदेश के कुरूंग कुमै जिले को जैव-विविधता की राजधानी कहा जाता रहा है, जिसका केंद्र दामिन बस्ती है। यह बस्ती कई दृष्टियों से समृद्ध और स्वस्थ जीवन का खूबसूरत उदाहरण प्रस्तुत करता है। मुझे इस बस्ती का बाशिंदा होने का गर्व है जो अपनी पहचान और विविधता की वजह से बेहद लोकप्रिय है।

*(**लेखकीय परिचय :** तार्बा यादम राजीव गाँधी विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के पीजीडीएफएच पाठ्यक्रम की विद्यार्थी रह चुकी हैं। मोबा: 9366546284, ई-मेल : adamkates252@gmail.com)*

(कृति संधान)

तानी-दर्शन की विश्व-दृष्टि : जिमी-जमा की आँखें सब देख रही हैं...

देवराज

मीमांसापरक-लेखन एक विलक्षण विद्या है। पूरी तरह आभ्यंतरीकृत समर्पण की मन:स्थिति प्राप्त करके पाठ के साथ जुड़ना उसके द्वार को खटखटाने के लिए अनिवार्य है। संयोग ऐसा बने कि द्वार खुल जाए, तब विचार, विवेचन, विश्लेषण, पाठ के बाहरी-भीतरी अर्थों का संकलन, भाषा की खोज और पुनर्पाठ-संघटन की बारी आती है। मीमांसक की प्रतिभा, पूर्व के अध्ययन से अर्जित ज्ञान, काल और इतिहास का विवेक तथा वैयक्तिक-दृष्टि-बोध इसका मार्ग निर्मित करने वाले मुख्य कारक हैं। इस मार्ग पर सावधानी पूर्वक चलते हुए मीमांसक ललित-मुक्त-पाठ की सीमाओं का साक्षात्कार भी करता है और पहले से गठे-गठाए पाठ की सीमाओं का भी। यह आवश्यक नहीं कि पाठ की सीमाओं तक पहुँच जाने भर से काम बन जाए। इसके उलट एक बड़ा संकट भी चुनौती देते हुए सामने आकर खड़ा हो सकता है। वह यह, कि अध्ययन के लिए दिया गया पाठ स्वयं मीमांसक को उसकी सीमाओं के साक्षात्कार के लिए विवश कर सकता है। यदि ये सीमाएँ विरूप और संकुचित हुईं, तो पाठ मीमांसक को अपने अयोग्य ठहराते हुए दूर जाकर विश्राम भी करने लग सकता है। यह परंपरागत भारतीय मीमांसा का ही नहीं, आधुनिक वैश्विक समालोचना का संकट भी है। मुझे इस संकट का सामना कई बार करना पड़ा है- अपनी निर्बलताओं से पराजित होने की सीमा तक भी।

ईमानदारी से स्वीकार करता हूँ कि जोराम यालाम नाबाम की कृति 'तानी कथाएँ' के पाठ ने भी मेरे साथ रात-दिन युद्ध करके मुझे अखाड़े के बाहर धकेलने का प्रयास किया। इस क्षण भी मैं उसे जीत लेने वाले वीर के रूप में नहीं, मात्र पराजय से बचने में लगे योद्धा के रूप में उसके विरुद्ध अपने तीरों का प्रयोग कर रहा हूँ। अपनी निर्बलता का कारण भी आपसे साझा कर लूँ। दरअसल, तानी कथाएँ पुस्तक 'तानी आदिवासी समाज' की संस्कृति के कार्म-कांड पक्ष पर लिखी गई न होकर तानी संस्कृति की दार्शनिक अवधारणाओं, उनकी व्याख्या और उनके भीतर बसे सत्य की व्यावहारिक प्रासंगिकता पर केंद्रित पुस्तक है। दूसरे, इसका मूल-पाठ न तो प्रचलित संस्कृति-ग्रंथों से संग्रहीत किया गया है और न ही एकांत में ज्ञान की साधना में धूनी रमाए विद्वान अकादमीशियनों द्वारा किए गए शोध-कार्य से। यह सीधे उस तानी-लोक से संचित पाठ है, जिसकी पीढ़ियाँ अनादि काल से प्रकृति के साहचर्य में सहज जीवन व्यतीत कर रही हैं, जिसे साक्षर होने की अपेक्षा अनुभव से अर्जित ज्ञान प्राप्त करने और उसे संजोए रखने की अधिक चिंता है तथा जो तमाम तरह के आधुनिक समाजार्थिक दबावों के बावजूद आदिवासियत को जीते रहने में अपना और समाज का कल्याण मानता है।

इस आदिवासी जीवन-पाठ को यूनानी 'फिलॉसफी' से नहीं, बल्कि भारतीय दृष्टि के 'दर्शन' से समझना कहीं अधिक न्यायसंगत है। यहाँ आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी हमारी सहायता करते हैं। वे अपने एक वक्तव्य में कहते हैं- "क्या है, फिलॉसफी? वह है, 'क्वेस्ट ऑफ नॉलेज' सत्य की, ज्ञान की जिज्ञासा। आप खोजते चले जाओगे, इसके बाद क्या हुआ? इसके बाद क्या हुआ? तर्क द्वारा; बुद्धि द्वारा जहाँ तक पहुँच गए और आपने सिद्धांत निर्धारित कर लिया कि हमारा सिद्धांत यह है। तो, यह है फिलॉसफी। लेकिन हिंदुस्तान में जिस किसी ने लिखा, वह दर्शन लिखा। दर्शन माने देखना। पहले वह देख लेता है कि सत्य क्या है? इसके बाद उसकी स्थापना

करता है। यह उलटा रास्ता है। भले ही उलटा रास्ता हो, लेकिन पहले देख लिया और फिर स्थापना की, तो वह दर्शन हुआ।"[1] आचार्य द्विवेदी ने दर्शन के संदर्भ में- 'देखने' को 'योग सिद्ध दृष्टि' कहा है। अपने इसी वक्तव्य में वे आगे कहते हैं कि "योग सब शास्त्रों में प्रमाण माना गया है। इसीलिए जब वो कहते हैं कि हम जिसकी व्याख्या कर रहे हैं; उस सत्य को पहले हमने देखा है। सत्य को देखने से पहले अनेक तपस्याओं के भीतर से गुजरे हैं। इस प्रकार योग सिद्ध दृष्टि से जो सत्य देखा है, वह दर्शन है।"[2]

इस योग सिद्ध दृष्टि को सरल रूप में समझना हो, तो हमारे पास भारतीय 'आगम शास्त्र' हैं, जिनमें से तैत्तरियोपनिषद में भृगु ऋषि की कथा आती है। उनके संबंध में अनेक कथाओं में से एक इस प्रकार है- "... एक बार भृगु के मन में ब्रह्मज्ञान की जिज्ञासा उत्पन्न हुई। उन्होंने पिता से पूछा कि ब्रह्म क्या है? वरुण ने अन्न, जीव, मन, वाणी आदि को ब्रह्म की उपलब्धि के द्वारा बताया और कहा कि जीव ब्रह्म से उत्पन्न होकर उसी में लीन हो जाता है। उसे तप से जाना जा सकता है। वरुण से प्रेरणा प्राप्त करके भृगु तपस्या करने लगे। कुछ समय बाद भृगु ने अनुभव किया कि "संभवत: 'अन्न' ही ब्रह्म है।" क्योंकि प्राणी अन्न से उत्पन्न होकर अन्न में लीन हो जाता है। पिता के सम्मुख शंका प्रस्तुत करने पर उन्हें अपने मत की सहमति नहीं मिली। वे पुन: तपस्या करने लगे। इसी प्रकार उन्होंने क्रमश: प्राण, मन, विज्ञान स्वरूप जीवात्मा को ब्रह्म माना, किंतु हर बार पिता के सम्मुख पहुँचने पर उन्हें यही उपदेश मिला कि ब्रह्म को समझने का साधन तप है, अत: हर बार वे पुन: तप में लीन हो गए। अंततोगत्वा उन्हें परब्रह्म का ज्ञान हुआ कि वह आनंद स्वरूप है तथा उनके मन में अन्य किसी प्रकार की जिज्ञासा शेष नहीं रही।"[3]

यहाँ इस कथा में से इतना रहस्य ही ग्राह्य है कि जड़ स्थूल से प्राण तत्त्व, प्राण तत्त्व से मनस्तत्व, मनस्तत्व से ज्ञान तत्त्व (जिसे विज्ञान तत्त्व कहा गया है) तथा ज्ञान तत्त्व से आनंद तत्त्व की उपलब्धि हुई। दार्शनिक परिप्रेक्ष्य में इस उपलब्धि का मूल आधार निरंतर तपस्या के फलस्वरूप अर्जित योग सिद्ध दृष्टि है।

अब यह सोचने की बारी है कि जिस तानी आदिवासी दर्शन की प्रस्तुति और मीमांसा 'तानी कथाएँ' पुस्तक में है, उसमें प्राप्त सत्य तक पहुँचने के मार्ग का क्या स्वरूप रहा होगा, जिस पर चल कर आबोतानी और परवर्ती तानी पीढ़ियाँ आगे बढ़ी होंगी?

तानी कथाएँ पुस्तक के पाठ के भीतर पैठते हुए अनुभव होता है कि यह मार्ग निस्संदेह निरंतर प्रयोग और अनुभव के आधार पर सत्य को प्राप्त करने का मार्ग है। इसमें किए जाने वाले प्रयोग किसी औपचारिक प्रशिक्षण पर टिके हुए न होकर नैसर्गिक प्रतिभा और व्यावहारिक आवश्यकताओं पर टिके हुए हैं। इसी प्रकार प्रयोगों से अर्जित अनुभव संचित करके एक तरफ रख देने के लिए नहीं, बल्कि दैनंदिन जीवन का अनिवार्य अंग बनाने के लिए हैं। इन प्रयोगों और अनुभवों की मूल प्रेरणा प्रकृति की शक्तियों और पूर्वजों से मिलती है तथा वे दोनों ही मानव द्वारा अर्जित सत्य के वास्तविक परीक्षक भी हैं। इतना ही नहीं, वे दोनों मनुष्य की जीवन-यात्रा, उसके प्रयोगों और अनुभवों को लगातार देखते भी रहते हैं, जिससे वैयक्तिक और सामाजिक जीवन में स्वाभाविक अनुशासन बना रहता है। यह दार्शनिक जीवन-क्रम किसी भी सुनिश्चित धर्म-दर्शन के प्रारंभ होने के पहले से चला आ रहा है। कब प्रारंभ हुआ होगा, इसका उत्तर न इतिहासकारों के पास है, न समाजशास्त्रियों के, न अब तक हुए मानवविज्ञानियों के और न ही तानी कथाएँ पुस्तक की लेखिका के पास। कारण यह, कि आदिवासी जीवन-व्यवस्था ही इस सृष्टि की आदि और स्वाधीन जीवन-व्यवस्था है। समस्त नागर अथवा

अभिजात व्यवस्थाएँ उसके बाद समय-समय पर अस्तित्व में आईं और शास्त्र तथा ग्रंथ बनकर उनमें बंध गईं, ताकि उनका अनुशासन खंडित न हो। उधर आदिवासी व्यवस्था ने शास्त्राधारित जीवन को नहीं, प्रयोगों, अनुभवों और उनकी सीख के आधार पर विकसित परंपराओं के हाथों जीवन का परिचालन स्वीकार किया। इसमें प्रकृति उनकी और वे प्रकृति के अनिवार्य सहयात्री रहे। दोनों ही सहयात्री परस्पराश्रित, किंतु फिर भी स्वाधीन। हम जानते हैं कि प्रकृति स्वयं स्वाधीन है एवं स्वानुशासन में रहती है, वह न खुद कृत्रिम बंधनों में बंधती है और न ही किसी अन्य को बांध कर रखती है। यह आदिवासी जीवन-दर्शन को समझने का एक सूत्र है। स्पष्ट है कि किसी मीमांसक के लिए यह एक चुनौती भी है।

मुझे लगता है, आप मेरी निर्बलता की तह तक पहुँच गए होंगे।

पुस्तक के पाठ को समझने की पृष्ठभूमि :

तानी कथाएँ में जोराम यालाम नाबाम ने एक महत्त्वपूर्ण स्थापना करते हुए कहा है- "किसी भी समाज को अपनी परंपराओं की जानकारी होनी चाहिए, उसके निहितार्थों का पता होना चाहिए। यह उस समाज की जीवन-दृष्टि और विश्व-दृष्टि से परिचित होने के लिए जरूरी है। उसके पीछे उसका अपना दर्शन हो सकता है।"[4] पहले इस स्थापना के दूसरे पक्ष-अर्थात जीवन-दृष्टि और विश्व-दृष्टि- को विचार का विषय बना कर आगे बढ़ना समीचीन प्रतीत होता है।

जीवन-दृष्टि मूलत: जीवन की चेतना से विकसित होती है। इसका यात्रा-प्रस्थान-बिंदु होता है व्यक्ति, और लक्ष्य समाज तथा अखिल विश्व। इसमें जड़ता के लिए कोई स्थान नहीं होता। न जीवन में जड़ता, न चेतना में और न दृष्टि में। नैरंतर्य, विकासशीलता, तार्किक निष्कर्षों के प्रति आग्रह, कार्य-कारण के पूर्वापर संबंधों के विवेक पर आधारित निर्णयों के प्रति सम्मान, परंपरा के प्रति आस्था आदि तत्त्व जीवन-दृष्टि का स्वरूप निर्धारित करते हैं।

विश्व-दृष्टि का स्रोत विश्व के प्रति चेतना है। इसका प्रारंभ विश्व के विवेकपूर्ण बोध से होता है। संपूर्ण प्रकृति, संपूर्ण वन्य-ग्राम्य-नागर जीवन, विश्व का ऐतिहासिक विकास-क्रम, सामाजिक व आर्थिक परिस्थितियाँ, सांस्कृतिक और वैचारिक दशाएँ, कलाएँ, भाषाएँ, शिक्षा और साहित्य, प्रचलित राजनैतिक प्रणालियाँ और उनके साथ लोगों का संबंध, न्याय-व्यवस्था और न्याय की सुलभता, मानवाधिकारों के प्रति जनता का आग्रह एवं राज्य-सत्ताओं की नीतियाँ, स्वाधीनता के प्रति दृष्टिकोण, विज्ञान, प्रौद्योगिकी एवं तकनीकी का विकास, कृषि, श्रम और जीवन-यापन की दशाएँ, जलवायु, पर्यावरण और ऊर्जा की चुनौतियाँ आदि विश्व-चेतना का निर्माण तथा विश्व-दृष्टि का विकास करने वाले प्रमुख तत्त्व हैं। इन्हीं से विश्व-मूल्य भी प्रभावित होते हैं। विश्व-दृष्टि विश्व-मूल्यों पर टिकी होती है।

विश्व-मूल्यों का अभिप्राय ऐसी सामान्य मान्यताएँ नहीं हैं, जिनका उद्देश्य संपूर्ण विश्व को एक समान नियमों के बल पर अनुशासित करना हो, बल्कि वे मान्यताएँ हैं, जो विश्व के सांस्कृतिक और प्राकृतिक वैविध्य का सम्मान करते हुए विश्व को अनुशासित करने वाली हों। इनके आधार पर बने नियम-कानूनों को विश्व भर के देशों द्वारा मान्य किए जाने तथा इन्हें अपने पर बाध्यकारी मान लेने के बाद ये वैश्विक-नियम अथवा विश्व-मूल्य का स्तर प्राप्त कर लेते हैं। जो देश किसी कारण इन्हें मानने को सहमत नहीं होते, वे भी इनके विरुद्ध आचरण के

लिए स्वतंत्र नहीं माने जाते और विश्व-बिरादरी राजनैतिक व कूटनीतिक प्रयास करती है कि वे वैश्विक-मूल्यों को स्वीकार करें।

विश्व-जीवन से संबंध रखने वाली मान्यताओं और विधि-निषेधों के दो वर्ग संभव हैं। एक वह वर्ग, जिसके अंतर्गत वे मान्यताएँ आती हैं, जो संपूर्ण विश्व समाज पर और सभी देशों की राज्य-सत्ताओं पर समान रूप से लागू हो सकती हैं। उदाहरण के लिए; जीने के अधिकार की सुनिश्चितता, सांस्कृतिक-वैविध्य की स्वीकृति, सभी देशों की संप्रभुता का सम्मान, किसी भी पक्ष द्वारा दूसरे के विरुद्ध युद्ध घोषित न करने पर सहमति, व्यापक विचार-विमर्श और सामान्य सहमति से अस्तित्व में आई विश्व-संस्थाओं के निर्णयों का सम्मान आदि। और, दूसरा वह वर्ग, जिसमें ऐसी मान्यताएँ आती हैं, जिनका संपूर्ण विश्व के लिए अनिवार्य प्रतीत होने के बावजूद, व्यवहार में आना आसान नहीं है। इसके कुछ कटु उदाहरण हमारी वैश्विक-चेतना को झकझोरने वाले हो सकते हैं; जैसे- लैंगिक समानता, कानून के समक्ष समानता, बाल-श्रम, समान नागरिक संहिता आदि। सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक जटिलताओं के साथ ही विश्व के विभिन्न देशों की आर्थिक स्थिति एवं जनसांख्यिकी भी इनके सभी देशों में समान रूप से लागू होने में बाधा बनती दिखती है।

मूल्यों के ये दोनों ही वर्ग विश्व के सामाजिक जीवन की जटिलता की ओर ध्यान खींचते हैं और हमारी विश्व-दृष्टि को प्रभावित करते हैं। इसका एक निहितार्थ यह है (और वही उपर्युक्त विवेचन का मूल लक्ष्य भी है) कि सभ्यता, विज्ञान, शिक्षा, संचार-प्रौद्योगिकी की इतनी भारी वैश्विक प्रगति, संयुक्त राष्ट्र संघ जैसी सर्व-सम्मत विश्व-संस्था की उपस्थिति तथा भूमंडलीकरण की स्थिति प्राप्त कर लेने के बावजूद-

- क्या हम किसी सामान्य विश्व-चेतना और उससे उद्भूत विश्व-दृष्टि का विकास कर पाए हैं?
- क्या हमने वैश्विक जटिलताओं से उत्पन्न संकटों के सामाजिक प्रभावों की समझ के संदर्भ में किसी वैचारिकी का विकास किया है?
- क्या हमने जीवन का वह मार्ग नहीं चुना है, जो विश्व-जनता के सदस्यों में से प्रत्येक को 'सांस्कृतिक-व्यक्ति-इकाई' के बदले, राजनैतिक शक्ति-संतुलन, शीतयुद्ध और बाजारवाद के असहनीय दबावों से घिरी 'दिशाहारा-व्यक्ति-इकाई' बनाता है?

अब लेखिका की स्थापना के पहले भाग पर विचार किया जा सकता है, जिसमें इस बात पर बल दिया गया है कि हमें अपने समाज की परंपराओं और उनके भीतर छिपे हुए अर्थ की जानकारी होनी चाहिए। इसके आधार पर ही यह जाना जा सकता है कि हमारी परंपराओं में विद्यमान जीवन-दृष्टि और विश्व-दृष्टि का क्या रूप है? यह स्थापना सामान्य रूप में 'अपनी जड़ों की ओर वापसी' का आह्वान लग सकती है, लेकिन ऐसा है नहीं। यह समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में 'अपनी सांस्कृतिक जड़ों से गहन संपृक्ति' का आह्वान है, जो एक विशेष स्थिति को प्राप्त करने से कहीं अधिक हममें से प्रत्येक के विश्व-चेतना से संपन्न होने की आधारभूत अनिवार्यता है।

हम विश्व को अपनी सामान्य चर्चा का विषय बना कर वैश्विक बन जाने का दावा नहीं कर सकते। यह केवल राजनीतिज्ञों का विलास हो सकता है। हमें वैश्विक होने के लिए भारी तप करना होगा- विश्व-नागरिक बन जाने के लिए तप। उसके लिए विश्व को अपने भीतर की पूरी सत्य-निष्ठा से अपनाना होगा, उसे अपने दैनिक

जीवन का अंग स्वीकार करना होगा, उसे आत्मीकृत कर लेना होगा- विश्व की समस्त विशेषताओं और विरूपताओं के साथ विश्व का आत्मीकृतीकरण।

लेकिन इसका उपाय क्या है? इसका एकमात्र उपाय एक ऐसा मार्ग खोजना है, जिसके अन्य मार्गों की भाँति ही स्वाभाविक रूप से दो किनारे हैं, किंतु उनकी अर्थ-निष्पत्ति भिन्न है। उस मार्ग का पहला किनारा हमें अपनी सांस्कृतिक जड़ों के बीच अपनी जगह बनाना, उन जड़ों में विद्यमान जीवन-परंपराओं और व्यवहार शैलियों का पुनर्संधान करना, उनमें से फूटती दार्शनिक पद्धतियों को पहचानना, उनके निहितार्थ तक पहुँचना और अंतत: अब तक जिये गए वैयक्तिक एवं सामुदायिक जीवन का मूल्यांकन करना सिखाता है और, दूसरा किनारा प्रकृति के समग्र संभार से जुड़ने के उपाय बताता है। यह संस्कृति और प्रकृति से एक साथ संवाद की स्थिति प्राप्त करने की अवस्था है, जिसे अर्जित किए बिना हम न स्थानीय हो सकते हैं, न राष्ट्रीय और न वैश्विक।

समाज और राष्ट्र के ही समान विश्व भी एक सांस्कृतिक इकाई है। वह असंख्य संस्कृति धाराओं और प्रकृति की विविधता के भीतर जीवंत रूप में विद्यमान समान जीवन-मूल्यों से बना है। इन्हीं समान जीवन-मूल्यों के साथ अनिवार्य रूप से अंतर्विरोध, संघर्ष और संकट भी विद्यमान हैं, लेकिन समान वैश्विक जीवन मूल्य उन्हें अपनी विवेकपूर्ण और सहिष्णु सामूहिक चेतना के बल पर निष्प्रभावी बनाते चलते हैं। यह निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है, जैसे व्यक्ति, समाज और विश्व काल के निरंतर प्रवाह में चलते रहते हैं। यही कारण है कि संस्कृति और प्रकृति मुख्य हैं। राजनीति और अर्थनीति को उनके पीछे चलना चाहिए। जब से राजनीति और अर्थनीति को मुख्य माना जाना प्रारंभ हुआ है, तभी से तानाशाही, फासीवाद, असंतुलित और विनाशकारी दिशाओं की ओर धकेलने वाला विकास, जीवन पर संकट लाने वाले जलवायु और पर्यावरण से जुड़े परिवर्तन अपने-अपने प्रभाव दिखा रहे हैं।

तानी कथाएँ इसी ओर लौटने का आग्रह करने वाली रचना है। उसमें तानी आदिवासी समाज के अरुणाचल प्रदेश में निवास करने वाले आपातानी, न्यीशी, आदी, गालो और तागिन समुदाय की सांस्कृतिक परंपराओं, आध्यात्मिक-दर्शन, व्यावहारिक जीवन-दर्शन, स्वभाव, भाषा-तत्त्व आदि के आधार पर आधुनिक विश्व के लिए एक स्वस्थ विश्व-दृष्टि की खोज की गई है। यदि सामान्यीकृत करें, तो कहा जा सकता है कि यह दृष्टि भारत और विश्व के अन्य आदिवासी समुदायों के जीवन-दर्शन में भी विद्यमान हो सकती है। लेखिका कहीं भी इसका विरोध नहीं करती और न ही यह दावा करती है कि तानी आदिवासी जीवन-दर्शन से उद्भूत दृष्टि ही एकमात्र विश्व-दृष्टि है। वह मात्र एक वैकल्पिक विश्व-दृष्टि का दावा करती है, जो अन्य किसी आदिवासी समुदाय के जीवन-दर्शन में विद्यमान विश्व-दृष्टि के समांतर भी हो सकती है। निश्चय ही यह संस्कृति-विमर्श की स्वस्थ और लोकतांत्रिक प्रणाली है।

तानी दर्शन के मूलाधार पक्ष

जिमी-जमा :

"कहते हैं, प्रारंभ में कोई रंग अर्थात दृश्य नहीं था। समय का भी अस्तित्व नहीं था, क्योंकि रात और दिन बने ही नहीं थे। असीम अंधकार व्याप्त था। मात्र सन्नाटे की गूंज थी। तानी दर्शन में इस अवस्था को नाम दिया गया- जिमी-जमा। यह गर्भ है।"[5]

प्रकाश, काल और दिन-रात :

"असीम अंधकार में एक रोज जिमी-जमा ने अपनी असंख्य आँखें खोलीं। ये आँखें हैं- सूर्य, चंद्र और तारे। जिमी-जमा के आँखें खोलने से रौशनी का जन्म हुआ, समय अर्थात काल प्रारंभ हुआ तथा दिन और रात अस्तित्व में आए।"[6]

कोरियुम-कोल्ह/ कयूम केरो/ कोरियुम तानी/ कोलो तानी :

प्रकाश, काल, दिन-रात के जन्म की "इस अवस्था को 'कोरियुम-कोल्ह' अथवा 'कयूम-केरो' कहा गया, जिसे 'कोरियुम-तानी' या 'कोलो-तानी' भी कहा जाता है।

'कोरियुम' का अर्थ अंधकार और 'कोल्ह' का अर्थ प्रकाश है। इन दोनों शब्दों को एक साथ जोड़ कर भी प्रयोग किया जाता है, जो कि भविष्य के अर्थ में होता है- 'कूरियुम-कोल्ह' अर्थात आने वाला समय। इसमें 'कूरियम' का अर्थ है, परसों की रात। यह भूत के अर्थ में है। जबकि 'कोल्ह' का शब्दिक अर्थ है- बहुत पहले/प्राचीन/आने वाला कल या भविष्य। इस तरह अंधेरे और उजाले 'एक' के ही दो रूप हैं।"[7]

सूर्य :

"कहते हैं, सूरज चिर प्यासा है। सबको पैदा करता है और स्वयं ही सबको खा भी जाता है। इसकी गर्मी से धरती भी दो बार नष्ट हुई। जब तीसरी बार उत्पन्न हुई, तो वह द्रव रूप में थी। इस अवस्था को 'रुलूम-रल्ह' कहा गया, जिसका अर्थ है- 'जैलीनुमा आकृति'। वह कोई भी रूप अथवा आकार ले सकती थी। उसका सूरज ने स्पर्श किया। तब वह आहिस्ता-आहिस्ता बदलने लगी। वह सूरज के साथ तादात्म्य बिठाने में सफल हुई। इसे धरती और सूरज का विवाह माना जाता है।

सूरज माता है, क्योंकि उसका गुण माता का है, लेकिन स्वभाव पुरुष का है, अत: नाम रखा गया- दोंयी। 'दोंयी' शब्द पुरुषवाचक है। यही सूरज धरती के भीतर स्त्री स्वरूप 'आने दुग्नन' (माता अग्नि) के रूप में रहता है। भूकंप का आना 'आने दुग्नन' का करवट लेना माना जाता है। वस्तुत: सूरज सृजनकर्ता और संहारक, दोनों है।"[8]

चंद्रमा :

"... चाँद को 'पोलो' अथवा 'हाई' कहा गया है। जल को भी हाई कहा जाता है। वह जल को नियंत्रित करता है। सर्दियों में उसी को 'दक्का आने' अर्थात पैरों को अपनी ठंड से चीर देने वाली माता कहा जाता है। चाँद हमेशा आसमान में नहीं दिखता, इसलिए उसे पुरुष अर्थात पिता माना गया है, परंतु अपने गुणों के कारण उसके अदृश्य रूप को स्त्री माना गया है। उसका काम सूरज से अधिक है। वह पृथ्वी पर उपस्थित जीवन का पालन करता है।..."[9]

चंद्रमा की एक विशेष भूमिका :

"चाँद के ही इशारों पर पशु-पक्षी, कीड़े-मकोड़े अपनी-अपनी आवाज और भाषा में मौसम की सूचना देते हैं- मुर्गा बाँग देकर सुबह होने की सूचना देता है। एक विशेष कीड़ा चिल्लाकर रात हो जाने का संकेत देता है। वह अपनी हलचलों से भूकंप इत्यादि के आने की सूचना भी देता है। कब धान के बीज मिट्टी में गिराए जाएँ, कब मड़ुआ के बीज बिखेरे जाएँ, कब खेतों के लिए जंगलों की कटाई की जाए अथवा कब धान रोपा जाए, ऐसे अनगिनत कामों के सही समय की सूचना वे ही तो चाँद की मदद से देते हैं।"[10]

धरती का अस्तित्व में आना और सूर्य की पाँच अवस्थाएँ :

"समय के अस्तित्व में आने के बाद धरती अस्तित्व में आई। इस पर जीवन के पनपने में बहुत समय लगा, क्योंकि सूरज ने पाँच बार अपना रूप बदला-

1. जीतर दोंयी- यह चरम गर्म था। यह जीवन नहीं दे सकता था। इसने प्रथम धरती को नष्ट कर दिया और अपनी ही गमी से स्वयं भी नष्ट हो गया।
2. जीयर दोंयी- यह भीतर से कुछ गर्म था, लेकिन तब भी इतना गर्म था कि कुछ समय बाद अपनी ही गर्मी से यह भी नष्ट हो गया।
3. जीकु दोंयी- यह जीतर और जीयर दोंयी से कुछ कोमल था, लेकिन यह भी जीवन के अनुकूल नहीं हो सका।

   यह कमी इसके नष्ट होने का कारण बनी। जिंदा रहने के लिए इसको जीवनदायिनी धरती की आवश्यकता थी, जिससे यह मिल नहीं पा रहा था।
4. जीगी दोंयी- इसमें प्रथम तीन सूर्यों से अधिक कोमलता थी, लेकिन धरती अभी भी इसके साथ विवाह को तैयार

   नहीं थी। कहते हैं, इसमें अभी अहंकार बचा हुआ था। इसलिए यह भी नष्ट हो गया।
5. जिनियाक दोंयी- यह सूरज का पाँचवाँ रूप था, जो जीवन के अनुकूल साबित हुआ। 'जिनियाक दोंयी' का

   शाब्दिक अर्थ है, माता की तरह कोमल और मृदुल। इसी के कारण पृथ्वी पर जीवन का आगमन हुआ। यह पालनहार है, माता है। इसकी भी अपनी एक समय-सीमा है। यह फिर से रूप बदलेगा। तब पृथ्वी का क्या रूप होगा, कोई नहीं जानता।"[11]

सूर्य, धरती और चंद्रमा का संबंध :

सूरज, चाँद और धरती ने मिल कर जल, वायु आदि को जन्म दिया। तीनों के इस संबंध को भी वैवाहिक माना गया, क्योंकि विवाह में दो शरीर अदृश्य रूप से एक हो जाते हैं और नए जीवन को जन्म देते हैं। इनके संबंध को इस तरह देखा जाना सत्य के अधिक करीब माना जा सकता है।"[12]

कल-क्रमानुसार उत्पन्न प्राणियों के वर्ग :

1. निग तानी – पेड़-पौधे तथा पंखधारी जीव
2. निब तानी – मिथुन, गाय, बकरी, सूअर, हिरण, बारहसिंघा, हाथी
3. नीबंग या नीकुर तानी – बिल्ली, चीता, बाघ
4. नीसि तानी – जलचर
5. नीमा तानी – बनमानुष
6. न्यीदिक तानी – विष तथा रोग
7. नीया तानी – विभिन्न रंगों और आकारों वाले मानव[13]

क्रमानुसार चराचर जगत में मानव की स्थिति :

"मनुष्य सबसे बाद में उत्पन्न हुआ।...सब कुछ बन गया, धरती तब भी कुछ-कुछ खाली-खाली और खामोश थी, कुछ अधूरी-सी। एक दिन सभी 'उईयु' अर्थात आत्माओं (निग, निब, नीबंग, नीसी, न्यीदिक) ने इस पर चिंतन किया। वे एक विशालकाय पत्थर पर बैठ कर चर्चा कर रहे थे कि अचानक वह हिलने लगा। घबरा कर वे नीचे उतर आए। तभी पत्थर और मिट्टी के बीच से एक स्त्री रेंगती हुई बाहर निकली और कुछ क्षण बाद एक पुरुष। दोनों नग्न थे। उन्होंने अपने सामने पौधों पर टिड्डा और टिड्डी को मैथुन करते देखा। वे एक-दूसरे के करीब आए और टिड्डा-टिड्डी का अनुकरण करने लगे। उसी से मानव-प्रजाति का जन्म हुआ।..."[14]

मानव सबसे छोटा है :

"मनुष्य सबसे बाद में उत्पन्न हुआ। इसलिए वह सबसे छोटा है। सबसे कमजोर भी है। अस्तित्व में दिखने वाले, न दिखने वाले सभी चर-अचर मिल कर उसको देते हैं, क्योंकि वह उनका छोटा भाई है। मनुष्य उन सभी पर आश्रित है। एक छोटा-सा कंकड़ भी उससे अधिक शक्तिशाली माना गया है। यही कारण है कि उसे बुद्धि का उपहार मिला। मनुष्य शारीरिक तौर पर दूसरों के मुकाबले कम शक्तिशाली था, लेकिन अपनी बुद्धि का उपयोग कर उसने हथियारों का आविष्कार किया। इसी से उसका अहंकार बढ़ा।"[15]

आदि-पूर्वज आबोतानी : स्वरूप, शक्तियाँ और स्वभाव:

"आबोतानी एक महत्त्वपूर्ण पूर्वज माने गए हैं।"[16]

"आबोतानी की तीन आँखें थीं, जिन्हें 'न्यीम दुरंग' अथवा 'कोगा मिरी' कहा गया। दो आँखें आगे हैं, एक पीछे है। वे भूत, भविष्य और वर्तमान, तीनों के ज्ञाता हैं। बुद्धि और ज्ञान का प्रतीक हैं।"[17]

"... आबोतानी सशरीर अब नहीं दिखते, परंतु सदा मौजूद हैं। एक कुत्ते के साथ सूरज की किरणों में धरती पर आने के लिए अस्पष्ट चेहरा लिए वह दौड़ने को तैयार्।"[18]

"..... समाज ने उन्हें 'उईयु' का दर्जा भी दिया।"[19]

"तानी कभी मरते नहीं हैं। इसीलिए ऐसी कोई कथा नहीं मिलती, जिसमें आबोतानी की मृत्यु का जिक्र हो।"[20]

"उनके घुटनों में गजब की शक्ति थी। अनेक पहाड़ों पर तेजी से चढ़ते-उतरते और अपनी विजय पताका फहराते थे।"[21]

"उनमें आत्मरक्षा का भाव था। भावी जीवन का सपना था। वे प्रगतिशील मानव थे और विकास-यात्रा का प्रतीक भी।"[22]

"वे एक महान यात्री माने गए हैं। उन्होंने ही तानी समाज को भिन्न-भिन्न फसलों के बीज दूर-द्राज के इलाकों से लाकर दिए और उनको खेती-बाड़ी करने के तरीके सिखाए।"[23]

"वे पशु-पक्षियों, पेड़-पौधों और पत्थरों से संवाद करते थे। शेर-चीते उनके मित्र थे और चींटियाँ उनकी सहेली। वे अजगर पर बैठ कर सुस्ताते थे।"[24]

"आबोतानी का चरित्र आम नहीं है।"[25]

"वे साजिश रचना जानते थे, लेकिन बुरे आदमी नहीं थे।"[26]

"इतने मजाकिया और मसखरे हैं कि हँसा-हँसा कर लोगों का मनोरंजन करते हैं।"[27]

"कहते हैं कि उईयु ने आबोतानी की 'न्यीम-दुरंग'- जिसे 'कोगा मिरी' भी कहा गया है- को छल से छीन लिया। इसी शक्ति के कारण उनकी शक्ति ऊईयु के बराबर हुआ करती थी, वह अदृश्य चीजों को भी देख सकते थे, दूसरों के मन को पढ़ सकते थे; भविष्य उनकी मुट्ठी में था, भूत उनके पैरों तले और वर्तमान उनके रक्त में था। इसी के चलते उईयु आबोतानी को पराजित नहीं कर पाते थे, लेकिन न्यीम-दुरंग से वंचित होकर आबोतानी बहुत ही साधारण, कमजोर तथा भयातुर हो गए। उनके अंदर नैराश्य और कुंठा ने जन्म लिया। वे पशु-पक्षियों का कलेजा चीर-फाड़ कर देखने लगे। वह जानना चाहते थे कि इन पशुओं के मन में क्या चल रहा है?"[28]

मिट्टी :

"आदमी मर जाता है, परंतु उसका शरीर सदा के लिए संसार में रह जाता है। इसीलिए तानी समाज के लोग मिट्टी को अपना पूर्वज मानते हैं, जो कभी नहीं मरती। पूर्वज हमारे शरीर में रक्त बन कर दौड़ते रहते हैं। मिट्टी के एक-एक कण में हमारे पूर्वज जिंदा हैं। मिट्टी का एक-एक कण सुनता है, धड़कता है, हमें जिंदा रखता है और जीवन देता है। बड़ी पूजा के वक्त इन पर किसी प्रकार की चोट नहीं की जाती। यह मिट्टी वस्तुत: पूर्वजों के प्रति सम्मान है। प्रकृति के साथ हमारी एकात्मकता के प्रति सम्मान।"[29]

इकी :

"माना जाता है, इकी अर्थात कुत्ते ने धान के बीज को लाने में आबोतानी की मदद की थी। उसने अपनी जान तक को जोखिम में डाला था। यही कारण है कि उसका सम्मान किया जाता है। न्यीशी लोग धान कटाई के वक्त इकी की खूब खातिरदारी करते हैं। सबसे पहले उसी को भोजन कराया जाता है..... "[30]

"इकी आदमी का सबसे करीबी मित्र है, रक्षक है, सहयोगी और मार्गदर्शक है। प्रत्येक तानी के घर में इसकी उपस्थिति देखी जा सकती है। ऐसा माना जाता है कि इनके पास उईयु अर्थात अदृश्य शक्ति को देख सकने की शक्ति होती है।"[31]

पत्थर :

"जल, वायु और धरती ने मिल कर सर्वप्रथम 'अलंग' अर्थात पत्थर को आकार दिया। उसी ने नदियों का मार्ग तैयार किया। उसके बिना जल का बहाव संभव नहीं हो पाता। वह बिछ जाता है- तभी नदी बहती है। उनमें नर-मादा भी होते हैं। मादा को 'लंग्न' तथा नर को 'लंग्प' कहा जाता है। उनके आकार-प्रकार से नर और मादा की कल्पना की जाती है।"[32]

"पत्थर को आज भी बड़ा भाई ही मानते हैं। वह जन्म लेता है, जन्म देता है। मर भी जाता है। उसके होने से ही हम हैं। मृतक को मिट्टी में दफनाने के बाद कब्र पर पत्थर रखने का रिवाज है। माना जाता है कि मृत्यु के तीन दिन बाद तक मृतक अपनी इच्छाओं को त्याग नहीं पाता। वह परिजनों के आस-पास ही रहने की जिद करता है। चौथे दिन उसकी अगली यात्रा आरंभ होती है। पाँचवें दिन वह पूर्वजों के साथ चल देता है।

कब्र पर रखा पत्थर इस बात का प्रतीक है कि शरीर और आत्मा के बीच इसी तरह की सीमा-रेखा है।"[33]

तानी आदिवासी समुदाय की प्रकृति संबंधी समझ और व्यवहार

प्रकृति से संबंध का प्रारंभ संवाद से :

मानव को मानव से जुड़ना हो अथवा मानवेतर प्राणियों और वस्तुओं से, संवाद ही एकमात्र माध्यम होता है। यह संवाद निर्मित और अर्जित शब्दों, भाषेतर ध्वनियों, स्थूल-सूक्ष्म संकेतों, चित्रों, रंगों, गंध, प्रतीकों, मुद्राओं-भंगिमाओं, वस्त्राभूषणों, देह-गतियों आदि के साथ ही मौन की वैविध्यमयी दशाओं से संभव होता है। तानी दर्शन में सन्नाटे और मौन को संवाद-सेतु के रूप में विशेष महत्त्व प्रदान किया गया है। इसके लिए पत्थर को प्रतीक के रूप में चुना गया है और कहा गया है कि पत्थर की भाषा 'मौन' है- "xxx पत्थर निर्जीव नहीं है, लेकिन वह मनुष्य की भाषा नहीं बोलता। मौन उसकी भाषा है।"[34] लेखिका ने पत्थर की भाषा और उसके साथ मनुष्य के संवाद के संबंध में अपना एक विलक्षण अनुभव साझा किया है। इसका संबंध स्वयं लेखिका के पिता से है- "प्रकृति से संवाद के संबंध में थोड़ा ही सही, परंतु जिन लोगों ने महत्त्वपूर्ण जानकारियाँ देकर मेरी मदद की, उनमें मेरे पिता जी प्रथम व्यक्ति थे। बचपन से देखती आई हूँ, वह पत्थरों से संवाद करते थे। किसी को यह मूर्खतापूर्ण लग सकता है, परंतु जो लोग करते हैं, वे अपने ढंग से करते हैं, वे उत्तर के लिए प्रतीक्षा नहीं करते। दरअसल, उनको माध्यम बना कर वे स्वयं से ही वार्तालाप करते हैं, परंतु उनके साथ संबंध जोड़ते हैं मौन में। उन्हें देखने के लिए उनके पास अपनी ही अनूठी दृष्टि होती है। उनसे कुछ मांगा नहीं जाता, बल्कि उन्हें समझने का यह एक ढंग होता है।"[35]

जंगल के पास संवाद का एक सशक्त माध्यम गंध को माना जा सकता है। गंध की भाषा में मधुमक्खियों को अत्यंत कुशल माना जाता है। वे अपने इस कौशल के बल पर बहुत दूर-दूर के बियाबान जंगलों में खिलने वाले फूलों से लेकर खेतों में फूलती सरसों के फूलों तक पहुँच कर मधु-संचय कर लेती हैं और बिना किसी भटकाव के अपने छत्तों में लौट आती हैं। गंध की भाषा को सुनने-समझने में श्वानों को भी कुशल माना जाता है। प्रकृति के सान्निध्य में बसने वाले लोक-समाज गंध की भाषा के रहस्य जान कर ही जंगल से अपने रिश्ते बनाते हैं। लेखिका ने इसका संकेत करते हुए कहा है- "गंध की भाषा अत्यधिक गहरी होती है। अनेक प्रकार की गंध जीवित भाषा के रूप में मौजूद है। इसी से जंगल अपना काम करता है। इस भाषा को समझना जंगल को समझना है। यह प्रकृति और मनुष्य के बीच का संवाद-सेतु है। गाँव वाले इस कला में आश्चर्यजनक रूप से निपुण होते हैं। कुत्तों को आज भी घासों, पेड़-पौधों इत्यादि से मार्ग पूछते-बतियाते देखा जा सकता है।"[36]

तानी दर्शन यह स्थापित करता है कि प्रकृति के सभी कारक बोलते-सुनते हैं। न केवल पशु-पक्षी, नदी-सरोवर-समुद्र, पर्वत-उपत्यकाएँ और पल्लवित-पुष्पित लता-गुल्म, बल्कि घरों की दीवारें, यहाँ तक कि शून्य कोने तक भी अपनी भाषा में कहते-सुनते हैं- "घर के सारे दर-ओ-दीवार सुनते हैं, हर कोना सुनता है। प्रत्येक में प्राण है, चाहे सूखी लकड़ी हो या घर का खंभा। प्रत्येक घास-फूस, पेड़-पौधे बोलते और सुनते हैं। एक ही शर्त है, आदमी को भी सुनना आना चाहिए।"[37]

यह 'सुनना आना' तानी समाज में वैयक्तिक और सामाजिक स्तर पर प्रकृति के साथ जीवन जीने की एक कठिन कसौटी है। सुनना उसे ही आ सकता है, जिसे जंगल की और उसकी कोटरों-झुरमुटों-गुफाओं-घाटियों में मुक्त भाव से रहते-बसते प्राणियों के स्वभाव की समझ हो, जो रंगों और गंधों से परिचित हो, जिसके मन में जंगल के प्रति लगाव और समर्पण हो और जो ऋतुओं के व्यवहार का आनंद उठा सकता हो। यह एक स्तर पर

अपने ही जीवन की भाषा सुनना और समझना है। जो जंगल की भाषा से परिचित नहीं, वह समाज से भी गहराई से परिचित नहीं हो सकता। तानी समाज ने जंगल से संवाद को इतना महत्त्वपूर्ण माना है कि जिसे जंगल की भाषा को समझ पाने की तमीज नहीं, वह समाज में भी अपना सम्मान खो देता है। न्यीशी आदिवासी समुदाय की एक ऐसी ही परंपरा का उल्लेख लेखिका ने किया है- "न्यीशी समाज के बड़े-बुजुर्ग और गाँव वालों के लिए आज भी यह शर्म की बात होती है कि किसी व्यक्ति को साँप ने डस लिया। इसका अर्थ है कि वह व्यक्ति, जिसे साँप ने डसा है- वह प्रकृति की भाषा को नहीं समझता। उसको इतना भी ज्ञान नहीं था कि साँप के डसने तक की नौबत को आने से रोक पाता। इसी शर्म के कारण लोग सर्प-दंश के बाद गोदामों में तीन-चार दिन तक छुप कर रहते थे। किसी को अपना चेहरा नहीं दिखाते थे। एकांत में वे चिंतन-मंथन करते थे कि उन्हें इसी तरह की गलती फिर से नहीं दोहराना चाहिए अन्यथा साँप उन्हें दोबारा डस सकता है।"[38]

एक और तथ्य यह, कि तानी दर्शन के अनुसार मानव जब अपनी भाषा का निर्माण करता है, तो जंगल उसके स्वरूप गठन से लेकर शब्द-संपदा और उच्चारण-विधि तक में हस्तक्षेप करता है। उसके पेड़-पौधे, उसके लता-पुष्प, उसके पशु-पक्षी, उसके नदियाँ-झरने चुपचाप मानव-भाषा में समा जाते हैं और उसे जीवनी-शक्ति प्रदान करने लगते हैं। जंगल से बादलों की जुगलबंदी, जल-संभार की कुलकुल, हवा का आरोही-अवरोही संगीत, मौसम की तरल-शुष्क भंगिमाएँ, निर्धारित करती हैं कि मानव अपनी बनाई भाषा के प्रयोग की कौन-सी शैलियाँ, कौन-सी उच्चारण-विधियाँ, शब्द-भंडार की कौन-सी अर्थच्छवियाँ व्यवहार में लाए। यहाँ तक कि जब मानव-भाषा दम तोड़ने लगती है, तो उसके लिए प्राण वायु की खोज में भी मनुष्य को जंगल-पहाड़-खेत की ही याद आती है। प्रकृति यहाँ भी मनुष्य का साथ निभाती है, निर्माण से अंत तक सहयोग और साथ- "... प्रकृति ने मानवी-भाषा निर्माण में स्वत: ही मनुष्य का साथ निभाया है।"[39] इसके आगे यह भी कि "किसी स्थान पर पाए जाने वाले शब्दों का संबंध वहाँ मूल रूप से पाए जाने वाले पेड़-पौधों से होता है। जिस तरह के पेड़-पौधे पाए जाते हैं- उससे संबंधित शब्द बनाए जाते हैं। ..... कई भौगोलिक कारण होते हैं, जिनसे भिन्न-भिन्न शब्द और उनके उच्चारण पैदा होते हैं।

अधिक गर्मी अथवा अधिक ठंड के कारण भी उच्चारण में समानताएँ-भिन्नताएँ पाई जाती हैं।"[40]

प्रकृति और भाषा के संबंध के ये कुछ महत्त्वपूर्ण पक्ष हैं, जिनके प्रभाव में तानी समुदायों ने अपनी भाषाओं का निर्माण करते समय प्रकृति के प्रति सम्मान का विशेष ध्यान रखा। प्रत्येक तानी आदिवासी समुदाय की "भाषा की बनावट इस तरह से है कि तानी समाज के लोग भूलकर भी प्रकृति को अपने से कमतर अथवा निम्न मान ही नहीं सकते। मसलन, छिपकली को 'सोपिन' कहा जाता है- आदमी का नाम भी सोपिन है। उसी प्रकार तापिन (चमगादड़), ताबी (बाँस), ताकार (तारे), ताब (साँप), याखा (काली), ताखा (काला), यालांग (लाल), यापुंग (श्वेत) इत्यादि। तानी भाषा में ये सारे शब्द गाली अथवा घृणा का भाव उत्पन्न नहीं करते।"[41]

प्रकृति सहचर है, परिवार है :

तानी दर्शन की मान्यता है कि "प्रत्येक चर-अचर में प्राण हैं, अत: बिना आज्ञा लिए उनका उपभोग करने का अर्थ है, उनको कुपित करना। तानी समाज मानता है कि प्रकृति और मनुष्य एक-दूसरे के सहचर हैं।"[42] प्रकृति परिवार है, इसीलिए आदिवासी समुदाय के लोग स्वयं को भिन्न-भिन्न प्रकार से सजा कर उसके साथ एकाकार हो जाना और अकुंठ जीवन जीना चाहते हैं। लेखिका ने कहा है, "पूरा चराचर जगत एक परिवार है;

सब सामान्य और अनोखे हैं। इसी मान्यता से प्रेरित होकर लोग पशु-पक्षियों के पंखों, चोंच, सींग, चमड़े, पूँछ, बाल इत्यादि से अपने शरीर को सजाते हैं।"[43]

प्रकृति गुरु है :

तानी दार्शनिक चिंतन का यह पक्ष बहुत ध्यान खींचता है कि वह प्रकृति को मानव की गुरु स्थानीय मानकर उसके प्रति कृतज्ञता प्रकट करता है। ऋषियों और दार्शनिकों की एक वैश्विक परंपरा मिलती है, जो मनुष्य और प्रकृति के संबंधों की व्याख्या करते हुए स्थापित करती है कि मानव का गुरु कोई मानव न होकर केवल प्रकृति ही हो सकती है। गुरु नानक ऐसे ही चिंतकों में गिने जाते हैं। ऐसा होने के तीन मुख्य कारण हैं; एक यह, कि प्रकृति के पास जीवन के कोमल-कठोर और सृजन-विनाश भरे अनुभवों का अपार भंडार होता है, दूसरा यह, कि उसकी भाषा असीमित अभिव्यक्ति स्रोतों से संपन्न होने के कारण अधिक संप्रेषणपरक होती है, और तीसरा यह, कि प्रकृति स्वयं जीवन जीते हुए, जीवन के प्रयोग करते हुए, बिना सूचना दिए, बिना प्रशिक्षण शिविर आयोजित किए स्वाभाविक रूप से सिखाती है। तानी कथाएँ पुस्तक में इस संबंध में एक कथा का उल्लेख किया गया है, जिसके अनुसार- "पहले 'सिन्यी' अर्थात मादा मिथुन प्रकट हुई; इसके कुछ क्षण बाद 'बिन्यी' अर्थात मानव-स्त्री। भूख से सर्वप्रथम दोनों बहनों का परिचय हुआ। दोनों ने चारो तरफ नजरें दौड़ाईं। पेड़-पौधों को देख कर सिन्यी के मुँह में पानी भर आया। उसने कच्ची घास खाना शुरू कर दिया। बिन्यी भी बहुत भूखी थी, परंतु वह घास-फूस नहीं खा सकती थी। सिन्यी ने कहा, "मेरी प्यारी बहन, मेरे इन बड़े-बड़े कानों को देखो। इन्हीं की तरह 'उप्पी' (चावल साफ करने का उपकरण) बनाओ। सींगों की तरह हथियार बनाओ। पत्थर तुम्हें आग देगा। हवा तुम्हारी सहेली है। जल तुम्हारा साथ देगा। मेरी तरह कच्चा नहीं, पका कर तुम खा लेना।" यह कहते हुए उसने बहन को सब-कुछ सिखाया।"[44] लेखिका ने इस कथा का निष्कर्ष देते हुए लिखा है- "इस कथा से इस बात का संकेत मिलता है कि प्रकृति ही गुरु है। विराट की भाषा समझना इसकी प्रथम शर्त है।"[45]

प्रकृति और मानव के बीच एक जीवन-अनुशासन-रेखा भी है :

प्रकृति स्वाधीन है और मानव अपने जन्म से ही स्वाधीनता अर्जित करने के संघर्ष में लगा हुआ है। उसे चराचर जगत में अपने सबसे निर्बल होने का दंश जितना सालता है, उतना ही उसके बुद्धि-बल का अहंकार घायल और आहत होकर प्रकृति को पराजित करने की व्यूह-रचना में प्रवृत्त होता है। उसने जीवनदायिनी प्रकृति को ही अपनी स्वाधीनता के मार्ग में सबसे कठिन बाधा मान लिया है, इसलिए उसकी जीवन और आर्थिक आत्म-निर्भरता की धारणाएँ भी अंतत: प्रकृति के विनाश के भीतर विकास खोजने की दिशा में जाती हैं। मानव-सभ्यता के आगे बढ़ने के साथ-साथ यह संघर्ष बहुरूपिया बन कर निरंतर आगे बढ़ा है और हमारे वर्तमान तक पहुँच गया है- आशंका है कि मानव ने प्रकृति के साथ अपने संबंध के यथार्थ को समझने व स्वीकार करने पर ध्यान न दिया, तो यह आगे भी चलता रहेगा।

आबोतानी और तानी-पूर्वजों के अनुभवों की गहराई से अस्तित्व में आया तानी-दर्शन प्रकृति और मानव के संघर्ष से उत्पन्न चिंता के परिप्रेक्ष्य में एक ऐसी धारणा प्रस्तुत करता है, जो आज हमारे काम आ सकती है। वह धारणा 'प्रकृति और मानव के बीच दापो' की धारणा है। इसमें कहा गया है- "मनुष्य और प्रकृति के अन्य रूपों के बीच पारिवारिक रिश्तेदारी है। ये सभी सहोदर हैं, लेकिन मनुष्य का स्वभाव अन्य सभी से भिन्न है, अत: इसकी अपनी भिन्न दुनिया है। उईयु और नीया अर्थात मानव ने इसी कारण एक-दूसरे के बीच एक

'दापो' (सीमा-रेखा) का निर्धारण किया। दोनों का अपनी-अपनी सीमा में रहना आवश्यक है। उन्हें एक साथ रहते हुए भी अपनी-अपनी दुनिया में एक अनुशासन के तहत, अलग-अलग रहना है। सीमा का अतिक्रमण वर्जित है। अन्यथा सजा होती है। इसीलिए मनुष्य को प्रकृति से कुछ भी लेना हो, तो अनुनय-विनय करता है। ऐसा नहीं होने पर विनाशकारी घटनाएँ घट सकती हैं।"[46]

पशु-पक्षी हिंसा मूल सामाजिक प्रवृत्ति नहीं :

धर्मानुशासन के रूढ़ हो जाने और आवागमन की सुविधाओं का जाल तैयार हो जाने तक भोजन की आदतें और पद्धतियाँ जलवायु, भौगोलिक परिस्थितियों और जीवन के लिए किए जाने वाले भौतिक संघर्षों से निर्धारित होती रही हैं। इसीलिए पशु-पक्षी हिंसा का प्रारंभ जीवन को बचाए रखने के उपायों के अनिवार अंग के रूप में हुआ। तब हिंसा आदत या स्वभाव से जुड़ा हुआ कार्य नहीं था। कालांतर में मनुष्य के ऐतिहासिक, धार्मिक और कहीं-कहीं सांस्कृतिक दुराग्रहों के कारण इसने 'भोजन की आदत' का रूप लिया। तभी यह आर्थिक समृद्धि के प्रदर्शन और जीवन-शैली के निर्धारण में बंधन स्वीकार न करने वाली इच्छा के चलते सामाजिक प्रवृत्ति बन जाने की कोशिश भी करने लगा। लेकिन यह सवाल हमेशा बना रहा कि क्या पशु-पक्षी हिंसा किसी समाज की सामान्य प्रवृत्ति हो सकती है? इस सवाल की प्रासंगिकता आदिवासी समाजों के संदर्भ में बहुत अधिक है; क्योंकि सही जानकारियों के अभाव में नागर-समाज के बीच यह धारणा बनी हुई है कि आदिवासी समाजों में हिंसा के प्रति नकार का भाव नहीं होता। आदिवासियों के, जीवन के लिए संघर्ष की उपेक्षा करके कभी-कभी उनके प्रति अन्यथा-भाव प्रदर्शन की भावना से इस धारणा का दुरुपयोग भी किया जाता है। ऐसे सभी लोगों को तानी कथाएँ पुस्तक का यह अंश पढ़ना चाहिए- "तानी समाज में पशु-पक्षियों का बड़ा ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। वे मनुष्य से पहले इस पृथ्वी पर जन्मे हैं, इसलिए उन्हें तानी खुद से बड़ा मानते हैं। वे हमें जीवन देते हैं। इसलिए आवश्यकता से अधिक पशु-पक्षियों का शिकार करना अथवा मांस खाना अशुभ माना गया है। माना जाता है कि उईयु इसके लिए सजा देता है। आदमी कई तरह के रोगों का शिकार हो सकता है, अप्राकृतिक मृत्यु को भी प्राप्त कर सकता है। गर्भवती स्त्रियों का पति जंगली पशुओं का मांस खाए, तो इसका असर होने वाले बच्चे पर पड़ता है। पशुओं का स्वभाव उसमें आ सकता है। गर्भवती माता भी कई पशुओं का मांस नहीं खा सकती।"[47]

बलि-प्रथा भी बाद में कभी प्रारंभ हुई :

इसी से मिलती-जुलती बात बलि-प्रथा के संबंध में भी है। प्राकृतिक, दैवी और अति-मानवी अथवा शैतानी शक्तियों को प्रसन्न करके अपनी मनोकामनाएँ पूरी करने के लिए पशु-पक्षियों की बलि आयोजित करने का चलन छद्म धार्मिक मान्यताओं की छाया में अनेक जगह पलता रहा है, यहाँ तक कि स्वयं मनुष्य को भी बलि चढ़ाया जाता रहा है। आदिवासी समाजों में बलि-प्रथा के चलन पर भी असंख्य पृष्ठ रंगे हुए मिल जाते हैं। लेखक आदिवासी समाजों में बलि की प्रथा के प्रारंभ होने और उसके निरंतर चलते रहने के कारणों की खोज में कई बार असत्य और अतिवादी कल्पनाओं के शिकार भी देखे जाते हैं।

तानी कथाएँ की लेखिका ने तानी समाज में विद्यमान बलि-प्रथा के प्रसंग में उसकी उपस्थिति की सूचना देते हुए ही एक खोजपूर्ण विवेचन प्रस्तुत किया है। इस विवेचन में समाज-सांस्कृतिक लोक-इतिहास को आधार बना कर बलि-प्रथा की जड़ तक पहुँचने की कोशिश की गई है और उसके सहारे आदि-पूर्वज आबोतानी

के व्यक्तित्व पर चिपका दी गई एक निर्बलता को भी निर्मूल सिद्ध किया गया है। लेखिका ने बताया है कि, "तानी कथाओं में बलि-प्रथा का जिक्र सिर्फ एक बार आता है, जहाँ आबोतीनी को पादने का रोग लग जाता है। उसे ठीक करने के लिए मिथुन की बलि दी जाती है, परंतु रोग फिर भी बना रहता है। यह तानी कथा अवश्य है, परंतु इसका आबोतानी की कथा होना संदिग्ध है। दरसल, आबोतानी किसी भी प्रकार से अंधविश्वासी नजर नहीं आते। अत: मुझे यह बाद में उनके साथ जोड़ दी गई कथा लगती है।"[48]

इसके आगे इस संबंध में एक और कथा का उल्लेख किया गया है, जिसमें उईयु द्वारा आबोतानी की न्यीम दूरंग नामक शक्ति छीन ली जाती है और वे परेशान होकर पशु-पक्षियों के कलेजे चीर कर उनके मन में चल रही गतिविधियों का पता लगाना चाहते हैं। इसी आधार पर संदर्भित कथा में कहा गया है कि "सभी लोग आबोतानी का अनुसरण करते थे। उनकी इस गतिविधि को भी लोगों ने आबोतानी का इशारा माना और पशु-पक्षियों को मार कर उनके कलेजे द्वारा जानने का प्रयास करने लगे कि प्रकृति-शक्ति के मन में मनुष्य के प्रति क्या है, जिसे जान कर रोगों अथवा अनहोनी से बचा जा सकता है। माना जाता है कि उसी समय से बलि-प्रथा का प्रारंभ हुआ।"[49]

ये दोनों कथाएँ प्रस्तुत करते हुए लेखिका ने निष्कर्ष दिया है- "इस कथा से स्पष्ट है कि बलि-प्रथा का अस्तित्व पूर्व में नहीं था। बाद में मनुष्य के मनोरोग से यह उत्पन्न हुआ। इस कथा को भी मैं आबोतानी की कथा नहीं मानती, क्योंकि उनकी तीसरी आँख़ को ज्ञान का प्रतीक कहा जाता है। ज्ञानी व्यक्ति कभी भी अंधविश्वास को साथ लेकर नहीं चलता। इस कथा में आबोतानी को भयातुर बताया गया है, जबकि तमाम कथाओं में उन्हें भयमुक्त और साहसी व्यक्तित्व वाला बताया गया है। वह प्रकृति के साथ परम संवाद में लीन हैं। यही उन्हें अनुशासित करता है। अत: यह कथा अवश्य ही बाद में तानियों की ईजाद है।"[50]

तानी-दर्शन में आदि-पूर्वज के प्रति नायक-पूजा का भाव नहीं :

तानी समुदाय (आपातानी, न्यीशी, आदी, गालो, तागिन) आदि-पूर्वज के प्रति अगाध सम्मान, समर्पण और श्रद्धा का भाव रखता है, लेकिन किसी में भी नायक-पूजा का प्रचलन नहीं है। तानी कथाएँ की लेखिका की यह विवेचन-निष्पत्ति धार्मिक और सामाजिक ही नहीं, राजनैतिक नायक-पूजकों के हृदय में भी हलचल मचा सकती है। धर्म, इतिहास, समाज और राजनीति के नायकों की पूजा इन सभी नायकों के जीवन और कर्तृत्व से प्रकट होने वाले अनुकरणीय मूल्यों, मर्यादाओं और व्यवहार को जीवन का व्यावहारिक अंग स्वीकार करने से रोकती है। नायक-पूजा का घटाटोप निर्मित करके जो धर्मांधता, इतिहासांधता, समाजांधता और राजनैतिक अंधानुकरण का उन्माद खड़ा होता है, वह व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और विश्व को वैचारिक-विनाश के साथ ही विचार-व्यवहार की हिंसा की ओर धकेलने वाला सिद्ध होता है। यह देख कर अच्छा लगता है कि तानी दर्शन में इस नायक-पूजा के लिए स्थान नहीं है और आदि पूर्वज आबोतानी को पूज्य मानने के बदले श्रद्धा व प्रेम का पात्र मान कर उनके द्वारा स्थापित मान-मूल्यों को जीवन में उतारने पर ही सारा बल दिया गया है। इससे किसी के भी मन में तानी दर्शन की वैचारिक और सामाजिक तार्किकता के प्रति सम्मान का भाव पैदा होना स्वाभाविक है। लेखिका ने तानी दर्शन का विवेचन करते हुए नायक-पूजा के संदर्भ में जो निष्कर्ष प्राप्त किए हैं, उन्हें समग्र रूप में देखने पर यह महत्त्वपूर्ण दार्शनिक व्यवस्था समझ में आ जाएगी-

"जिस प्रकार पाँच सूर्य हुए, उसी प्रकार पाँच शक्तिशाली पूर्वज भी हुए। 'दोंयी' अथवा 'नीबो' नामक पूर्वज उनमें सबसे शक्तिशाली थे, जिनको इस समूह ने अपना पिता स्वीकार किया और उन्हें आबोतानी कहा।"[51] "वह प्रेम-पात्र हैं, पूजनीय नहीं। वे इतने खास लगते हैं कि मन श्रद्धा से भर जाता है। इतने धूर्त भी हैं कि मन उनको कोसने लगता है।"[52]

"उनके अति मानवी रूप को तानी समाज शायद स्वीकार नहीं करना चाहता, क्योंकि यह उनको पूजना नहीं, बल्कि प्रेम करना चाहता है। इसीलिए जब भी वे आएँ, सिर्फ और सिर्फ अपने उसी रूप में आएँ, ताकि जीवन की सत्यता बनी रहे..."[53]

"आबोतानी अति महत्त्वपूर्ण पात्र अवश्य हैं,परंतु उन्हें नायक मान कर पूजने का रिवाज नहीं है, न ही उनके कोई प्रतीक बनाए जाते हैं। चूँकि उनका नाम और काम ही हमारे सामने कथाओं की शक्ल में मौजूद है, इसलिए उनके रूप-आकार को मूर्त रूप देने के लिए मूर्ति इत्यादि गढ़ने की जरूरत महसूस नहीं की गई। नायकवाद कहीं भी इस समाज में देखने को नहीं मिलता।"[54]

समाज में नायक की उपस्थिति और नायकवाद की अनुपस्थिति किसी सभ्यता और संस्कृति की सुंदरतम अवस्था होती है। चकाचौंध भरे महिमा-मंडन से सुरक्षित नायक वर्तमान के साथ ही भविष्य को भी सार्थक दिशा देने वाले सिद्ध होते हैं। जो समाज उन्हें पूजने की आवश्यकता में बंध जाने के बदले प्रेम और श्रद्धा के माध्यम से उनकी निकटता प्राप्त करके उनके कार्यों के प्रभाव को अपने कार्यों की प्रेरणा बना लेता है, वह जीवित एवं प्रगतिशील समाज बनने की योग्यता प्राप्त कर लेता है। विश्व भर को ऐसे नायकों की हमेशा आवश्यकता रही है।

तानी दर्शन में मानव-व्यवहार को अनुशासन प्रदान करने वाली व्यवस्था :

दर्शन मनुष्य के सामाजिक व्यवहार के साथ ही चराचर जगत से उसके संबंधों को भी नियंत्रित करता है। वह व्यक्ति और समाज के लिए अध्यात्म के अतिरिक्त एक आचार-प्रणाली भी निर्मित करता है, जिससे संपूर्ण जीवन अनुशासित बना रहता है। जो धर्म दर्शन द्वारा खोजे गए अध्यात्म और आचार-प्रणाली से जितना ग्रहण कर पाता है, वह अपने अनुयायियों का उतना ही मार्गदर्शन करने और उनके जीवन को अनुशासित रखने में सफल होता है। जहाँ तक तानी समाज का प्रश्न है, उसकी दार्शनिक, धार्मिक और आध्यात्मिक परंपराओं में व्यक्ति और समाज, दोनों के जीवन-व्यवहार को अनुशासित रखने की व्यवस्था दिखाई देती है।

तानी कथाएँ में बताया गया है कि "तानी समाज में पाप-पुण्य की कल्पनाएँ नहीं हैं, अत: यह इस प्रकार के पक्षपात से दूर है। यही कारण है कि इस समाज में स्वर्ग-नर्क की कल्पना का भी ईजाद नहीं हुआ, न ही पुनर्जन्म का।"[55] यह विचार करने का विषय है कि तानी दर्शन पाप-पुण्य, स्वर्ग-नर्क और पुनर्जन्म की अवधारणाओं से क्यों बच कर चला है? क्या ये सब मनुष्य के मन में अनावश्यक भय पैदा करते हैं? क्या तानी पूर्वजों को लगता था कि कुछ धार्मिक लोग इनका दुरुपयोग कर सकते हैं?

कारण जो भी रहे हों, लेकिन मनुष्य के व्यवहार और आचरण को मर्यादा में बांध कर रखने के बारे में तानी पूर्वज गंभीरता से सोचते अवश्य थे। इसके लिए उन्होंने जिस मार्ग की खोज की, वह प्रत्येक व्यक्ति के कार्यों को प्रकृति की शक्तियों द्वारा देखे जाने का मार्ग है। देखते रहने का काम सूर्य और चंद्रमा करते हैं। सम्मिलित रूप से ये दोनों संपूर्ण प्रकृति का प्रतिनिधित्व भी करते हैं। इसका अर्थ हुआ कि मनुष्य के प्रत्येक आचरण को

वह प्रकृति देख रही होती है, जो उसके आस-पास है, जिसे वह प्रति दिन स्वयं अपने सामने पाता है, जिसके साथ उसका निकट का नाता है। और ये, सूर्य और चंद्रमा केवल मनुष्य के कामों को ही नहीं देखते, बल्कि वे सृष्टि में सब कुछ होते हुए को देखते हैं। मनुष्य भी उन्हीं में से है, इसीलिए वह उनसे बच नहीं सकता। देखने की पद्धति भी बड़ी अनोखी है। धूप निकलती है, तो तानी समाज में कहा जाता है, "दोंयी-अ कादो"[56], अर्थात सूर्य देख रहा है।

सूरज की ही भाँति चंद्रमा भी देखता रहता है। एक विशेष बात यह, कि सूर्य और चंद्रमा मनुष्य और सब-कुछ की गतिविधियों को देखते अवश्य रहते हैं, लेकिन किसी प्रकार का पुरस्कार अथवा दंड देने का कार्य नहीं करते, वे केवल साक्षी की भूमिका में हैं- "सूर्य, चंद्र और तारे जिमी-जमा की आँखें हैं। इसलिए उन्हें साक्षी माना गया है। वे सदा देखते रहते हैं, सदा मौजूद हैं। सूर्य, चंद्र आदि अर्थात दोंयी और पोलो का नाम एक साथ लेने अर्थात 'दोंयी-पोलो' कहने का अर्थ सिर्फ सूर्य और चंद्र नहीं होता। पूरी प्रकृति अथवा संपूर्ण अस्तित्व को 'दोंयी-पोलो' कहते हैं।"[57] यह एक मनोवैज्ञानिक व्यवस्था है, जो मनुष्य के व्यवहार को मर्यादित बनाए रखने का कार्य करती है- व्यक्तिगत जीवन में भी और सामाजिक जीवन में भी।

मृत्यु के बाद आत्मा के पूर्वजों के पास जाने में दो बाधाएँ अवश्य हैं। व्यक्ति की आत्मा को पूर्वजों के मार्ग में 'चीगो-बो' और 'दोगो-बो' के प्रश्नों के एक-एक कर उत्तर देने होते हैं, तभी वे आगे बढ़ पाती हैं। "विशालकाय सर्प के रूप में लेटा हुआ चीगो-बो मृतात्मा से सवाल-जवाब करता है। जैसे, क्या उसने रिश्तों को निभाया? पूर्वजों का मान रखा? धन कमाया, उसका सही तरीके से भोग किया? कहीं वह किसी और की मेहनत पर तो नहीं जिया? इस शरीर को किस प्रकार सार्थक किया? मन को किस तरह संयमित रखा? कोई हत्या तो नहीं की? अपने समुदाय का खयाल रखा?"[58] ऐसे सभी प्रश्नों का संतोषजनक उत्तर मिलने पर चीगो-बो आत्मा को आगे जाने देता है।

कई बार ऐसा भी होता है कि व्यक्ति जागतिक जीवन में मर्यादित जीवन नहीं जी पाता, लेकिन किसी प्रकार अपने उत्तरों से चीगो-बो को संतुष्ट करने में सफल है जाता है और आगे बढ़ने की अनुमति प्राप्त कर लेता है। आगे दोगो-बो उसकी प्रतीक्षा करता रहता है। ऐसी स्थिति के बारे में कहा गया है- "सांसारिक जीवन को जिसने संतुलित तरीके से नहीं जिया, परंतु मृत्यु के बाद उसकी आत्मा 'चीगो-बो' के प्रश्नों के उत्तर देने में सक्षम होती है- तो वह दोगो-बो तक पहुँच जाती है। यहाँ भी कई सवाल-जवाब होते हैं। उत्तर से यदि यह संतुष्ट हुआ, तो उसको आगे जाने की इजाजत मिल जाती है और वह अपने पूर्वजों की दुनिया में पहुँच जाती है, लेकिन जवाब न दे पाए, तो पूर्वजों तक नहीं पहुँच पाने के कारण मुक्त नहीं हो पाती और और भटकती रहती है।"[59]

लेकिन यह भटकना भी चिरकालिक नहीं होता। पूर्वज स्वयं ही चीगो-बो और दोगो-बो द्वारा पैदा की गई जटिलताओं से बचने में आत्मा की सहायता करते हैं। ऐसा, मनुष्य और पूर्वजों के बीच प्रेम के स्थाई संबंध-सेतु के कारण होता है। इसके बाद भी यदि आत्मा भटकने को अभिशप्त हुई, तो "एक समय-सीमा के बाद पूर्वज उसकी मदद करते हैं, उसे अपने साथ ले जाते हैं, और वह मुक्त हो जाती है।"[60] इस विवरण के उपरांत लेखिका का निष्कर्ष है, कि "ऐसा मालूम पड़ता है कि हमारे पूर्वजों ने व्यक्ति-मन को बारीकी से समझा था- इसीलिए अपने वंशजों को अनुशासित करने के लिए इन विश्वासों के प्रति आस्था जगाने का प्रयास किया होगा।"[61]

ध्यान देने योग्य है कि ये सब व्यवस्थाएँ पूर्वजों की सर्वोच्चता को मान्यता देती हैं। पूर्वजों का लोक भी कोई भयावह लोक नहीं है और न वहाँ कोई दंडात्मक प्रावधान हैं। वह एक ऐसा लोक है, जिसमें पूर्वजों का निवास है और जहाँ आत्मा के जाने पर पूर्वजों द्वारा उसका स्वागत किया जाता है। ऐसे वातावरण में जाने के लिए मनुष्य इस लोक में मर्यादित एवं नैतिक आचरण को प्राथमिकता देता है। उसे यह संकोच भी रहता है कि यदि उसने अच्छा आचरण न किया और पूर्वजों ने पूछा, तो वह क्या जवाब देगा। इसका एक प्रसंग तानी कथाएँ की लेखिका ने दिया है। सामग्री की खोज में जब वह दापोरजी के एक तागिन पुजारी के पास पहुँचती है, तो वह हँसोड़ पुजारी परिहास करते हुए जानकारी देने के बदले पैसे देने की बात करता है। लेखिका परिहास को समझ नहीं पाती और उसे पैसे देने लगती है। इस पर वह पुजारी जो कहता है, वह आचरण की मर्यादा की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। लेखिका ने बताया है कि "मैंने पाँच हजार रुपए उनके हाथ में थमाए तो वे ना-ना कर उठे। कहने लगे, "पूर्वजों से सजा दिलवाओगी? अशुभ सपनों से वे मुझे डराएँगे। मरने के बाद उन्हीं के पास ही तो पहुँचना है हमें। कहेंगे, हमें बेच कर आए हो। क्या जवाब दूँगा उन्हें? पागल लड़की! चल हट, जा!" उनकी डाँट में स्नेह का स्वर था। उस स्नेहवर्षा में मैं भीग गई। उस अक्खड़, लेकिन ममता भरे तागिन पुजारी में उस सुबह मैंने अपने पूर्वजों की ही झलक पाई।"[62]

तानी समाज के धर्म होने की पहेली :

तानी दर्शन और अध्यात्म की इस प्रस्तुति के बाद हम इस ओर ध्यान दे सकते हैं कि क्या- धर्म की प्रचलित परिभाषाओं के संदर्भ में- तानी समाज के दर्शन के आधार पर किसी स्वतंत्र धर्म के अस्तित्व का निश्चित ढाँचा सामने आता है? अथवा क्या तानी समाज को भी उसी प्रकार किसी संगठित और व्यवस्थित धर्म की सीमाओं में रख कर देखा जा सकता है, जिस प्रकार विश्व के प्रचलित धर्मों के मानने वालों को देखा जाता है?

उपर्युक्त दोनों ही प्रश्नों के उत्तर में यह कहना होगा कि तानी दर्शन धर्म के प्रचलित अर्थ में किसी धर्म का ढाँचा खड़ा नहीं करता- न एक (निराकार या साकार) ईश्वर, न ईश्वरीय ज्ञान का कोई (प्रतिनिधि या पुत्र या स्वयं अवतारी ईश्वर) संदेशवाहक, न एक (या एक से अधिक) धर्म-ग्रंथ, न विधि-निषेध वाली पूजा (मूर्ति अथवा बिना किसी आकार की कल्पना के), न पाप-पुण्य, स्वर्ग-नर्क और पुनर्जन्म की अवधारणा, न धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए लालच, दबाव और धर्म-युद्ध की कल्पना, और भी जो व्यवस्थित और संगठित धर्म के लिए अनिवार्य शर्त हों, कुछ नहीं।

आप दावा कर सकते हैं कि तानी आदिवासियों के पास कोई धर्म नहीं है- लेकिन ठहरिए, उस अवस्था में आपको इस कठिन सवाल का उत्तर सोच कर रखना होगा कि क्या किसी सुनिश्चित अबूझ विधि-निषेध और निर्धारित ग्रंथ व शास्त्र वाले धर्म का न होना वास्तव में धर्म का न होना है? अथवा ऐसे धर्म का न होना भी धर्म का होना है? इस उलटबासी का उत्तर तानी कथाएँ में ही देखिए- "हमें यह भी याद रखना होगा कि किसी धर्म का नहीं होना भी एक धर्म है। यह एक दृष्टिकोण है। जिसमें सत्य को अपने ढंग से देखा और समझा जाता है।"[63] इसके आगे लेखिका दृष्टिकोण और सत्य के देखने के ढंग को मूल आदिवासी स्वभाव से जोड़ती है और इसी आदिवासी शब्द को चिंतन के केंद्र में रखते हुए कहती है- "आदिवासियत शब्द ही अपने आप में एक धर्म है।"[64]

विशिष्ट दृष्टि, असंख्य प्रश्न और प्रकृति के साहचर्य में सत्य का संधान आदिवासियत को गढ़ते हैं। सवाल है कि वे कौन-से प्रश्न हैं, जिनके आभ्यंतर-जगत से आदिवासियत जन्म लेती है? इसके उत्तर के पहले जानना होगा कि आखिर आदिवासी कौन है? यह भी लेखिका से ही जानिए- "कौन है,जो हमारी नसों में दौड़ता-फिरता रहता है? यह शरीर कितने पूर्वजों से होकर यात्रा करता हुआ हम तक आया है? वे कोई तो थे जिनके कारण हम हैं? वे नहीं होते, तो हम कैसे होते? सृष्टि किस तरह एक-दूसरे से जुड़ी हुई है? अस्तित्व में जो कुछ दिखता है, उसका हमसे क्या संबंध है? कहाँ से हम जन्म लेते हैं? प्रेम क्या है? विवाह क्या है? समाज क्या है? अनुशासन क्या है? व्यक्ति की निजता क्या है? सामूहिकता क्या है, उसका क्या महत्त्व? क्या प्रत्येक वस्तु में प्राण तत्त्व है? जिन्हें हम जी ही नहीं सकते, उन पर प्रश्न क्यों नहीं करना चाहिए? पशु-पक्षियों के साथ हमारा व्यवहार कैसा होना चाहिए?

इन और ऐसे अनेक अन्य प्रश्नों के उत्तर को जो लोग 'जीवन' में ही देखते हैं और जीवन को ही शास्त्र मान कर चलते हैं, वे आदिवासी हैं।"[65]

लेखिका के इस कथन से यह समझना सहज हो जाता है कि ये प्रश्न ही आदिवासी का रूपांतरण आदिवासियत के रूप में कर देते हैं, अर्थात आदिवासी और आदिवासियत अभिन्न हैं। आदिवासियत धर्म को जीने वाला आदिवासी मानता है कि, "सारे प्रश्न हमें संपूर्ण अस्तित्व से जोड़ते हैं। यही तानी धर्म है।"[66] अपनी इस अवधारणा को और स्पष्ट करते हुए लेखिका का कहना है- "संपूर्ण अस्तित्व के साथ हमारी पारिवारिक रिश्तेदारी है। इस व्यापक दृष्टिकोण के कारण तानी अपने आप में एक अनोखा धर्म है- धर्मविहीन धर्म। यही कारण है कि तानी समाज में किसी भी प्रकार के मंदिर, प्रतीक इयादि का निर्माण नहीं किया जाता, क्योंकि व्यापकता को किसी सीमा में सीमित नहीं किया जा सकता।"[67] और यह भी कि "... यदि तानी समाज का कोई 'धर्म' है, तो वह प्रकृति और मनुष्य के बीच अभिन्नता की भावना और उसके अनुरूप आचरण करना है। किसी भी प्रकार के कृत्रिम नियमों की व्यवस्था से यह बंधा हुआ नहीं है, न ही संगठित है- यही स्वाभाविक सहजता ही इसका प्राण है।"[68]

प्रकृति और प्रकृति के सिद्धांत व व्यवहार को समझने की आवश्यकता है :

निष्कर्ष यह, कि तानी दर्शन और उसमें अनुस्यूत धर्म एवं अध्यात्म के सत्य को पाने के लिए "प्रकृति के स्वतंत्र सिद्धांत को फिर से समझने की आवश्यकता है। आदिवासियत इसी से बनी है। यह मानवता को एक नई दिशा दे सकता है। इसको संकुचित अर्थों में देखना इसके प्रति अन्याय होगा।"[69] इसी के साथ इस सत्य को भी अपनी चेतना का अंग बनाना होगा कि "प्रकृति अपने आप में एक परम अनुशासन है। इसे समझने के बाद मनुष्य स्वतंत्रतापूर्वक जी सकता है।"[70] यहाँ तानी कथाएँ आधुनिक विश्व का, तीन शब्दों पर एक साथ विचार करने का आह्वान करती है- प्रकृति, अनुशासन और स्वतंत्रता। ये तीनों शब्द विश्व के समग्र जीवन-दर्शन के निर्माण में निर्णायक भूमिका निभाने वाली शब्द-संपदा का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अंग हैं; इसीलिए सभी दार्शनिक विचारधाराएँ इनकी व्याख्या करती रही हैं, लेकिन आधुनिक सभ्यता ने सबसे अधिक छल भी इन्हीं के साथ किया है। कारण भी साफ है; औद्योगिक क्रांति से लेकर सूचना-तकनीक-क्रांति तक विश्व के विकास की जो भी योजनाएँ कार्यान्वित की गईं, उनकी प्राथमिकता संस्कृति विहीन आर्थिक विकास रही है, जिसका फलितार्थ है- मानव को प्रकृतिहीनता की ओर धकेलना, अनुशासन को मुक्त जीवन का विरोधी सिद्ध करना और स्वतंत्रता

को आत्मिक-चेतना व सामाजिक संदर्भों से पूरी तरह काट कर राजनैतिक चिंतन के साथ बांध देना। विकास और विज्ञान के नाम पर लोक तथा आदिवासी समुदायों की उपेक्षा भी इसी फलितार्थ का हिस्सा है, जबकि "विकसित कहे जाने वाले समाजों ने जंगली मान कर जिन मानव समुदायों की उपेक्षा की, वे तो विज्ञान को वास्तव में दैनंदिन जीवन में जीते हैं। जो जितना ही प्रकृति के नजदीक होगा, वह उतना ही वैज्ञानिक स्वभाव वाला होगा। इसको देखने के लिए पूर्वग्रहों से मुक्त होकर इन 'जंगली' मानव-समुदायों के करीब आना होगा।"[71]

यही वह सत्य है, जो हमें स्थानीयता और आंचलिकता से अनिवार्यत: जोड़ कर विश्व-चेतना संपन्न बनाता है और सांस्कृतिक-सामाजिक विश्व-दृष्टि प्रदान करता है। यही वह सत्य भी है, जिसने भारत के संविधान में आदिवासी समाजों व संस्कृति के संरक्षण संबंधी उपबंध शामिल करने की पृष्ठभूमि तैयार की थी।[72] सन् 1986 में संयुक्त राष्ट्र संघ ने 'डिक्लेरेशन ऑन द राइट टु डवलपमेंट' संबंधी प्रस्ताव पारित किया और सन् 2015 में उसे 'सतत विकास के लिए कार्य-सूची, 2030' का अंग घोषित करते हुए 'हमारे विश्व का रूपांतरण' का उद्घोष किया, जिसमें स्पष्ट रूप से सभी वर्गों को समाहित करते हुए सामाजिक और सांस्कृतिक विकास का लक्ष्य निर्धारित किया गया।[73] सन् 2022 में इंडोनेशिया के बाली में संपन्न हुए जी-20 शिखर-सम्मेलन में लिए गए निर्णयों और पुनर्घोषित प्रतिबद्धताओं के आधार पर जारी डिक्लेरेशन में एक बार फिर संस्कृति और आदिवासी समाज के संरक्षण को प्राथमिकता प्रदान की गई।[74] लेकिन अरुणाचल के आदिवासी समाजों के विकास के लिए सन् 1958 में जो पाँच सूत्र पं. जवाहरलाल नेहरु ने दिए थे, वे अरुणाचल, शेष पूर्वोत्तर और भारत के अन्य अंचलों के आदिवासी समुदायों की दृष्टि से अति महत्त्वपूर्ण हैं; ये हैं-

1. लोगों को अपनी प्रतिभा के सहारे प्रगति करनी चाहिए। उन पर हमें कुछ थोपना नहीं चाहिए। उनकी पारंपरिक कला और संस्कृति को बढ़ावा देने का प्रयास करना चाहिए।
2. जनजातियों के भूमि और वन के संबंध में प्राप्त जनजातीय अधिकारों का हमें सम्मान करना चाहिए।
3. उनके ही लोगों के बीच से एक टीम को, प्रशासन और विकास-कार्य के लिए प्रशिक्षित करना चाहिए। नि:संदेह आरंभ में कुछ तकनीकी व्यक्तियों को बाहर से लाना चाहिए, तो भी इन क्षेत्रों में बहुत अधिक बाहरी लोगों को नहीं लगाना चाहिए।
4. हमें इन क्षेत्रों में योजनाओं का अधिक बोझ नहीं लादना चाहिए। हमें इनके सामाजिक और शैक्षणिक क्षेत्रों में प्रतिद्वंद्विता की भावना से नहीं, बल्कि सहयोग की भावना से कार्य करना चाहिए।
5. हमें सांख्यिकी या खर्च किए गए धन के आधार पर उपलब्धियों का आकलन नहीं करना चाहिए, वरन मानवीय गुणवत्ता की प्राप्ति के आधार पर परिणाम का मूल्यांकन करना चाहिए।[75]

यह मानवीय गुणवत्ता भी हमें प्रकृति और उसके अनुशासन में छिपे जीवन-मूल्यों को समझने, स्वतंत्रता और सांस्कृतिक पहचान का संरक्षण करने, विकास की अव्यावहारिक अवधारणाओं पर पुनर्विचार करने, मनुष्य की गरिमा को केंद्र में रख कर सोचने तथा तानी-दर्शन जैसे समस्त वैश्विक दर्शनों के सत्य को समझ कर जीवन का मार्ग निर्मित करने से ही मिलेगी। इसी से उस विश्व-दृष्टि की उपलब्धि भी होगी, जो हमें सामूहिक रूप से जड़ताओं से मुक्त करके सच्चे अर्थों में विश्व-नागरिक बनाएगी; अन्यथा सूर्य और चंद्रमा के रूप में जिमी-जमा की आँखें तो सब-कुछ देख ही रही हैं।

परिशिष्ट :

संदर्भ सं. 72 :

भारत का संविधान

मूल अधिकार (धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार) :

25. अंत;करण की और धर्म के अबाध रूप से मानने, आचरण और प्रचार करने की स्वतंत्रता- (1) "लोक व्यवस्था, सदाचार और स्वास्थ्य तथा इस भाग के अन्य उपबंधों के अधीन रहते हुए, सभी व्यक्तियों को अंत;करण की स्वतंत्रता का और धर्म के अबाध रूप से मानने, आचरण करने और प्रचार करने का समान हक होगा"

- भारत का संविधान (9 दिसंबर, 2020 को यथाविद्यमान), (नई दिल्ली, विधि,न्याय और कंपनी कार्य मंत्रालय, हिंदी अनुवाद संस्करण 2020), पृ.14

राज्य की नीति के निदेशक तत्त्व :

46. अनुसूचित जातियों, जनजातियों और अन्य दुर्बल वर्गों के शिक्षा और अर्थ संबंधी हितों की अभिवृद्धि – "राज्य, जनता के दुर्बल वर्गों के, विशिष्टतया, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के शिक्षा और अर्थ संबंधी हितों की विशेष सावधानी से अभिवृद्धि करेगा और सामाजिक अन्याय और सभी प्रकार के शोषण से उनकी संरक्षा करेगा।"

- भारत का संविधान (9 दिसंबर, 2020 को यथाविद्यमान) (नई दिल्ली, विधि, न्याय और कंपनी कार्य मंत्रालय, हिंदी अनुवाद संस्करण 2020), पृ.23

भारत का संविधान :

कुछ वर्गों के संबंध में विशेष उपबंध (भाग-16) :

338 क. राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग- (1) "अनुसूचित जनजातियों के लिए एक आयोग होगा, जो राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग के नाम से ज्ञात होगा।"

(5) "आयोग का यह कर्तव्य होगा कि वह-

(क) अनुसूचित जनजातियों के लिए इस संविधान या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि या सरकार के किसी आदेश के अधीन उपबंधित रक्षोपायों से संबंधित सभी विषयों का अन्वेषण करे और उन पर निगरानी रखे तथा ऐसे रक्षोपायों के कार्यकरण का मूल्यांकन करे;

(ख) अनुसूचित जनजातियों को उनके अधिकारों और रक्षोपायों से वंचित करने के संबंध में विनिर्दिष्ट शिकायतों की जाँच करे;

(ग) अनुसूचित जनजातियों के सामाजिक-आर्थिक विकास की योजना प्रक्रिया में भाग ले और उन पर सलाह दे तथा संघ और किसी राज्य के अधीन उनके विकास की प्रगति का मूल्यांकन करे;

(घ) उन रक्षोपायों के कार्यकरण के बारे में प्रति वर्ष और ऐसे अन्य समयों पर, जो आयोग ठीक समझे, राष्ट्रपति को रिपोर्ट प्रस्तुत करे;

(ङ) ऐसी रिपोर्टों में उन उपायों के बारे में, जो उन रक्षोपायों के प्रभावपूर्ण कार्यान्वयन के लिए संघ या किसी राज्य द्वारा किए जाने चाहिए, तथा अनुसूचित जनजातियों के संरक्षण कल्याण और सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए अन्य उपायों के बारे में सिफारिश करे; और

(च) अनुसूचित जनजातियों के संरक्षण, कल्याण और विकास तथा उन्नयन के संबंध में ऐसे अन्य कृत्यों का निर्वहन करे, जो राष्ट्रपति संसद द्वारा बनाई गई किसी विधि के उपबंधों के अधीन रहते हुए, नियम द्वारा विनिर्दिष्ट करे।"

- भारत का संविधान (9 दिसंबर, 2020 को यथाविद्यमान) (नई दिल्ली, विधि, न्याय और कंपनी कार्य मंत्रालय, हिंदी अनुवाद संस्करण 2020), पृ.195-196

संदर्भ सं. 73 :

संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रयास :

न्यूयॉर्क में सन् 2015 में संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा 25 से 27 सितंबर तक आयोजित 'सतत विकास शिखर-सम्मेलन' में 193 सदस्य राष्ट्रों ने 'सतत विकास के लिए एजेंडा- 2030' स्वीकार किया था। इस शिखर-सम्मेलन का प्रातिपदिक (थीम) था- हमारी दुनिया का रूपांतरण : सतत विकास के लिए कार्यसूची- 2030 (Transforming our world : The 2030 Agenda for Sustainable Development) । इसकी पृष्ठभूमि में संयुक्त राष्ट्र संघ की साधारण सभा द्वारा 4 दिसंबर, सन् 1986 को प्रस्ताव संख्या 41/128 के माध्यम से स्वीकार किया गया 'विकास का अधिकार घोषणा पत्र' (Declaration on the right to Development) है। इस घोषणा पत्र में मनुष्य को विकास के केंद्र में स्थापित करने वाली प्रस्तावना और 10 अनुच्छेद हैं। इनमें से पहले, दूसरे और छठे अनुच्छेदों की महत्त्वपूर्ण घोषणाएँ इस प्रकार हैं-

अनुच्छेद-1 : "विकास का अधिकार अनाहरणीय मानव-अधिकार है, जिसके बल पर प्रत्येक व्यक्ति और सभी लोग उसमें भागीदारी करने एवं योगदान करने के हकदार होते हैं और आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक व राजनैतिक विकास का उपभोग करते हैं, जिनके भीतर समस्त मानवाधिकार तथा आधारभूत स्वतंत्रताएँ पूरी तरह मूर्त हो सकती हैं।" (धारा-1)

अनुच्छेद-2 : "मानव-अधिकारों और आधारभूत स्वतंत्रताओं के पूर्ण सम्मान, साथ ही साथ समाज के प्रति जिम्मेदारियों को ध्यान में रखते हुए वैयक्तिक एवं सामूहिक रूप में सभी व्यक्तियों का विकास के प्रति दायित्व है, जिसके माध्यम से स्वतंत्र और संपूर्ण मनुष्य होने को सुनिश्चित किया जा सकता है; इसीलिए लोगों को विकास के लिए एक समुचित राजनैतिक, सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्था-क्रम को प्रोत्साहित एवं संरक्षित करना चाहिए।" (धारा-2)

अनुच्छेद-6 : "सभी मानव-अधिकार और आधारभूत स्वतंत्रताएँ अविभाज्य एवं परस्पराश्रित हैं, अत: नागरिक, राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों को लागू करने, बढ़ावा देने तथा संरक्षित रखने पर समान ध्यान दिया जाना चाहिए और तुरंत प्रभाव से विचार किया जाना चाहिए।" (धारा-2)

यूनिवर्सल इंस्ट्रुमेंट्स, डिक्लेरेशन ऑन दि राइट टु ड्वलपमेंट, एडॉप्टेड 04 दिसंबर, 1986, जनरल एसेंबली रेजुल्युशन 41/128 (युनाइटेड नेशंस ह्युमेन राइट्स इंस्ट्रुमेंट्स)

संदर्भ सं. 74 :

जी-20 बाली शिखर सम्मेलन में संस्कृति संबंधी प्रस्ताव :

जी-20 डिक्लेरेशन के बिंदु संख्या अड़तालीस में कहा गया है कि "मूलभूत मूल्यों के अतिरिक्त उसके सामाजिक और आर्थिक लाभों के साथ ही हम सतत विकास की सक्षमकर्ता और प्रेरक के रूप में संस्कृति की भूमिका को दृढ़ता पूर्वक स्वीकार करते हैं। हम दीर्घ एवं पुष्ट जीवन-स्रोत के रूप में सांस्कृतिक वैविध्य पर केंद्रित

नीतियाँ विकसित करने और प्रत्येक स्तर पर संस्कृति, कला एवं थाती के क्षेत्र में कार्यरत लोगों के योगदान को महत्त्व देने वाली समावेशी और न्यायसंगत पारिस्थितिकी को प्रोत्साहित करने के लिए प्रतिबद्ध हैं। हम आवश्यकतानुसार स्थानीय समुदायों और आदिवासी लोगों सहित अपनी जनता की सांस्कृतिक थाती का सम्मान करेंगे, उसे बचाएँगे और उसका परिरक्षण करेंगे। हम सांस्कृतिक अर्थव्यवस्था को समृद्ध बनाने हेतु सार्वजनिक प्रयासों तथा प्राइवेट क्षेत्रों के दीर्घकालिक निवेश का समर्थन करते हैं। हम सांस्कृतिक थाती की रक्षा करेंगे, साथ ही सांस्कृतिक संपदा के गैर-कानूनी रूप से लाने-ले जाने के विरुद्ध संघर्ष करेंगे तथा प्रासंगिक यूनेस्को समझौतों व राष्ट्रीय कानूनों के अनुसार मूल स्रोतीय देशों/सही लोगों तक फिर से पहुँचाने को बढ़ावा देंगे।"
जी-20, बाली लीडर्स डिक्लेरेशन, (बाली, इंडोनेशिया, 15-16 नवंबर, 2022) पृ.16)।

संदर्भ सं. 75

पं. जवाहरलाल नेहरू के पाँच सूत्र :

तत्कालीन 'नेफा' में असम के राज्यपाल के सलाहकार वेरियर एल्विन की पुस्तक, 'फिलासफी फॉर नेफा' के दूसरे संस्करण की भूमिका (9 अक्तूबर, 1958) लिखते हुए पंडित जवाहरलाल नेहरू ने पाँच सूत्र प्रस्तुत किए थे-

1. लोगों को अपनी प्रतिभा के सहारे प्रगति करनी चाहिए। उन पर हमें कुछ थोपना नहीं चाहिए। उनकी पारंपरिक कला और संस्कृति को बढ़ावा देने का प्रयास करना चाहिए। जनजातियों के भूमि और वन के संबंध में प्राप्त जनजातीय अधिकारों का हमें सम्मान करना चाहिए।
2. उनके ही लोगों के बीच से एक टीम को, प्रशासन और विकास-कार्य के लिए प्रशिक्षित करना चाहिए। नि:संदेह आरंभ में कुछ तकनीकी व्यक्तियों को बाहर से लाना चाहिए, तो भी इन क्षेत्रों में बहुत अधिक बाहरी लोगों को नहीं लगाना चाहिए।
3. हमें इन क्षेत्रों में योजनाओं का अधिक बोझ नहीं लादना चाहिए। हमें इनके सामाजिक और शैक्षणिक क्षेत्रों में प्रतिद्वंद्विता की भावना से नहीं, बल्कि सहयोग की भावना से कार्य करना चाहिए।
4. हमें सांख्यिकी या खर्च किए गए धन के आधार पर उपलब्धियों का आकलन नहीं करना चाहिए, वरन मानवीय गुणवत्ता की प्राप्ति के आधार पर परिणाम का मूल्यांकन करना चाहिए।
5. माता प्रसाद, "परिशिष्ट" *मनोरम भूमि अरुणाचल* (दिल्ली, प्रभात प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1995), पृ.298

संदर्भ

[1] आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, "उद्घाटन भाषण" *हिंदी संत साहित्य में श्रमण साहित्य का योगदान,* संपा. प्रेमचंद्र जैन (नई दिल्ली, वीर सेवा मंदिर, द्वितीय संस्करण 2014), पृ. 45-46

[2] आचार्य द्विवेदी, *हिंदी संत साहित्य में श्रमण साहित्य का योगदान*, (संदर्भ सं. 1 देखें), पृ.48

[3] उषा पुरी विद्यावाचस्पति, *भारतीय मिथक कोश,* (नई दिल्ली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, चौथा सं 2004), पृ. 216-17

[4]. जोराम यालाम नाबाम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (दिल्ली, राधाकृष्ण प्रकाशन, पहला संस्करण: 2022), पृ.73

[5] जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.31

[6] - जोराम. "तानी द र्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ. 31

[7]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ. 31-32

[8]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.33

[9]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.37

[10]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.38 .
[11]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.32
[12]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.33
[13]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.34
[14]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.34-35
[15]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.34
[16]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.44
[17]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.45
[18]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.46
[19]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.45
[20]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.45-46
[21]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ. 45
[22]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ. 45
[23]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.45
[24]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ. 45
[25]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ. 45
[26]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.45
[27]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.45
[28]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.48
[29]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.39
[30]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.75
[31]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.76
[32]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.34
[33]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ. 35
[34]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.35
[35]. जोराम. "भूमिका", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.20
[36]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.38
[37]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.40
[38]. जोराम. "तानी दर्शन", तानी कथाएँ, (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.71
[39]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.59
[40]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.59
[41]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.63
[42]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.38
[43]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.72
[44]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.74
[45]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.75
[46]. जोराम, "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.47-48

[47]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.71
[48]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.48
[49]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.48
[50]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.49
[51]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.41
[52]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.45
[53]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.46
[54]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.44
[55]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.39
[56]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.39
[57]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.38
[58]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.52
[59]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.53
[60]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.53
[61]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं देखें), पृ.55
[62]. जोराम. "भूमिका", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.19
[63]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ 30
[64]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ 30
[65]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ. 29
[66]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.30
[67]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.39
[68]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.40
[69]. जोराम. "भूमिका", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.21
[70]. जोराम. "भूमिका", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.20
[71]. जोराम. "भूमिका", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.21
[72]. आलेख के परिशिष्ट में उपलब्ध।
[73]. आलेख के परिशिष्ट में उपलब्ध।
[74]. आलेख के परिशिष्ट में उपलब्ध।
[75]. आलेख का परिशिष्ट देखें।

*(**लेखकीय परिचय:** प्रो. देवराज का मणिपुरी भाषा, साहित्य एवं संस्कृति के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। वह एक गंभीर साहित्य-चिंतक, भाषाविद् एवं आलोचक हैं। देवराज की मणिपुर पर केंद्रित कई महत्त्वपूर्ण पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। मोबा. 7599045113, ईमेल : dr4devraj@gmail.com)*

(शोध वातायन)

अरुणाचल प्रदेश: लोक-साहित्य और हिंदी अनुसंधान

संतिमो निमासो

अरुणाचल प्रदेश की ख़ूबसूरती जिन अक्षरों से बढ़ जाती है, वह इस प्रदेश की लोक-संपदा हैं। ये अक्षर इस प्रदेश की मातृभाषाओं के लोक-ज्ञान और लोक-संस्कृति का परिचायक हैं। इनके बारे में आज बड़ी संख्या में लेखन और शोध-कार्य हो रहे हैं। अरुणाचल प्रदेश में संपर्क भाषा के रूप में हिंदी बेहद लोकप्रिय है। साथ ही पिछले कुछ वर्षों में यहाँ के स्थानीय लेखकों ने हिंदी लेखन के माध्यम से अपनी विशेष और सर्वप्रिय पहचान बना ली है। दरअसल, अरुणाचल प्रदेश केवल वन, नदी, ऊँचे पहाड़, भिन्न-भिन्न विशेषता वाले पेड़-पौधे और वनस्पतियों से नहीं भरा-पूरा है, बल्कि यहां की वाचिकता और स्मृति-ज्ञान जनजातीय इतिहास, मिथकों, पुरा-कथाओं, लोक-गीतों आदि का सच्चा कोठार मालूम देता है, जिसके बारे में बहुत कम जानकारी बृहद भारतीय समाज को है, जबकि इस बारे में जानने की उत्कंठा हाल के दिनों में बढ़ी है। इस आलेख में मैंने अरुणाचल प्रदेश के लोक-साहित्य को समझने की दृष्टि से हुए शोध-कार्यों, शोध-परियोजनाओं तथा हिंदी में लिखित और प्रकाशित पुस्तकों, स्वतंत्र आलेखों आदि को प्रकाश में लाने का यथासंभव प्रयास किया है। अरुणाचल प्रदेश को केंद्र में रखते हुए वेरिअर एल्विन का काम सबसे पहले देख सकते हैं। एल्विन की प्रकाशित मुख्य पुस्तकें हैं- 'ए न्यू बुक ऑफ़ ट्राइबल फिक्शन', 'मिथ ऑफ़ दि नार्थ-ईस्ट फ्रंटियर ऑफ़ इंडिया', 'डेमोक्रेसी इन नेफ़ा'। ये तीनों किताबें पूर्वोत्तर के बारे में बताती हैं तथा उत्तर-पूर्व की जनजातीय समाज-संस्कृति को वैश्विक परिप्रेक्ष्य में समझने की दृष्टि देती हैं। एल्विन ने यहाँ के मिथकों और पुरा-कथाओं का आधुनिक संदर्भों में विश्लेषण किया साथ ही इनके महत्त्व को रेखांकित किया है। ये तीनों किताबें पूर्वोत्तर की जीवन-शैली, लोक-परंपरा, दर्शन, इतिहास, लोक-कला, ग्राम सभा इत्यादि पर आधारित हैं, जिनमें स्थानीय लोक-साहित्य के मौखिक साक्ष्यों के आधार पर किया गया गहन अध्ययन और विश्लेषण मौजूद है। अरुणाचल प्रदेश की दृष्टि से वेरिअर एल्विन का काम बेहद महत्त्वपूर्ण है।

डॉ. एन. एन. ओसिक द्वारा लिखित 'मॉडर्न हिस्ट्री ऑफ अरुणाचल प्रदेश (1825-1997)' पुस्तक अरुणाचल प्रदेश की आधुनिक इतिहास पर चर्चा करती है। यह पुस्तक पाठक को अंग्रेज शासन के दौरान अरुणाचल तथा आजादी के बाद निर्मित अरुणाचल से अवगत कराती है। इतना ही नहीं इस पुस्तक के माध्यम से प्रदेश के अनसंग हीरोज़ के बारे में भी जानकारी प्राप्त होती है। आर. सी. सुतिया लिखित 'अरुणाचल प्रदेश : लैंड ऑफ़ दि राइजिंग सन' पुस्तक अरुणोदय की भूमि अरुणाचल प्रदेश के बारे में जानने के लिए पठनीय पुस्तक है। इसी तरह अमरेन्द्र कुमार ठाकुर द्वारा लिखित पुस्तक 'स्लेवरी इन अरुणाचल प्रदेश' कुछ समुदायों में मौजूद दास बनाने की प्रथा की चर्चा करती है। आज 'स्लेवरी' की प्रथा ख़त्म हो चुकी है, लेकिन इस पुस्तक को पढ़ने के बाद 'स्लेवरी' की मर्मांतक कथा प्रकट हो जाती है। एच. जी. जोशी लिखित 'अरुणाचल प्रदेश पास्ट एण्ड प्रेजेंट' नामक पुस्तक यहाँ की सामाजिक राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, कृषि, वन्य-जीवन आदि पर चर्चा करती है। यह प्राचीन काल से आधुनिक समय में हुए परिवर्तनों पर भी प्रकाश डालती है। इस पुस्तक

को पढ़ना बेहद जरूरी है। इस पुस्तक से केवल अरुणाचल के जीवन-शैली ही नहीं, बल्कि यहाँ के इतिहास से भी अवगत हो पाते हैं। एम. एल. बोस द्वारा लिखित पुस्तक 'हिस्ट्री ऑफ अरुणाचल प्रदेश' एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है जो अरुणाचल प्रदेश के इतिहास, समाज एवं संस्कृति ही नहीं बल्कि इस प्रदेश में हुए संवैधानिक और प्रशासनिक विकास के अलग-अलग चरणों की भी जानकारी देती है। इसी क्रम में डॉ. धर्मराज सिंह द्वारा लिखित 'अरुणाचल की जनजातियाँ और ऐतिहासिक स्थान' भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण पुस्तक है। यह पाठकों को इस प्रदेश के विभिन्न जनजातियों एवं उनके जीवनशैली तथा यहाँ की ऐतिहासिक स्थानों के बारे में वस्तुनिष्ठ ढंग से बताती है।

अरुणाचल प्रदेश को केंद्र में रखकर लिखी गई कई सारी पुस्तकें उपलब्ध हैं और आज भी लिखी जा रही हैं। ध्यातव्य है कि अरुणाचल प्रदेश की विभिन्न जनजातियों में से किसी विशिष्ट जनजाति पर आधारित भी कई सारे पुस्तकें उपलब्ध है। रघुवीर सिन्हा द्वारा लिखित 'दि अकाज' ग्रंथ अरुणाचल प्रदेश के आका जनजाति को केंद्र में रखकर लिखा गया पहला प्रयास है। इसमें लेखक ने आका जनजाति की समाज व्यवस्था, घरेलू जीवन, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक संरचनाओं का विवेचन किया है। सिन्हा ने आगे शोध करने वाले अध्येताओं के लिए भूमिका तैयार कर जैसे रख दिया हो। इस दृष्टि से यह ग्रंथ अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। इसी क्रम में गिबजी निमाचो द्वारा लिखित 'दि आकाज लैंड एण्ड पीपल' ग्रंथ भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। निमाचो जी ने अपनी पुस्तक के द्वारा एक अलग दृष्टि देने का प्रयास किया है। उन्होंने आका समुदाय के संदर्भ में भौगोलिक दृष्टि को केंद्र में रखकर लिखा है। इतना ही नहीं उन्होंने आका समुदाय का वन संसाधनों एवं जीव-जंतुओं से जुड़ाव और उन पर अपनी निर्भरता पर भी प्रकाश डाला है। सचिन रॉय ने 'आस्पेक्टस ऑफ पादाम मीनयोंग कल्चर' नामक पुस्तक से आदी जनजाति के उपजनजाति पादाम मीनयोंग के संस्कृति एवं जीवन-शैली को उजागर करने का प्रयास किया है। इसी प्रकार बिकाश बनर्जी द्वारा लिखित पुस्तक 'दी बोकार्स' भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है, जो आदी जनजाति की उपजनजाति बोकार के संदर्भ में मौलिक जानकारी उपलब्ध कराती है। इसी क्रम में ए. हैमिल्टन की पुस्तक 'इन अबोर जंगल्स ऑफ नॉर्थ-ईस्ट इण्डिया', आदी जनजाति के इतिहास की ओर ले चलती है। इस पुस्तक से लोगों के सामने आदी जनजाति को अबोर कहने के पीछे की कहानी और उसमें छुपे इतिहास का पता चलता है। साथ ही अंग्रेज-आदी संबंध का भी दर्शन होता है। इसी प्रकार आदी समुदाय पर लिखित अनेक ग्रंथ आज उपलब्ध हैं, जैसे- डॉ. ताई न्योरी द्वारा लिखित 'हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ दी आदीज', नासी कोजे लिखित 'स्टडी ऑफ दिसकॉर्स थ्रू आदी फोकटेल्स ऑफ अरुणाचल प्रदेश', डॉ. जोगेन्द्र नाथ लिखित 'ए कल्चरल हिस्ट्री ऑफ दी आदीज ऑफ अरुणाचल प्रदेश' इत्यादि। यह इस प्रदेश के प्रमुख जनजाति आदी के खान-पान, रहन-सहन, उनकी संस्कृति एवं लोक कथाओं के ज्ञान का पिटारा है। ऐसी पुस्तकों का अध्ययन अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

इसी क्रम में न्यीशी जनजाति को केंद्र में रखकर भी कई सारे पुस्तकें प्रकाशित हैं- नाबाम नाखा हिना द्वारा लिखित 'कस्टमेरी लौस ऑफ न्यीशी ट्राइब ऑफ अरुणाचल प्रदेश', जो न्यीशी समुदाय के प्रथागत कानूनों और रीति रिवाजों के बारे में बताता है। न्यीशी समाज में ग्राम परिषद 'न्येले' नाम से जाना जाता है। यह प्रथागत कानून नियामों का एक संगठित समूह है जो पीढ़ियों से मान्य है। इस समूह के निर्णय को निरंतर एक समान पालन करने के कारण यह समाज की एक आधिकारिक कानून संबंधित व्यवस्था बन चुकी है। इस ग्रंथ

में लेखक ने प्रथागत कानूनों एवं रीति-रिवाजों का वर्गीकरण का भी जिक्र किया है। ऐसी किताबों से यह ज्ञात होता है कि विभिन्न जनजाति के भी अपने-अपने कानून होते हैं। ताना शोरेन ने 'दि न्यिशी ऑफ अरुणाचल प्रदेश: एन एथनो हिस्टोरीकल स्टडी' लिखा जो न्यीशी जनजाति की जीवन एवं संस्कृतियों से संबंधित जरूरी जानकारी उपलब्ध कराती है।

एच. के. मोरङ एवं दिव्यलता ने 'तंग्साज' (दि चिल्ड्रन ऑफ मसूई सिंगरापुम) नामक ग्रंथ तंग्सा समुदाय से जुड़े समाज, उनके जीवन-शैली, रीति-रिवाजों एवं 'मसूई सिंगरापुम' पहाड़ से संबंधित जानकारियां उपलब्ध कराती है। कहते हैं कि तंग्सा जनजाति के लोग मसूई सिंगरापुम पहाड़ से जन्मे हैं। इस पहाड़ से जुड़ी लोक कथाएँ भी इस समाज में उपलब्ध हैं। इसी क्रम में पारुल दत्ता की 'दि तंग्साज' भी एक बेहद महत्त्वपूर्ण पुस्तक है। इस पुस्तक के माध्यम से पारुल दत्ता ने तंग्सा समुदाय के उद्भव संबंधी इतिहास, विस्थापन, घरेलू जीवन, हेड हंटर्स कहलाने की परंपरा, सामाजिक जीवन, राजनीतिक जीवन, धार्मिक जीवन आदि पर चर्चा करते हुए तंग्सा समाज को अत्यंत सुंदर ढंग से पूरे विश्व के सामने पेश किया है। नारायण सिंह राव ने अरुणाचल प्रदेश के तुतसा जनजाति को केंद्र में रखकर 'दि तुतसा ट्राइब ऑफ नॉर्थ-ईस्ट इंडिया' पुस्तक को प्रकाशित किया। इसमें लेखक ने तुतसा समाज के उद्भव, स्थानांतरण, इतिहास पर चर्चा की है। आगे तरुण कुमार भट्टाचारजी ने 'दि इदुस ऑफ माथून एण्ड ड्री वेली' नामक ग्रंथ की रचना की है। यह पुस्तक अरुणाचल प्रदेश के इदु समुदाय के बारे में है। इस पुस्तक के माध्यम से लेखक ने दिबांग जिले में स्थित माथून एवं ड्री घाटियों के बीच निवास करने वाले लोगों की जीवन-शैली, खान-पान आदि के बारे में विशेष जानकारी उपलब्ध करायी है। इतना ही नहीं बल्कि यहाँ के पहनावा, आभूषण, वनस्पति जगत एवं प्राणिजगत के विषय में गंभीरतापूर्वक चर्चा की है।

अरुणाचल प्रदेश के लेखकों ने अपने लेखन से हिंदी जगत में अपना नाम कमाया है। उन्होंने अपना नाम ही नहीं बल्कि अपने लेखन से यहाँ के समाज, प्राकृतिक संपदाओं, पशु-पक्षी आदि को हिंदीवासियों से जोड़ने का प्रयास किया है। वर्तमान में रचनाकारों ने हर विधाओं में हस्तक्षेप किया है। उन्होंने कविता, कहानी नाटक के साथ उपन्यास और नाटकों के क्षेत्र में भी कदम बढ़ाया है। इन नामों में जुमसी सिराम, येशे दोरजी थोंग्छी, लुम्मेर दाई, जोराम यालाम नाबाम, जमुना बीनी, ताई तुगुंङ, तारो सिन्दिक, रेमोन लॉनकु, दोरजी लॉनपु आदि आते हैं। जुमसी सिराम ने 'मातमुर जामोह' एवं 'मेरी आवाज सुनो' नामक उपन्यास लिखा है। यह गालो जनजाति पर आधारित एक उपन्यास है। इस उपन्यास के माध्यम से उन्होंने स्त्रियों को अपनी पहचान, स्वतंत्र अस्तित्व एवं पितृसत्ता के अधिकारियों पर सवाल उठाने के लिए आवाज दी है। 'मातमुर जमोह' उपन्यास एक ऐतिहासिक उपन्यास है। इसमें उन्होंने ऐतिहासिक घटनाओं को आधार बनाकर ब्रिटिश औपनिवेशिक दौर में एक अंग्रेज अफसर की हत्या कर देने वाले ट्राइबल व्यक्ति मातमुर के जीवन को आधार बनाकर रोचक ढंग से लिखा गया है। इसी प्रकार येशे दोरजी थोंग्छी द्वारा लिखित 'शव काटने वाला आदमी', 'मौन होंठ मुखर हृदय', 'सोनाम' आदि भी उपन्यास क्षेत्र में अरुणाचल प्रदेश की मोनपा जनजाति के परिवेश एवं प्रथाओं को यथार्थ रूप में प्रस्तुत करती हैं। इसे पढ़ने के बाद मन जिज्ञासा से भर जाता है और ऐसा लगता है जैसे ये सभी घटनाएँ आँखों के सामने घटित हो रही हों।

ऐसी कई सारी रचनाएँ, अरुणाचल प्रदेश के समाज, संस्कृति, परिवेश, पूर्वज आदि को केंद्र में रखकर लिखी गई हैं- जैसे जोराम यालाम नाबाम लिखित 'जंगली फूल' (उपन्यास), 'तानी कथाएँ' (आदिवासी जीवन-

दर्शन पर आधारित), 'गाय गेका की औरतें' (संस्मरण), 'साक्षी है पीपल' (कहानी संग्रह)। इन रचनाओं के माध्यम से उन्होंने अपने पूर्वज आबोतानी, तानी दर्शन, न्यीशी समुदाय के सामाजिक, पारिवारिक और व्यक्तिगत जीवन तथा उनके सामूहिक विश्वासों, धार्मिक- आध्यात्मिक मान्यताओं, रस्म-रिवाजों, त्योहार एवं अन्य आर्थिक क्रिया-कलापों इत्यादि का सूक्ष्मता से वर्णन किया है। इसी क्रम में जमुना बीनी ने अपने 'अयाचित अतिथि तथा अन्य कहानियाँ' (कहानी संग्रह), 'ऊई मोक' (लोक कथा संग्रह), 'समकाल की आवाज'(काव्य संग्रह), 'जब आदिवासी गाता है' (काव्य संग्रह) पुस्तकों से अरुणाचली साहित्य जगत को समृद्ध किया है और उनका यह बहुमूल्य योगदान उल्लेखनीय है। नाटक विधा में ताई तुगुङ लिखित और हाल ही में विश्व रंग महोत्सव, ईटानगर में मंचित 'लप्या' नाटक सर्वप्रथम प्रयास है। यह न्यीशी समाज की एक मासूम लड़की को किसी अपाहिज लड़के से जबरदस्ती विवाह करा देने की दर्दनाक कथा है। तारो सिंदिक के 'अक्षरों की विनती' और 'फिर आना तुम' (काव्य संग्रह), रेमोन लॉंगकु द्वारा लिखित 'कोंग्कोंग-फांग्फांग' (कहानी संग्रह), 'भेड़िए और पटकाई की औरतें' (काव्य संग्रह), दोरजी लोन्पु के 'मोनयुल के पेङदाङ में खिले फूल' (काव्य संग्रह) आदि का अप्रतिम योगदान देख सकते हैं।

अरुणाचल प्रदेश और यहाँ की जनजातियों पर आज कई सारी पुस्तकें-ग्रंथ उपलब्ध हैं तथा आज भी लिखने का प्रयास जारी है। इतना ही नहीं, अरुणाचल प्रदेश अपने लोक साहित्य में सर्वथा धनी है। इस प्रदेश में छब्बीस प्रमुख जनजाति एवं सौ से भी अधिक उप-जनजातियों का निवास है। यहाँ की विभिन्न जनजातियों के अपने खुद के समृद्ध लोक साहित्य उपलब्ध हैं। इस राज्य की अधिकतर जनजातियों के अपने खुद की लिपि न होने के कारण आज भी बहुत कुछ मौखिक रूप में ही उपलब्ध है। इसी कारण लुप्त होने का खतरा बढ़ गया है। इसे संग्रहीत कर लिप्यंतरण करने की कोशिश लोगों में बढ़ गई है। इसके चलते आज विभिन्न जनजातियों पर कई महत्त्वपूर्ण शोध हो चुके हैं और आज भी हो रहे हैं। इस संदर्भ में डॉ. ओकेन लेगो की 'आदी जनजाति : समाज और लोक-साहित्य' शीर्षक से प्रकाशित पुस्तक उल्लेखनीय है। प्रो. ओकेन ने अपनी पुस्तक में 50 पृष्ठ का लोक-गाथा सारांश 'आरदो-बादो आबांग' संकलित किया है, जो आदी जनजाति के मौखिक इतिहास, परंपरा, अनुष्ठान, रीति-रिवाज इत्यादि से साक्षात्कार कराता है। साथ ही इस तथ्य को बताता है कि लिपि के अभाव के बावजूद आदी जनजाति और इनकी उपजनजातियों ने अपनी लोकगाथा को आज भी अपनी स्मृति में संजोए रखा है। यह किताब आदी जनजाति के लोक-साहित्य से संबंधित महत्त्वपूर्ण बातों को सहज, किंतु शोधपरक ढंग से प्रस्तुत करती है। अरुणाचल प्रदेश में हिंदी की वर्तमान स्थिति को सही परिप्रेक्ष्य में समझने और उसे राजभाषा हिंदी के रूप में देखने का श्रमसाध्य प्रयास प्रो. श्याम शंकर सिंह ने किया है। अरुणाचल प्रदेश में लिपि की सर्वमान्य एकरूपता नहीं होने के कारणों के पीछे के तथ्यों को प्रो. सिंह ने उद्घाटित किया है तथा इस प्रदेश में हिंदी की स्वैच्छिक स्वीकृति के साथ पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन संबंधी पक्षों पर भी विस्तारपूर्वक विचार किया है, जो रोचक एवं पठनीय है। नंद किशोर पाण्डेय और हरीश कुमार शर्मा की प्रकाशित पुस्तक 'अरुणाचल प्रदेश की लोक-गाथाएं' अरुणाचल प्रदेश की विभिन्न जनजातियों के लोक-साहित्य की लोककथाओं से परिचित कराती हैं, जिनको पढ़ना प्रीतिकर है। धर्मराज सिंह की एक और पुस्तक 'अरुणाचल प्रदेश के त्योहार' इस प्रदेश की उत्सवधर्मिता को समझ सकने का मार्ग देती है। सांवरमल सांगानेरिया की यात्रा पुस्तक 'अरुणोदय की धरती पर' भी एक रोचक वृत्तांत है जिसे लेखक ने घुमक्कड़ी अंदाज में पाठकों के समक्ष

रखा है। इसी क्रम में वीरेन्द्र परमार की 'अरुणाचल के आदिवासी और लोक-साहित्य' पुस्तक पठनीय है। तागिन लोक साहित्य का हिंदी में सर्वप्रथम शोध कार्य करने का श्रेय डॉ. तारो सिंदिक को जाता है। उन्होंने 'तागिन लोक साहित्य का विश्लेषणात्मक अध्ययन' विषय पर अपना शोध कार्य पूर्ण किया है। इसके अंतर्गत उन्होंने तागिन जनजाति का सामान्य परिचय देते हुए तागिन शब्द का अर्थ, तागिन लोक साहित्य का स्वरूप विश्लेषण किया है। हिंदी में आदी लोक साहित्य पर केंद्रित कई शोध कार्य हो चुके हैं। जेबीना तकी ने 'आदी लोक साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन' विषय पर शोध कार्य पूर्ण किया है। इसके अंतर्गत शोधार्थी ने आदी जनजाति का सामान्य परिचय देते हुए आदी लोक साहित्य को सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक दृष्टि से विश्लेषित करने का प्रयास किया है। इङ परमे की 'आदी लोक साहित्य में सामाजिक सांस्कृतिक चेतना', तुनुङ ताबीङ की 'अरुणाचल प्रदेश की आदी जनजाति की उपजनजाति ताङाम का समाज भाषिक अध्ययन' आदि जो केवल आदी समाज की संस्कृति, जीवन-शैली ही नहीं बल्कि यहाँ की अंदरूनी समाज की विशेषताओं और उनकी भाषा-शैली आदि से भी अवगत कराती हैं। हिंदी में अपातानी लोक साहित्य में सबसे पहला शोध कार्य डॉ. ओरोती ताबी का है। इनके शोध कार्य का विषय है-'अरुणाचल प्रदेश की अपातानी जनजाति के लोक साहित्य का विश्लेषणात्मक अध्ययन' जिसमें शोधार्थी ने अपातानी लोक साहित्य में उपलब्ध समाज, संस्कृति, लोक विश्वास, मान्यताएँ एवं शिल्पपक्ष आदि का वर्णन किया है। दोगे ङमदिर का 'अरुणाचल प्रदेश की गालो जनजाति के लोक गीतों का सांस्कृतिक अध्ययन' शोध-प्रबंध गालो समुदाय के लोक-गीत की दृष्टि से सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य और महत्त्व पर मौलिक ढंग से ठोस बात करती है। यह गालो समाज के अनुष्ठानों, लोक विश्वासों, मृत्यु संस्कार, प्राकृतिक संबंध आदि विषयों पर दृष्टि डालती है जिससे गालो समाज का पूरा सांस्कृतिक ताना-बाना बड़ी सौम्यता से लोगों के सामने प्रस्तुत हो जाता है। मेमा चिरी का 'न्यीशी लोक सुभाषितों का सामाजिक सांस्कृतिक अध्ययन', अरुणा गोगोई का 'अरुणाचल प्रदेश की गालो जनजाति के लोक सुभाषितों का सामाजिक सांस्कृतिक अध्ययन' आदि शोध-प्रबंध अरुणाचली लोक साहित्य की विशिष्टताओं को पूरी प्रतिष्ठा के साथ सामने रख देते हैं।

आज जब समाज आधुनिक प्रवृत्तियों का शिकार बन रहा है और बिना सोचे-समझे कई सारी नकारात्मक प्रवृत्तियों को अपनाता जा रहा है, ऐसे में किसी के पास इतना वक्त नहीं है कि वे अपने विचारों को, सामाजिक पहचान और सांस्कृतिक परंपरा को यथार्थ मुहावरे और जीवंत भाषा में जिंदा रख सके। लोग तो आज जितना हो सके सरल तरीकों से परिचित होना चाहते हैं। इस प्रकार के शोध कार्य से ही किसी भी समाज के वाक्-चातुरी, वाग्मिता, मौखिक इतिहास का पता चलता है और इसमें निहित उनकी सामाजिक व्यवस्था, सांस्कृतिक संरचना, जीवन-शैली, लोक विश्वास, हाव-भाव आदि का वास्तविक परिचय मिलता है। इधर हुए कुछ अन्य शोध कार्यों में तेली मेचा के 'आजिलामु स्वांग एवं यक्षगान का तुलनात्मक अध्ययन' शोध कार्य का अरुणाचली लोक साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान है। शोधार्थी ने यह बताया है कि मोनपा और शेरदुकपेन समुदाय के अतिरिक्त लगभग सभी जनजातियों के पास लोक नाट्य का अभाव है। आजिलामु नाटक मोनपा समुदाय में खेला जाने वाला एक लोक नाट्य है तो स्वांग और यक्षगान उत्तर भारत और कर्नाटक में खेले जाने वाले लोक नाट्य हैं। यह कितनी अच्छी बात है कि आज भी यह सुरक्षित है और लोगों के बीच आज भी खुले में खेला जाता है। आजिलमु नाटक को मंचन के लिए कोई व्यवस्थित मंच की आवश्यकता नहीं है बल्कि यह

किसी भी खुले मैदान में खेला जा सकता है। आजिलमु लोक नाट्य का स्वांग और यक्षगान लोक नाट्य के साथ तुलनात्मक अध्ययन यहाँ से भिन्न समाज की संस्कृति, जीवन-शैली, लोक विश्वासों आदि में उपलब्ध समानता एवं असमानता के अध्ययन द्वारा अरुणाचल से भिन्न समाजों को जोड़ने का एक बौद्धिक प्रयास हुआ है। तुम्बम रिबा लिखित 'अरुणाचल प्रदेश के गालो लोक साहित्य में स्त्री जीवन के विविध आयाम' शोध-प्रबंध गालो समाज में स्त्रियों की भूमिकाओं को गालो लोक कथाओं, लोक गीतों एवं लोक सुभाषितों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। शोधार्थी ने गालो लोक साहित्य एवं समाज में स्त्रियों का अंतर प्रस्तुत किया है, साथ ही स्त्री के लौकिक-अलौकिक रूप को भी प्रस्तुत किया है। मुको देले का 'अरुणाचल प्रदेश की इदु मिशमी जनजाति की लोककथाएँ' शोध-प्रबंध इदु समाज एवं संस्कृति को इदु लोक कथाओं में ढूँढ़ने का प्रयास है। इतना ही नहीं यह शोध-प्रबंध इदु मिश्मी लोक कथाओं की वर्तमान उपादेयता पर भी चर्चा करती है। बनासिरी पर्टिन के शोध-प्रबंध को भी इसी क्रम में देखा जा सकता है। उनका 'समाज सांस्कृतिक दृष्टि से अरुणाचल प्रदेश की आदी जनजाति के लोकगीतों का भोजपुरी के लोकगीतों के साथ तुलनात्मक अध्ययन' शोध-प्रबंध दो भिन्न समाज को जोड़ने का महती प्रयास है। यह लोकगीतों के माध्यम से इनमें निहित पारिवारिक संबंध, पर्व-त्योहार, पूजा-उपासना, विवाह-मृत्यु प्रथा, सामाजिक, आर्थिक धार्मिक संरचनाओं आदि को खोजने का महत्त्वपूर्ण प्रयास है।

अरुणाचल प्रदेश के लोक साहित्य यात्रा में राजीव गांधी विश्वविद्यालय के पीजीडीएफएच के विद्यार्थियों ने भी डॉ. राजीव रंजन प्रसाद के निर्देशन में 40 के करीब लघु शोध प्रबंध प्रस्तुत किया है। ताना मेरी ने 'अरुणाचली तानी समुदाय (न्यिशी, आदी, गालों, अपातानी, तागीन) के वस्त्र-परिधान शैली एवं सांस्कृतिक वेश-भूषा' विषय पर अपना लघु शोध प्रबंध प्रस्तुत किया। इन पाँचों समुदायो की वस्त्र परिधान शैली लगभग एक जैसी है किंतु इनमें बनी डिजाइन, रंगों का चुनाव, सांस्कृतिक प्रतीकात्मकता आदि एक-दूसरे से भिन्न है। किसी के सांस्कृतिक पोशाक में सूरज का बिंब होता है तो किसी में आँख जैसी कोई आकृति बनी होती है। इस समुदाय की अधिसंख्य स्त्रियाँ 'गाले' पहनती हैं। ये स्वयं को आबोतानी का वंशज मानती हैं। इसी तरह सुजीत कुमार सिंह ने 'शेरदुकपेन जनजाति के त्योहारों पर आधुनिकता का प्रभाव: एक विश्लेषण' विषय में अरुणाचल प्रदेश के वेस्ट कमेङ जिले में निवास करने वाले एक जनजाति के त्योहारों पर अपना लघु शोध प्रबंध प्रस्तुत किया है। शेरदुकपेन समुदाय में तीन प्रकार के त्योहारों को बड़े धूमधाम से मनाते हैं। 'लोसर' इनका मुख्य त्योहार है जो नए साल के आगमन पर मनाते हैं तो 'वाङ' अपने भगवान बुद्ध के सम्मान में मनाते हैं। प्रकृतिपूजक होने के नाते वे अपने त्योहार को प्रकृति से जोड़कर देखते हैं। वे विश्वास करते हैं कि संसार में उपलब्ध पानी, वन, हवा आदि सभी के दाता होते हैं और इन्हीं दाताओं को खुश करने के लिए वे 'खिकसबा' त्योहार को मनाते हैं। सुजीत ने अपने शोध कार्य से इन त्योहारों पर पड़ रहे आधुनिकता के प्रभाव पर प्रकाश डाला है। पीजीडीएफएच के ही विद्यार्थी रहे चाचू दाई ने 'तागिन जनजाति: परंपरा, मिथक एवं आधुनिकता' विषय पर अपना शोध प्रबंध प्रस्तुत किया है। इन्होंने अपने लघु शोध प्रबंध के माध्यम से तागिन जनजाति की लोक परंपरा, विश्वासों, अनुष्ठानों एवं समाज में विद्यमान आधुनिकता के प्रभाव को सम्यक ढंग से प्रस्तुत किया है। निय्मन्या हेन्खे ने 'नोक्ते जनजाति की बोरदूरिया बस्ती का लोक-जीवन एवं लोक-संस्कृति: एक अध्ययन' विषय के माध्यम से अरुणाचल प्रदेश के तिराप जिले में स्थित बोरदूरिया गाँव में निवास करने वाली नोक्ते

जनजाति की जीवन शैली एवं लोक संस्कृति के बारे में चर्चा विस्तार से की है। लाम छोटन ने 'तवांग जिले की बघर बस्ती का लोक-साहित्य एवं लोक-संस्कृति: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन' विषय के माध्यम से तवांग जिले में स्थित बघर बस्ती में निहित लोक साहित्य का अध्ययन किया है। इसके माध्यम से लोक-परंपरा, विश्वासों, अनुष्ठानों को प्रस्तुत करने का प्रयास भी किया है। पीजीडीएफएच के विद्यार्थियों द्वारा अरुणाचल प्रदेश के जनसंचार माध्यमों के प्रमुख केंद्र आकाशवाणी, ईटानगर और दूरदर्शन, ईटानगर पर भी लघु शोध प्रबंध प्रस्तुत किया गया है जो अरुणाचल प्रदेश में मीडिया की मौजूदगी और उसके कार्यकलापों को प्रकाश में लाते हैं। इसी तरह जवाहर लाल नेहरू संग्रहालय, ईटानगर और अरुणाचल प्रदेश के सिनेमा जगत को केंद्र में रखते हुए भी पीजीडीएफएच विद्यार्थियों द्वारा लघु शोध प्रबंध प्रस्तुत किया गया है।

अरुणाचल प्रदेश में लोक साहित्य का अभाव नहीं है, साथ ही हाल में हिंदी में प्रकाशन का एक बड़ा कार्य केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा ने किया है। इस कार्य को दिशा देने में संस्थान के निदेशक और वर्तमान में राजस्थान विश्वविद्यालय में प्राध्यापक प्रो. नंदकिशोर पाण्डेय जी का प्रयास अत्यंत उल्लेखनीय है, जिन्होंने अरुणाचल प्रदेश की विभिन्न जनजातियों पर लोक-साहित्य और अध्येता-कोश प्रकाशित करने का महती कार्य किया है। यह अवश्य है कि इस प्रदेश के लोगों ने लिपि के अभाव में लिखित लोक-साहित्य की विधिवत परंपरा नहीं रही है, लेकिन यह भी सत्य है कि प्राचीन काल से अपने लोक साहित्य को मौखिक रूप में हस्तांतरित करने का प्रयास मजबूती से हुआ है। वे अपने हाव-भाव, विचारों, अनुभवों आदि को कभी कथा, तो कभी गीतों के माध्यम से अभिव्यक्त और अभिव्यंजित करते आए हैं। लिपि के अभाव में लोगों ने इसे मौखिक रूप में जिंदा रखने का वैकल्पिक प्रयास प्रमुखता से किया है। किंतु आज इस राज्य में कुछ जनजातियों के पास अपनी खुद की लिपि विकसित की जा चुकी हैं- जैसे मोनपा, वानचो, तंग्सा, तानी आदि। आज यहाँ के लोक साहित्य बड़ी संपदा में मौजूद है। इसका कारण है, यहाँ के लोगों में अपनी संस्कृति और परंपरा से अत्यंत प्रेम और घना जुड़ाव होना। इन सबके पीछे अरुणाचल प्रदेश के लोक साहित्य एवं अनुसंधान की विकास यात्रा का योगदान अप्रतिम है, जिसे यहाँ और बाहर के लेखकों एवं विद्वानों ने बड़ी ऊंचाई प्रदान की है। आज अरुणाचल प्रदेश के संदर्भ में अनगिनत लोक साहित्य और शोध-कार्य पुस्तकाकार उपलब्ध हैं या अप्रकाशित शोध-प्रबंध के रूप में सुरक्षित हैं। यह प्रयास अरुणाचल प्रदेश की विविधता में एकता की प्रकृति को रूपायित करता है जिस कारण इस प्रदेश को 'लघु भारत' की संज्ञा दी जाती है। यहाँ इनमें से कुछेक की चर्चा हो पाई है, ताकि इस प्रदेश की मनोरम भूमि की झलक पाठकगण को मिल सके।

*(**लेखकीय परिचय :** संतिमो निमासो राजीव गाँधी विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में शोधार्थी हैं।*
मोबा: 6909446223, ई-मेल : santimonimasow915@gmail.com)

(संस्मरण)

अरुणाचल प्रवास के मेरे अविस्मरणीय दिन

नंद किशोर पाण्डेय

[1]

मैं 17 सितंबर, 2000 को अरुणाचल आया। बारिश का मौसम था। अरुणाचल के विषय में बहुत कम सुन रखा था। जो सुन रखा था, देखा उससे बिल्कुल अलग। मुझे स्मरण आता है कि प्रोफ़ेसर अवधेश नारायण मिश्र, जो उस समय काशी हिंदू विश्वविद्यालय में प्रोफेसर थे; पहले तेजू में अध्यापन कर चुके थे। उन्होंने जाने के लिए मार्ग सुझाया। गुवाहाटी से ईटानगर पहुंचने के लिए बसों की जानकारी दी और विश्वविद्यालय की भौगोलिक स्थिति का वर्णन किया। उनका वर्णन यथार्थ था। उन्होंने कुछ अपने मित्रों का भी परिचय दिया कि जरूरत पड़ने पर उन्हें याद कर सकते हैं। मैं उन्हें बड़ा भाई मानता रहा हूं। उन्होंने भी एक छोटे भाई की यात्रा के लिए जिस प्रकार से सुगम स्थितियां हो सकती हैं, वह सब कुछ बतलाया-समझाया। इनरलाइन का न मुझे आभास था, न ज्ञान था। न ही कभी किसी चर्चा में बनारस या राजस्थान में इस संबंध में किसी ने बतलाया था। नियुक्ति पत्र साथ में होने से बंदरदेवा चेक-पोस्ट पर कोई असुविधा नहीं हुई। मेरे पुराने परिचित अब मित्र, डॉ विनोद मिश्र जी ने अवश्य बतलाया कि बन्दरदेवा से निर्जुली आते समय तीन बार बस नदी में उतरती है। लेकिन, चिंता करने की कोई बात नहीं है। नदी में से बस निकल जाती है। बंदरदेवा पर आपको एक लंबे बांस के नीचे से गुजरना पड़ेगा। बारिश होती रहती है, इसलिए छाता रखिएगा। फिर उसी बस में बैठना पड़ेगा। मैं यह नहीं समझ पाया कि इनरलाइन परमिट दिखाने के बाद बस से उतरकर उस डंडे के नीचे से गुजरने का क्या औचित्य है? पास तो पास है, बस में बैठकर दिखाओ या नीचे उतरकर दिखाओ!

खैर, मिश्र जी ने जो कहा था वही सच था। छाता लेकर बस से नीचे उतरा। हल्की बारिश हो रही थी। नियुक्ति-पत्र दिखाने के बाद डंडे के नीचे से निकलकर फिर उसी बस में बैठ गया। थोड़ी दूर आगे जाकर बस नदी में उतरी, फिर सड़क पर आ गई। बनारस में रहते हुए विंध्याचल की पहाड़ियों को देखा था। राजदरी और देवदरी भी गया था। यह जो बंदरदेवा के पास की हरियाली थी, वह अलग थी। पहली बार आंखों ने ऊपर से नीचे तक हिमालय पर पसरी उस सुरम्य छटा को देखा जो देवतात्मा है। सूर्योदय हो गया था। बड़ा, बहुत बड़ा सूरज सुबह के बादलों वाले आकाश से पूर्ण रश्मियों के साथ निकल आया था। अलग किस्म की वनस्पतियां और हल्के जाड़े से बचने के लिए ऊनी वस्त्रों के कुछ अलग परिधान दिखे। मेरे लिए वह पहला अनुभव था जब मैंने पगड़ी की जगह पर शिरस्त्राण के रूप में कुछ रंगीन बाल और धनेश की चोंच सजी हुई देखी। कमर में दाव बंधी थी और लटक भी रही थी। कुछ मध्यकालीन योद्धाओं सा आवरण धारण किए हुए यत्र-तत्र लोग घूमते हुए दिख रहे थे। जिज्ञासावश पूछने पर बस की सीट पर बैठे हुए किसी बिहारी अरुणाचली ने बताया कि यह न्यीशी लोग हैं। उनकी यह परंपरागत वेशभूषा है। जंगल में निरंतर रहने के कारण जीव-जंतुओं से बचाव, जंगल की झाड़ियां-लकड़ियां काटने के लिए अपने पास दाव रखते हैं। जरूरत पड़ने पर जानवर और चिड़िया काटने के काम में इस दाव का उपयोग करते हैं।

यह यहां का आम दृश्य है। धनेश की चोंच प्रकृति की निकटता का वाचक है। यह ठीक है कि इस शौक या परंपरा के कारण धनेश की संख्या में कमी भी हुई है। धनेश अरुणाचल का राज्य-पक्षी है। उसके झुंड-के-झुंड उड़ते हुए यहां देखे जा सकते हैं। यह अलग बात है कि मैंने अरुणाचल में धनेश देखा तो, लेकिन झुंड-का-झुंड उड़ते हुए, कोलाहल करते हुए उनका समूह कभी नहीं दिखा। यह भी बताया गया था कि तेजपुर पार करने के बाद संभव है धान पकने के समय में (यह वही समय था) हाथियों का समूह सड़क पर दिख सकता है। उससे चिंतित होने की कोई बात नहीं है। हाथी स्वयं हट जाते हैं। ऐसा दृश्य दिखा तो सही, लेकिन बरसों बाद। एक नदी पार करने के पश्चात् निर्जुली और बंदरदेवा के बीच भू-क्षरण के कारण सड़क अवरुद्ध हो गई थी। ड्राइवर ने आगे जाने से मना कर दिया। कुछ लोग बस में बैठे रहे, कुछ उतरकर पैंट ऊपर करके सिर पर सामान लादे फुर्ती और चौकसी के साथ कोई 40 फीट चौड़ी सड़क कीचड़ और दलदल मे से होकर पार करने लगे। बस खड़ी थी। मैं बस से उतरा। ऊपर की ओर सीधे तने हुए पहाड़ को देखा। ऊपर से नीचे की ओर लटके हुए पेड़ों को देखकर एकबारगी सहम गया। एक बार तो ऊपर से एक साथ कोई दो ट्रक गीली मिट्टी खड़े पौधों, डालियों और पत्थरों के साथ नीचे उतर आई। इस सब-कुछ के बीच उस पार जाने के लिए आतुर यात्रियों की विवशता और शीघ्रता उन्हें जान पर खेलकर पार जाने के लिए विवश कर रही थी।

मैंने पूछा कि 'यह मलबा कब हटेगा?'
उत्तर मिला- 'इसका कुछ ठिकाना नहीं है।'
'बस कब जाएगी?'
ड्राइवर बोला- 'कुछ ठिकाना नहीं।'
'पार कैसे होंगे?'
'यह आप जाने!'

ज्यादातर लोग जिनके पास एक या दो सामान था, वे खुद से उसे कंधे पर लटका कर या सिर पर रखकर एक आंख से इस पार से उस पार पहाड़ की ओर देखते हुए अपने-अपने इष्टदेव का नाम लेकर उस पहाड़ी दलदल को, जो सड़क पर ढूह की तरह पड़ी थी; पार कर गए। मैंने भी खड़े होकर अपने साहस और बल का अनुमान लगाया। देखा कि यदि बहुत ज्यादा भी होगा तो मेरे घुटने से थोड़ा ऊपर है। दो-तीन सामान मेरे पास थे। मैंने एक सामान को सिर पर रखा और दलदल में आधे में आया तो एक व्यक्ति ने कहा कि 'मुझे 50 रुपये दीजिए, मैं पार रख दूंगा।' जान-में-जान आई। बस में से दूसरा सामान लिया, आधे में फिर उसको दे दिया और उस पार आ गया। 10 सेकंड बाद पानी, कीचड़ और पत्थर का बहता हुआ एक रेला फिर सड़क पर आया। एक महिला को देखा- अब गई, तब गई! लेकिन, बड़ी फुर्ती से अपने बोझ को फेंककर वह एक कदम आगे बढ़ गई और उसी चुस्ती से किसी ने उसे खींच लिया। इस दृश्य ने एक साथ रोमांच और प्रकृति की भयावहता के सामने मनुष्य की बेबसी को जिस प्रकार उपस्थित किया, वह आंखों के सामने आज भी प्रत्यक्ष है। 18 वर्ष बीत गए, कहीं कोई धुंधलापन नहीं है।

एक ऑटो वाला आया और दोइमुख छोड़ने को तैयार हुआ। निर्जुली और दोइमुख के बीच में दिकरांग नदी बहती है। दिकरांग के तट से बहुत सी स्मृतियां जुड़ी हुई हैं। शुरू के वर्षों में हर 10-15 दिन पर कभी अकेले, कभी मित्रों के साथ आना होता था। ऑटो वाले ने बताया कि हैंगिंग ब्रिज से हम ले चलेंगे। उस झूलते हुए ब्रिज

को मैंने दूर से देखा, फिर उसको रोका। वस्तुतः मैं किसी ऑटो वाले को उस पर जाते हुए देखना चाहता था। तब तक एक व्यक्ति स्कूटर लेकर उस पर चढ़ा और वह हिलते-डुलते पार करने लगा। फिर पार कर गया। ऑटो वाले को कहा, अब चलो। ऑटो इस पार लेकर आ गया। रुककर उस नदी में ब्रह्मपुत्र के लघु रूप को देखा। हिमालय और नदी को मेरे आस्तिक मन ने आस्था और कृतज्ञता से भरकर प्रणाम किया। फिर धान की सुनहरी बालियों, कुछ अपरिचित से वृक्षों- जिनके रूप, नाम और फल पहली बार दिख रहे थे- को देखते हुए दोईमुख आ गया। बताया यह गया था कि बस यदा-कदा आती है। यहां से विश्वविद्यालय की दूरी कोई ढाई किलोमीटर है, पैदल भी जाया जा सकता है। एक सैलून देखकर मैं रुक गया। सोचा, चाय पी लेते हैं। सैलून चलाने वाले बिहार के गोपालगंज के थे। उन्होंने बताया कि आप बैठिए, चाय पीजिए, दाढ़ी बनवा लीजिए। बस अभी आएगी। ऐसे आप जाना चाहें तो जा सकते हैं, क्योंकि कुछ दिन पहले ही हिंदी विभाग के एक लेक्चरर वह आपसे भी हृष्ट-पुष्ट हैं- दो बैग लेकर, शायद उनका परिवार भी था- पैदल ही रोनो हिल्स पर चढ़ गए थे। मैंने सोचा कि यह हृष्ट-पुष्ट कह रहा है तो कोई पहलवान आदमी होगा, जो सामान के साथ रोनो हिल्स चढ़ गया होगा। उस समय मैंने अपने को थोड़ा कमजोर पाया और विलंब से ही सही, बस से जाना उचित समझा।

मौके का लाभ लेकर बाजार की तरफ निकला तो देखा- पत्ते ही पत्ते दिख रहे हैं जिन्हें पहचान पाया, उसमें कुम्हेड़े का पत्ता था। हर कोई किस्म-किस्म के पत्ते खरीदकर सब्जी के नाम पर भर रहा था। एक देसी लौकी थी, उसे खरीदने के लिए कई लोग टूट पड़े। ऐसा लगा कि पत्तों के अलावा जो सब्जी आती है, उसको लोग मुंह बोला दाम देकर ले लेते हैं। कई प्रकार के केले के फूलों को बिकते हुए पहली बार पहले ही दिन देखा। एक महिला जोर-जोर से भीमकोल-भीमकोल बोल-बोलकर एक भीमकाय से फूल को महिमामंडित सी करती हुई उसे भीमकोल के नाम से बेच रही थी। उस पहले ही अरुणाचल आगमन के प्रथम प्रवाह से ही भीमकोल देखने और केले की (जिसे असम और अरुणाचल में कोल या कोला कहते हैं) प्रजातियों को जानने के प्रति दिलचस्पी बढ़ गई। पहाड़ों की तलहटी में जंगली केलों के वन और उनमें लगे हुए छोटे-छोटे फलों को देखकर संस्कृत कवियों के वर्णन में आए कदली-वन का दृश्य आंखों के सामने से गुजर गया। सहज आभास हो गया कि भीतरी हिस्से में गजराज इसमें क्रीड़ा करते होंगे।

थोड़ी देर में बस आ गई। बस से उतर, विश्वविद्यालय के चार कमरे वाले अतिथि-गृह में पहुंचा। यहां पहले से मेरे लिए एक कक्ष था, जिसमें हिंदी के ही एक अन्य अध्यापक श्याम शंकर सिंह रह रहे थे। उन्होंने जोर-जोर से हंसकर मेरा स्वागत किया। उनकी कई प्रकार की हंसी मुझे आज भी याद है। मैं भी आह्लादित हुआ कि भारत में हाथ और फूल बढ़ाते तो बहुत देखा है- ऐसा स्वागत भी हुआ था, लेकिन इतनी हंसी फेंकता हुआ स्वागतोत्सुक व्यक्तित्त्व पहली बार देखा। मन खुश हुआ। विश्वविद्यालय संबंधी सारी अच्छाइयों-बुराइयों, व्यस्तताओं और उलझावों-सुलझावों से एक साथ मैं रूबरू हो गया। वे हिंदी विभाग के नवनियुक्त प्रवक्ता श्री श्याम शंकर सिंह थे। थोड़ी देर की बातचीत के बाद ही वह पढ़ने बैठ गए। मैंने परिसर स्थित किसी एक दुकान पर चलने के लिए कहा, तो उन्होंने बताया कि 'मुझे तो कोई काम नहीं है। मुझे पढ़ना है।' पढ़ाई के प्रति ऐसे लगाव को मैंने भीतर तक महसूस किया और कई दिनों तक उनकी पाठ-क्रिया का करीब से अवलोकन करता रहा। पढ़ते-पढ़ते आनंद की अनुभूति और उसकी अभिव्यक्ति कैसे होती है, यह श्याम शंकर जी को पढ़ते हुए देखकर लग सकता है। नवों रसों की कायिक, वाचिक और मानसिक अभिव्यक्तियां उनके शरीर में दिखती थीं।

हां, वात्सल्य अवश्य कभी मुखरित नहीं हुआ। विभाग में डॉ. दिनेश कुमार चौबे जी ने कार्यभार ग्रहण कराने में तत्परता दिखलाई। कुछेक घंटे बाद डॉ. नाथ जी भी आ गए। विभाग की प्राध्यापिका कवयित्री डॉ. रेखा द्विवेदी जो तत्कालीन कुलपति डॉ. कमलकांत द्विवेदी की श्रीमती भी थीं, ने हर्ष के साथ अवधी, अंग्रेजी और हिंदी में समान रूप से धाराप्रवाह बोलते हुए स्वागत किया।

पिछले 9 वर्षों के अरुणाचल प्रवास में सैकड़ों लोगों से निकट का संबंध रहा है। मेरे संबंधों के दायरे में विद्यार्थी और अध्यापकों के अलावा सामाजिक-राजनीतिक क्षेत्र के लोग भी बड़ी संख्या में रहे हैं। व्यापारी, मजदूर, शैक्षणिक और गैर शैक्षणिक कर्मचारियों के अलावा भी आम लोगों के बीच रहने का, बातचीत करने का कई कारणों से अवसर मिला। उन सबकी स्मृतियां हैं। अरुणाचल प्रदेश में हिंदी के लिए काम करने वाले अध्यापक तथा प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया से जुड़े पत्रकारों की स्मृतियां मानस-पटल पर गहरी हैं। इस संबंध में तत्काल मैं डॉ रमण शाण्डिल्य जी को प्रतिष्ठित हिंदी सेवी के रूप में याद करना चाहता हूं। रमण शाण्डिल्य जी ने अपने अध्यापकीय जीवन के प्रारंभ से ही हिंदी पत्रकारिता भी की। हिंदी पढ़ने के लिए विद्यार्थियों को प्रेरित किया। हिंदी की प्रतिष्ठा के लिए संघर्ष किया और लंबे समय तक 'अरुण नागरी' का संपादन किया।

[2]

अरुणाचल प्रदेश लंबे समय तक मेरी कर्मभूमि रही है। यहां मैं स्वतः प्रेरित होकर आया था। आते समय घर-परिवार अपनी पूर्व नौकरी, पूर्वोत्तर की जटिलता, अरुणाचल प्रदेश की कठिनता और इष्ट मित्रों की तरह-तरह की सलाहों-सुझावों पर मैंने कोई ध्यान नहीं दिया। मैं सीधा अरुणाचल प्रदेश में हिंदी को पढ़ाने की लालसा लिए चला आया। दो-तीन बैच एम. ए. के बहुत कठिन दौर से गुजरे। छात्रों की संख्या दूसरे बैच में बहुत कम थी। मात्र 4 छात्र थे। पहले वर्ष 10 विद्यार्थी थे, जिनमें कई घरेलू महिलाएं थी। जिन्होंने एम. ए. करने की इच्छा से प्रवेश ले लिया था। विभाग को संभालकर आगे बढ़ाने की एक महत्तर जिम्मेदारी थी। ऑनर्स के विद्यार्थियों का ही प्रवेश होता था। एम. ए. करने के बाद रोजगार की कोई संभावना दिख नहीं रही थी। जनसंख्या की दृष्टि से छोटे से प्रदेश में रोजगार के साधन सीमित हैं। हिंदी के लिए तो और भी सीमित। कुछ संयोग से और कुछ प्रयास से सर्व शिक्षा अभियान के तहत सात सौ के आस-पास शिक्षक अरुणाचल प्रदेश को मिले। हिंदी पढ़े हुए इतने लोग तब थे ही नहीं। जिन लोगों ने 10वीं में तब हिंदी पढ़ी थी, ऐसे लोग बड़ी संख्या में शिक्षक हुए। अरुणाचल के विद्यार्थियों और उनके अभिभावकों को भी लगा कि हिंदी पढ़ने से भी रोजी-रोटी मिल सकती है। जो लोग 65-70 में विद्यालयों में हिंदी पढ़ाने के लिए अरुणाचल आए थे, उनमें काफी उत्साह था। वे लोग अपने छात्रों को विद्यालय स्तर से ही बी. ए. और एम. ए. में हिंदी पढ़ने के लिए प्रेरित कर रहे थे। उन्हीं शिक्षकों की प्रेरणा से हिंदी पढ़ने वाले कई विद्यार्थी आज असिस्टेंट प्रोफेसर हैं। विश्वविद्यालय में हिंदी विभाग खुलने से महाविद्यालय के अध्यापकों में भी गुणवत्तापूर्ण अध्यापन के प्रति रुझान बढ़ा। तत्कालीन राज्यपाल और दलित साहित्यकार माताप्रसाद जी के प्रयासों से न केवल हिंदी विभाग खुला, अपितु राजनीतिक कार्यों में हिंदी को लेकर एक सकारात्मक भाव जगा। लोगों के मन में उत्साह आया। उनकी प्रेरणा से 'अरुण नागरी' नाम से एक साहित्यिक पत्रिका भी प्रारंभ हुई। इस संबंध में डॉ. रमण शांडिल्य की भूमिका की प्रशंसा करूंगा। कुछ वर्ष पहले असम से जी. एम. अग्रवाला जी ने 'पूर्वांचल प्रहरी' का हिंदी में दैनिक प्रकाशन आरंभ किया था। अब यह अखबार पूर्वोत्तर का प्रतिष्ठित और महत्त्वपूर्ण अखबार बन गया है। कुछ विद्यार्थियों ने दिल्ली विश्वविद्यालय

और वनस्थली से बी. ए. किया था। विभाग के खुलने पर उन्हें एम. ए. करने का अवसर मिला। साथ ही शोध प्रारंभ होने पर वह पी-एच.डी. के लिए पंजीकृत हुए। बिना नेट/जेआरएफ, स्लेट के लेक्चरर नहीं हुआ जा सकता था। दो वर्ष बाद ही मैंने पाठ्यक्रम को स्नातक और स्नातकोत्तर स्तर पर परिवर्तित किया। इस बात को ध्यान में रखा कि नेट का पाठ्यक्रम एम. ए. के पाठ्यक्रम में अलग-अलग हिस्सों में सम्मिलित हो जाये। संयोग से उन्हीं दिनों रिमेडियल कक्षाएं भी शुरू हुईं। कुछ विद्यार्थियों को चुनकर नेट और स्लेट की तैयारी करवानी मैंने शुरू कर दी। पहली ही परीक्षा में यहां का विद्यार्थी स्लेट और नेट की परीक्षा उत्तीर्ण कर गया। विभाग में पद आने पर 2005 में पहला अरुणाचली यानी आज के हिंदी विभाग के प्रोफेसर एवं अध्यक्ष डॉ. ओकेन लेगो लेक्चरर के रूप में नियुक्त हुए। यह पूरे प्रदेश के लिए एक बड़ा संदेश था। अरुणाचल सरकार ने महाविद्यालयों में लगातार हिंदी के व्याख्याताओं के पद सृजित किये। हिंदी का पहला बैच 2001 में एम. ए. पास हुआ। 2007 आते-आते 22 विद्यार्थियों ने नेट और जे.आर.एफ. कर लिया था।

सुदूर पूर्वोत्तर का प्रदेश अरुणाचल प्रदेश है। चीन, वर्मा और भूटान से घिरा हुआ है। ऐसे जंगलों से और पहाड़ों से विद्यार्थी आते हैं जहां हवा भी मुश्किल से प्रवेश करती है। तब ऐसे जिला-केंद्र भी थे जहां तक पक्की सड़कें नहीं थीं। अरुणाचल का विद्यार्थी जुलाई की भयंकर बरसात में अपने घर से चलकर सात दिन में विश्वविद्यालय पहुंचता था। घर से विश्वविद्यालय के बीच आने में पैदल के अतिरिक्त टाटा सूमो, रिक्शा, बस, हेलिकॉप्टर, नाव तथा हाथी की सवारी कर विश्वविद्यालय तक की यात्रा पूरी करता था। वे ऐसे पहाड़ों से आते थे जहां प्रतिवर्ष बरसात में खाद्यान्न उपलब्ध कराने का साधन हेलिकॉप्टर ही हुआ करता था। उन क्षेत्रों के विद्यार्थियों ने भी नेट/जेआरएफ किया। नाहरलगुन के एक महाविद्यालय में बी. एड. की कक्षा में एक प्रश्नपत्र हिंदी का जुड़ा तो 30 विद्यार्थी बी.एड. करने चले आये। पढ़ाने के लिए कोई शिक्षक नहीं था, तो मैं स्वयं सप्ताह में चार दिन सोलह किलोमीटर पहाड़ी पर स्कूटर चलाकर पढ़ाने के लिए जाता था और अंधेरे में लौटता था। प्रारंभिक दिनों के विद्यार्थियों में हिंदी पढ़कर कुछ बनने का भाव प्रबल था। जिजीविषा बड़ी थी। उमंग और उत्साह भी था। शिक्षकों के प्रति उनके घरेलू संस्कारों के कारण आदर का भाव था। वस्तुतः वे एक-एक शब्द को गुरुमंत्र की तरह ग्रहण करते थे।

अरुणाचली विद्यार्थियों की स्मरण-शक्ति बहुत अच्छी है। भाषा सीखने के प्रति उनके मन में उत्साह है। कुछ वातावरण ऐसा है कि कई भाषाएं आसानी से सीख लेते हैं। उन प्रारंभिक विद्यार्थियों में ही ओकेन लेगो, जोराम आनिया ताना, जोराम यालाम, तेची उपेन तारा, सोनम वाङमू आदि थे। थोड़े बाद में जमुना बीनी, तारो सिन्दिक, तादाम रूती और ताई तुगुङ आये। आज ये लोग न केवल हिंदी साहित्य, न केवल शिक्षा जगत, अपितु अरुणाचल प्रदेश के राजनीतिक और सामाजिक जीवन के समादृत नाम बन गए हैं। इनके उत्साह, आदर-भाव और लगन को देखकर मुझे यह खुशी मिलती थी कि राजस्थान की नौकरी छोड़कर अरुणाचल प्रदेश में मैं सही समय पर आया। आज इनके उत्कर्ष और पहचान को देखकर और अधिक प्रसन्नता होती है। अरुणाचल के युवा नाम राष्ट्रीय स्तर के नाम बनते जा रहे हैं। प्रायः लोग कहते हैं कि आज की दुनिया बड़ी कृतघ्न है। जब मैं अपने इन विद्यार्थियों को देखता हूं तो लगता है कि किसी के लिए रंचमात्र भी करो तो वह कितने लंबे समय तक याद रखता है। स्वभाव से कड़क होने के कारण यह सब लोग डांट खाते रहते थे। लेकिन ये सब मेरे परिवार में काफी घुल-मिल गए थे। आज मुझे पछतावा भी होता है कि कई बार कई विद्यार्थियों को क्यों भगाया! लेकिन उनके मन में कोई मलाल नहीं है। मैं लौटकर घर आता था तो इन्हें अपनी पत्नी वंदना के साथ गपशप करते हुए

पाता था। सोनम और यालम तो घर का हिस्सा बन गईं थीं। ओकेन सही मायने में अंतेवासी ही हैं। आनिया, ताई, तुम्बुम, तारो, तादाम, तोकपेट, बनश्री, तेली मोमू, दोगे- सभी विभाग से लेकर घर तक पीछे पड़-पड़कर पढ़ते थे, सलाह लेते थे। कुल मिलाकर लगे रहते थे। आज जो लोग भी इनसे मिलते हैं इनकी प्रशंसा करते हैं। निश्चित रूप से इनके निर्माण में विद्यालयों से लेकर महाविद्यालय तक के शिक्षकों का योगदान है। विश्वविद्यालय, विभाग में मेरी उपस्थिति केंद्रीय स्तर पर होने के कारण इनकी प्रगति के यश का बड़ा हिस्सा मुझे मिला। डॉ. अनंत कुमार नाथ असमीया बोलकर इन्हें संभालते थे। अमरेन्द्र त्रिपाठी के विभाग में आने के बाद काफी बल मिला। चूँकि हमारे शिष्यों की उम्र अमरेन्द्र के बराबर ही थी, इसलिए पढ़ने-लिखने से लेकर पढ़ाने तक-लेक्चरर होने के बावजूद डांट-डपट उतनी ही खाते थे। आज मुझे लगता है कि विभागीय कामों के अतिरिक्त जो कुछ हिंदी का काम हमें मिल जाता था, उसमें उन्हें सहयोगी बनाकर उन्हें डांटने-डपटने का अवसर ढूंढ़ लेता था।

हिंदी विभाग को डिस्टेंस एजुकेशन प्रारंभ होने के बाद हिंदी का पाठ्यक्रम तैयार करने की एक महत् जिम्मेदारी 2006 में मिली थी। इस कार्य को बड़ी तत्परता से और बेहतर ढंग से महाविद्यालय के शिक्षकों ने पूरा किया था। उस कार्य में बेहद दबाव में बड़ी भूमिका अमरेंद्र ने निभाई थी। कई पाठ्यक्रमों के लेखक डॉ. हरीश कुमार शर्मा रहे। मेरे अनन्य मित्र डॉ. विनोद मिश्र ने अपनी पकड़ और पहुंच का उपयोग हिंदी के संवर्धन के लिए किया। वे विश्व हिंदी सचिवालय के महासचिव रहे। वे उम्र में मुझसे कुछ महीने बड़े हैं, इसलिए उनके घर में मेरी भाभी हैं। वे मित्र-भाव के अतिरिक्त पता नहीं क्यों जरूरत न होने पर भी विनम्रता और सदाशयता के भाव के साथ मिलते हैं। मुझे ध्यान है, महासचिव के पद पर नियुक्ति होने पर वे आगरा मिलने के लिए आए थे। हिंदी शिक्षण को रोचक ढंग से हिंदीतर-भाषियों में प्रस्तुत करने की उनकी शैली को मैं यहां रेखांकित करना चाहूंगा। अरुणाचल के तमाम हिंदीभाषी शिक्षकों ने यहां की परिस्थितियों के अनुरूप अपने को ढालकर हिंदी पढ़ाने में कोई कोताही नहीं बरती है। मैं व्यक्तिगत रूप से वरिष्ठ और कनिष्ठ अध्यापकों से परिचित हूं जिन लोगों ने मजबूत पृष्ठभूमि तैयार की, उनमें से कुछ महत्त्वपूर्ण नामों की चर्चा में करना चाहूंगा। डॉ. डी. आर. सिंह (अब दिवंगत), डॉ. नागेन्द्र प्रताप सिंह (अब दिवंगत), डॉ. अवधेश नारायण मिश्र (अब सेवानिवृत्त प्रोफेसर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय), प्रसिद्ध नारायण चौबे ने पाठ्यक्रम से लेकर शिक्षण-पद्धतियों तक को विकसित किया। यहां के लिए पाठ्यपुस्तकें ने तैयार कीं। डी. आर. सिंह ने अरुणाचल केंद्रित महत्त्वपूर्ण लेखन किया। अवधेश नारायण मिश्र प्रतिभा-संपन्न तो हैं ही, कई विषयों के विशेषज्ञ हैं। स्वभाव से विनम्र और हिंदी के व्यावहारिक पक्ष को मजबूत करने के पक्षधर हैं। उन्होंने अरुणाचल में अल्प समय में अपनी छाप छोड़ी है। नई पीढ़ी में बड़ी संख्या में रचनात्मक लेखक खड़े हुए हैं। तमाम प्रकार के राजनीतिक-सांस्कृतिक समारोहों में हिंदी भाषा में भाषण होते हैं, गीत गाए जाते हैं। अभी राजीव गांधी विश्वविद्यालय ईटानगर का कुलगीत हिंदी में लिखा गया है और इसे भूगोल विभाग के एक प्रोफेसर तोमो रिबा ने लिखा है। इस गीत को विश्वविद्यालय की ई.सी. (कार्यकारी परिषद) ने सहर्ष स्वीकार किया है। यह हिंदी की बढ़ती हुई लोकप्रियता और उसके प्रति सम्मान को दर्शाता है। अब मुझे अरुणाचल और भी ज्यादा अच्छा लगता है। हिंदीतर क्षेत्र में एक साथ अपने इतने विद्यार्थियों और स्वयं के हाथों निर्मित शिक्षकों को देखकर प्रसन्न होना स्वाभाविक है। ये ऐसे ही उन्नत होते रहें, यह कामना है।

*(**लेखकीय परिचय :** प्रो. नंद किशोर पाण्डेय राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, राजस्थान के हिंदी विभागाध्यक्ष हैं। इससे पूर्व आपने केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा के पूर्व निदेशक पद पर अपना बहुमूल्य योगदान दिया है तथा राजीव गाँधी विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के संस्थापक सदस्यों में आपका नाम समादृत है। केंदीय हिंदी संस्थान, आगरा के निदेशक पद पर रहते हुए आपने पूर्वोत्तर पर केंद्रित बृहद प्रकाशन योजना को शुरू किया। आपने अरुणाचल प्रदेश की अल्पज्ञात भाषा और बोलियों पर केंद्रित अध्येता-कोश और जनजातीय लोक-साहित्य का विपुल मात्रा में संकलन, संयोजन और संपादन का अभूतपूर्व कार्य संभव कराया है। मोबा: 9997659658, ई-मेल : nkpandey65@gmail.com)*

(लोकश्रुति नाट्य)

हारमती निर्वासन

मुनीन्द्र मिश्र

पात्र परिचय : पोलो डूलिया- ईटायोपा (आधुनिक ईटानगर) के राजा, हारमती- पोलो डूलिया की रानी, झील राजा- ग्याकेर सिन्यी झील क्षेत्र का राजा, रानी- झील राजा की पत्नी, मंत्री- ईटायोपा का प्रधानमंत्री, सेनापति- ईटायोपा का सेनापति, सैनिक- ईटायोपा का सैनिक, (द्वारपाल, द्वार सेविका आदि)

प्रथम दृश्य

(राजा पोलो डूलिया का मंत्रणा कक्ष, राजा मंत्री व सेनापति के साथ चर्चा करते हुए)

राजा- (चिंतित व क्रोधित स्वर में) 'आज मेरे लिए निस्संदेह कष्ट की बात है। यह सोचकर मेरा सिर शर्म से झुका जा रहा है कि मैं हिमालय की हथेली में शासन करते हुए इतना कमजोर हो गया कि मेरी जनता मेरे राज्य से लगे ग्याकर सिन्यी झील पर मत्स्याखेट नहीं कर सकती। क्या झील का तुच्छ शासक ईटायोपा के राज्य को चुनौती दे सकने की स्थिति में आ गया। मैं निश्चित रूप से उस नराधम को सबक सिखाऊंगा।'

मंत्री- (विनम्र स्वर में) 'महाराज की जय हो। महाराज मैं क्षमाप्रार्थी हूँ, परंतु झील राजा से आपकी प्रतिद्वंदिता सर्वविदित है। वे आज तक परम विदुषी सौंदर्यमयी महारानी हारमती से आपके विवाह को भुला नहीं पाये हैं और आपको उकसाने हेतु विभिन्न कार्यवाहियाँ करते रहते हैं। अत: किसी राज्य के उकसावे में हमें नहीं आना चाहिए।'

राजा- 'परंतु मंत्रिवर यह मेरे लिए असंभव है कि मैं उसकी धृष्टता को अनदेखा कर दूँ, मैं अवश्य ही उसे दंड दूँगा।'

मंत्री- 'पर राजन, अभी उनसे भिड़ने का उचित समय नहीं है। हम उनके क्षेत्र में जाकर घिर भी सकते हैं।'

राजा- 'नहीं मंत्रिवर, हम योद्धा हैं, हम समय से नहीं घबराते। सेनापति जी, आपका क्या विचार है?'

सेनापति-'मैं महाराज की आज्ञा पालन को तत्पर हूँ।'

राजा- (आदेश देते हुए) 'तो अपने योद्धाओं के साथ कुछ मछुआरों को लेकर जाइये और ग्याकर सिन्यी झील की सभी मछलियाँ पकड़ लाइए।'

'मंत्री- 'महाराज, मेरा आपसे पुन: अनुरोध है कि आप अपने फैसले पर पुनर्विचार कर लें।'

राजा- (आवेश में) 'कदापि नहीं, और मंत्रिवर हमें ऐसी सलाह मत दें कि हमें अपना गौरव भुलाना पड़े।

सेनापति जी, हमें शीघ्र ही आपसे शुभ समाचार सुनने की आशा है।'

द्वितीय दृश्य

(ईटायोपा राजा का मंत्रणा कक्ष, राजा चिंतित अवस्था में टहलते हुए...)

राजा- (स्वगत) 'सेना व मछुआरों को झील पर आक्रमण के लिए दो दिन हो गये, अब तक कोई सूचना नहीं। कहीं कोई अनहोनी तो नहीं घटी, उस दिन मंत्री जी ने मुझे बार-बार आगाह किया था, पर क्रोध के कारण मैं कुछ सोच न सका, निश्चित रूप से मंत्री जी की सलाह विचारणीय थी। (सेवक को पुकारते हुए) कौन है यहाँ पर।'

सेवक- 'महाराज की जय हो।'

राजा- 'जाओ, प्रधानमंत्री जी को बुला लाओ।'

सेवक- 'जो आज्ञा महाराज।' (सेवक चला जाता है)

(मंत्री का प्रवेश, तभी दरबान का आगमन)

मंत्री- 'महाराज की जय हो।'

दरबान- 'महाराज की जय हो। महाराज एक सैनिक ग्याकर सिन्यी झील से रुग्ण अवस्था में आया है तथा आपके दर्शन की आज्ञा चाहता है।'

राजा- (व्यग्र होकर) 'जाओ, उसे जल्दी लेकर आओ।'

(दरबान के साथ सैनिक का आगमन, दरबान वापस चला जाता है)

सैनिक- (कमजोर स्वर में) 'महाराज की जय हो।'

राजा- 'कहो, सैनिक क्या समाचार लाये हो।'

सैनिक- (रुग्ण अवस्था में) 'महाराज, सेनापति जी व सैनिक टुकड़ी जब मछुआरों के साथ झील पर पहुंची तो झील पर चारो ओर झील राजा की सेना छुपी हुई थी तथा सेनापति जी द्वारा मछुआरों को झील में उतरने का आदेश देते ही पूरी टुकड़ी को झील राजा की सेना द्वारा घेर लिया गया तथा बिना लड़ाई किये ही आत्म-समर्पण को मजबूर कर दिया गया। मुझे प्रताड़ित कर आपको संदेश देने हेतु घायल अवस्था में छोड़ दिया गया है।'

राजा- (स्तंभित होकर) 'क्या! पूरी टुकड़ी को मछुआरों सहित पकड़ लिया गया। हे भगवान! मैंने ये क्या किया, मैंने ये आवेश में आकर क्या कर डाला, मंत्रिवर आपकी सलाह न मानकर मैं पूरी सेना का दोषी हो गया। अब क्या किया जाये मंत्रिवर।'

मंत्री- 'महाराज, जो हुआ वह शायद ईश्वर का विधान था। पर अब आगे के बारे में सोचना आवश्यक है। अब निश्चित रूप से झील राजा से वार्ता आवश्यक है ताकि इस समस्या का हल निकाला जा सके।'

राजा- 'पर मंत्रिवर क्या वो अब हमारी सुनेगा?'

मंत्रिवर- 'महाराज, जो घटा है उसकी जिम्मेदारी से हम मुकर नहीं सकते। अत: इसका हरजाना तो भरना ही होगा और इसलिए वार्ता आवश्यक है, अन्यथा इतने लोगों के वहां कैद रहने पर जनता में असंतोष बढ़ सकता है। महाराज, वीरगति पाए सैनिक भविष्य के लिए उपयोगी न होकर भी सम्मान व महत्त्व का कारण बनते हैं, पर सैनिक कैद होकर अपने राजा व जनता दोनों के लिए बोझ बन जाता है।'

राजा- (टूटे स्वर में) 'पर मंत्रिवर दूत किसे भेजे?'

मंत्री- 'यदि महाराज को आपत्ति न हो तो इस हेतु मैं स्वयं प्रस्तुत हूँ।'

राजा- 'मंत्रिवर, मैं अपनी अक्षम्य त्रुटि की ज्वाला से जल रहा हूँ, मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा है, यदि मेरे जीवन से भी त्रुटि सुधार हो सके और सैनिकों तथा मछुआरों की रिहाई संभव हो तो वह भी कीजिए मंत्रिवर।'

तृतीय दृश्य

(ग्याकर सिन्यी झील राजा का दरबार)

दरबान- 'महाराज की जय हो। महाराज, ईटायोपा के प्रधानमंत्री आपके दर्शन की आज्ञा चाहते हैं।'

झील राजा- 'जाओ, उन्हें सम्मान से ले आओ।'

(मंत्री का प्रवेश)

मंत्री- 'राजन की सेवा में ईटायोपा का प्रधानमंत्री व राजा पोलो डूलिया का दूत प्रणाम करता है।'

झील राजा- 'प्रणाम मंत्रिवर। कहिये मंत्रिवर, कैसे आना हुआ?'

मंत्री- 'राजा की सेवा में निवेदन करना था। राजन हमसे त्रुटियाँ हुई जिसके परिणाम स्वरूप हमें पराजय का मुख देखना पड़ा और हमारी सेना का एक अंग, सेनाप्रमुख व कुछ ईटायोपा निवासियों को आपकी कैद में आना पड़ा। राजन मैं महाराज पोलो डूलिया की ओर से घटनाओं के लिए खेद प्रकट करता हूँ तथा राजन द्वारा निर्धारित हरजाना भरने की प्रार्थना करता हूँ।'

झील राजा- (व्यंग से) 'महाराज पोलो डूलिया का दूत। हिम पर्वत माला के गौरव महाराज पोलो डूलिया का दूत और वह हमसे अपने महाराज की ओर से क्षमा मांग रहा है। उसे अपनी विजयों तथा अपने राज्य पर बड़ा गर्व था वो अब कहाँ गया। उसे तो सबसे बड़ा गर्व उस सुंदरी रानी हारमती का था जिसके कारण आज वो पूरे हिम पर्वत माला के राज परिवारों में अपने को सर्वश्रेष्ठ समझता है। क्यों? भला वो क्या हरजाना देगा?'

मंत्री- (गुस्से को दबाते हुए धीर स्वर में) 'जो भी राजन की आज्ञा हो। राज्य क्षेत्र, संपत्ति या जो उचित लगे।'

झील राजा- (गर्व से) 'उचित लगे सो तो मैं योद्धा हूँ। क्षेत्र व संपत्ति अपने बाहुबल से एकत्र करने में विश्वास रखता हूँ और वो क्या दे सकता है? अरे, हाँ उसके पास देने लायक बहुत बड़ा भंडार है, रानी हारमती, क्या वह हमें दे सकता है?'

मंत्री- (आवेश में) 'राजन।'

झील राजा- (व्यंग्य से कठोर शब्दों में) 'मंत्री जी आवेश में मत आइये, आप दूत हैं, आपके राजा ने जब हारमती को ग्रहण किया था तो उसने स्वयं को सर्वोच्च मान लिया था और वो हारमती हमें ठुकराकर उसकी बन गई थी (थोड़ा रूककर) हाँ अब बंदियों की रिहाई बस हारमती के सौंपने पर ही संभव है।'

मंत्री- (कुछ रोषपूर्ण स्वर में) 'राजन, महारानी हारमती एक पतिव्रता नारी है, गर्भवती हैं और गर्भवती स्त्री को ग्रहण करने की बात करना भी बहुत बड़ा पाप होगा।'

झील राजा- (घमंड से) 'पाप और वो भी सौंदर्य देवी हारमती के लिए सब स्वीकार्य है, मंत्रिवर। संपत्ति के लिए मनुष्य क्या पाप नहीं करता। तुम्हारा महाराज भी मछली चुराकर पाप ही तो कर रहा था। सुंदरी हारमती तो अमूल्य रत्न है, उसके लिए सारे पाप स्वीकार्य है।'

मंत्री- (निवेदन करते हुए) 'राजन, जरा गंभीरता पूर्वक विचार करें कि एक राजा के लिए ऐसा दुराग्रह उचित है?'

झील राजा- (आवेश में) 'बस मंत्रिवर, आपने हरजाने की बात की और मैंने आपको अपना प्रस्ताव बता दिया, आप दूत है, जाइये अपने महाराज को मेरा प्रस्ताव बताइए।'

मंत्री- (हाथ जोड़कर करुण स्वर में) 'राजन, आपसे पुन: निवेदन है कि आप बड़े से बड़ा हरजाना मांग लें पर महारानी तो ईटायोपा का सम्मान हैं उन्हें न मांगे महारानी हारमती के बिना तो ईटायोपा अनाथ हो जायेगा, राजन आप ईटायोपा पर दया करें।'

झील राजा- (व्यंग से) 'मंत्रिवर, दया और ईटायोपा पर। उस ईटायोपा पर, जिसका राजा पोलो डूलिया है, कदापि नहीं। उस ईटायोपा की रानी जब तक हारमती है तब तक कदापि नहीं। बस, मंत्रिवर बस, (हाथ उठाकर) मैंने अपना प्रस्ताव आपको बता दिया जाइये अपने राजा को बताइए। अब सभी यहीं समाप्त होती है।'

चतुर्थ दृश्य

(ईटायोपा का अंत:पुर महाराज पोलो डूलिया व रानी हारमती दु:खी स्वरों में चर्चा करते हुए...)

राजा- (करूण स्वर में) 'प्रिये आज मैं शोक के अथाह सागर में डूबा जा रहा हूँ, कहीं किनारा नज़र नहीं आ रहा है। एक और राजा का महान कर्तव्य तथा दूसरी ओर मेरे जीवन आधार तुम। वह भी मेरे राज्य के उत्तराधिकारी को उदर में धारण किये हुए। हे प्रभु! तूने यह दिन क्यों दिखाया, मैंने सदैव सत्य व धर्म की रक्षा की तथा तेरी अर्चना की और आज तू ही मेरी इतनी कठिन परीक्षा ले रहा है।'

हारमती- (दुखी किंतु दृढ़ स्वर में) 'हे प्राणेस्वर, यह सब मेरे किन्हीं पापों का फल है जो मुझे आज आपसे अलग होना पड़ रहा है, पर महाराज आप धीरज रखिये। मैंने जरूर कुछ पुण्य भी किये हैं, जो आज ईटायोपा की जनता के लिए अपना प्रेम उत्सर्ग करने का अवसर प्राप्त हो रहा है।'

राजा- 'पर प्रिये, धैर्य करूँ तो कैसे। अब मेरे जीवन की नैया किस प्रकार पार लगेगी जब कि तुम्हीं न होगी, तथा मेरे जीवन का आधार जो तुम्हारे गर्भ में है वह न होगा। अब मैं क्या करूँ, एक राजा होने की इतनी बड़ी परीक्षा। एक सामान्य पुरुष होता तो प्रेम को जिम्मेदारी पर वरीयता देता, पर हतभागी मैं, पूर्वी हिमालय पर्वतमाला का गौरव, आज कितना बेबस और लाचार हूँ। हारमती क्या-क्या याद करूँ? जब तुम्हारे इस सुकोमल मुखड़े को प्रथम बार देखा था तब से आज तक यह मेरी आँखों की ज्योति बनकर रहा, तुम्हारे इन गुलाब की पंखुरियों जैसे होठों की बोली से मेरे कान सदैव संगीत का रस लेते रहे, तुम्हारे गोद पर सर रखकर मैंने सदैव निद्रा का आह्वान किया, तुम्हारे गालों की लाली को सदैव सूर्य देव की लाली से पहले देखा है। तुम्हारी हथेलियां सदैव मेरे शरीर का ताप हरती रही हैं, तुम्हारी पलकों की छांव सदैव युद्धभूमि की सारी पीड़ा भुला देती थी। हे विधाता! क्या अब तू मुझे इन सबसे वंचित कर देगा?'

हारमती- (करूण स्वर में) 'हे प्राणाधार, आप धीरज रखिये आज जीवन में पहली बार इस दासी को अवसर मिला है कि आपके कर्तव्य पथ पर आपके साथ चल सके। अब आप मुझे कमजोर न कीजिये, महाराज, आपका प्रताप ही है जो मैं आज उस नीच राजा के संरक्षण में जाने का साहस कर पा रही हूँ, पर जब आप ही धैर्य छोड़ देंगे तो में किसके सहारे साहस करूँ।'

राजा- (रोते हुए) 'हाय हारमती! किस प्रकार साहस करूँ? किन मुश्किलों से इतने इच्छुक राजाओं के होते हुए भी तुम्हें अपना बना पाया था। वह भी केवल इतने क्षणों के लिए और फिर भी कहती हो कि साहस करूँ, बताओ कैसे?'

हारमती- (रो पड़ती है) 'महाराज, अब मेरा धीरज टूट रहा है, अब मुझे वो हर क्षण याद आने लगा जो मैंने आपके प्रेम में जिया है। कल जब मंत्रिवर उस नराधम राजा का प्रस्ताव लाये थे तब मैंने मन को कड़ा कर लिया था और अपने प्रेम के सभी स्मृति चिह्नों को अपने हृदय द्वार में बंद कर साहस रूपी ताला लगा दिया था, पर अब वो ताला भी टूट रहा है, अब आप मुझे कमजोर न करें, अन्यथा प्रियवर, मैं राज्य सुख को वरीयता देने का धैर्य छोड़ दूंगी।'

राजा- (विलाप करते हुए धैर्य से) 'हारमती, लो एक बार और अपनी गोद में मेरा सर रखकर मुझे सुला दो और मेरे जागने के पहले यहाँ से चली जाओ ताकि कहीं तुम्हें जाता देखकर मैं अपना जीवन ही न त्याग दूँ या कर्तव्य पथ से विमुख हो जाऊँ या फिर उस नराधम को सबक सिखाने की सोच अपने सैनिक टुकड़ी का जीवन खतरे में न डाल दूँ।'

पंचम दृश्य

(झील राजा का अन्त:पुर राजा अपनी रानी के साथ)

रानी- राजन, 'यह मैं क्या सुन रही हूँ कि आप परम पतिव्रत, ईश्वर भक्त रानी हारमती को उसकी गर्भावस्था की स्थिति में ग्रहण/ स्वीकार कर रहे हैं। देव, गर्भावस्था की स्थिति में तो जानवर को भी कष्ट नहीं दिया जाता और आप एक नारी के साथ इतना बड़ा अत्याचार करने जा रहे हैं।'

झीलराजा- 'प्रिये, आप उस राजा पोलो डूलिया को नहीं जानती, वो केवल उस रानी हारमती के बल पर ही पूर्वी हिमपर्वत क्षेत्र में स्वयं को सर्वोच्च बनाए हुए हैं, जिसे मैं अपनी आँखों से नहीं देख सकता।'

रानी- 'तो देव, पोलो डूलिया का बदला एक गर्भवती लाचार नारी से, क्यों? ऐसा अनाचार भला क्यों देव, क्यों?'

झीलराजा- 'रानीजी, मुझे हारमती को अपने महल में देखना है, वो अब इसी महल में तुम्हारी दासी बनकर रहेगी।'

रानी- (उत्तेजना भरे स्वर में) 'तो देव, ये कहिये न कि आपकी वासना ने अपना प्रभाव दिखाया है, जो आप अपने आप को भूल गये, मैं भला किस मुख से हारमती को दासी बनाऊँगी, (ऊपर देखते हुए) हे भगवान ! इनमें ये क्या विचार भर दिये, उस पतिपरायण सदाचारी स्त्री को अपने राज्य में बलात् रोककर क्या ये तेरा कोपभाजन बनना चाहते हैं, क्या अब इन्हें राज्य का सुख अपनी कामेच्छा के स्थान पर गौण हो गया। (राजा से) देव, आप मुझे कहीं से संखिया ला दीजिए ताकि उस देवी को आपकी वासना का शिकार होते देखने से पहले यह घृणित

जीवन त्याग दूँ। राजन, यदि आप ने ऐसा करने का निर्णय कर ही लिया है तो इसे मेरी अंतिम प्रार्थना समझिये, क्योंकि मैं उस महिषी को न तो अपनी दासी बना सकती और न ही आपके वासना की क्रीड़ास्थली के रूप में देख सकती।'

झील राजा- (अप्रतिभ होकर) 'प्रिये! ये तुम क्या कह रही हो, तुम्हारे जीवन से मेरा जीवन जुड़ा है, यह बात जरूर है कि हारमती से विवाह कर पाने की असफलता अब तक मेरे हृदय को कचोटती है, पर वो कचोट हृदय में बसे तुम्हारे प्रेम के सम्मुख नगण्य है।'

(द्वार सेविका का आज्ञा लेकर आगमन)

द्वार सेविका – 'महाराज मुख्य द्वार से संदेश आया है कि ईटायोपा के प्रधानमंत्री महारानी हारमती के साथ पधार चुके हैं।

झीलराजा- 'क्या! रानी हारमती मंत्री जी के साथ पधार चुकी है, जाओ उन्हें ससम्मान अतिथि कक्ष में पहुँचाओ हम वहीं पहुँचते हैं।'

रानी- 'महामना, मैं उस महिषी के दर्शन हेतु आपकी आज्ञा चाहती हूँ।'

राजा- 'जैसी आपकी इच्छा।'

षष्ठ दृश्य

(झील राजा का अतिथि कक्ष हारमती व मंत्री सिर झुकाए खड़े हैं राजा व रानी का प्रवेश मंत्री द्वारा अभिवादन)

मंत्री- 'राजन की जय हो। मैं आज ईटायोपा की प्रतिष्ठा आपके हाथों में सौंपने आया हूँ।'

हारमती– 'राजन! यह दासी आपकी सेवा में हाजिर है, आज यह कितनी मजबूर है कि अपना प्राण भी नहीं त्यज सकती। क्योंकि कितने जीवन इस तुच्छ प्राण के साथ जुड़े हैं, खैर राजन, आप चिंतित न हो। सैनिक टुकड़ी व मछुआरों के जाने के बाद भी यह जीवन समाप्त न होगा क्योंकि एक जीव इस शरीर में उदरस्थ है और उसके बाद आपको विश्वास दिलाती हूँ कि यह शरीर आपकी सेवा में पूर्णतया समर्पित होगा। अब इस शरीर में आत्मा का निवास तो है नहीं तथा आपको हारमती का शरीर चाहिए था, हारमती अपना आत्माविहीन शरीर आपको प्रदान करने में कभी कोई कमी न करेगी।'

झीलराजा- (पश्चाताप करते हुए विनीत स्वर में) 'बहन हारमती, मैं कुछ क्षणों के लिए मदांध हो गया था। जो महापातक बनकर तुम्हारे गृहस्थ जीवन को अग्नि के भेंट चढ़ा दिया। अब मैं तुमसे क्षमा माँगू भी तो किस प्रकार यदि हो सके तो इस नराधम भ्राता को क्षमा कर दो। मंत्रिवर, आप अपनी सैन्य टुकड़ी के साथ महारानी को वापस ले जाइये। (रुककर) नहीं ठहरिये मैं स्वयं ही चलता हूँ, महाराज पोलो डूलिया के चरणों में सिर रखकर अपने अपराध के लिए क्षमा मांगूँगा, मेरा अपराध ईश्वर भी वैसे क्षमा न कर सकेगा पर यदि इस जीवन संध्या तक महाराज और महारानी से क्षमा प्राप्त हो जाय तभी मन को शांति मिलेगी, ईश्वर के दरबार में जो सजा होगी वह तो भुगतना ही पड़ेगा।'

हारमती- 'पर राजन, अब मैं ईटायोपा वापस कैसे जा सकती हूँ? मैंने आपके द्वारा इच्छित होने के बाद आपकी दासी बनकर महाराज के चरणों को त्याग दिया है, अब पुनः महाराज के हृदय में किस प्रकार स्थान पाऊँगी।

झीलराजा- 'नहीं बहन, मेरे पापों को और न बढ़ाओ, तुम लौट जाओ, अन्यथा मुझे ये जीवन त्याग कर अपना प्रायश्चित ईश्वर के सम्मुख जाकर करना होगा।'

रानी- (हारमती के चरण पकड़ते हुए) 'बहन, अपने पति के अपराधों के लिए तुम्हारे चरण पड़ती हूँ, तुम लौट जाओ, ताकि हमारा राज्य तुम्हारे सत्य के कोप से बच सके व राजन भी प्रायश्चित कर सके।'

हारमती- (रानी को उठाते हुए) 'बहन, आप भी नारी हैं, एक नारी के लिए पति का घर छोड़कर दूसरे की दासी के रूप में निकलते ही उसका शरीर अपवित्र हो जाता है। जिस प्रकार देवता के चरणों से उतारा फूल पुनः देवता के चरणों में नहीं चढ़ाया जा सकता। उसी प्रकार मैं वापस ईटायोपा महाराज की सेवा में नहीं जा सकती। मैं आज मृत्यु का वरण भी तो नहीं कर सकती क्योंकि मेरे उदर में एक निरीह जीव पल रहा है अन्यथा आज मैं अपने संपूर्ण अन्तःकरण से राजन को क्षमा कर ईश्वरलीन हो जाती।'

मंत्री- 'महारानी, आप इस प्रकार ईटायोपा व महाराज को अपने स्नेह से कैसे वंचित कर सकती हैं।'

हारमती- 'मंत्रिवर! मेरा स्नेह ईटायोपा से सदैव रहा है और रहेगा, महाराज का प्रेम ही मेरा जीवन मार्ग है, वह सदैव अक्षुण्ण रहेगा, पर मैं ईटायोपा राज्य में प्रवेश की अधिकारिणी नहीं रह गई।'

झीलराजा- 'तो बहन, मेरा एक निवेदन स्वीकार करो, मेरे राज्य में अहोम राज्य की सीमा पर एक किला है, वहीं मेरी बहन के रूप में निवास कर शासन करो तथा आने वाले बच्चे का जीवन मार्ग बनाओ।'

रानी- 'बहन, ये निवेदन स्वीकार कर हमारे पाप के बोझ को हल्का करो।'

हारमती-'जैसी आपकी आज्ञा।'

झीलराजा- 'धन्य हो देवी, निश्चय ही तुम्हारा नाम सदैव पूर्वी हिमालय क्षेत्र में अमर रहेगा व वह किला सदैव तुम्हारे नाम से जाना जायेगा।'

मंत्री- 'धन्य यो महारानी, धन्य है ईटायोपा तुम-सी रानी पाकर।'

रानी- 'आज मैं कृतार्थ हुई, बहन, जब भी नारी को अपने धर्म को याद करना होगा तुम्हारा चरित्र सदैव उन्हें मार्ग दिखाता रहेगा।'

--------पटाक्षेप----------

*(**लेखकीय परिचय:** डॉ. मुनीन्द्र मिश्र त्रिपुरा विश्वविद्यालय, त्रिपुरा में उप कुलसचिव के पद पर कार्यरत हैं। पूर्वोत्तर की भाषा एवं समाज-संस्कृति पर केंद्रित आपकी रचनात्मक भागीदारी में महनीय है। आप पूर्वोत्तर में राजभाषा हिंदी के प्रचार-प्रसार और अनुवाद कार्य में कई वर्षों से अनवरत जुटे हैं। मोबा. 8974819758, ईमेल : mishramuneendra@gmail.com)*

(सिने-साक्षात्कार)

परदे की खिड़की और दरवाजे खोले जाने का सही समय यही है

(फ़िल्मकार एवं लेखक ताई तुगुङ से याई न्योकिर की बातचीत)

प्रस्तुति: याई न्योकिर

(यह बातचीत पुरानी है। इधर के वर्ष में अरुणाचल प्रदेश का चित्रपट संसार काफी बदला है। यह बात जिन दिनों हुई थी अरुणाचल प्रदेश के लोकप्रिय निर्देशक, पटकथा लेखक, गीतकार, कवि और पेशे से अध्यापक ताई तुगुङ प्रदेश में अरुणाचली सिनेमा के सुनहरे भविष्य का स्वप्न देख रहे थे। आज वे सपने साकार होते दिख रहे हैं, तो पुरानी बातचीत को आज की तारीख में याद किया जाना उचित प्रतीत हो रहा है।- संपादक)

याई न्योकिर : आप फ़िल्म निर्देशक, पटकथा लेखक, अभिनेता के साथ शिक्षक और युवा कवि हैं। इन अलग-अलग भूमिकाओं के बीच तालमेल किस तरह बैठा लेते हैं आप?

ताई तुगुङ : इस सवाल से मैं रोज जूझता हूँ। एक तो मैं शिक्षक हूँ और दूसरा फ़िल्म कलाकार। यह दोनों बिल्कुल अलग-अलग धारा के काम हैं; लेकिन साहित्यिक दृष्टि से देखेंगे तो मैं एक लेखक भी हूं जो सबसे जोड़े रखता है। मेरे लिए लेखन 'लिंक टेक्निक' है। 'ईटानगर-जीरो किलोमीटर' फिल्म मैंने लिखी है। मेरे कई नाटक हैं। कई एकांकियां हैं। इसके अलावे कई नुक्कड़ नाटक भी हैं। मैंने ये लिखे अवश्य हैं, लेकिन इनमें अभिनय का फैसला मेरा नहीं है। दरअसल, इन नाटकों को अच्छे अभिनेता अपने प्रदेश में मिलते ही नहीं हैं। कई बार मुझे खुद करके दिखाना पड़ता है। मैं जैसा चाहता हूँ वैसा करके दिखाने में वह भूमिका मैं खुद जीने लगता हूँ। हमारे लोग भी मुझे ही अभिनेता की तरह देखने लगते हैं और मैं एक लेखक से अभिनेता की भूमिका में आ जाता हूँ। ऐसा होता तो सायास है, पर एक बार रोल में आ जाने पर इससे निकलना मुश्किल हो जाता है। हाँ, इससे मेरी शिक्षक की भूमिका प्रभावित होती है। सो तो है, इसमें बैलेंस करना बहुत मुश्किल काम है। अभी हाल ही में मुझे वह रेखा खींचना पड़ रहा है, जिसमें मैं ऐसे मसलों में ही काम करूं जो एक शिक्षक की मूल जवाबदेही को बाधित न कर पाए। वैसे मेरे शिक्षक बने रहने में कोई कठिनाई नहीं है, लेकिन यह अवश्य है कि अब मेरे नाम के फ़िल्मी चेहरे चलने लगे हैं, तो लोग अप्रोच बहुत ज्यादा कर रहे हैं कि आप यह फिल्म कीजिए। मैं प्रोफेशनली हर जगह में जा या उपस्थित नहीं रह सकता, क्योंकि मैं सरकारी नौकरी के साथ बाउंड हूं।

याई न्योकिर : आपने 'ईटानगर-जीरो किलोमीटर' की बात की। इसका कैरक्टर चीमा लोगों के दिलोंदिमाग में बस गया है।

ताई तुगुङ : 'ईटानगर-जीरो किलोमीटर' फिल्म में आप देखी होंगी कि इसमें हीरों वाला कोई चरित्र नहीं है। यह समाज के मसले को अपने ऊपर लेकर कहने वाली फ़िल्म है। इसमें फ़िल्मी मसाला या हाई बजटिंग लैंड्स्कैप नहीं है। यह चीमा होना या इस तरह का शख्सियत बनना आसान नहीं है। लोग समझते हैं, चीमा कौन है? वह खुद इस कैरेक्टर को अपना मान लेते हैं। मैं समाज का पक्ष चुनता हूँ, तो मुझे विलेन या निगेटिव रोल करना भी जंचता है। मैं प्रतिपक्ष में खड़ा होकर जब कोई बात कहता हूँ तो वह कोई 'स्लैग' या 'जार्गन' नहीं है। ऐसा होने के पीछे समाज की आँख है जो वैसा होने या बनने के लिए मुझे चुन लेती है।

याई न्योकिर : नौकरी की बंदिश से कभी कोई कठिनाई महसूस नहीं हुई?

ताई तुगुङ : बिल्कुल कठिनाई महसूस होती है। एक बार मैं एक फिल्म कर रहा था 'करप्शन' के ऊपर और मुझे कॉलेज की परीक्षा के कार्य में लगा दिया गया। मैं फंस गया जैसे। इसी तरह कॉलेज में क्लास होती है तो मुझे लेना पड़ता है, लेकिन जो शूटिंग शेड्यूल है, वह गड़बड़ा जाता है। कठिनाई यह है कि मैं प्रोफेशनली एक्टिंग को आगे नहीं ले जा सकता क्योंकि बतौर शिक्षक मैं विद्यार्थियों की भावी जिंदगी के साथ खिलवाड़ नहीं कर सकता।

याई न्योकिर : आप फिल्म करने के लिए कैसे प्रेरित हुए?

ताई तुगुङ : फिल्म करने का फैसला बहुत सालों के बाद आया। कॉलेज के दिनों में मैंने भाषा सीखने की दृष्टि से एक रंगमंच का कार्यशाला ज्वाइन किया था। संस्कृत की शब्दावली में मेरी अच्छी पकड़ थी। लेकिन उर्दू के अंदाज़ को सीखना मुश्किल था। डॉ. अरविंद गौर जी दिल्ली अस्मिता थिएटर ग्रुप के निर्देशक थे। हमारे कॉलेज में आए, तो वहां से मुझे कार्यशाला में ज्वाइन करके भाषा को सीखने का मौका मिला। उन्हीं दिनों मुझे नाटक में मुख्य भूमिका के रूप में अभिनय करने का मौका मिल गया था। अंतर महाविद्यालय नाटक प्रतियोगिता में मुझे सर्वश्रेष्ठ अभिनेता का पुरस्कार मिला तो वहाँ से एक कलाकार मन ने जन्म लिया और संभावना इसमें यह थी कि मैं भी कुछ योगदान कर सकता हूँ। ऐसा ख्याल आया और फिर मैं नाटक लिखना शुरू किया। नाटक लिखते वक्त मैंने महसूस किया कि कार्यशाला के पूरे होने के उपरांत नाटक की एकमात्र प्रस्तुति या मंचन होती है। इस मंचन के बाद पात्र गायब हो जाता है। लंबे प्रतीक्षा के बाद हुए परफॉर्मेंस के क्षणों को हमेशा के लिए कैद करने का मन हुआ तो फ़िल्म एक सही विकल्प सूझा। 'ईटानगर-जीरो किलोमीटर' फिल्म के पहले हमने तीन फिल्म किए थे। वह भी 'दा कैच' नाम से एक डॉक्यूमेंट्री फिल्म है जो CCRD के लिए किया था। दूसरी फिल्म 'अंत एक रास्ते अनेक' यह एक बड़ी डरावनी फिल्म थी एकदम अस्त-व्यस्त और इसके बाद एक फिल्म बनी 'डॉक्टर आबो'। यह न्यीशी इलाकों में बहुत मशहूर रही और इसके लिए मुझे राज्य पुरस्कार द्वारा सम्मानित किया गया। 'ईटानगर-जीरो किलोमीटर' फिल्म के लिए न्यीशी फिल्म फेस्टिवल में मुझे सम्मानित किया गया। इस मौके पर बेस्ट एक्टर के रूप में मुझे पहचान मिली। इसके बाद समाज व मेरे दर्शक वर्ग ने मुझे सपोर्ट किया और अभी भी कर रहे हैं।

याई न्योकिर : अरुणाचल प्रदेश में चलचित्र क्या स्वतंत्र मुकाम हासिल कर लेगा?

ताई तुगुङ : हां, मैं यहाँ चलचित्र के निर्माताओं के साथ, रचनाकारों के साथ लगातार संपर्क में हूँ। मैं महसूस कर सकता हूँ कि आगे चलचित्र की अपनी एक इंडस्ट्री होगी। क्योंकि जो फिल्में यहाँ बनेगी वह अद्भुत होंगी। बस शर्त यह है कि फ़िल्म इंडस्ट्री स्थापित होने की दिशा में ठोस कदम उठाया जाए। 'ईटानगर-जीरो किलोमीटर' फिल्म के बाद जो दूसरी फिल्म बनी है उसने काफी पैसा कमाएँ हैं। निर्देशकों को पैसा मिल रहा है और अभिनेताओं को भी। मुझे लगता है कि इसको ऑर्गेनाइज तरीके से आगे जाने की जरूरत है। एक दशक के अंदर यह और ऑर्गेनाइज और सिस्टमेटिक होगा क्योंकि अब सरकार भी साथ देने लगी है। जल्द ही जमीन पर बदलाव दिखेंगे। कई कलाकार एनएसडी पहुंचे, आईआईएफटी में दाखिला हुआ। यहाँ भी फ़िल्म प्रशिक्षण के

केंद्र खुल गए हैं। फ़िल्म में रुचि और प्रदर्शन की मांग बढ़ी है। आशा है, चलचित्र का क्षेत्र स्वतंत्र मुकाम बना ले।

याई न्योकिर : आगे की योजना या अपनी जिम्मेदारी को कैसे देखते हैं?

ताई तुगुङ : मैंने राजीव गांधी विश्वविद्यालय से एम.ए की पढ़ाई की है। यहां गेस्ट लेक्चरर भी रहा। अभी कॉलेज में पढ़ा रहा हूँ। मैंने महसूस किया है कि हिंदी के विद्यार्थियों में आत्माविश्वास की बहुत कमी रहती है। उनको प्रेरित करने के लिए लिखने का कार्य मुझे करना ही होगा और उन्हें यकीन दिलाना होगा कि अभिनय करके भी नाम कमाया जा सकता है। यह यकीन मैंने खुद में पैदा किया है। मुझे इस तरह के हिंदी के विद्यार्थी का निर्माण खुद करना होगा। हिंदी से जो संभावनाएं बनती हैं, उन संभावनाओं को अग्रिम पंक्ति में लेकर मुझे खुद खड़ा रहना होगा। यह मेरी अपनी समझ है। मेरी इल्तजा होगी कि यह मैं कह रहा हूँ तो इसे एक अहंकार के रूप में न देखा जाए। लेकिन कम से कम इस समय की सच्चाई यही है। हिंदी के विद्यार्थियों में आत्मविश्वास की बहुत कमी है। जैसे ही नौकरी लग जाती है बस उनको फिर कुछ करना नहीं है। मुझे यह बहुत अपर्याप्त लगता है। जितना मैंने किया है, वह भी बहुत कम है। हमें और ऑर्गेनाइज तरीके से बढ़ना चाहिए क्योंकि हम अंग्रेजी के माध्यम से अरुणाचल प्रदेश की संस्कृतियों को सहेज कर नहीं रख सकते। उसकी अपनी सीमा है लेकिन हिंदी में वह काबिलियत है जो सबके बीच खड़े होकर बोलें, तो सभी सुन लेंगे। हिंदी यहां की आम जनता की जिंदगी में इतनी रची बसी है कि हिंदी के लोगों को उस भूमिका को निभाना ही होगा।

याई न्योकिर : युवा अवसर ढूंढता है, आप परदे की इस फ़िल्मी दुनिया में क्या संभावना देखते हैं?

ताई तुगुङ : युवा के पास अवसर है। इस क्षेत्र में जी-जान से लगा जाए तो बिल्कुल सफल हुआ जा सकता है। सिर्फ अरुणाचल प्रदेश ही नहीं नॉर्थ ईस्ट बहुत बड़ा बाजार है। अरुणाचल, असम, मिजोरम, नागालैंड, त्रिपुरा के पहाड़ी इलाके हैं। यहाँ की जीवनचर्या लगभग समान है। जैसे असम की बहुत समृद्ध फिल्म की परंपरा है तो असम के साथ रिलेशन बनाया जा सकता है। नॉर्थ ईस्ट के सेवन सिस्टर में अगर इंडस्ट्री क्रिएट किए जाएंगे तो मुझे नहीं लगता कि पैसों की कमी होगी। ऑपर्च्युनिटी की कोई कमी नहीं होगी। एक बात मैं यहां जोड़ना चाहूंगा- संभावनाएँ क्यों है हमारे यहाँ-क्योंकि हमारे आदिवासी लोक-साहित्य में इतनी ताजगी और मौलिकता है कि हमारे पास कंटेंट और कैरेक्टर की कमी नहीं है। चाहे आप अरैबियन फिल्म को देखिए, चाहे आप साउथ ईस्ट या किसी भी फिल्म को देखिए, दुनिया में अब कंटेंट की कमी हो गई है। लेकिन अरुणाचल प्रदेश में इतनी कहानियाँ, कथाएँ हैं कि हम बाजार को यकीन ही नहीं दिला पा रहे हैं। अगर जिस रोज यह पहल हो गई, मुझे नहीं लगता कि हमें कहीं बाहर जाने की जरूरत नहीं होगी और मुंबई जैसी इंडस्ट्री एक दिन हमारे ईटानगर में निश्चित रूप से बनेगी।

याई न्योकिर : ईटानगर जीरो किलोमीटर में आपने युवाओं पर अपना फोकस ज्यादा किया था। आगे भी आप युवाओं की मानसिकता और उनके रोजमर्रा के जीवन संघर्ष को दिखाना चाहेंगे या फिर कुछ अलग?

ताई तुगुङ : मैं शिक्षक हूँ उस दृष्टि से मैं युवाओं पर केंद्रित फिल्में बनाता रहूँगा। 'ईटानगर-जीरो किलोमीटर' पार्ट 2 मैंने लिखी है जिसमें मैंने अरुणाचल प्रदेश की शिक्षा व्यवस्था के ऊपर काम किया है। स्क्रिप्ट लगभग पूरी की जा चुकी है। इसमें भारत वर्ष के सीबीएसई सिस्टम के ऊपर काम करने की कोशिश कर रहा हूं। ऐसा

लगता है कि हमारे यहाँ जो शिक्षा की व्यवस्था या कि परंपरा है, हम लोग प्राचीन काल ही नहीं, आदिकाल के जमाने में पढ़ने और पढ़ाने का काम कर रहे है। मैं जानबूझ कर इन शब्दों का इस्तेमाल कर रहा हूँ। पूरी दुनिया डिजिटलाइज हो चुकी है। ऐसी स्थिति में हम कहाँ खड़े हैं। कॉलेज में ऐसे बच्चे आ रहे हैं कि वह बड़े तो हो गए किसी तरह, लेकिन भीतर से उनको कीड़ा खाया हुआ है। उनकी न हिंदी की बुनियाद अच्छी है, न ही अंग्रेजी की और उनको इतना भी हिम्मत नहीं है कि वे इस प्रदेश से बाहर जा कर काम करें। इस कॉन्सेप्ट को आधार बनाकर कि आखिर उनको कीड़ों ने क्यों खाया है, के सवाल को चलचित्र के माध्यम से उठा रहे हैं। मैं एक शिक्षक होने के नाते उनकी मजबूरियों को समझता हूँ तथा इन मजबूरियों को ही मैं फिल्म रूप में दर्शाने की सोच भी रहा हूँ। ऐसे युवा लोगों की ओर इशारा करके मैंने चंद पंक्तियाँ लिखी है जो आपसे साझा करता हूँ :

“हम तो जैसे कटी पतंग हैं
आसमान में आवारा उड़ने को
पंख काटे पंछी के जैसे
उड़ना चाहे पर उड़ नहीं पाते हैं।”

*(**लेखकीय परिचय :** याई न्योकिर राजीव गाँधी विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के पीजीडीएफएच पाठ्यक्रम की विद्यार्थी रह चुकी हैं। ताई तुगुङ युवा फ़िल्मकार एवं लेखक हैं।)*

(पुस्तक समीक्षा)

अनकही दास्तान: मामांग दाई की कृति 'काली पहाड़ी'

नानाङ यीराङ

'काली पहाड़ी' साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत पद्मश्री मामांग दाई द्वारा लिखित 'द ब्लैक हिल' का हिंदी अनुवाद है। इसका अनुवाद कंचन वर्मा ने किया है। इस उपन्यास के केंद्र में है प्रेम और प्रेम का विभिन्न रूप। उपन्यास में प्रेम के साथ-साथ धोखा तथा साजिश है, धर्म और दर्शन है, डर-अनिश्चितता व शक है, एक मिशन है, सच्ची दोस्ती है, प्रकृति है, कल्पना है और इतिहास भी है। इस विशाल दुनिया की हजारों-लाखों कहानियों में एक अनकही कहानी है जिसके मध्य में प्रेम, यात्रा और भावनाएं है। गिमुर और कजिंशा का रोमानी इश्क तथा फादर क्रीक का भक्ति प्रेम सुदूर पूर्वी हिमालय के गहन-घने जंगलों के बीच परस्पर ऐसे टकराते है कि केवल इन तीनों की ज़िंदगियाँ ही नहीं अपितु, इन पहाड़ों में रहने वाले सभी आदिवासी समाज और स्वयं ये पहाड़ आपस में गुत्थमगुथ जाते हैं। उपन्यासकार ने पाठकों के लिए रहस्यात्मक ढंग से कई चीजें छोड़ दी है, यहाँ तक कि वह चाहती है कि सब अपने स्वादानुसार ही अपना खाद्य अपनी थाली में रखें।

उपन्यास में प्रेम के विभिन्न रूप हैं। यहाँ गिमुर और कजिंशा का रोमानी इश्क है और लेंडेम का गिमुर के प्रति निशर्त प्रेम भी है जो सिर्फ देना जानती है, यह प्रेम-त्रिकोणीय है। यहाँ माँ का असीम ममतामई प्रेम है, ज़मीन व मातृभूमि से न बिछड़ पाने वाला प्रेम। भगवान के प्रति अगाध श्रद्धामय प्रेम है और सच्ची दोस्ती का हार्दिक स्नेह भी है। उपन्यास के केंद्र में गिमुर और कजिंशा का रोमानी प्रेम है जो दुर्गम रास्तों, जंगलों, नदियों इत्यादि प्राकृतिक कठिनाइयों से लेकर विदेशी आगंतुक अंग्रेज़ तथा इसाई धर्म-प्रचारकों से होकर गुज़रता है। यह उनके जीवन की विडंबना है कि प्रेम बांटने के नाम पर आने वाला फादर क्रीक इन दो प्रेमियों के दु:खद बिछुड़न का कारण बन जाता है। मेबो की गिमुर और दाऊ घाटी का कजिंशा का प्रेम अरुणाचल (उस वक्त कोई निश्चित नाम व सीमा नहीं थी) की दुर्गम पहाड़ी रास्तों, छोटे-बड़े नदियों तथा अभेद्य जंगलों से होकर मिलता है। इनकी भाषा अलग-अलग है ये एक-दूसरे की भाषा आपस में समझ नहीं सकते किंतु, ये प्रेम की भाषा समझते हैं। जब शक धीरे-धीरे दूर होता है और गिमुर तथा कजिंशा संपूर्ण रूप से एक-दूसरे के ऊपर भरोसा करके समर्पण करते हैं, तब पनपता है प्यार, ऐसा प्यार जो दोनों को अलग करके भी अलग नहीं कर पाता दो जिस्म एक जान। खेत की छोटी से झोपड़ी में उस बरसाती रात में अनमनी तरीके से दाऊ घाटी के उस अनजान व्यक्ति को प्रवेश करने से लेकर हर रात एक शब्द भी न कहकर परस्पर संगत को मौन रूप से अनुभव करना उनके प्रेम का स्वाभाविक चरण था। उनके प्रेम की परिणति पहाड़ की पृष्ठभूमि वाले उस छोटी-सी झोपड़ी में अँधेरी रात में हुई जहाँ दोनों एक-दूसरे के धड़कनों को सुन सकते थे और दोनों के दरमियाँ सब-कुछ हट गया था। उनका प्रेम शुद्ध था दोनों एक-दूसरे के शरीर के पोर-पोर से होते हुए अंतर्मन तक पहुँच गए थे। गिमुर कजिंशा के प्रेम में अपनी माँ, गाँव, दोस्त सब कुछ छोड़-छाड़कर अत्यंत दुर्गम पहाड़ी रास्तों व नदियों से होते हुए एक ऐसे जगह चलने को तैयार हो गई जिसके अस्तित्व का ज्ञान भी उसको आज से पहले नहीं था। कजिंशा और गिमुर का प्रेम निश्छल था, इसलिए उगेन मारपा का इस बलशाली वीर योद्धा के साथ किसी तरह रिश्ता बनाए रखने की चाल

असफल रही। छोमु की देह की गर्माहट पाकर भी कजिंशा गिमुर के पास लौटना चाहता है। जुड़वा बच्चे में से एक स्वस्थ बच्चा मर जाने के बाद दोनों के वैवाहिक जीवन में दरारें पैदा होने लगती हैं और गिमुर इस चीज से परेशान होकर अपने गाँव लौट जाती है। एक दिन अचानक मेबो में कजिंशा और उसकी पहली पत्नी औली का बेटा अवेसा खेत में गिमुर के आगे प्रकट होकर कहता है कि पिता जी ने उसे लेने भेजा है तब वह कजिंशा से नाराज़ होकर भी उससे मिलना चाहती है, उसके संग प्यार भरी बातें करना चाहती है किंतु, अपनी आंतरिक इच्छा ज़ाहिर न करते हुए, वह अवेसा को सीधा-सीधा मना करने के बजाय बाद में आने का आश्वासन देकर उसे विदा करती है। औरत और उसके प्रेम को आज तक कौन समझ सका है। जब औरत प्रेम में पड़ती है तो अपने प्रिय के समक्ष कोमल कलि बन जाती है और जब उसी प्रिय पर किसी तरह की आंच का भी आभास उसे होता है तो वह दहाड़ती सिंघनी बन जाती है। अपने प्रिय के खातिर वह क्या पहाड़, क्या नदी वह तो जलती आग पर भी चल दे। उपन्यास के अंत में गिमुर चाऊसा, लेंडेम और अन्य साथियों की मदद से डिब्रूगढ़ जेल में कैद कजिंशा से मिलने निकल जाती है वह अत्यंत ही मार्मिक क्षण था। बंदूकदारी मिगलुनों से कजिंशा को छुड़ा पाना असंभव ही था किंतु वह अंतिम बार अपने प्रिय को जी भर के देख लेना चाहती थी। इस रोमानी प्रेम के अलावा यहाँ एक ऐसा शुद्ध, पवित्र व निश्चल प्रेम भी है जो सिर्फ देना जानता है, लेंडेम का गिमुर के प्रति प्रेम। लेंडेम गिमुर से दस वर्ष बड़ा था। किंतु मात्र उसका सान्निध्य पाने के लिए वह गिमुर के रंग में रँग जाता था। उसे गिमुर और कजिंशा के चक्कर के बारे में पता था, वह चाहता है कि गिमुर उस व्यक्ति से न मिले और उससे संबंध गहरा न करे इसके बावजूद भी लेंडेम उसे नहीं रोकता और न ही कजिंशा से अपनी दोस्ती खट्टा करता है क्योंकि उसे पता है गिमुर की ख़ुशी कजिंशा के साथ है। गिमुर की माँ की मृत्यु का अंतिम संस्कार भी लेंडेम अपने ऊपर लेता है। वह गिमुर को अंतर्मन से चाहता है। वह गिमुर को प्राप्त करना नहीं चाहता, वह तो गिमुर की आत्मा से प्रेम करता है और हर हालत में उसकी भलाई चाहता है। गिमुर की गैर-जिम्मेदाराना और लापरवाह व्यवहार पर उसे गुस्सा तो आता है किंतु, जब वह गिमुर की व्यथा सुनता है तो उसका हृदय दया से भर जाता है। अवेसा के गिमुर को लेने आने की बात सुनकर वह अंदर से दुखी होकर भी उसे कजिंशा के पास लौटकर एक नई शुरुआत करने को कहता है। उसका शुद्ध प्रेम बड़े भाई की भांति गिमुर की ख़ुशी और भलाई मात्र ही सोचता है। वह स्वयं गिमुर को कजिंशा के हाथ में सौंपकर आता है और अंत तक गिमुर का साथ नहीं छोड़ता। प्रेम-त्रिकोणीय होने के साथ-साथ उपन्यास में प्रेम के विविध रूपों को सुंदर तरीके से रेखांकित किया गया है। "सारा जीवन केवल इसी प्रेम भावना के बारे में था जो अब उसके दिल में उमड़-घुमड़ रहा था। जब यह टूटकर टुकड़ों में बिखर जाएगा तब उसके साथ जो बचा रह जाएगा वह होगा प्रेम, सिर्फ प्रेम।"

'काली पहाड़ी' में सच्ची मित्रता को उत्सवित किया गया है। गिमुर और लेंडेम की दोस्ती जो अगाध है किसी प्रकार का कोई लाभ-हानि, छल-छलावा नहीं है। कजिंशा और लेंडेम की दोस्ती में आपसी समझ, ज़िम्मेदारी व परिपक्वता है। चाउसा अंग्रेजों के बीच रहकर भी अपने आदिवासी दोस्तों के प्रति गहरा प्रेम रखता है। वह हरदम अपने दोस्तों के लिए तैयार है। चाऊसा का रिस्तेदार योंग अंग्रेजों का सिपाही है, अपनी नौकरी और जीवन के दाव पर वह लेंडेम और गिमुर को कजिंशा तक पहुंचाता है। लासोंग भरे अँधेरे में उन्हें नदी के मार्ग से होता हुआ जेल तक ले जाता है। उपन्यास में विदेशी फ़ादर क्रीक का कजिंशा तथा लेंडेम की दोस्ती का भी सुंदर वर्णन है।

उपन्यास की पृष्ठभूमि अरुणाचल प्रदेश है, किंतु उस वक्त यह नाम नहीं पड़ा था, न यह क्षेत्र अंग्रेजों के चंगुल में आया था और न ही भारत-तिब्बत की सीमा स्पष्ट रूप से सुनिश्चित थी। 'काली पहाड़ी' में यहाँ के आदिवासी समाज का वर्णन है। अरुणाचल का आदिवासी समाज पितृसत्तात्मक समाज है। पैतृक समाज में एक औरत की क्या विडंबना होती है लेखिका ने विस्तार से कहने की कोशिश की है। "खून के रिश्तों की कहानियों में अक्सर औरतें गुमनाम तथा भूला दी जाती है।" इस समाज में औरत की पत्नी तथा बहु धर्म तभी पूरा होता है जब वह खानदान को पुत्र जन कर देती हैं। जिन वैवाहिक जोड़ी के बच्चे, खासकर पुत्र नहीं होते उनकी समाज में कोई इज्ज़त नहीं होती है। "कोई बच्चा नहीं, कोई सामाजिक स्वीकृति नहीं! इस नियति की नब्ज़ थी जन्म-मरण की अनवरत हलचल, जो एक ही चीज़ पर टिकी थी- पुत्र जन्म।" यहाँ जनजातीय समाज में विद्यमान रीति, परंपरा, संस्कृति, रूढ़ियों, निषेध आदि का भी वर्णन किया गया है। उपन्यास में आदिवासी समाज के सहज-सरल जीवन तथा उस सहज-सरल जीवन शैली से प्रदर्शित दर्शन और धर्म का भी वर्णन है। इन आदिवासियों के पास अपनी कोई लिपि नहीं है। बाहर से आए आगंतुकों की नज़र में इनके पास कोई धर्म भी नहीं है किंतु, इनकी समग्र जीवन शैली ही अपने आपमें इनका धर्म, लिपि, पहचान और दर्शन है। पूर्वज इनके शुभचिंतक हैं और साक्षात प्रकृति इनका भगवान और रक्षक- "ऐसा क्या है जो मैंने नहीं जाना? मैं इस भूमि को जानता हूँ, मैं हमेशा से यहाँ रहा हूँ। अपने पूर्वजों के माध्यम से इन सबका हिस्सा हूँ मैं! मैं जानता हूँ और अगर उनके बारे में कुछ नहीं बोलता तो ऐसा सिर्फ इसलिए है क्योंकि मुझे पता है कि शब्द चुराए जा सकते हैं। और फिर मुझे फिर कुछ कहने की क्या ज़रूरत? ...उसके पूर्वज चुप थे। वे आराम कर रहे थे लेकिन वह जानता था कि वे उसकी हर हरकत पर नज़र रख रहे हैं।" फ़ादर क्रीक के यह पूछने पर कि आप किस पर विश्वास करते हैं? कजिंशा बहुत सहज रूप से जवाब देता है, "मैं जीवन में विश्वास करता हूँ।" वह आदिवासी दर्शन को अत्यंत कम शब्दों में बहुत गंभीर रूप से बयाँ करती है। इनका कोई एक प्रमुख भगवान नहीं है, किंतु नदी, पहाड़, जंगल, खेत, जानवर इत्यादि प्रकृति के हर अंश में एक अच्छी तथा बुरी आत्मा विद्यमान है और ये लोग अच्छी आत्माओं की पूजा करते हैं। कांब्रिंग, मीरी इत्यादि अलग-अलग नामों से जाना जाने वाले ये धर्मगुरु आत्माओं और मनुष्य के बीच मध्यस्थ हैं। इन जनजातीय लोगों के पास बाइबिल, कुरान या गीता जैसे कोई पवित्र ग्रंथ नहीं हैं, ये लोग साक्षात धरती माँ यानी ज़मीन को पढ़ते हैं। अन्य धार्मिकों की तरह ये रोज़ पूजा-प्रार्थना नहीं करते किंतु इनकी जीवन पद्धति ही अपने आप में इनकी पूजा-प्रार्थना है क्योंकि इनका जीवन ही देवताओं द्वारा संचालित है। "हम ज़मीन पढ़ते हैं। ज़मीन हमारी किताब है। इस पहाड़ी पर, यहाँ की घास और चट्टानें और पत्थर, सब बातें करते हैं। और आकाश से गिरने वाली- बारिश, गड़गड़ाहट और बिजली भी! आत्माओं की आवाजें हमें बातें बताती रहती हैं। इस तरह हमने सीखा है कि क्या अच्छा है या क्या मीठा या कड़वा! यहाँ रहकर, दिन और रात के दौरान क्या होता है... हर दिन सैकड़ों वर्षों तक, यह सब हमने सीखा है।" आदिवासी सहज जीवन जीते हैं। इनका जीवन भौतिक चीज़ों से बंधा हुआ नहीं है, बहुत कम में ही ये जीते और संतुष्ट रहते हैं। यह अपने जीवन यापन के लिए पूरी तरह प्रकृति पर निर्भर रहते हैं। इनको यहाँ से वहां जाने के लिए अधिक सामान की आवश्यकता नहीं पड़ती, बस अपनी सुरक्षा के लिए एक चाकू या दाव अपने पास रख लेते हैं, बाकी सब धरती माँ पर छोड़ देते हैं।

'सोसाइटी द मिशंस इटर्नेजर्स', एक ऐसा मिशन जो सात समुंदर पार परियोजित किया जा रहा था। इस मिशन का मुख्य उद्देश्य है, विधर्मियों को ईसाई धर्म में परिवर्तित करना और पृथ्वी के कोने-कोने में प्रभु येशु का

प्रेम-संदेश का प्रचार-प्रसार करना। फ्रांस के लोरेन प्रांत में जन्मे निकोलस माइकल इस मिशन के अंतर्गत सुदूर हिमालय पूर्वी के पहाड़ी क्षेत्र में जाता है। सामानांतर रूप से अलग-अलग महाद्वीपों में चल रहे निकोलस उर्फ़ फादर क्रीक और गिमुर व कजिंशा नियति से अनजान इत्तेफ़ाक से टकराते हैं, और सदा के लिए उन सबकी जिंदगी बदल जाती है। इस मिशन में एक जूनून था, एक तीव्र आकर्षण कि उसके सामने दुर्गम पहाड़ी रास्ते, दलदली रास्ते, जंगली कीड़े-मकोड़े, बीमारी इत्यादि क्षीण हो जाती है, यहाँ तक कि जिंदगी का भी कोई ठिकाना नहीं। एक ऐसा मिशन जहाँ अपने घर-बार, परिवार तथा मातृभूमि का मोह को त्यागकर महीनों की यात्रा करके इतनी दूर एक अनिश्चित अनजान भूमि में चले आएं। "यह उसकी मृत्यु थी जिसने उन्हें शाप दिया था! उसे क्यों मरना पड़ा? वह यहाँ किसलिए आया था? उससे इतनी दूर? वह उनकी भूमि, उनके जीवन और उनके विचारों के बारे में क्या जानता था? आख़िरकार उसने क्या हासिल किया? वह उसे स्निग्ध भाव से देखकर मर गया जिसने उसकी आत्मा को अंदर तक चाक कर दिया था।"

उपन्यास की सबसे बड़ी विशेषता इतिहास और कल्पना का सम्मिश्रण है। उपन्यासकार ने ऐतिहासिक और काल्पनिक तत्त्वों को इतने सुंदर तथा सूक्ष्म ढंग से प्रस्तुत किया है कि पता ही नहीं लगता क्या कल्पना है और क्या इतिहास। लेखिका की वर्णन शैली इतनी प्रभावशाली है कि एक बिंदु में आकर यह बता पाना भी मुश्किल हो जाता है कि उपन्यास में प्रेम-त्रिकोणीय तथा मिशन जेसुइट में कौन काल्पनिक है अथवा कौन ऐतिहासिक है। फ्लैशबैक और फ़्लैश-फॉरवर्ड की तकनीक से उपन्यास जी उठने के साथ-साथ रहस्यात्मक हो गया है और इतिहास व कल्पना को एकमेक कर देता है। "श्रीमती कटर, वही महिला थी, जिन्होंने काफी बरस पहले अबोर पहाड़ी की एक आदिवासी लड़की को एक किताब दी थी। यह एक वर्तनी की पुस्तक थी जो अब किसी गिमुर नामक लड़की के पास थी। लेकिन क्रीक को कभी भी इस बात का पता नहीं चल पाएगा। उनके-क्रीक तथा गिमुर के जीवन के रास्ते एक दूसरे से मिलेंगे ज़रूर लेकिन न तो उनकी आपस में कोई बातचीत होगी, न कोई गोपनीय बात साझा की जाएगी और न ही किसी जिंदगी के बारे में बताया-समझाया जाएगा।" पाठक पढ़ते हुए महसूस करेंगे कि दाऊ घाटी की ओर बढ़ती गिमुर तथा मेबो की ओर बढ़ते फ़ादर क्रीक का उस पहले टकराव के बाद इतिहास और कल्पना की रेखा मद्धम होते-होते कब ओझल हो जाती है आभास नहीं होता। इतिहास और कल्पना की यह जुगलबंदी वाकई में इस उपन्यास की जान है।

'काली पहाड़ी' में पाठक के लिए बहुत कुछ है। यहाँ 19वीं शताब्दी के सुदूर पूर्वी हिमालय पहाड़ियों में बसे आदिवासियों के अस्थायी जीवन पद्धति का सुंदर वर्णन है, आदिवासी समाज में विद्यमान रूढ़ि तथा निषेधों को सहज तरीके से पेश किया गया है, परस्पर संप्रेषणीयता कम हो जाने से कैसे मिठास भरे रिश्तों में भी कड़वाहट पैदा हो जाती है कजिंशा और गिमुर की वैवाहिक जीवन के माध्यम से देखा जा सकता है। उपन्यास की स्त्री पात्र गिमुर, नागो, मोई, येन्जी तथा औली सबका व्यक्तित्व और जीवन व्यथा एक-दूसरे से भिन्न है और सब अपने ढंग से अपनी लड़ाई लड़ रही है। उपन्यासकार ने संबंध व रिश्तों के विभिन्न रूपों को कलमबद्ध किया है। पति-पत्नी का रिश्ता, सौतेली माँ और बेटे का रिश्ता, अंतर कबीलाई रिश्ते, पड़ोसी देश के साथ रिश्ते, विदेश से आए अनजान व्यक्तियों के साथ रिश्ते, प्रकृति के साथ मनुष्य का रिश्ता, राजनैतिक रिश्ते, रणनीतिक रिश्ते आदि। उपन्यास की एक बड़ी शैलीगत विशेषता यह है कि, उपन्यासकार कहीं भी आवश्यकता से ज्यादा विस्तारपूर्वक वर्णन नहीं करती वह यह भार पाठकगणों पर छोड़ देती हैं कि वे अपने ढंग से ग्रहण करें और इसी

कारण उपन्यास एक हद तक रहस्यात्मक बन पड़ा है। प्राक्कथन में लेखिका लिखती है- "पाठक यह स्वयं निर्णय करें कि यह कहानी सच है या नहीं। हालाँकि मेरा मानना है कि हर घटित वाकये के आख़िर में, जो बात वाकई मायने रखती है वह है शुद्ध प्रेम; और स्मृतियाँ जो जीवन देती हैं, और जीवन...सतत है।"

कंचन वर्मा द्वारा 'काली पहाड़ी' अनुवाद सराहनीय है। श्रोत भाषा से लक्ष्य भाषा में अंतरित करते हुए अनुवादकार ने बोधगम्यता पर पूरा-पूरा जोर दिया तथा सहज-सरल भाषा का प्रयोग करते हुए भी साहित्यिकता कहीं भी भंग नहीं हुई है। यह अनुवादकार का कौशल और कुशल दोनों का प्रमाण है। कमान लाई कजिंशा और तिब्बती उगेन मारपा का परस्पर 'किसिरो, खाम्सी चाऊसा का अबोर (आदी) लेंडेम को 'कैप्मी' के नाम से संबोधनों को ज्यों का त्यों रहने देना स्थानीयता की रस को दृढ़ करता है जो अनुवादिका की कुशलता का परिचय देता है। उपन्यास में मिगलुन, कांब्रिंग, मीरी, इप्पो, काकुंग, तगात इत्यादि शब्दों को यथास्थान रखकर स्थानीयता की रस-धारा बहने देना अनुवादित रचना की सफलता है। अनुवादिका उस पहाड़ी आदिवासी समाज से बावस्ता नहीं रखती है इस कारण मबो, खंपटी, रशेंग, मॉशअप, असी इत्यादि जैसे कुछेक शब्दों की उच्चारणगत वर्तनी नहीं लिख पाई है, जो स्वाभाविक तथा सूक्ष्म दोष है। अनुवादित रचना में मुख्य होती है भाषा की स्वाभाविकता तथा रस का निरंतर प्रवाह जो कंचन वर्मा द्वारा अनुवादित 'काली पहाड़ी' में बेशक विद्यमान है। प्रेम, दोस्ती, रिश्ते, धर्म, दर्शन, विश्वास आदि मानवीय मूल्यों को खोजती कल्पना और इतिहास के सम्मिश्रण से लिखा गया यह उपन्यास अत्यंत पठनीय है। समुद्री यात्रा, पहाड़ी यात्रा, जंगली यात्रा तथा नदी यात्रा के अलावा यहाँ एक यात्रा और है जो अंदर की ओर जाता है, अर्थात अंतर्दर्शन व आत्मनिरीक्षण। कथानक के दौरान कभी पात्रों के माध्यम से कभी स्वयं आगे आकर लेखिका का जो गहन विचार उपन्यास में उभरा है वह सच में पाठक को अंतर्दर्शन की ओर ले जाता है और गहन विचार करने पर मजबूर कर देता है- "हम डरते हैं, क्योंकि हम यात्राएं नहीं करते।"

*(**लेखकीय परिचय :** नानाङ यीराङ राजीव गाँधी विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में शोधार्थी हैं।*

मोबा: 7005045118, ई-मेल : nanangyirang80@gmail.com)

(पुस्तक समीक्षा)

अरुणाचली स्त्री के श्रम, संघर्ष और साहस का जीवंत दस्तावेज 'मेरी आवाज़ सुनो'

राजीव रंजन प्रसाद

हिंदी साहित्य लेखन का इतिहास अरुणाचल प्रदेश में बहुत पुराना नहीं है। हिंदी साहित्य में शुमार आप जिन भी लेखकों को जानते हैं, उनमें सबसे पहले जुमसी सिराम का नाम समादृत है। अरुणाचल प्रदेश के उपन्यासकारों में जुमसी सिराम हिंदी के पहले लेखक हैं। उनका उपन्यास 'मेरी आवाज सुनो' अनुज्ञा बुक्स से इसी वर्ष छपकर आया है। यह पुनर्प्रकाशित उपन्यास आदिवासी स्त्री के जज़्बातों को बहुत ही सजीव ढंग से दिखाता है; जीवंत तरीके से चित्रण करता है। इस उपन्यास की कथावस्तु में स्थानीयता-बोध का वैश्विक-सूत्र है, जिसमें स्त्री की बराबर की हकदारी और मुक्ति की बात अनुरक्षित है। सामाजिक बंधनों में जकड़ी स्त्री अपनी पीड़ा और वेदना में किस तरह घुटती है तथा अपने जीवन के तमाम संत्रास झेलती है; यह इस उपन्यास का मुख्य प्रतिपाद्य है। जुमसी सिराम कथा-चरित्र के बाबत कहते हैं-''यह उपन्यास हमारे प्रदेश में फैली एक कुरीति 'नेप्प निदा' की आलोचना करता है। 'नेप्प निदा' का मतलब है- पेट विवाह। इस उपन्यास के कथानक में कुछ सच्ची घटनाएँ भी शामिल हैं। लेकिन उपन्यास की आधारभूमि का किसी व्यक्ति या घटना से सीधा संबंध नहीं है।" पुराने घाव भर भले जाते हों, लेकिन उसकी टीस जिंदा रहती है। लेखक को गालो जनसमाज की यह कुरीति आदिवासी चेतना के विरूद्ध मालूम हुई, जिसको केंद्रीयता प्रदान करते हुए इस उपन्यास की रचना की। 'नेप्प निदा' पर आधारित यह उपन्यास वास्तव में आदिवासी आत्मा की अकुंठ मुक्ति का उपन्यास है। देखना होगा कि आप चाहे कितने भी आधुनिक अथवा प्रगतिशील क्यों न हो जाएँ; पुरानी परछाई याद आती ही है। आज अरुणाचल प्रदेश की स्त्रियाँ जितनी उन्मुक्त, अपने निर्णय लेने में स्वतंत्र, अनाश्रित, आर्थिक रूप से संपन्न आदि दिखाई पड़ती हैं; यह सब बदलाव पिछले कुछ दशकों का है। इसमें भी आंशिक सच्चाई ही है। दरअसल, यह बदलाव ऊपरी तौर पर स्त्रियों की उन्मुक्त छवि और उनकी स्वतंत्र इयता को दिखाता है, लेकिन आंतरिक सचाई कुछ और ही है। अरुणाचल प्रदेश का आदिवासी समाज स्त्रियों को लेकर कई तरह के 'टैबू' को स्वीकार करता है। बहुपति विवाह, बहुपत्नी विवाह आदि प्रथाएँ इनमें शामिल हैं, जिनको यहाँ का समाज मान्यता देता है। जुमसी सिराम ने ऐसे ही एक जरूरी विषय को अपने कथानक के लिए चुना, जिसका नाम है- 'मेरी आवाज सुनो'। आदिवासी जनसंवेदना और सरोकार से गहरे जुड़े लेखक वीर भारत तलवार इस पुस्तक में अपने दो शब्द जोड़ते हुए कहते हैं-''जुमसी सिराम ने इस उपन्यास में स्त्रियों को अपनी पहचान, अपनी इच्छा, अपना स्वतंत्र अस्तित्व और अपने अधिकारों का सवाल उठाया है। उन्होंने अपने समाज की उत्पीड़ित स्त्रियों के हकों की आवाज़ बुलंद की है और हिंदी में लिखकर इस आवाज को पूरे भारत तक पहुँचा देने की कोशिश की है।" प्रो. तलवार यह भी बताते हैं कि-''इस उपन्यास में एक प्रेमी जोड़े के तीव्र भावावेश के साथ हृदय की सरलता और सचाई को दिखाया गया है। गलत और अन्यायपूर्ण परंपराओं के आगे सिर ना झुकाने की जिद दिखाई गई है। इस उपन्यास में जुमसी हमें एक ओर अधिक न्यायपूर्ण भारतीय समाज बनाने के लिए प्रेरित करते हैं।"

यह प्रेरणा शेष भारत के रहवासियों के लिए कितना प्रेरणास्पद है; इसका फौरी निर्णय न करें, तो भी अरुणाचल प्रदेश के लिए यह उपन्यास सचमुच 'माइलस्टोन' है। स्त्री-पुरुष के स्वाभाविक प्रेम पर सामाजिक संकट के मेघ किस तरह गरजते-बरसते हैं, इसका चित्रण जुमसी सिराम ने अपने इस उपन्यास में बखूबी किया है- "आयि और आलुक के बीच अब शीशे की ऐसी दीवार खड़ी हो गई थी जिसके एक ओर आलुक था तो दूसरी ओर आयि। वे एक-दूसरे को देखकर भी नहीं देख सकते थे; छू नहीं सकते थे। वे एक ही दुनिया में रहकर भी अब एक-दूसरे के लिए मरे हुए से थे। आलुक और आयि अपने असफल प्यार के गम में रो रहे थे और दुनिया उनका मजाक उड़ा रही थी। आलुक को गद्दार कहकर दोषी ठहराया जा रहा था। आयि को कुल-कलंकिनी और पतिता कहकर लोग थूक रहे थे।"

शुद्धता और शुचिता के प्रश्न आखिर कौन खड़े करता है? क्या वे खुद दूध के धुले होते हैं? क्या उनकी अपनी जिंदगी इतनी आत्मीय, उदात्त और खुलेपन से सधी होती है। यदि नहीं, तो बेहूदगी की ऐसी भाषा और लानत-मलालत वाली ऐसी संकीर्ण निगाह से औरों की निजता का उल्लंघन किस तरह सही ठहराया जा सकता है? क्यों सामाजिक ठेकेदार दो पुनीत आत्माओं को परस्पर मिलने में इतनी सारी बाधाएँ खड़ी कर देते हैं? यह प्रश्न असहज कर देने वाला है जिसे जुमसी सिराम के इस उपन्यास ने बेहतरीन ढंग से उठाया है। आज समय बदला है, तो प्रेम भी पेशेवर हो गए हैं। अब प्रेम की भाषा बोलते टिटिहरी-प्रेमी युगल हैं। इनके लिए देह का आकर्षण ही सब कुछ है। उनकी आत्मा आलुक और आयि की तरह नहीं हो सकती है जो समाज के सामने विवश-बेजार थे, लेकिन अब भी अभिन्न थे, पूर्णतया संपृक्त।

आयि समझदार है और उसे अपने जैसों का हाल-दशा पाता है। वह सिर्फ अपने लिए या अपने बारे में नहीं सोचती है। उसका दु:ख साझा और सहोदर दु:ख है जिसमें अनगिनत स्त्रियों की वेदना, पीड़ा और आँख के लोर शामिल है। आयि एक जगह कहती है-''हमारे समूचे इलाके की स्त्रियाँ भी तूफान के घेरे में हैं। यहाँ तो हर स्त्री को हर दिन तूफान से जूझना पड़ जाता है। उजाला शब्द जैसे स्त्रियों के लिए है ही नहीं।"

आयि साहसी थी, बोलती हुई चेतना थी। वह सच से जूझती और न्याय के लिए हर संभव प्रतिकार करती दिखती है। आलुक भी उसके साथ तमाम सामाजिक जटिलताओं में बँधे होने के बावजूद आयि का साथ नहीं छोड़ता है। लेकिन वे लाख चाहकर भी असमय मृत्यु से नहीं बच सके। दोनों सामाजिक शोषकों, पीड़कों, दंभी और स्वार्थलोलुप लोगों के द्वारा वध कर दिए गए थे। अंत तक उनकी आवाज कोई नहीं सुनता है, लेकिन आश्चर्य कि एक स्त्री जो आयि का घोर विरोध करती आई थी; वह बदली हुई भाषा में जो बातें सार्वजनिक ढंग से कहती है; वह इस उपन्यास का मूल ध्यातव्य है-''मैं अंधी हो गई थी, पर अब हमारी आँखें खुल गई है। आज यायि का अंत नहीं हुआ है। उसके जख़्मों के दाग, खून का एक-एक कतरा आज उछलकर कह रहा है कि-'मेरी आवाज सुनो'; ये घर, ये देश, ये सारा संसार स्त्रियों का है। आयि, समाज की सताई हुई पीड़ित, निरक्षर और निर्बोध स्त्रियों के बोझ को अपने ऊपर लादकर अकेली लड़ती रही। अकेली दौड़ती रही। अकेली एक शक्ति बनकर बोलती रही। पर हमने उस साहसी औरत को नहीं पहचाना।"

सबसे बड़ी बात कि उपन्यास में आयि की आहुति के बाद एक सामाजिक बदलाव देखने को मिलता है। लोग अपनी ग़लतियों पर शर्मिंदा होते हैं। सब मिलजुकर स्वीकार करते हैं कि- "हा-हाँ! हम पुरानी बुराइयों को नहीं अपनाएंगे। हम नारी के जरिए से आए हैं। उसी ने हमें जन्म दिया, पाला-पोसा, बड़ा किया। लेकिन हमने

उसके साथ मनचाहा व्यवहार किया। जिनके पास धन-दौलत है, वे दर्जनों पत्नी खरीद सकते हैं। बेचारे, आलुक के पास कुछ नहीं था। इसलिए उसे अपनी जान गँवानी पड़ी।" इसका निदान भी वे सब मिलकर खुद ढूँढ़ते हैं। वे संकल्प लेते हैं कि- "हमारे पूर्वजों ने भले ही आदिम तरीके से जीवन व्यतीत किया हो; लेकिन हमें तो आधुनिक जीवन-पद्धति को अपनाना चाहिए। इसका तो एक ही उपाय है कि शिक्षा का विस्तार हो।" आज अरुणाचल की स्त्रियाँ 'नेप्प निदा' की कुप्रथा से मुक्त हैं। हर तरह की बंधन से आजाद हैं। लेकिन उन्हें याद रखना होगा कि इस दिन को देखने के लिए पूर्व की स्त्रियों ने क्या आत्मसंघर्ष किया है। अपनी जान की आहुति दी। जुमसी सिराम ने अपने उपन्यास 'मेरी आवाज़ सुनो' के माध्यम से सचबयानी का साहसपूर्ण निर्णय लिया है। वह समाज के ऊपर कोई आरोप या लांछन नहीं मढ़ते, बल्कि वह उन कुरीतियों पर वार-प्रहार करते हैं, जिसके कारण समाज में स्त्रियों के प्रति दोहरा आचरण और भेदभाव होता है। अपनी सजग चेष्टा और संवेदनशील रचनाशीलता के माध्यम से समाज को सही दिशा देने का जो बीड़ा जुमसी सिराम उठाते हैं, वह महज लेखकीय उत्तरदायित्व नहीं है। इस तरह के लेखक समाज के असल नायक होते हैं जिनसे समाज का भविष्य रौशन होता है।

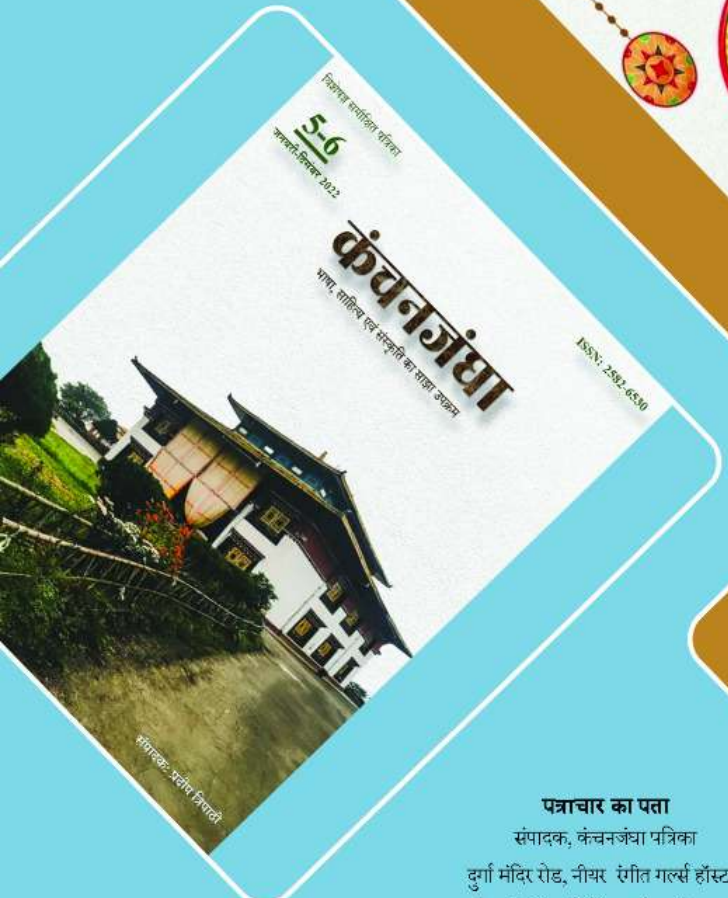
आईआइएएस, शिमला के पूर्व फेलो और आदिवासी अध्ययन के जानकर डॉ. अभिषेक कुमार यादव का मत है कि-''साहित्य महज ज्ञानानुशासन की एक विधा ही नहीं है, बल्कि समय, समाज, सभ्यता और संस्कृति के लंबे काल-प्रवाह का एक दस्तावेज भी है। हम साहित्य को न तो तथ्यों से परे ले जाकर पढ़ सकते हैं और न ही साहित्य को केवल तथ्यों की कसौटी पर कस सकते हैं। साहित्य एक ऐसी विधा है जो तब से चली आ रही है जब मनुष्य ने लिखना भी शुरू नहीं किया था। अपने अनुभवों को अपने सपनों से मिलाकर बनाया मनुष्य ने साहित्य को। और चूँकि साहित्य आदमीयत के सपने के साथ जुड़ा था, इसीलिए यह प्रक्रिया दोतरफा चलती रही। साहित्य ने इंसानियत के भविष्य और वर्तमान को गढ़ा तो इंसानों ने साहित्य के रूप में अपने अमूल्य जीवन-अनुभवों को सदा के लिए सुरक्षित कर दिया।" जुमसी सिराम हिंदी लेखक के रूप में अपनी भूमिका बखूबी निभाते हैं। उन्होंने अपने समय के कैनवास पर लेखन के माध्यम से जो और जैसा साहित्य रचा-बुना है; उसकी आने वाली पीढ़ी तामील करेगी, इनको शिद्दत से याद रखेगी। यह अपेक्षा अवश्य की जानी चाहिए।

*(**लेखकीय परिचय:** डॉ. राजीव रंजन प्रसाद वर्तमान में राजीव गांधी विश्वविद्यालय, अरुणाचल प्रदेश के हिंदी विभाग में सहायक प्रोफ़ेसर हैं। गंभीर शोध-अध्येता एवं प्रयोगधर्मी अध्यापक के रूप में आपकी विशिष्ट पहचान है। मोबा. 6909115086, ईमेल: rajeev.prasad@rgu.ac.in)*











पत्राचार का पता

संपादक, कंचनजंघा पत्रिका

दुर्गा मंदिर रोड, नीयर रेंगीत गर्ल्स हॉस्टल

06 माईल, गंगटोक, सिक्किम, पिन कोड : 737102

संपर्क : +91 6294913900 ईमेल : kanchanjanghapatrika@gmail.com